ISSN : 2348-8425

सत्राची

छायावाद पर केन्द्रित विशेषांक

वर्ष 5, अंक 18, जनवरी-मार्च, 2018

An International Registered & Peer Reviewed Research Journal
SATRACHEE

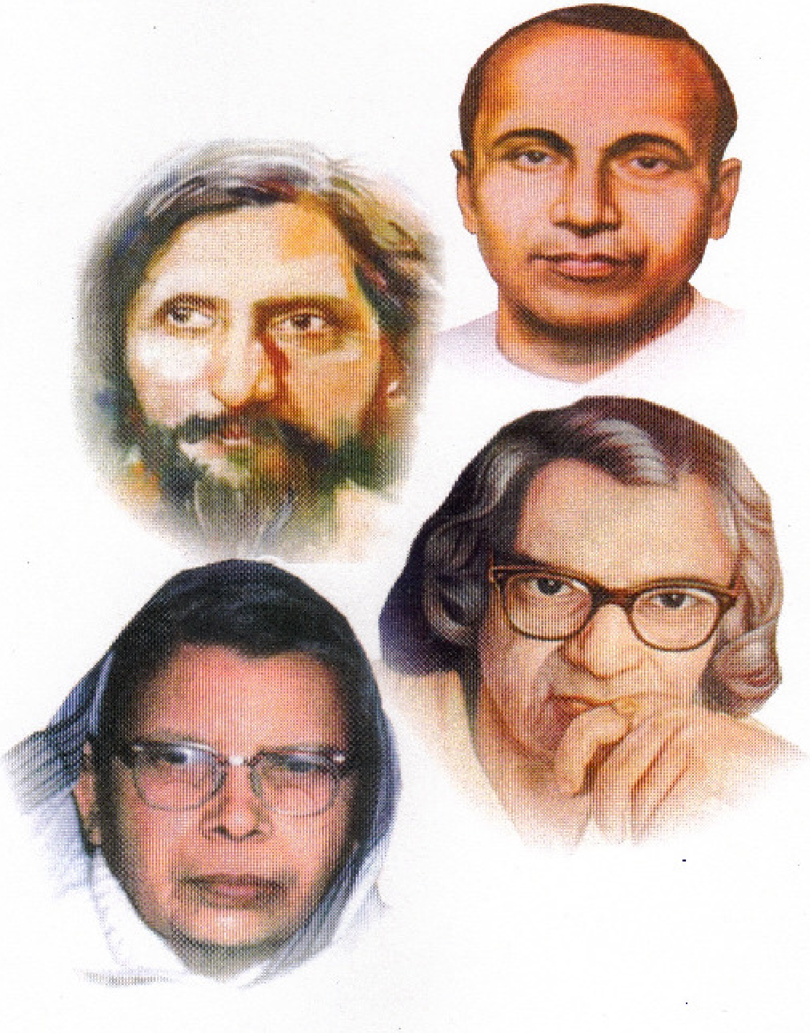

अतिथि संपादक : कमलेश वर्मा • सुचिता वर्मा

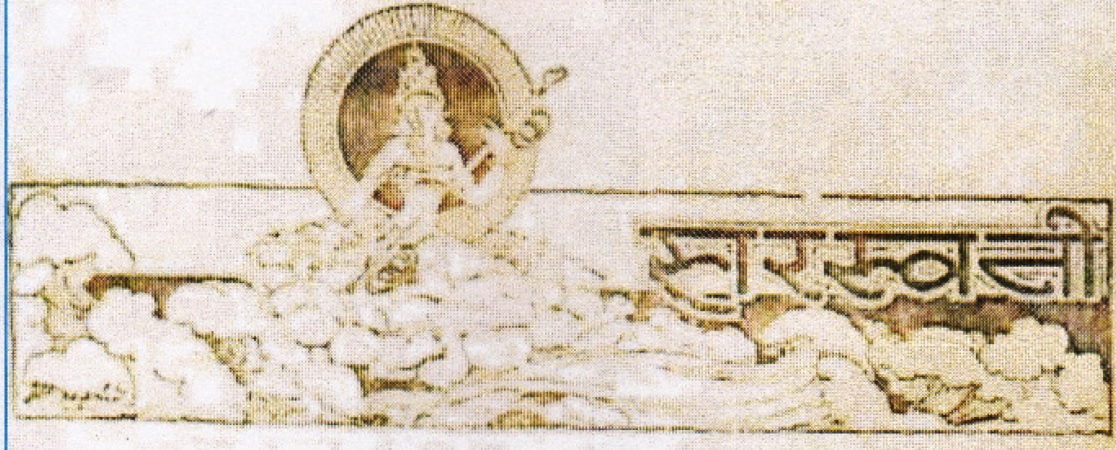

सचित्र मासिक पत्रिका

सम्पादक

देवीदत्त शुक्ल श्रीनाथसिंह

जनवरी १९३७ | भाग ३८, खंड १ संख्या १, पूर्ण संख्या ४४५ | पौष १९९३

सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति

लेखक, श्रीयुत सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

वीक्षण अराल :—
बज रहे जहाँ
जीवन का स्वर भर छन्द, ताल
मौन में मन्द्र,
ये दीपक जिसके सूर्य-चन्द्र,
बँध रहा जहाँ दिग्देशकाल,
सम्राट्! उसी स्पर्श से खिली
प्रणय के प्रियङ्गु की डाल डाल!

विंशति शताब्दि,
धन के, मान के बाँध को जर्जर कर महाब्धि
ज्ञान का, बहा जो भर गर्जन—
साहित्यिक स्वर—
"जो करे गन्ध-मधु का वर्जन
वह नहीं भ्रमर;
मानव मानव से नहीं भिन्न,
निश्चय, हो श्वेत, कृष्ण अथवा,
वह नहीं क्लिन्न;

to be Continued in back cover page

सत्राची

मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान की त्रैमासिक शोध पत्रिका

^Nk;kokn ij dfUær fo'k"kkd*

वर्ष 5, अंक 18, जनवरी–मार्च, 2018

अतिथि संपादक

कमलेश वर्मा

सुचिता वर्मा

प्रधान संपादक

रूपम

संपादक

आनन्द बिहारी

ISSN 2348-8425

सत्राची

अंक 18, (छायावाद विशेषांक)
जनवरी-मार्च, 2018

मानविकी एवं समाज-विज्ञान की
पूर्व समीक्षित त्रैमासिक शोध पत्रिका

संरक्षक :

- डॉ. चंद्रावती सिंह

संपादक मंडल :

प्रधान संपादक :

- डॉ. रूपम

संपादक :

- आनन्द बिहारी

सहायक संपादक :

- श्रीमती भावना मिश्रा
- सुश्री अंकिता कुमारी

संपादकीय सलाहकार :

प्रो. मुक्तेश्वर नाथ तिवारी, डॉ. कमलेश वर्मा, डॉ. राजू रंजन प्रसाद, डॉ. आशुतोष पार्थेश्वर, डॉ. दिलीप राम, डॉ. पुष्पलता कुमारी, डॉ. अरविन्द कुमार, डॉ. तेलानी मीना होरो, डॉ. नीरा चौधरी, डॉ. मधु मंजरी, डॉ. बंदना सिंह।

❖❖❖

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक :

- डॉ. रूपम
- आनन्द बिहारी

सलिमपुर अहरा, कदमकुआँ, पटना 3

संपादन/प्रकाशन : अवैतनिक/अव्यावसायिक

मुद्रण :

पाकिज़ा ऑफसेट, शाहगंज, दरगाह रोड, पटना 6.

प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। यहाँ प्रकाशित रचनाओं का सर्वाधिकार रचनाकारों के पास है। रचनाओं के अकादमिक एवं अव्यावसायिक उपयोग के लिए संपादक और लेखक की अनुमति आवश्यक नहीं हैं, परंतु प्रकाशक अथवा रचनाकारों को इसकी सूचना अवश्य दें।

मूल्य : एक प्रति 250 रुपए

सदस्यता शुल्क :

पंचवार्षिक : 3000 रुपए
: 4000 रुपए (विशेषांक सहित)
: 8000 रुपए (संस्थागत)
आजीवन : 5000 रुपए
: 7000 रुपए (विशेषांक सहित)
: 14000 रुपए (संस्थागत)

संपादकीय पत्र-व्यवहार :

आनन्द बिहारी
केशव कुंज, बॉलिया चॉक, सालिमपुर अहरा,
कदमकुआँ, पटना-800003,

website: www.satraachee.weebly.com
E-mail : satraachee@gmail.com
Mob No. : 09470738162, 09661792414

❖❖❖

अनुक्रम

संपादकीय

06 :: छायावाद के प्रारंभ के सौ साल — कमलेश वर्मा

छायावाद

11 :: छायावाद : वाद और विवाद के बिन्दु — ओमप्रकाश सिंह

19 :: छायावाद का अध्यापन : आलोचनात्मक सहायिका — गोपाल प्रधान

28 :: छायावाद : कुछ नोट्स — निरंजन सहाय

39 :: छायावादी कविता का वैशिष्ट्य — प्रवीन कुमार यादव

45 :: प्रसाद और निराला का काव्य-चिंतन — दिलीप राम

51 :: Romanticism (Chhayavad) in hindi Literature — भावना मिश्रा

54 :: Chhayavad : A Poetic Revolution — जयप्रकाश सिंह

छायावाद और आलोचना

58 :: आलोचना जागते हुए सिपाही की आवाज़ है। — क्षमाशंकर पांडेय

71 :: छायावादी विषाद तत्त्व : मिथक और यथार्थ — रवि रंजन

77 :: छायावाद के आलोचकों की दृष्टि पर पुनर्विचार — इमरान अंसारी

83 :: छायावाद के संदर्भ में कामायनी का अध्ययन — राहुल प्रसाद

तुलनात्मक अध्ययन

88 :: जापान की क्रांतिकारी कवयित्री आकिको योसानो और महादेवी वर्मा — तोमोको किकुचि

छायावादी राष्ट्रवाद

95 :: छायावाद की राजनीतिक पृष्ठभूमि — तेलानी मीना होरो

98 :: छायावादी कविता : मानवीय स्वतंत्रता की आवाज़ — राम बचन यादव

107 :: राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और छायावाद — शिवनंदन प्रसाद

112 :: छायावादी कवि : भारतीय परंपरा के जननायक — कृष्ण कुमार

118 :: छायावाद की सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना — आरजू सिंह, अजीत प्रताप सिंह

उपन्यास

122 :: छायावादी उपन्यास — खुशबू

स्त्री पक्ष

127 :: प्रसाद की स्त्री-चेतना और 'ध्रुवस्वामिनी' — जगमोहन सिंह

साहित्यिक पत्रकारिता

142 :: छायावाद की साहित्यिक पत्रिकाएँ — किरण शर्मा

कला और काव्य-भाषा

152 :: मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की — नीलकंठ कुमार
166 :: छायावादी साहित्य में मिथकीय चेतना — नीलकंठ कुमार
174 :: महादेवी का प्रतीक-विधान — मधु मंजरी
179 :: छायावादी काव्य में संगीत-तत्त्व — अरविंद कुमार

कवि विशेष

191 :: जयशंकर प्रसाद का प्रारंभिक काव्य-विकास — अंजय कुमार
197 :: महाप्राण निराला : मूड, गूढ़ और बेसुध के कवि — यशस्विनी पांडेय
204 :: हिंदी आलोचना के द्वारा महादेवी वर्मा का मूल्यांकन — श्रीधरम
213 :: बीत गयी पर बात नहीं गयी — आशा सिंह

कोश

217 :: छायावादी काव्य-कोश — कमलेश वर्मा, सुचिता वर्मा

❑❑❑

अपनी बात

हिंदी साहित्य में 'छायावाद' अपनी उपलब्धियों एवं विवादों के कारण आरंभ से ही चर्चा का विषय रहा है। इसके पक्ष और विपक्ष में लिखने तथा बोलनेवाले विद्वानों की एक लंबी सूची है। सबने अपने-अपने ढंग से 'छायावाद' को समझने व समझाने की कोशिश की है। जाहिर है इस प्रयास में 'छायावाद' को देखने के जितने सकरात्मक तथा नकरात्मक तर्क हो सकते हैं, उनमें से अधिकांश का संचय हिंदी साहित्य की निधि के रूप में हो चुका है। इसके बावजूद छायावादी काव्य पर विचार-विमर्श निरंतर जारी है। इस निरंतरता की उम्र अब सौ वर्ष हो चुकी है। सौ वर्षों के पश्चात हिंदी साहित्य और उसकी आलोचना को नई अवस्थिति, नई परिस्थिति, नई दृष्टि और नई वैचारिकी प्राप्त हुई है। नई शोध प्रविधियों एवं तकनीक ने आलोचना को नए टूल्स दिए हैं। नएपन के इस वातावरण में सौ वर्ष पहले के साहित्य को आज का आलोचक किस प्रकार देखता है, ये जिज्ञासा और कौतूहल का विषय है। 'सत्राची' का प्रस्तुत अंक इसी कौतूहल और जिज्ञासा का परिणाम है।

प्रस्तुत अंक का संपादन वर्मा दंपति यानी डॉ. कमलेश वर्मा एवं सुचिता वर्मा ने किया है। आप दोनों ने 'सत्राची' को आरंभ से ही पोषित किया है और इसके प्रत्येक विशेषांक को बेहतर बनाने में अपना सर्वोत्तम दिया है। अत: 'छायावाद' विशेषांक के लिए आप दोनों से बेहतर विकल्प संभव नहीं था।

'छायावादी काव्य-कोश' बनाने के क्रम में वर्मा दंपति लंबे समय से छायावादी काव्य पर काम करते आ रहे हैं। अत: छायावाद को निकट से देखने और परखने का उन्हें पर्याप्त अवसर मिला है। सूक्ष्म दृष्टि, अनुभव और गहरे अध्ययन का ही परिणाम है कि डॉ. वर्मा छायावाद की वैचारिकी को समासामयिक संदर्भ देने में सफल हो सके हैं। किसी भी आलोचक की सफलता की यही कसौटी है कि वह साहित्य और समाज को समय के साथ किस रूप में जोड़ता है। इस दृष्टि से डॉ. वर्मा का संपादकीय लेख महत्त्वपूर्ण है। छायावादी कवियों की सांस्कृतिक दृष्टि को जिस रूप में देखने का आग्रह यहाँ किया गया है, वह वर्तमान भारत की जरूरत है। भारत को धार्मिक व सांप्रदायिक राष्ट्र कहना ठीक नहीं। यह एक सांस्कृतिक देश है। इसकी जड़ें इसकी संस्कृति में धँसी हुई हैं। अत: भारत का नवनिर्माण सांस्कृतिक प्रश्नों की उपेक्षा करके संभव नहीं है। छायावादी कवियों ने इस बात को गहराई से समझा था। क्योंकि संस्कृति कोई साधारण चीज नहीं होती। वह किसी भी राष्ट्र या समाज का सुरक्षा कवच है। इसके प्रश्नों से शून्य साहित्य जातीय साहित्य नहीं हो सकता। इस दृष्टि से छायावाद जातीय साहित्य था। उसकी चिंताएँ और आकांक्षाएँ व्यापक स्तर पर जातीय थी। डॉ. वर्मा ने छायावादी कवियों को उसी व्यापक जातीय संदर्भ में देखने का प्रयास किया है। मैं उनके इस प्रयास को नमन करता हूँ और इस अंक के लेखकों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ।

सधन्यवाद

28 दिसम्बर, 2018

- आनन्द बिहारी
पटना

संपादकीय

छायावाद के प्रारंभ के सौ साल

छायावाद के प्रारंभ के सौ वर्ष पूरे हुए 2018 में। इस अवसर पर छायावाद को फिर से याद करने की योजना 'सत्राची' ने बनाई। यह विचार हमारे मन में जुलाई 2017 में आया था, जब हमलोग 'सत्राची: वीर भारत तलवार' विशेषांक की तैयारी कर रहे थे। 20 सितंबर, 2017 को 'तलवार विशेषांक' के विमोचन के बाद छायावाद के अंक पर विधिवत विचार शुरू किया गया। इसके विभिन्न पक्षों को सूचीबद्ध करके 06 जनवरी, 2018 को फेसबुक के माध्यम से 'सत्राची : छायावाद के प्रारंभ के सौ वर्ष' की योजना की घोषणा की गयी। उस समय तक हमारी जानकारी में छायावाद पर किसी अन्य कार्यक्रम या योजना की घोषणा नहीं हुई थी। समय बीतता गया और आलेखों की प्रतीक्षा में हमें रुकना पड़ा।

लगभग छह महीने के विलम्ब से पत्रिका आपके पास पहुँच रही है, इसका हमें अफसोस है। जिन लेखकों ने समय से अपने आलेख भेज दिये थे, उन्हें काफी प्रतीक्षा करनी पड़ी! लेखकों के सहयोग के प्रति हम आभारी हैं और विलम्ब के लिए क्षमाप्रार्थी!

इस अंक में कुल 28 आलेख हैं। विषय के अनुसार आलेखों को 9 हिस्से में क्रमबद्ध किया गया है। अंत में 'छायावादी काव्य-कोश' के 'अ' वर्ण की सभी प्रविष्टियाँ संकलित की गयी हैं। इस अंक की विशेषता है कि इसमें 60 पार के लेखकों के साथ नवोदितों के भी आलेख शामिल हैं। इन आलेखों को पढ़कर आपको लगेगा कि छायावाद पर पुनर्विचार करने की क्षमता स्थापितों के साथ-साथ नवोदितों में भी मौलिकता के साथ मौजूद है। इस सन्दर्भ में इमरान अंसारी और रामबचन यादव के आलेखों को पढ़ा जा सकता है। छायावाद की विशेषताओं को स्वीकार करने की प्रवृत्ति बहुतायत से मौजूद है, जिसके प्रमाण इस अंक के आलेखों में भरे पड़े हैं। मगर छायावाद की जो आलोचनाएँ हुई हैं, उनके प्रति असहमति और मतभेद की प्रवृत्ति प्रारंभ से ही मौजूद रही है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, देवराज, नंददुलारे वाजपेयी से लेकर नामवर सिंह तक की स्थापनाओं से कम या ज्यादा असहमतियाँ प्रकट होती रही हैं। यहाँ तक कि छायावादी कवियों के द्वारा लिखी गयी आलोचनाओं के प्रति भी यह धारणा रही है कि इनके केंद्र में कवि ने अपनी रचनाओं को रखा है और दूसरे छायावादी कवियों की रचनाओं की उपेक्षा की है। 'पल्लव' की भूमिका और उस पर लिखी गयी निराला की तीखी आलोचना - 'पंतजी और पल्लव' - को अनेकशः याद किया गया है।

छायावाद की खूबसूरती का प्रभाव व्यापक है। उसके भीतर पूरे विश्वास से धड़कते जीवन की मौजूदगी है। उसकी रोमानियत में आजादी की चेतना है और आज भी उसकी भाषा के अधिकांश में तन्मय कर देने की ताकत है। शायद इन्हीं कारणों से छायावादी साहित्य पर पुनर्विचार करता यह अंक, उसके पक्ष में, अपने आलेखों के माध्यम से खड़ा है। हमने किसी के भी आलेख में आए विचारों को संशोधित नहीं किया है। छायावाद के पक्ष या विपक्ष में आए विचार-बिन्दुओं को यथावत रखने का संकल्प हमारा

पहले से था और उसका पालन भी किया गया है। पूरे अंक को पढ़कर यही लगा कि छायावाद के प्रति आज भी साहित्यिकों का गहरा लगाव है और विवाद के बिन्दुओं का सारा विभाग छायावाद के आलोचकों के ईर्द-गिर्द मौजूद है। ओमप्रकाश सिंह ने विवाद के कई गंभीर बिन्दुओं को रेखांकित किया है। उन्होंने शिवदान सिंह चौहान को याद किया है, जिन्होंने लिखा था, "इस छायावाद की धारा ने हिन्दी के साहित्य को जितना धक्का पहुँचाया उतना शायद ही हिन्दू महासभा या मुस्लिम लीग ने भारत को पहुँचाया हो।" संस्कृति के प्रश्नों को लेकर आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में छायावाद से ज्यादा गंभीर चिंतन-मनन कहीं और नहीं मिलता। इस सन्दर्भ में रवि रंजन के आलेख को देखना चाहिए, जिसमें छायावाद के 'विषाद' पर विचार किया गया है। यह छायावादी काव्य का एक ऐसा भावात्मक पक्ष है, जो उसकी भाषा के रेशे-रेशे को प्रभावित कर रहा है। यह मामला कला-पक्ष का भी है। कलात्मक सौन्दर्य की निर्मिति में विषाद-तत्त्व ने जो भूमिका निभायी है, वह छायावाद की एक उपलब्धि है। दु:ख को कला में ढालना और संस्कृति के प्रश्नों को मानवीय बनाना - छायावादी कवियों की एक पहचान है। बाद की हिन्दी कविता ने प्रयासपूर्वक संस्कृति के प्रश्नों के बजाए राजनीति के प्रश्नों पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। 'कविता के नए प्रतिमान' के विवरणों को ध्यान में रखकर कहा जा सकता है कि छायावादी स्वभाव को दुर्बलता के रूप में रेखांकित किया जाने लगा और इस बात की पैरवी की जाने लगी कि छायावादी प्रभाव तक को त्याग दिया जाए। इससे हिन्दी कविता के कई नए आयाम खुले, मगर संस्कृति के प्रश्न छूटते गए। संस्कृति के प्रश्नों को छोड़ देने से वे समाप्त नहीं हो जाते, बल्कि विकृत होकर साम्प्रदायिकता को आधार प्रदान करने लगते हैं। हिन्दी कविता ने इन प्रश्नों को छोड़ दिया और ये प्रश्न राजनीति के गलियारे में पहुँचकर चुनावी लोकतन्त्र की आँच पर पकने लगे। साम्प्रदायिकता का यह पकवान पकते-पकते अब इस स्थिति में पहुँच गया है कि संस्कृति के प्रश्न धार्मिक टकराव का रूप धारण कर चुके हैं। हिन्दी कविता साम्प्रदायिकता से टकराती तो खूब है, मगर व्यावहारिक सफलता के मामले में उसका रिकॉर्ड बहुत अच्छा नहीं है।

आदिकाल से लेकर छायावाद तक 'राम' पूछे जाते रहे, निर्गुण कबीर के भी 'राम' थे और कृष्ण भक्त कवियों के पास भी कृष्ण के रूप में 'राम' थे। यहाँ तक कि सूफी कविताएँ भी हिन्दू घरों में प्रचलित कथाओं को कहती थीं और उन कविताओं में यथाप्रसंग 'राम' मौजूद होते थे। आदिकाल से लेकर छायावाद तक की कविताओं में 'राम' मौजूद हैं और संस्कृति के विभिन्न पक्ष बनकर खड़े हैं, वे किसी भी तरह से 'साम्प्रदायिकता' का चेहरा नहीं बनाए जा सके हैं। मगर, हिन्दी कविता ने संस्कृति के प्रश्नों को ज्यों-ज्यों छोड़ा, त्यों-त्यों राम की छवि का दुरुपयोग सांप्रदायिक राजनीति के द्वारा बढ़ते क्रम होता चला जा रहा है। आप राजनीति से लड़ सकते हैं, 'राम' से लड़ना मुश्किल है। ऐसी राजनीति करनेवाले इसे संस्कृति का प्रश्न बताते हैं, बीच में हिन्दू अस्मिता को जोड़ते हैं और अंतत: एक धार्मिक राष्ट्रवाद के रूप में 'राम' को प्रतीक बना देते हैं। कारवाँ यहीं नहीं रुकता, वे 'राम' को मुसलमानों के विरोध में भी प्रतीक बना देते हैं। ओमप्रकाश सिंह और रवि रंजन ने अपने-अपने आलेखों में संयोगवश शिवदान सिंह चौहान के उसी कथन का उल्लेख किया है। 1937 में कही गयी यह बात गलत निकली। छायावाद ने साम्प्रदायिकता बढ़ायी नहीं थी, बल्कि संस्कृति के प्रश्नों को साम्प्रदायिकता के प्रश्न बनने से रोका था। वहाँ धर्म की चर्चा से परहेज नहीं था, भारत को प्राचीन काल की तरह गौरवशाली बनाने के सपने भी थे; मगर धार्मिक उन्माद का पक्ष लेने की प्रवृत्ति नहीं थी और भारत को हिन्दू राष्ट्र बनाने का कोई संकल्प भी नहीं था। 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' और 'हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार' जैसी कविताएँ इस बात पर जोर देती थीं कि भारत प्यारा और सुंदर देश है, और

गौरवशाली भी। 'कामायनी' का शैव दर्शन किसी भी तरह का धार्मिक उन्माद पैदा नहीं कर रहा था। वह श्रद्धा भले पैदा कर रहा था, उन्माद से उसका कोई रिश्ता नहीं था।

यह सब कहने का अर्थ यह नहीं है कि छायावाद के रास्ते पर चलते रहने में ही हिन्दी कविता की भलाई थी, बल्कि इस बात की चिंता प्रकट की जा रही है कि संस्कृति के प्रश्नों को छोड़कर हिन्दी कविता ने एक शून्य पैदा किया, जिसमें साम्प्रदायिकता को फलने-फूलने का मौका मिला और हिन्दी की वैचारिक कविता अपने ही समाज में पल रहे इसके अनर्गल सवालों के जवाब नहीं दे सकी। छायावाद के बाद की हिन्दी कविता में साम्प्रदायिकता के खिलाफ लिखने की जोरदार प्रवृत्ति रही है, मगर जनता के मन में उठनेवाले सांस्कृतिक प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर देने की क्षमता नहीं रही है। संतोषजनक उत्तर बनने की एक कसौटी यह भी होती है कि आपके उत्तर से प्रश्नकर्त्ता को संतोष हो और वह सही दिशा में चलने की ताकत पैदा कर सके।

छायावाद ने भारत के बारे में जो सोचा था, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका महत्त्व आज ज्यादा समझ में आता है, जब हमारे सामने धार्मिक राष्ट्रवाद तेजी से भारत की नई पहचान बनता जा रहा है। धर्मनिरपेक्षता से धार्मिक राष्ट्रवाद की तरफ बढ़ता भारत निश्चित रूप से स्वतंत्रता आन्दोलन के सपनों का भारत नहीं है। यह भारत के लोगों का भारत नहीं है। भारत के लोगों के भारत को देखना चाहते हैं तो छायावाद की तरफ नजर घुमाई जा सकती है। इसके लेखकों ने पराधीन भारत के जमाने में भी इतना साहस रखा था कि वे भारत के लोगों के भारत का सपना देख सकें। इस अंक के 'छायावादी राष्ट्रवाद' खंड में कुल पाँच आलेख हैं, जिनमें भारत का एक सुंदर रूप मौजूद है। यह वही भारत है जिसे बनाने के लिए स्वतंत्रता सेनानियों से लेकर किसान-मजदूर-दलित-अल्पसंख्यक-स्त्रियाँ-आदिवासी अपने-अपने ढंग से आंदोलनरत थे। इस संघर्ष में धार्मिक राष्ट्रवादियों के नाम पर सन्नाटा के सिवा कुछ नहीं है।

छायावाद अपनी बनावट में घोर साहित्यिक लगता है। यह पक्ष उसे कलात्मक ऊँचाई प्रदान करता है। मगर, वैचारिकी की दृष्टि से उसे अपरिपक्व नहीं कहा जा सकता है। हिन्दी कविता के इतिहास में संभवत: छायावाद अंतिम कालखंड है, जिसकी रचना में भारतीय दर्शनों का उपयोग किया गया है। ऐसा कहकर प्रगतिवाद के दार्शनिक आधार मार्क्सवाद को भुलाने का प्रयास नहीं किया जा रहा है। मगर, यह मानने में परहेज नहीं करना चाहिए कि भारत की दार्शनिक परम्पराओं (आस्तिक एवं नास्तिक दोनों) को छायावाद के बाद छोड़ने की प्रवृत्ति में काफी तेजी आयी। मार्क्सवाद और उसके बाद बाहर से आयी दार्शनिक धाराओं ने भारत को समझने के अनेक नए रास्ते खोले। इन सबके कारण भारत के नए-नए रूपों की जानकारी हमें मिली। इन सब उपलब्धियों के बावजूद यह तो कहा ही जा सकता है कि भारत की दार्शनिक परम्पराएँ हिन्दी कविता से क्रमश: छूटती गयीं। इस प्रवृत्ति ने भी हिन्दी साहित्य में संस्कृति के प्रश्नों को दार्शनिक रूप से दुर्बल किया। जीवन या समाज को गहराई से समझने के लिए दर्शन की जो गम्भीर बुनियाद कविता में मौजूद थी, वह रूपांतरित होकर राजनीति से सरोकार रखने लगी। क्षमाशंकर पाण्डेय के आलेख में आप देख सकते हैं कि छायावादी आलोचना ने साहित्य और जीवन को कितनी गहराई से जोड़कर समझा-बूझा था। छायावाद के कवि स्वप्नलोक के कवि नहीं थे, वे इस संसार को खूब बारीकी से समझते थे, मगर दार्शनिक गहराई के साथ। बाद में बारीकी तो रह गयी, गहराई छूटती गयी।

छायावादी कवियों की वैचारिकी में एक तरह की वैश्विक दृष्टि मिलती है। इस बात को विस्तार के साथ तोमोको किकुचि ने अपने आलेख में दर्शाया है। उन्होंने महादेवी वर्मा और जापान की कवयित्री आकिको योसानो की कविताओं की तुलना करते हुए एक सुंदर अध्ययन प्रस्तुत किया है। इन दोनों

कवयित्रियों की कभी मुलाकात नहीं हुई थी। दोनों दो देशों में थीं, मगर स्त्री के दुःख के भावसाम्य का एक वैश्विक परिदृश्य दिखायी पड़ता है, जब हम इस आलेख से गुजरते हैं।

छायावाद के विभिन्न बिन्दुओं को अत्यंत कुशल विश्लेषण के साथ संक्षेप में एक जगह पढ़ना चाहते हैं तो पहले गोपाल प्रधान को पढ़ें, फिर निरंजन सहाय को। गोपालजी ने अध्यापन और आलोचना के मणिकांचन संयोग के साथ रच-बसकर इस आलेख को तैयार किया है। यह आलेख जागरुक प्राध्यापकों के लिए जामवंत की तरह है, जिसमें दिशा दिखाने की क्षमता भी है और गहरा अनुभव भी। इस आलेख की मदद से छायावाद के जिज्ञासुओं के बीच एक अच्छा व्याख्यान दिया जा सकता है। प्रवीन कुमार यादव ने छायावादी कविता की विशेषताओं पर पुनर्विचार किया है। प्रसाद और निराला के काव्य-चिंतन के बीच तुलना करता हुआ आलेख है दिलीप राम का।

छायावाद के उपन्यास, नाटक और पत्रकारिता के कुछ पक्षों को उद्‌घाटित करनेवाले आलेखों के साथ यह अंक समृद्ध हुआ है। छायावाद यूँ तो कविताओं के लिए जाना जाता है, मगर इस प्रवृत्ति का प्रभाव साहित्य के दूसरे रूपों पर भी पड़ा था। खुशबू का आलेख 'छायावादी उपन्यास' छायावादी कालखंड में लिखे गए विभिन्न प्रकार के उपन्यासों की विशिष्टताओं को रेखांकित करता है। छायावादी और छायावादेतर वर्गों में बाँटकर उपन्यासों को देखने के बजाए इस आलेख में एक विधा के तौर पर उस युग के हिन्दी उपन्यासों पर टिप्पणी की गयी है। जगमोहन सिंह ने अत्यंत धैर्य के साथ 'ध्रुवस्वामिनी' के पुनर्विवाह की बहस पर विचार किया है और धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों का जवाब धर्म के भीतर से ही तलाशने की कोशिश को व्याख्यायित किया है। जयशंकर प्रसाद ने यही दिखाना चाहा था कि धर्म को जितना रूढ़िवादी बना दिया गया है, वह हर मामले में मूलतः वैसा है नहीं। धार्मिक पुस्तकों में ऐसी बातें भी हैं जो मुक्ति की राह दिखाती हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि छायावाद धार्मिक पुनरुत्थान चाहता था, बल्कि इसका अर्थ केवल इतना है कि यदि धर्म में मुक्ति के पक्ष हैं तो धैर्यपूर्वक उन्हें भी सामने लाया जाना चाहिए! प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी' की भूमिका में नारद और पराशर स्मृति के कुछ छंदों को रखा है, जिनमें स्त्री के अधिकार बताए गए हैं कि कुछ परिस्थितियों में वह पति को त्यागकर पुनर्विवाह कर सकती है।

छायावादी दौर साहित्यिक पत्रकारिता की दृष्टि से समृद्ध था। विभिन्न पत्रिकाओं का एक अध्ययन प्रस्तुत करता आलेख है किरण शर्मा का।

छायावादी कला और काव्य-भाषा पर कुल चार आलेखों को इस अंक की उपलब्धि कहा जा सकता है। 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की' आलेख में नीलकंठ कुमार ने छायावाद की काव्य-भाषा पर विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। इस आलेख में, छायावाद की काव्य-भाषा पर, अब तक की महत्त्वपूर्ण आलोचनाओं को करीने से रखा गया है और उनका मूल्यांकन भी किया गया है। मिथकीय चेतना से सम्बन्धित अपने दूसरे आलेख में नीलकंठ कुमार ने अत्यंत साहस के साथ इतिहास के कुछ पक्षों पर विचार किया है। शिवाजी, राजपूत, मुसलमान आदि के प्रति धारणाओं की निर्मिति की प्रक्रिया को इस आलेख में तथ्य के साथ उभरा गया है। यह आलेख संस्कृति के प्रश्नों को सुलझाता है जो छायावाद की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि रही है। मधु मंजरी ने महादेवी के प्रतीकों की योजना का एक उपयोगी पुनर्मूल्यांकन उपलब्ध कराया है। छायावादी कविता के संगीत-पक्ष को उकेरता आलेख कई जानकारियाँ देता है। अंजय कुमार ने जयशंकर प्रसाद के प्रारम्भिक काव्य-लेखन को ध्यान में रखकर तथ्यों के साथ विश्लेषणपरक आलेख लिखा है। यशस्विनी पाण्डेय ने निराला के निरालेपन से एक बार फिर हमें परिचित कराया है।

महादेवी वर्मा की गम्भीर और विस्तृत आलोचना का अभाव आज भी मौजूद है। इस चिंता को व्यक्त करते हुए श्रीधरम ने अब तक की उपलब्ध आलोचनाओं की विशिष्टताओं के साथ अपर्याप्तताओं को भी अपने आलेख में सुंदर तरीके से रखा है। महादेवी के रेखाचित्रों पर आशा सिंह ने पुनर्विचार किया है।

अंक के अंत में 'छायावादी काव्य-कोश' के 'अ' वर्ण की प्रविष्टियों को संकलित किया गया है। प्रसाद, निराला, पन्त और महादेवी की 1918-1936 के बीच की कविताओं से ये प्रविष्टियाँ ली गयी हैं। 'अ' वर्ण से लगभग सवा बारह सौ प्रविष्टियाँ हैं। 'छायावादी काव्य-कोश' तैयार हो चुका है, मगर कम्पोजिंग का काम अभी पूरा नहीं हुआ है। यहाँ नमूने के तौर पर यह अंश संकलित किया गया है। इस कोश से छायावाद के समृद्ध शब्द-भंडार के साथ-साथ उनके प्रयोगों की जानकारी भी मिलेगी। इन चार कवियों के बीच शब्दों के आधार पर तुलना और विश्लेषण की संभावना भी बनेगी। इस कोश की सहायता से यह भी जाना जा सकता है कि किस कवि के पास कौन-से शब्द हैं और कौन-से शब्द नहीं हैं! यह भी जाना जा सकता है कि एक ही शब्द का प्रयोग इन कवियों ने भिन्न तरीके से किया है या नहीं!

पुनः, अंक के लेखकों के प्रति आभार! जिनके आलेख हमें प्राप्त नहीं हो सके, उनसे अनुरोध है कि प्रेम-भाव बनाए रखें और अगली योजनाओं में अपना बहुमूल्य लेखकीय योगदान दें. पत्रिका के संपादक डॉ. आनन्द बिहारी के प्रति आभार, जिन्होंने हमें इस अंक के अतिथि संपादन का मौका दिया!

सादर

27 दिसम्बर, 2018

- कमलेश वर्मा

वाराणसी

मो.- 09415256226

♦♦♦♦♦

छायावाद : वाद और विवाद के बिंदु

❍ ओमप्रकाश सिंह

छायावाद राष्ट्रीय नवजागरण के समय का साहित्य है। राष्ट्रीय नवजागरण के संदर्भ में हिंदी साहित्य में छायावाद का प्रारंभ एक सबल काव्यांदोलन के रूप में हुआ था। यह काव्यांदोलन लगभग दो दशकों तक साहित्य का केन्द्र बिंदु था। एक तरफ इस आंदोलन ने अपनी पूर्व परंपरा से स्वस्थ जीवन मूल्यों को स्वीकार किया तो दूसरी तरफ उसे अनेक रूपों में नकार कर साहित्य को एक नए मार्ग पर ले जाने का प्रयास भी किया। साहित्य की जीर्ण-शीर्ण परंपरा को छोड़कर स्वस्थ चेतना और जीवन मूल्यों का प्रचार-प्रसार इस आंदोलन का मुख्य लक्ष्य था। छायावादी काव्यांदोलन की समाप्ति की घोषणा हुए लंबा समय बीत चुका है पर ऐसा नहीं है कि काल के प्रवाह में इस आंदोलन की इयत्ता ही समाप्त हो चुकी है। छायावाद के रचनाकारों ने जिन नवीन काव्य-बोध का संधान किया था, वे आज भी मूल्यवान, सार्थक और समयानुकूल हैं। अब तक छायावाद पर बहुत कुछ लिखा-पढ़ा जा चुका है, पक्ष में और विपक्ष में भी। कुछ आलोचकों ने छायावाद का मूल्यांकन युगीन संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में किया तो कुछ ने इस पर प्रश्नचिह्न लगाकर विवाद के घेरे में ला खड़ा किया। कुछ आलोचकों ने इसे प्रगतिशील काव्यांदोलन स्वीकार किया तो कुछ ने पलायनवादी अथवा किशोर भावुकता के काव्य के रूप में देखा। आलोचना के सरलीकरण के क्रम में इस प्रकार के प्रश्न-चिह्नों का लगना स्वाभाविक है। वस्तुतः छायावाद पर लगे हुए इन प्रश्न-चिह्नों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता अब तक बनी हुई है।

सर्वविदित तथ्य है कि द्वंद्वात्मकता से ही सृष्टि की सभी वस्तुओं और कार्य-व्यापारों का विकास होता है। वस्तु में अंतर्निहित शक्ति या गति कभी भी एकरस अथवा निर्विकार नहीं होती। उसमें विरोधी तत्त्वों का घालमेल सदैव विद्यमान रहता है। इन्हीं विरोधी गतियों के पारस्परिक संयोग से वस्तु में प्रथमतः परिमाणात्मक तत्पश्चात गुणात्मक परिवर्तन होता है। इसी गुणात्मक परिवर्तन का शोध और अनुसंधान करने वाले नियम अथवा सिद्धांत को संसार की भौतिकवादी द्वंद्वात्मक व्याख्या के रूप में अभिहित किया जाता है।

मनुष्य के अन्य सचेतन कार्यव्यापारों की तरह साहित्य और उसकी सृष्टि भी एक जीवंत गतिशील प्रक्रिया है। साहित्य पर वर्तमान का ही नहीं, इतिहास का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। समकालीनता का दबाव उस पर तरह-तरह की प्रतिक्रियाएँ करता है। कोई भी साहित्य जिस समाज की उपज होता है उसकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक-सांस्कृतिक स्थितियों-परिस्थितियों का ही नहीं अपितु सुदूर ऐतिहासिक घटनाओं का भी उस पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इन सामाजिक-आर्थिक आदि स्थितियों-परिस्थितियों का प्रभाव साहित्य पर सीधे-सीधे बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से कभी भी नहीं पड़ता। यह क्रिया अत्यंत पेचीदे ढंग से निष्पन्न होती है।

तुलसीदास ने लिखा है-

मनि मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी।।
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई।।
तैसेहिं सुकबि कवित बुध कहहीं। उपजहिं अनत अनत छबि लहहीं।।

यद्यपि अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी के बहुत से यांत्रिक भौतिकवादी साहित्य और समाज का संबंध बिम्ब-प्रतिबिंब भाव के आधार पर ही निरूपित करते थे लेकिन भौतिकवाद के द्वंद्वात्मकता के विकास के समानांतर ही ऐसी अवैज्ञानिक धारणाओं के लिए अब कोई स्थान नहीं रह गया है। साहित्य पर पड़ने वाला सामाजिक प्रभाव केवल रचनाकार के बुद्धि द्वारों द्वारा ही प्रविष्ट होकर नहीं आता, प्राय: उसका सीधा संबंध मनुष्य के इन्द्रियबोध एवं सौंदर्य चेतना से भी होता है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह इन्द्रियबोध और सौंदय-चेतना अथवा संस्कार अन्य भौतिक उपकरणों की अपेक्षा अल्प और शनै: परिवर्तनशील है। यही कारण है कि साहित्य में अभिव्यंजित संसार के प्रति हमारे रागात्मक संबंध उतने द्रुत परिवर्तनशील लक्षित नहीं होते।

किसी भी साहित्य अथवा उसकी धारा-विशेष का मूल्यांकन-परीक्षण करते समय उसमें निहित अंतर्विरोधों की जाँच करते हुए उसकी पुष्ट विकास-दिशा का निर्धारण-निरूपण करना ही समीक्षक का वास्तविक कर्त्तव्य होता है। समीक्षण का अर्थ ही है- सम अर्थात् संतुलित (Balanced) रूपों में किसी वस्तु अथवा कार्य-व्यापार का ईक्षण (देखना)। इस समीक्षण का आशय यह है कि समाज और साहित्य के द्वंद्वात्मक संबंध और इस संदर्भ में रचनाकार की प्रतिभा तथा अभ्यास-कौशल का पूर्ण परिज्ञान पाठक को सुलभ करा दिया जाए। कहना न होगा कि इस प्रकार का वास्तविक समीक्षण कार्य रचना-मूल्यांकन के क्षेत्र में किसी प्रकार के सरलीकरण के लिए अवकाश नहीं रहता। समीक्षक सरलीकरण के शून्य को वैज्ञानिक मापदंडों के संतुलित-संयमित प्रयोगधर्मिता प्रयत्न से भरता है।

यद्यपि छायावाद पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है पर द्वंद्वात्मकता के आलोक में छायावाद को पहचानने-परखने के प्रयत्न बहुत ही कम किए गए हैं। प्रस्तुत निबंध के अंतर्गत छायावादी काव्य-वस्तु में अंतर्निहित सृजनात्मक चेतना के विभिन्न पहलुओं का निरीक्षण करते हुए पलायनवाद और प्रगतिशीलता के द्वंद्व के आधार को निरूपित करते हुए उसकी स्वस्थ विकास-दिशा के संधान का प्रयास किया जाएगा।

छायावादी काव्यांदोलन अपने प्रभविष्णु रूपों में भक्तिकाल के बाद हिंदी का सबसे बड़ा और सशक्त आंदोलन है। हिंदी साहित्य में इस आंदोलन का ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, शाश्वत मूल्य भी है। यथार्थ को देखने की दृष्टि का जो चमत्कृत, प्रांजल और भास्वर स्वरूप यहाँ दृष्टिगोचर होता है, अन्यत्र दुर्लभ है। छायावादी कवियों पर यह आरोप लगाया गया कि वे सामाजिक समस्याओं के प्रति उदासीन थे। नहीं, ऐसा नहीं था। वे सामाजिक समस्याओं के प्रति पूरी तरह से जागरूक थे। जिसे वेदना और रहस्यवाद कहकर पलायन समझा जाता है वह दरअसल पलायन नहीं जीवन की वास्तविक अनुभूति को अभिव्यक्त करने का माध्यम है। इसीलिए जयशंकर प्रसाद ने यथार्थवादी साहित्य की पहचान करते हुए रेखांकित किया है कि "वेदना से प्रेरित होकर जनसाधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयास यथार्थवादी साहित्य करता है।" यह दीगर बात है कि इस युग के रचनाकारों की दृष्टि पूर्ववर्ती भारतेंदुयुगीन कवियों से ही नहीं अपितु अपनी पीठ पीछे द्विवेदीयुगीन कवियों से भी सर्वतोभावेन भिन्न थी। इस दृष्टिकोण को उचित संदर्भों में आत्मसात न कर सकने के कारण ही हिंदी के कुछ आलोचकों ने उसकी प्रगतिशीलता को भी पलायनवाद की संज्ञा दे डाली है। इस पलायनवाद और

प्रगतिशीलता को भाषा की कुहेलिका हटाकर अनावृत्त करने की आवश्यकता आज की अपरिहार्य जरूरत है। ऐसा करके ही छायावाद का सम्यक मूल्यांकन कर सकना संभव होगा।

यह आरोपित विचार कि छायावादी कविता में अतिरिक्त कुंठा, अतिशय वैयक्तिकता, हवाई उड़ान और यथार्थ को यथार्थ से ऊपर उठाकर देखने की प्रवृत्ति अर्थात रोमैंटिसिज्म (Romanticism)का ही बोलबाला है। लेकिन मानते हुए भी कि यह आक्षेप पूर्णत: निराधार और असंगत नहीं है, हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि यह छायावादी काव्य का मुख्य, प्रधान अथवा एकमात्र स्वर भी नहीं है। उसमें जीवन के प्रति आकांक्षा, सौंदर्य, प्रेम, देशप्रेम, सामाजिकता के प्रति उत्साह और जीवन-जगत को सुखी बनाने के विभिन्न रंगीन चित्र भी हैं। जिसे अतिशय काल्पनिकता, हवाई-उड़ान आदि कहा गया है, यदि उसे हम हिंदी के पारंपरिक काव्य-विकास के समुचित संदर्भों में लक्ष्य करने का प्रयत्न करें तो वैसा ही नहीं दिखलाई देता। छायावाद को उत्तराधिकार में द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति (Matter of fact) प्राप्त हुई थी। इस इतिवृत्तात्मक प्रवृत्ति को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने स्पष्ट रूपों में रेखांकित करना आवश्यक समझा था। इस प्रवृत्ति के समानांतर छायावादी कवियों की भाषा शैली को रखकर देखने से ये आरोप अपनी सार्थकता खो बैठते हैं। हिंदी को उस समय एक काव्य-भाषा की आवश्यकता थी। इस आवश्यकता का समुचित सर्वांगीण विवेचन पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया है। यदि छायावादी कवियों ने स्वर्णाभूषणों को रखने की पेटिका भी मणियों की रच डाली तो उनका यह कार्य ऐतिहासिक आवश्यकता की पूर्ति करने वाला कहा जाएगा। छायावादी कवियों ने वस्तु-व्यापार का जो चित्रण किया है, प्रकृति और नारी-सौंदर्य के जो बारीक चित्र उकेरे हैं, सृष्टि के जो संश्लिष्ट और प्रांजल बिंब प्रस्तुत किए हैं, देशप्रेम और राष्ट्रीयता के जो गीत गाए हैं, दीन-हीन के प्रति जिस तरह की भावना व्यक्त किए हैं, उन्हें किसी प्रकार भी सामाजिकता से विच्छिन्न नहीं कहा जा सकता। छायावाद को कुछ आलोचकों ने पलायनवादी काव्यधारा कहा है। इन आलोचकों के इस कथन पर गहराई से विचार किया जाए और छायावाद को सही परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो स्पष्ट हो जाता है कि इस तरह के आरोप लगाने वाले प्राय: एकांगी मूल्यांकन का ही सहारा लेते हैं। मार्च, 1937 के 'विशाल भारत' में शिवदान सिंह चौहान ने छायावाद पर आरोप लगाते हुए इसे सांप्रदायिक ही नहीं बल्कि सांप्रदायिक संगठनों में चार कदम आगे बढ़ा हुआ घोषित किया। उन्हीं के शब्दों में, "इस छायावाद की धारा ने हिंदी के साहित्य को जितना धक्का पहुँचाया उतना शायद ही हिंदू महासभा या मुस्लिम लीग ने भारत को पहुँचाया हो।" 'शिवदान सिंह' का यह आरोप छायावाद को सही अर्थों में न समझ पाने के कारण ही है। दरअसल छायावादी कविता से हिंदी को एक नई अभिव्यंजना शक्ति, शब्दों के प्रति एक नवीन रागबोध, सृष्टि के प्रति एक स्वाभाविक जिज्ञासा तथा समस्त गोचर-अगोचर संसार में एक ही रागात्मक ह्रदय की व्याप्ति देखने का अवसर मिला। उसमें कहीं भी धार्मिक संकीर्णता अथवा सांप्रदायिक भावधाराओं का समावेश नहीं है। छायावादी कविता का जो प्रारंभिक विरोध देखने को मिलता है, उसका कारण है छायावादी कविता को सही अर्थों में न समझ पाना। यह स्वाभाविक भी है। प्रारंभ में अधिकांश काव्यांदोलनों का विरोध इसलिए होता है क्योंकि काव्यबोध की जड़ता और नए भावबोध को न समझ पाने की कठिनाई, दोनों से आलोचक को गुजरना होता है। पर जैसे ही आलोचक परिवर्तन से घबराने के बजाय वास्तविक स्थिति और अनुभूति से जुड़ने लगता है नए भावबोध अपना बेगानापन छोड़ देते हैं, तथा कविता को समझने में आने वाली कठिनाई भी समाप्त होने लगती है। छायावाद के साथ भी ऐसा घटित हुआ। रीतिकालीन कविता ने जिस काव्यबोध की जड़ता को निर्मित किया था, उसे छायावादी कवियों

ने तोड़ दिया। छायावाद में कविता कवियों की स्वेच्छाधारिता की अनुगामिनी न होकर वास्तविक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति हो जाती है। वह उन अस्वाभाविक परिस्थितियों के विरुद्ध विद्रोह करती है जिसमें छुद्रता के भाव भरे हुए थे। इस कारण इस युग के कवियों के यहाँ जीवन, ताल और लय का कोई बंधन नहीं रह जाता है। या जो कुछ होता है वह भी टूटने लगता है। इसीलिए इस युग का रचनाकार कह उठता है–

ताल लय रहित मेरी वीणा।
वीणावादिनी कर स्वीकार।।

पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने छायावादी काव्यबोध को रेखांकित करते हुए लिखा है, "पूर्ण भावाभिव्यक्ति नई कविता (छायावाद) की मुख्य विशेषता है। कवि की अपनी विह्वलता और वेदना उन्हें कुछ कहने के लिए विवश करती है। अन्य भारों की अपेक्षा हृदय का यह भार अधिक विस्तृत है और जब तक मनोवेग की पीड़ा चरमसीमा तक न पहुँच जाए तबतक यह प्रस्फुटित होकर बाहर नहीं निकलती। आदिकवि वाल्मीकि में वेदना ने ही काव्य का रूप धारण किया था। भवभूति के विचार से करुण रस ही प्रधान रस है और शेष केवल उसके विकार हैं। एकोरसः करुण एव निमित्त भेदात्। (शेली भी सही कहते हैं "आवर स्वीटेस्ट सोंग्स आर दोज दैट टेल ऑफ सैडेस्ट थॉट्स") अर्थात् हमारे मधुरतम गीतों में हमारे सबसे वेदनापूर्ण विचार व्यक्त होते हैं। छायावादी कवियों के यहाँ प्रकृति चित्रण और वेदनापूर्ण विचार पलायन, कुंठा या व्यक्तिवाद नहीं हैं बल्कि जीवन की वह वास्तविकता और भावों को अभिव्यक्त करने के साधन हैं। प्रकृति के साथ जुड़कर छायावादी कवि जीवन और काव्य दोनों को बंधनों से मुक्त तथा परिपूर्ण बनाते हैं। जयशंकर प्रसाद की इन पंक्तियों को देखें –

देख नग्न सौंदर्य प्रकृति का निर्जन में अनुरागी हो?
निज प्रकाश डालेगा जिसमें अखिल विश्व समभागी हो?

छायावादी कवि रूढ़िवादिता के पुराने संबंधों में बंधने के बजाय उसको तोड़ने का प्रयास करते हैं। इस कारण यह अबाध गति से स्वच्छंदतापूर्वक प्रकृति के सौंदर्य का आनंद लेते हैं। निर्झरों के साथ उछलने कूदने लगते हैं, 'मृगभावनाओं की भाँति' चौकड़ी मारने लगते हैं, पूर्ण आवेग, संवेग व लय के साथ कलरव करने लगते हैं तथा मनुष्य की समस्त पीड़ाओं को अपनी पीड़ा बना लेते हैं। उनका संसार सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त होने के लिए तड़प उठता है। इसीलिए छायावादी कविता केवल भारतीय राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि वैश्विक जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है। यह जितनी भारतीय कविता है उतनी ही विश्व कविता भी। इसलिए छायावादी कविता न किसी भौगोलिक सीमा को स्वीकारती है और न ही किसी सामाजिक सीमा को। वह प्रकृति के साथ जुड़कर समूचे वैश्विक जन की कविता बन जाती है। इस तथ्य को प्रमाणित करने की आवश्यकता ही नहीं रह गई है। हिंदी साहित्य से साधारण परिचय रखने वाला भी इस सत्य से पूर्णतः परिचित है कि छायावादी काव्यांदोलन का किसी प्रकार के मतवाद से कोई भी संबंध नहीं था। जहाँ तक छायावाद 'वाद' का सवाल है तो सर्वविदित तथ्य है कि यह नाम इस काव्यधारा के विरोधियों का दिया हुआ है। छायावाद राष्ट्रीय नवजागरण के समय का साहित्य है। इस साहित्य से राष्ट्रीय जागरण का पर्याप्त आभास मिलता है। इसी बात को नामवर सिंह ने स्पष्ट शब्दों में रेखांकित किया है, "छायावाद हमारी विशेष सामाजिक और साहित्यिक आवश्यकता से पैदा हुआ और उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने ऐतिहासिक कार्य

किया। समाज और साहित्य को उसने जिस तरह पुरानी रूढ़ियों से मुक्त किया, उसी तरह आधुनिक राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओं की ओर प्रेरित किया। व्यक्तित्व की स्वाधीनता, विराट–कल्पना, प्रकृति–साहचर्य, मानव प्रेम, वैयक्तिक–प्रणय, उच्च नैतिक आदर्श, देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता आदि के प्रसार द्वारा छायावाद ने हिंदी–जाति के जीवन में ऐतिहासिक कार्य किया।' (छायावाद, पृ. 151–52)

इस संदर्भ में छायावादी कवियों के कुछ उदाहरणों द्वारा भी अपने कथन की पुष्टि की जा सकती है। देखें –

"वही है रक्त, वही है देह, वही साहस है, वैसा ज्ञान ।
वही है शांति, वही है शक्ति, वही हम दिव्य आर्य संतान ।
जिएं जो सदा, उसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष ।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।" (प्रसाद)

"शेरों की मांद में
आया है आज स्यार,
जागो फिर एक बार।"

और भी,
"भारति जय–विजय करे !
कनक शस्य कमल धरे !
लंका पदतल शतदल
गर्जितोर्मि सागर–तल,
धोता शुचि चरण–युगल,
स्तव कर बहुअर्थ–भरे।" (निराला)

"राष्ट्रों से राष्ट्र मिलें, देशों से देश आज,
मानव से मानव, हो जीवन–निर्माण काज।" (पंत)

"रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ !" (महादेवी)

इन पंक्तियों को देखकर क्या कहा जा सकता है कि पलायनवाद छायावाद का प्रधान स्वर है। वैसे छायावाद की पलायनवादी भावधाराओं को अवश्य रेखांकित करना चाहिए लेकिन उनकी सीमा और शक्ति के दायरे में ही। छायावादी काव्य को पलायनवादी अतीत की महिमामंडित कल्पना में, प्रकृति को रहस्मयी बनाकर देखने में, पूँजीवादी युग में विज्ञान का दुरुपयोग देखकर विज्ञान के प्रति ही उदासीन हो जाने में है। लेकिन उन सबकी भी सीमाएँ हैं। छायावादी कवि कभी अतीत के स्वर्णिम युग में लौटने की कल्पना नहीं करता है। हाँ, वह उस युग का इस्तेमाल प्रेरणास्रोत के रूप में अवश्य करता है। यदि ये भावधाराएँ पराजय और पलायन की हैं तो विद्रोह, विजय, मानव मात्र के प्रति सहानुभूति और आजादी के स्वर भी उसमें अनुस्यूत हैं। इन स्वरों के सामने वे भावधाराएँ महत्त्वहीन हो जाती हैं जिन्हें आधार बनाकर छायावादी कवियों पर पलायन का आरोप लगता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद के रहस्यवाद और अतिशय लाक्षणिकता का विरोध किया था।

कहना न होगा कि अतिशय लाक्षणिकता का यह विरोध जायज ही था। जहाँ तक रहस्यवाद का संबंध है, वहाँ छायावादी काव्य की दुर्बलताओं के साथ-साथ ही शुक्लजी की एतद्विषयक सीमा भी निर्धारित हो जाती है। शुक्लजी रहस्यवाद को अभारतीय मानते थे। उनका स्पष्ट विचार था कि परोक्ष से प्रेम नहीं किया जा सकता। इसी क्रम में उन्होंने भारतीय मध्यकालीन और आधुनिक पश्चिमी रहस्यवाद को एक ही वस्तु मान लिया। यदि उनके सामने रहस्यवाद का वर्गाधार स्पष्ट होता तब वे यह देख सकते कि मध्यकालीन रहस्यवादी जहाँ भारत और यूरोप दोनों ही जगहों में जाति-प्रथा, सामंती भेदभाव, ऊँच-नीच के विचार और पुरोहितों के विरोध के साथ जुड़ा हुआ है, जहाँ उसका मुख्य संबंध किसानों, कारगरों और अछूतों के साथ है, वहीं आधुनिक रहस्यवाद पूँजीवादी विचारधारा का एक अंग बनकर सामाजिक जीवन की विषमताओं के प्रति मनुष्य को तटस्थ और उदासीन रहने की प्रेरणा देता है। यह सब देखने के उपरांत ही आचार्य शुक्ल यह देख पाते कि आधुनिक भारत में रहस्यवाद एक तरफ दुखवाद, निराशावाद, व्यक्तिवाद आदि से जुड़ा है तो दूसरी ओर वह रूढ़िवाद और कर्मकांड के विरोध से जुड़ा है। इस स्थिति में वे छायावाद पर इतने कठोर प्रहार न करते।

प्रयोगवाद और नई कविता के युग में छायावाद को नए सिरे से भावुकता और शैशव का काव्य कहा गया। विजयदेवनारायण साही ने लिखा है, "जहाँ तक छायावाद का सवाल है, उसने एक तरह की शिशु आस्था का आयाम जोड़ा।' इसी क्रम में उन्होंने लिखा, 'प्रचलित शब्दावली में वह शिशु आस्था का अन्त:सत्य और बाह्य सत्य एक ही है, नष्ट हो गई।' (लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर एक बहस, नई कविता, पृ. 60 एवं 62)। इसी तरह की बात लक्ष्मीकांत वर्मा एवं अन्य प्रयोगवादी कवियों-आलोचकों ने खूब दोहराई। संभवत: यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि ये सारे सूत्र यांत्रिक ढंग से छायावादी कविता के संदर्भ में महज नकल के आधार पर दोहराए गए हैं। टी.एस. इलिएट ने अंग्रेजी साहित्य में बुद्धिजीवी आलोचक के रूप में अपना स्थान सुरक्षित कराने के लिए अंग्रेजी के रोमैंटिक कवियों पर हल्ला बोला। उसने रोमैंटिक काव्य- बाइरन, शेली, कीट्स, स्विनबर्न और रोसेटी के काव्य- को 'किशोरावस्था का सामान्य पाठ्यक्रम बताया (द न्यूज ऑफ पोएट्री एण्ड द यूज ऑफ क्रिटिसिज्म, द्वितीय संस्करण, पृ. 33) शेली के बारे में इलिएट का विचार था 'शेली के विचार हमेशा मुझे लगता है कि किशोरावस्था के विचार हैं और ऐसा होना पूरी तरह सकारण है। हममें से अधिकांश के लिए शेली उस दौर से संबद्ध हैं जो प्रौढ़ता से पहले बड़ी तीव्रता लिए आता है लेकिन प्रौढ़ावस्था में वह कितने किसानों का साथी रह पाता? (उपर्युक्त, पृ. 39)

ये विचार हैं, 'मास्क ऑफ एनार्की' जैसी कविता लिखने वाले शेली के प्रति तेवर वाले आलोचक टी.एस. इलिएट के। बाइरन, जिन्होंने भारत की स्वाधीनता का गीत गाया था, उनके विषय में हम इनका मत ऊपर देख चुके हैं। यह आश्चर्य नहीं कि इन्हीं के चरण-चिह्नों पर चलने वाले विजयदेवनारायण साही और लक्ष्मीकांत वर्मा जैसे नई कविता के कर्णधारों ने 'भिक्षुक', 'विधवा', 'दीन', 'जागो फिर एक बार', 'तुलसीदास' जैसी कविताएँ लिखने वाले निराला के काव्य पर उसी ढंग से खोखले प्रहार किए।

लेकिन, यहाँ तक तो मामला नकली सूत्र दोहराने का है। इस नकल की प्रगतिशीलता और पलायनवाद के परिप्रेक्ष्य में छायावाद का पुनर्मूल्यांकन असल यह है कि रचना के पक्ष में इन लोगों ने छायावाद के प्रगतिशील पक्ष को छोड़कर उसके शिथिल पक्ष से ही अपना संबंध जोड़ा। व्यक्तिगत कुंठा, काल्पनिक संत्रास, जीवन के प्रति दु:स्वप्नमयी मनोवृत्ति, सामाजिक समस्याओं से उदासीनता आदि के क्षेत्र में ये छायावादी कवियों से भी कोसों आगे निकल गए। इस विषय का विस्तृत विवेचन रामविलास

शर्मा की पुस्तक 'नई कविता और अस्तित्ववाद' में किया गया है। यहाँ उसे दोहराना अनावश्यक विषय-विस्तार है।

वस्तुत: छायावादी काव्य में पलायनवाद और प्रगतिशीलता के स्वर समानांतर प्रवाहित हो रहे हैं। इसमें अतिशय काल्पनिकता, वैयक्तिकता, भावुकता आदि के साथ-साथ ही संघर्ष, संसार के प्रति आस्था जीवन के प्रति आकांक्षा, स्वाधीनता की चाह और राष्ट्रप्रेम के स्वर भी अनुगूंजित हो रहे हैं। साथ-ही-साथ सामाजिक यथार्थ के आलोक में यह भी स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि ये दूसरे प्रकार की प्रगतिशील भावधाराएँ इन प्रगतिशील भावधाराओं से टकराकर उसका पथ और भी प्रशस्त कर रही हैं। रूढ़िवाद और कुंठा के चित्रण से सामाजिक विकास की नवीन भावधाराओं का महत्त्व और भी स्पष्ट हो उठता है। इन दोनों की प्रवृत्तियों की पारंपरिक टकराहट अथवा द्वन्द्वात्मकता के संघटक में विकासमान शक्तियों का अभिज्ञान स्वयमेव भास्वर हो उठता है। इसी तथ्य को नामवर सिंह ने निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्ति प्रदान की है- 'छायावाद विविध, यहाँ तक कि परस्पर विरोधी-सी प्रतीत होने वाली काव्य-प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और छानबीन करने पर इन प्रवृत्तियों के बीच आंतरिक संबंध दिखाई पड़ता है। स्पष्ट करने के लिए यदि हम भूमिति से उदाहरण लें तो कह सकते हैं कि यह एक केन्द्र बिंदु पर बने हुए विभिन्न वृत्तों (Cocentric Circles) का समुदाय है। इसकी विविधता उस शतदल के समान है, जिसमें एक ग्रंथि से अनेक दल खुलते हैं। एक युग चेतना ने भिन्न-भिन्न कवियों के संस्कार, रुचि और शक्ति के अनुसार विभिन्न रूपों में अपने को अभिव्यक्त किया, कहीं एक पक्ष का अधिक विस्तार हुआ तो अन्यत्र दूसरे पक्ष का।' (आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, पृ. 20-21)।

टॉलस्टाय की आलोचना के क्रम में लेनिन ने 'टॉलस्टाय रूसी क्रांति के दर्पण के रूप में' नामक प्रसिद्ध लेख में कहा था कि टॉलस्टाय अपने विचारों के क्षेत्र में अत्यंत ही प्रतिक्रियावादी, दकियानूसी, रूढ़िवादी, पुरानी व्यवस्था को कायम रखने वाले, जर्जर समाज के प्रवक्ता के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। किंतु उन्होंने अपने उपन्यासों में वर्ग-विरोध समन्वित रूसी समाज का, साधारण जन-जीवन का, उनकी गहराइयों के जो सूक्ष्म, जीवंत और विस्तृत चित्र अंकित किए हैं, उनका महत्त्व कभी भी कम न होगा। जहाँ वे किसी घटना-क्रम को फतवा न देकर सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं, वहाँ इन चित्रों के माध्यम से रूसी जन-जीवन, अपनी विविध स्थितियों-परिस्थितियों और भंगिमाओं के साथ रूपायित हो उठा है। उसमें शोषक और शोषित, जर्जर और प्रगतिशील शक्तियाँ हू-ब-हू अपनी स्वाभाविकता के साथ रूपायित हो उठी हैं। (विस्तार के लिए देखें- बीसवीं शताब्दी का साहित्य - साहित्य और सौंदर्यशास्त्र, पृ. 25 से 32)। साहित्य बंधे-बंधाए रूपों में विचारधारा का वाहक नहीं होता है। यदि साहित्य का भाव-बोध और संवेदना सच्ची है, उसके हृदय में मानव-जीवन के प्रति लगाव और करुणा है, तो वह बहुत समय तक यथार्थ से विचलित नहीं हो सकता। साहित्य के वैज्ञानिक मूल्य के क्रम में लेनिन ने टॉलस्टाय के संदर्भ से उपर्युक्त विश्लेषण में यह बात स्पष्ट दिखलाई देती है। इसी बात को आचार्य रामचंद्र शुक्ल यह कहकर कहते थे कि साहित्य में विचारानुबंध नहीं अपितु बिम्ब ग्रहण कराया जाता है। सजीव, जागृत, जीवंत चित्र प्रस्तुत करने का गुणात्मक मूल्य यह भी है कि उससे रचनाकार के वैचारिक स्खलनों के बावजूद साहित्य की विषय-वस्तु सुरक्षित रहती है। चित्र न खींचकर समस्याओं, घटनाओं के प्रति बयान अथवा फतवा देने से उसकी मानसिक प्रतिबद्धता का समुचित परीक्षण नहीं किया जा सकता।

छायावादी कवियों के मूल्यांकन में भी हमें इन्हीं बातों का ध्यान रखना होगा। छायावादी कवियों के विचार, संस्कार आदि में टॉलस्टाय की ही भाँति अंतर्विरोध है, लेकिन इन अंतर्विरोधों को द्वंद्वात्मकता

के प्रखर आलोक में ही उद्‌भासित करके देखना चाहिए। देखना चाहिए कि उनके काव्य का मूल-प्रधान स्वर कौन-सा और कैसा है। उनसे टकराने वाली क्षणिक-क्षीण मनोवृत्तियाँ कौन-सी हैं। क्या वे हमारे सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक-सांस्कृतिक स्थितियों-परिस्थितियों का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत कर सकी हैं। इस प्रस्तुतीकरण में उनका वास्तविक राग-विराग किधर है।

इन्हीं प्रश्नों के विवेचन-क्रम में हम छायावाद का वास्तविक मूल्यांकन कर सकते हैं। छायावाद वस्तुतः भारतीय जनता की उद्दाम आशा, आकांक्षा, संघर्ष, वेदना, विजय और विश्व मानवता की मुक्ति की आकांक्षा का काव्य है। उसमें पलायनवाद के स्वर, अत्यंत अशक्त, निर्जीव और क्षीण हैं। उसके सशक्त पक्षों से अपना संबंध जोड़कर हिंदी कविता आज भी अपने विकास का वांछित मार्ग पार कर सकती है।

❑❑❑

छायावाद का अध्यापन : आलोचनात्मक सहायिका

❍ गोपाल प्रधान

(यह लेख सहपीडिया नामक वेबसाइट के लिए लिखी एक लेखनुमा प्रविष्टि का पूरी तरह संशोधित और विस्तारित रूप है।)

हिंदी में छायावाद शायद भक्ति साहित्य के बाद सृजनात्मकता की दृष्टि से सर्वाधिक उर्वर साहित्यिक काल रहा है और आधुनिक काल में कविता की सृजनात्मकता के लिहाज से उसने मानक निर्मित किए। हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ते हुए आधुनिक काल से पहले कविता की जो साहित्यिक प्रतिष्ठा मिलती है, आधुनिक काल में प्रवेश करते ही उसमें गिरावट महसूस होने लगती है। आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल की साहित्यिक प्रवृत्ति गद्य को मानकर इसका नाम गद्यकाल रखा है। इस नामकरण की सकारात्मकता में कोई संदेह नहीं है। छायावाद के महत्व के लिए बस इस तथ्य को रेखांकित करना जरूरी है कि आधुनिक काल के साथ कविता की हैसियत घटी थी। छायावाद ने कविता को फिर से उसकी खोई महिमा वापस की। वैसे इस बात पर अधिक जोर देने से हम छायावादी रचनाकारों के गद्य की विशेषताओं को ठीक से नहीं समझ सकेंगे। आखिर जो व्यक्ति कविता लिख रहा था उसी ने गद्य भी लिखा इसलिए उसकी साहित्यिक संवेदना दोनों में प्रकट हो रही थी। छायावाद के शीर्ष रचनाकारों की कविता और उनके गद्य लेखन में फाँक देखने से न केवल उनके गद्य का महत्व उजागर नहीं होता बल्कि गद्य के समान ही कविता में भी व्यक्त समसामयिक यथार्थ को पहचानने में चूक हो जाती है।

नामवर सिंह ने अपनी किताब 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ' के 'छायावाद' शीर्षक अध्याय में इस साहित्यिक प्रवृत्ति की काल सीमा तय करते हुए सुमित्रानंदन पंत के दो काव्य-संग्रहों के प्रकाशन वर्ष का उल्लेख किया है। उनके अनुसार "छायावाद विशेष रूप से हिन्दी साहित्य के 'रोमांटिक' उत्थान की वह काव्यधारा है जो लगभग ईसवी सन 1918 से '36 ('उच्छ्वास' से 'युगान्त') तक की प्रमुख युगवाणी रही---।" उन्होंने इस साहित्यिक आंदोलन के प्रमुख कवियों के रूप में 'प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी प्रभृति मुख्य कवि' का नाम गिनाया है। लेकिन सवाल उठता है कि उस काल खंड में साहित्य लिखने वाले रचनाकारों में केवल कवि नहीं थे। थोड़ी छूट लेकर कहा जा सकता है कि न केवल उपर्युक्त प्रसिद्ध कवियों की मौजूदगी के चलते, बल्कि उनके साथ प्रेमचंद जैसे उपन्यासकार और रामचंद्र शुक्ल जैसे आलोचक और साहित्येतिहासकार ने भी इस समय को ईर्ष्याजनक तथा उत्कृष्ट कोटि की रचनात्मक गहमागहमी से भर दिया था ।

वैसे तो आधुनिक हिंदी के साहित्यांदोलनों में छायावाद को महज ऊपर से देखने पर वह अपने समय की राजनीतिक-सामाजिक हलचलों से सबसे दूर महसूस होता है लेकिन यदि ध्यान से विश्लेषण करें तो स्पष्ट होगा कि इसने तत्कालीन राजनीतिक-सामाजिक हलचलों के सबसे तीक्ष्ण और गहन अभिव्यक्ति

दी। यहाँ तक कि छायावाद के विरोधी के रूप में विख्यात आलोचक रामचंद्र शुक्ल ने भी इसकी राजनीतिक पृष्ठभूमि की विशिष्टता को व्याख्यायित करते हुए इस बात को रेखांकित किया कि "तृतीय उत्थान में आकर परिस्थिति बहुत बदल गई, आंदोलनों ने सक्रिय रूप धारण किया और गांव-गांव राजनीतिक और आर्थिक परतंत्रता के विरोध की भावना जगाई गई।" समझने में कठिनाई न हो इसलिए उनका यह भी कहना था कि "अब जो आंदोलन चले वे सामान्य जनसमुदायों को भी साथ लेकर चले। सबसे बड़ी बात यह हुई कि आंदोलन संसार के और भागों में चलने वाले आंदोलनों के मेल में लाए गए, जिससे ये क्षोभ की एक सार्वभौम धारा की शाखाओं से प्रतीत हुए।" परोक्ष रूप से वे उपनिवेशवाद विरोधी (साम्राज्यवाद विरोधी) अंतर्राष्ट्रीय गोलबंदी का प्रतिनिधित्व और उसकी अभिव्यक्ति छायावाद में देख रहे थे। काल विभाजन के लिहाज से अगर ठीक ठीक कहना हो तो असहयोग आंदोलन के आरंभ से लेकर प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना तक का कालखंड छायावाद का समय माना जा सकता है।

असहयोग आंदोलन को लेकर इतिहास के भीतर भी तमाम विवाद हैं। उस समय भी सभी बौद्धिक इस सिलसिले में एकमत नहीं थे। रवींद्रनाथ ठाकुर और महात्मा गाँधी के बीच का मतभेद जगजाहिर है। निराला साहित्य की विशेषता को समझाने के प्रसंग में रामविलास शर्मा ने स्वाधीनता आंदोलन के गांधीवादी मानस से निराला के विचलन की बात की भी। फिर भी अपनी लाख कमजोरियों के बावजूद जनता की स्वाधीनता आंदोलन में भागीदारी के लिहाज से यह आंदोलन तबतक की सबसे बड़ी जन गोलबंदी था। असहयोग के साथ ही चले खिलाफत आंदोलन ने इसकी व्यापकता को नये आयाम दिए थे। खिलाफत आंदोलन तुर्की के खलीफा की गद्दी को अंग्रेजों द्वारा खत्म करने के विरोध में शुरू किया गया था और इसमें भारत के भी मुसलमान बड़े पैमाने पर शरीक हुए थे। 1857 के विद्रोह के बाद पहली बार हिंदू और मुसलमान एक साथ इस आंदोलन के दौरान अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध लड़े। अंग्रेजी राज के विरुद्ध इस व्यापक जनभागीदारी ने साहित्य लिखने वालों पर गहरा रचनात्मक प्रभाव डाला। छायावादी कविता में देशभक्ति की सृजनात्मक अभिव्यक्ति पर अभी ठीक से विचार नहीं हुआ है। शांतिप्रिय द्विवेदी ने आसान रास्ता निकालते हुए इस युग को गांधी युग का साहित्य कहा है तो दूसरी ओर रामविलास शर्मा का जोर इस दौर के स्वाधीनता आंदोलन की ऐसी धारा पर है जो गाँधीवाद की सीमा से बाहर जाती थी। फिर भी छायावाद की कविता में स्वाधीनता की पुकार को पहचानना कोई कठिन काम नहीं। अनायास नहीं हुआ कि जयशंकर प्रसाद ने 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती/ स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती/अमर्त्य वीर पुत्र हो दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो/प्रशस्त पुण्य पंथ है बढ़े चलो बढ़े चलो।' जैसा प्रयाण गीत लिखा। निराला ने भी थोड़ा आध्यात्मिक रंग लिए हुए 'जागो फिर एक बार' जैसी कविताओं या 'वरदे वीणावादिनि वर दे' जैसे गीतों में 'प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव/ भारत में भर दे' कहकर देश की बात की। महादेवी के 'पंथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला' जैसे गीत में प्रकट ओज और उत्साह का स्रोत स्वाधीनता आंदोलन ही है। रामविलास शर्मा ने तो उनके गीत 'रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ' को स्वाधीनता की आकांक्षा की ही अभिव्यक्ति माना है। पंत की कविताओं में उनकी वैचारिक मान्यताओं की झलक बहुधा मिलती है।

छायावाद के इन सभी लेखकों के लेखन में गद्य की मात्रा और गुण उनके काव्य से हीनतर नहीं रहा है और कुछेक अपवादों को छोड़ कर इन लेखकों का गद्य अपने समय की व्यापक सामाजिक राजनीतिक हलचलों से गहरे प्रभावित रहा है। उस समय के साहित्यिक प्रतिमान स्थिर करने के सिलसिले

में लिखे आलोचनात्मक गद्य में भी स्वाधीनता की आकांक्षा ध्वनित हुई है। निराला ने मुक्त छंद के आगमन का स्वागत करते हुए इसको छंद के संकीर्ण बंधन से कविता की मुक्ति कहा। मुक्ति की आकांक्षा की इतनी जोरदार और बहुमुखी रचनात्मक अभिव्यक्तियों के पीछे न केवल राजनीतिक मुक्ति बल्कि सामाजिक मुक्ति के माहौल का योगदान रहा होगा। साहित्यिक लेखन की शब्दावली भी बहुधा अपने समय के व्यापक वातावरण से निर्मित और प्रभावित होती है। कारण कि उसका लेखक समय और समाज से संबद्ध तो होता ही है, जिस पाठक समुदाय में उसका प्रसार होना होता है उसकी मानसिकता के भावात्मक निर्माण में तत्कालीन परिस्थितियों का निर्णायक योग होता है।

छायावाद के इन चार घोषित कवियों के अलावा उसी समय रचनारत प्रेमचंद के लेखन में सामाजिक और राजनीतिक मुक्ति का समर्थन अर्थात सामंतवाद और साम्राज्यवाद के समेकित दबाव के विरोध का स्पष्ट तथ्य हिंदी के सामान्य पाठक के लिए भी अनजाना नहीं है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के सिलसिले में भी इस बात के पर्याप्त साक्ष्य प्रस्तुत किए जा सकते हैं कि उनका लेखन और चिंतन अपने समय के सामाजिक राजनीतिक वातावरण से प्रभावित रहा था। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आधुनिक काल के साहित्य का विवेचन करते हुए उसकी पृष्ठभूमि के रूप में उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन का जिक्र तो किया ही है, निबंधों में भी यथावसर देशप्रेम का महत्व उजागर किया है। इसी प्रसंग में उन्होंने किंचित पुरानी शब्दावली का सहारा लेते हुए भी वणिक धर्म के साथ क्षात्र धर्म के सहयोग को यानी व्यापार के साथ राजनीति के घालमेल को उपनिवेशवाद का विशेष लक्षण बताया था । 'असहयोग आंदोलन और अव्यापारिक श्रेणियां' शीर्षक से लिखा उनका एक लेख भी उनकी सचेतनता का सबूत है। वस्तुतः ऊपर वर्णित चार कवियों को ही छायावाद के भीतर शामिल करने से इनकी कविताओं की भी अनेक विशेषताओं को समझना मुश्किल हो जाता है। इन कवियों की काव्य संवेदना का भी साझा तत्कालीन व्यापक चेतना से साफ नजर आता है।

इस साहित्यिक आंदोलन का नामकरण भी विचारणीय है। ध्यातव्य है कि किसी भी छायावादी साहित्यकार ने अपने आपको छायावादी नहीं कहा। यह नाम, बल्कि बदनाम, उसके विरोधियों का दिया हुआ है। निंदा के स्वर में कहा गया कि हिंदी में यह बांग्ला कविता का प्रभाव है यानी बांग्ला की हिंदी में छाया इस काव्यांदोलन के जरिए प्रकट हो रही है। उसका दूसरा अर्थ यह कहकर निकाला गया कि जिस तरह छाया में कुछ भी ठोस नहीं होता उसी तरह इनकी कविताओं में भी कोई ठोस अर्थ नहीं है। जिस तरह छाया पकड़ में नहीं आती उसी तरह इनका अर्थ भी उड़ता फिरता है। जयशंकर प्रसाद ने इन नकारात्मक अर्थों को उलट कर छाया का एक और ही अर्थ करते हुए इस शब्द को इन कविताओं की खूबी का द्योतक बना दिया। उन्होंने कहा कि मोती की तरलता को उसकी छाया कहा जाता है। इसी तरह जब कविता में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ में एक तरल कांति उत्पन्न हो जाती है यानी जब कविता में प्रयुक्त शब्दों में उनके सामान्य अर्थ के अतिरिक्त अर्थ पैदा होने लगते हैं तो ऐसी कविता को छायावादी कविता कहना चाहिए। याद दिलाने की जरूरत नहीं कि छायावाद का उनका यह अर्थ आनंदवर्धन के 'ध्वन्यालोक' में वर्णित काव्य की विशेषता से मिलता जुलता है। प्रकारांतर से प्रसाद जी छायावाद को काव्य की सिद्धि साबित कर रहे थे।

छायावाद के बारे में बात करते हुए अक्सर अनैतिहासिक रुख अपनाया जाता है और उसके समस्त लेखन को बिना किसी बदलाव के समूचा एक ही समय अवतरित समझा जाता है। निराला की कविता 'जुही की कली' को 'सरस्वती' में प्रकाशित करने से इनकार करने को हम नई संवेदना के उदय का

प्रमाण मानें तो नए समय के आगमन की आहट 1918 में मिलनी शुरू हो गई थी। इसीलिए 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां' में नामवर सिंह ने बताया है कि 'छायावाद' संज्ञा का प्रचलन 1920 ईसवी तक हो चुका था। इसका प्रमाण जबलपुर की पत्रिका 'श्रीशारदा' में मुकुटधर पांडेय की लेखमाला 'हिंदी में छायावाद' के प्रकाशन से मिलता है। उस समय भी छायावाद के साथ स्वतंत्रता का सहज संबंध पहचाना गया था। इस लेखमाला के एक लेख 'काव्य स्वातंत्र्य' में उन्होंने लिखा, "यह बीसवीं शताब्दी स्वतंत्रता और नवीनता का युग है। नए-नए विचारों ने आज पृथ्वी पर एक बड़ा भारी परिवर्तन खड़ा कर दिया है। ---विज्ञान के इस नए युग में लोग देश-जाति के प्राण स्वरूप साहित्य से उदासीन रहें- भला यह कैसे संभव है।" इसी बदलाव के भीतर छायावाद को भी अवस्थित करते हुए उन्होंने लिखा "साहित्य में इस समय जो-जो क्रांतियां हो रही हैं उनमें छायावाद भी एक है।" ध्यान दीजिए कि साहित्य में होने वाली क्रांतियों का उत्स व्यापक क्रांतिकारी माहौल में मुकुटधर पांडेय भी खोज रहे हैं ।

बहुत स्वाभाविक था कि यह बदलाव सबको नहीं भा रहा था। ज्योति प्रसाद मिश्र निर्मल ने जून 1924 की 'मनोरमा' में 'हिंदी कविता की गति' शीर्षक लेख में लिखा, "जिन दिशाओं से यह नूतन लालिमा दृष्टिगोचर हो रही है, वह बंगला और अंग्रेजी है, और यदि हम इतना कहने का साहस करने के लिए क्षमा किए जाएं तो यह स्पष्ट निवेदन करेंगे कि हमारे अधिकांश परिवर्तनवादी कवि बंगला के उत्कृष्ट कवियों की प्रतिभा से प्रतिभा युक्त, तपस्या से तपस्वी और साधना से साधक बन रहे हैं।" निर्मलजी ने अपनी बात के सबूत के रूप में निराला की कविता का उदाहरण दिया था इसलिए यह बहस बहुत तीखे ढंग से चली कि निराला ने रवींद्रनाथ ठाकुर की कविता की नकल की है। निराला की कविता के ही प्रसंग में छंद-संबंधी बहस भी चली। 'मतवाला' में 1924 में ही नवजादिक लाल श्रीवास्तव ने इस प्रसंग में निराला की ओर से लिखा, "जब कविता धाराप्रवाह निकलने लगती है उस समय कवि का ध्यान तुक की ओर नहीं रहता, वह भावों का ही अनुसरण करता है। तुकबंदी कविता की नक्काशी है, वह मुक्त काव्य नहीं। मुक्त काव्य ही कविता का सच्चा स्वरूप है।" खुद निराला ने 1925 के 'कवि' में प्रकाशित 'कवि और कविता' शीर्षक लेख में इस सिलसिले में लिखा "जिस तरह मुक्त पुरुष संसार के किसी नियम के वशीभूत नहीं रहते, किंतु उन नियमों की सीमा पार कर सदा मुक्ति के आनंद में विहार करते रहते हैं, उसी तरह मुक्त कवि भी अपनी कविता को पिंगल के बंधन में नहीं रखना चाहते।" छंद की इस बहस ने आज की मुक्त छंद की हिंदी कविता के लिए राह बनाई क्योंकि निराला तथा अन्य छायावाद समर्थकों ने मुक्त छंद की धारणा को इस बहस के सहारे हिंदी में स्थापित कर दिया। छंद के अतिरिक्त भाषा के सवाल पर भी आज के लेखकों को छायावादियों के संघर्ष का ऋणी होना चाहिए।

ऊपर जिस माहौल का जिक्र हुआ वह तो छायावाद का आरंभ था। कुछ ही आगे चलकर 1926 में सुमित्रानंदन पंत के काव्य संग्रह 'पल्लव' के प्रकाशन के बाद उसकी कविताओं तथा उसकी भूमिका के चलते छायावाद हिंदी में स्थापित हो गया। इसकी भूमिका में पंतजी ने कविता के लिए ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली के सवाल पर जो बात रखी उसमें यह सवाल मात्र भाषा का नहीं, बल्कि समूचे भावबोध का हो जाता है। ब्रजभाषा में लिखी रीतिकालीन कविता की समस्या थी कि "इस तीन फुट के नखशिख के संसार से बाहर ये कवि पुंगव नहीं जा सके। हास्य, अद्‌भुत, भयानक आदि रसों के तो लेखनी को- नायिका के अंगों को चाटते-चाटते, रूप की मिठास से बंध रहे मुंह को खोलने, खखारने के लिए कभी-कभी कुल्ले मात्र करा दिए गए हैं। और वीर तथा रौद्र रस की कविता लिखने के समय तो ब्रजभाषा की लेखनी भय के मारे जैसे हकलाने लगती है।" जबकि समय की मांग ऐसी काव्य-भाषा है "जिसके

शब्दों में वात-उत्पात, वह्नि-बाढ़, उल्का-भूकंप सब कुछ समास के, बांधा जा सके, जिसके पृष्ठों पर मानव जाति की सभ्यता का उत्थान-पतन, वृद्धि-विनाश, आवर्तन-विवर्तन, नूतन-पुरातन सब कुछ चित्रित हो सके, जिसकी अलमारियों में दर्शन, विज्ञान, इतिहास, भूगोल, राजनीति, समाजनीति, कला-कौशल, कथा-कहानी, काव्य-नाटक सब कुछ सजाया जा सके।" पंतजी का कहना था कि समूची आधुनिकता को व्यक्त करने में सक्षम ऐसी भाषा खड़ी बोली ही हो सकती है। हिंदी साहित्य में कविता और गद्य की भाषा में अंतर आधुनिक काल की शुरुआत से ही महसूस किया जा रहा था। भारतेंदुजी ने गद्य के लिए तो खड़ी बोली का इस्तेमाल किया लेकिन कविताओं के लिए ज्यादातर ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया। द्विवेदी युग से खड़ी बोली में कविता लिखने की कोशिश शुरू हुई लेकिन मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के लेखन में स्वाभाविक काव्य प्रवाह खड़ी बोली में नहीं आ सका था। छायावाद की कविता ने व्यावहारिक धरातल पर भी खड़ी बोली में प्रवाहयुक्त रसमय कविता का अपूर्व मानक स्थापित कर दिया।

'श्रीशारदा' में प्रकाशित उपर्युक्त लेखमाला के एक और लेख 'छायावाद क्या है' में मुकुटधर पांडेय ने छायावाद के लिए प्रयुक्त धारणा रहस्यवाद की भी नींव रख दी थी। उन्होंने लिखा था "अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जाएंगे कि यह शब्द मिस्टिसिज्म के लिए आया है।" नामवर सिंह ने 'आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियां' में शामिल 'छायावाद' शीर्षक उक्त लेख में कहा है कि "पंत के 'पल्लव' और प्रसाद के 'झरना' आदि संग्रहों की कविताओं को 1927 ईसवी तक अंग्रेजी में 'मिस्टिसिज्म' और हिंदी में कभी 'छायावाद' और कभी 'रहस्यवाद' कहा जाता था।" छायावाद और रहस्यवाद को समानार्थी समझने के कारण ही महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1927 की 'सरस्वती' में 'सुकवि किंकर' के छद्म नाम से लिखे लेख 'आजकल के हिंदी कवि और कविता' में लिखा, "आजकल जो लोग रहस्यमयी या छायामूलक कविता लिखते हैं उनकी कविता से तो उन लोगों की पद्य रचना अच्छी होती है जो देशप्रेम पर अपनी लेखनी चलाते---हैं।" द्विवेदी जी ने छायावाद के समर्थकों को अपने इस लेख से उत्तेजित कर दिया था। जिन लोगों ने छायावाद के समर्थन में लिखा उनमें कृष्णदेव प्रसाद गौड़ और अवध उपाध्याय ने छायावादी कविता को रहस्यवादी मानकर उसका पक्ष लिया। स्पष्ट है कि इस तरह के समर्थक छायावाद की व्याख्या में कोई नया तत्व नहीं जोड़ रहे थे। एक हद तक छायावादी कवियों ने भी इस हमले के उत्तर में रहस्यवाद का पक्ष लिया। इसी कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 1929 में एक गंभीर लेख लिखा 'काव्य में रहस्यवाद' और इसमें भेद स्थापित करते हुए साधनात्मक रहस्यवाद के मुकाबले स्वाभाविक रहस्यवाद को कविता के लिए सकारात्मक माना ।

नामवर सिंह का कहना है कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा किए गए विवेचन में "तात्विक दृष्टि से उन रचनाओं को 'रहस्यवाद' कहा जाता था और रूप-विधान की दृष्टि से 'छायावाद"। कहने का मतलब कि शुक्लजी इन कविताओं की अंतर्वस्तु को रहस्यवाद कहते थे और रूप को छायावाद। शुक्लजी के इस लेख के बाद छायावाद के दो ऐसे समर्थक सामने आए जिन्होंने सहानुभूति के साथ छायावाद का विवेचन-विश्लेषण किया। ये थे नंददुलारे वाजपेयी और शांतिप्रिय द्विवेदी।

नंददुलारे वाजपेयी ने भी छायावाद और रहस्यवाद को अलग अलग नहीं माना, बल्कि रहस्यवाद के भीतर ही स्वच्छंदतावादी कवियों की भी गिनती कर ली। फिर भी छायावाद के समर्थन में नई आलोचनात्मक चेतना को खड़ा करने के लिए वाजपेयी जी का संघर्ष निश्चय ही याद रखने लायक है।

अलबत्ता शांतिप्रिय द्विवेदी ने दोनों को अलगाते हुए 1934 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'हमारे साहित्य निर्माता' में छायावाद को 'लौकिक अभिव्यक्ति' माना और रहस्यवाद को 'अलौकिक'। इस तरह उन्होंने इन दोनों के बीच अंतर माना और कहा "जिस प्रकार 'मैटर आफ फैक्ट' के आगे की चीज छायावाद है, उसी प्रकार छायावाद के आगे की चीज रहस्यवाद है। छायावाद में यदि एक जीवन के साथ दूसरे जीवन की अभिव्यक्ति है अथवा आत्मा के साथ आत्मा का सन्निवेश है, तो रहस्यवाद में आत्मा का परमात्मा के साथ।" शांतिप्रिय द्विवेदी ने रहस्यवाद को न केवल छायावाद से भिन्न माना बल्कि रहस्यवाद का समर्थन भी नहीं किया फिर भी उनकी समझ में अस्पष्टता प्रत्यक्ष है।

1929 के आते आते दिखाई पड़ने लगा कि छायावाद में आगे विकास नहीं हो पा रहा है। स्वाभाविक था कि उसकी सीमा की भी पहचान की जाती। 'विशाल भारत' के दिसंबर 1929 में श्री ठाकुर प्रसाद शर्मा का लेख 'छायावाद' छपा। इसमें उन्होंने छायावाद के भीतर पैदा हो रहे रीतिवाद की चर्चा की और कहा "जैसे ब्रजभाषा की कविता को लट, नीवी, श्रमविंदु इत्यादि से उद्धार करने की आवश्यकता है, वैसे ही मैं समझता हूँ कि छायावादी कविता को विपंची, हृत्ततंत्री, झंझावात आदि से छुटकारा दिलाने की जरूरत है।" इसी लेख में उन्होंने एक और आरोप लगाया जो छायावादी कविता के सामाजिक आधार पर अत्यंत विचारणीय टिप्पणी थी। उनके मुताबिक "वर्तमान कविता का जीवन इस्तमरारी बंदोबस्त में मौज करने वाले पढ़े-लिखे जमींदार का जीवन है।" ऐसा नहीं था कि केवल आलोचक ही इन समस्याओं के बारे में सचेत थे। देखा गया कि छायावादी कविता की सीमाओं के बारे में उस समय के आलोचक तो सतर्क थे ही, खुद छायावादी लेखकों ने भी इन सीमाओं को समझकर अपने लेखन में नवीन मार्ग अपनाना शुरू किया। जो खुद नवीनता के समर्थक थे वे समय के बदलाव की आहट कैसे न सुनते ! निराला ने कविता में 'नए पत्ते' संग्रह में नई जमीन तोड़ी। उन्होंने गद्य में भी इस बदलाव को स्वर दिया और 'कुल्ली भाट' तथा 'बिल्लेसुर बकरिहा' जैसे यथार्थवादी उपन्यास लिखे। जयशंकर प्रसाद का उपन्यास 'कंकाल' भी इसी नए विवेक का परिचायक था। महादेवी ने कविताओं/गीतों की जगह गद्य लिखने में ताकत लगाई। सुमित्रानंदन पंत कविता लिखते तो रहे लेकिन उसमें कोई नवीनता नहीं प्रकट हो पा रही थी। उस समय के सामाजिक-राजनीतिक हालात में बदलाव आ रहे थे तथा वैचारिक वातावरण में भी परिवर्तन लक्षित किया जा रहा था। महामंदी शुरू हो चुकी थी जिसके कारण आर्थिक सवाल महत्वपूर्ण हो चले। किसान और मजदूर संगठन बनाने लगे। उधर वैकल्पिक धारा के रूप में सोवियत संघ की मौजूदगी को साहित्यकार भी महसूस कर रहे थे। इन सब चीजों के चलते छायावाद का अतिक्रमण करके हिंदी साहित्य में कुछ नई साहित्यिक प्रवृत्तियों का आगमन हुआ जिनकी चरम परिणति प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना और प्रगतिवाद की स्थापना में हुई।

वैसे तो आम तौर पर लेखकों में तुलना और किसी को ऊंचा या नीचा कहना ठीक नहीं होता लेकिन यह समय वास्तव में ऐसा था जब एकाधिक लेखक समान ढंग से महत्वपूर्ण थे और उन सबका स्वतंत्र व्यक्तित्व था। जितने प्रमाण हैं उन से लगता है कि इनमें आपसी ईर्ष्या-द्वेष भी अपेक्षाकृत कम था।

इनमें सबसे अधिक गहराई जयशंकर प्रसाद में थी। उन्हें उम्र छोटी मिली थी लेकिन काव्य-लेखन की शुरुआत ब्रजभाषा से करने के बावजूद 'कामायनी' के रूप में उन्होंने सबसे लंबी काव्य-यात्रा तय की। बीच में उनका खंड-काव्य 'आँसू' है जिसकी प्रसिद्धि गेयता के चलते उस दौर में बहुत थी। इसमें प्रेम की असफलता से पैदा उदासी ऐसी चित्रात्मक भाषा में व्यक्त की गई थी कि वह युवकों को बेहद आकर्षित करती थी। ऐसे बांध लेने वाले टुकड़े 'कामायनी' में भी हैं लेकिन उसका सौंदर्य आधुनिक

जीवन की विडंबना–'ज्ञान–क्रिया–इच्छा' के बीच के संबंध–विच्छेद–को उठाने में निहित है। अकेले इसी महाकाव्य का विश्लेषण अनेक आलोचनात्मक और व्याख्यात्मक पुस्तकों में किया गया है। इस महाकाव्य के अलग–अलग सर्ग स्वतंत्र रूप से सम्मोहित करने में सक्षम हैं। श्रद्धा का उद्बोधन 'शक्ति के विद्युत कण जो व्यस्त/विकल बिखरे हैं हो निरुपाय/समन्वय उनका करे समस्त/विजयिनी मानवता हो जाय' नवजागरण का रणघोष प्रतीत होता है। किसी मनोभाव को पात्र बनाकर उसकी मूर्ति खड़ी कर देने के मामले में 'कामायनी' का लज्जा सर्ग अप्रतिम है। काव्य–व्याख्या के लिए जयशंकर 'प्रसाद' न केवल चुनौती पूर्ण हैं, बल्कि मन लगाने वाले भी। उनकी बिंबात्मक भाषा ठहरकर अर्थ खोलने की मांग करती है। इसके अतिरिक्त उन्होंने नाटक तो लिखे ही उन पर सैद्धांतिक विचार भी किया। इनके नाटक ऊपर से देखने पर प्राचीन भारत के शासकों की प्रशंसा प्रतीत होते हैं लेकिन उनके भीतर प्रवेश करते ही हमें दरबारों की गलाजत का चित्रण मिलने लगता है। अंतिम नाटक 'ध्रुवस्वामिनी' में तो तलाक लेने का अधिकार भी स्त्री को दिया गया है। इसके पीछे तत्कालीन समाज में स्त्री के सवालों की नवीनता को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। उनके नाटकों और कहानियों में मनुष्य के भाग्य के उत्थान–पतन को इतने ज्यादा समाजैतिहासिक तत्वों के साथ गूंथ दिया गया है कि प्रसाद जी दार्शनिक के रूप मे नजर आने लगते हैं। उन्होंने जर्मन दार्शनिक हेगेल को कलाओं के वर्गीकरण के प्रसंग में उद्धृत किया है जिससे लगता है कि उन्होंने इतिहास–संबंधी हेगेल की मान्यताओं को भी अच्छी तरह समझा था। इतिहास की यही परिष्कृत समझ उनकी अनेक कहानियों में भी दिखाई पड़ती है। आचार्य शुक्ल ने साम्यवाद से उनके परिचय की ओर भी इशारा किया है। प्रसादजी की कहानियों की विशेषता के कारण ही बहुत कम कहानियों के बावजूद हिंदी कहानी के 'प्रसाद स्कूल' की बात की जाती है। उनकी कहानियों में नाटकीयता का तत्व पाठक का ध्यान खींचता है। इस नाटकीयता के सृजन के लिए वे मनोभावों के टकराव का चित्रण करते हैं। खासकर 'आकाशदीप' में प्रेम और स्वाधीनता के टकराव को जितनी तीक्ष्णता से उन्होंने उठाया है वह उनकी आधुनिक दृष्टि का परिचायक है। 'ममता' में वे इस्लाम के सवाल पर अपने समय से बहुत आगे नजर आते हैं। पात्रों के मामले में धर्म की जगह उनकी राष्ट्रीयता को उद्धृत करना उन्हें बेहद विशिष्ट बना देता है। व्यवस्थित आलोचक न होने के बावजूद उनमें आलोचकीय सूझ बहुत थी। यथार्थवाद को 'लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात' कहकर उन्होंने इसकी संक्षिप्ततम परिभाषा प्रस्तुत की। नाटक और रंगमंच के रिश्ते को उन्होंने यह कहकर सूत्रबद्ध किया कि 'रंगमंच नाटक के लिए होता है'। उनकी आलोचकीय क्षमता का ही सबूत है कि रसाभास के प्रसंग में उन्होंने शुक्लजी से टक्कर ली। भारतीय काव्यशास्त्र के बारे में भी उन्होंने मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत कीं और 'रस' तथा 'अलंकार' को ही मूलधारा मानते हुए अन्य संप्रदायों को इन्हीं के मिश्रण से उत्पन्न बताया। कविता को 'आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति' कहना अब भी व्याख्या की दरकार रखता है। संकल्पात्मक में संकल्प की जगह कल्पना का अर्थ लेने से इस सूक्ति का अर्थ खुलता है।

जयशंकर प्रसाद के बारे में यह धारणा सही है कि वे दार्शनिक कवि थे। मुक्तिबोध ने यह बात कही है। खासकर 'कामायनी' में वे आधुनिक सभ्यता की मौलिक समस्याओं को उठाते हैं। अनेक स्थानों पर उनकी कविता सतही पाठ करने पर तुलसीदास की कविता की तरह ही धोखा दे देती है और उसकी गंभीरता का अंदाजा नहीं लगता। उदाहरण के लिए 'आँसू से भीगे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा/तुमको अपनी स्मिति रेखा से यह संधिपत्र लिखना होगा' में लग सकता है कि वे इसकी ताईद कर रहे हैं लेकिन थोड़ा ध्यान देते ही आंख में आंसू और चेहरे पर मुस्कान की मजबूरी की विडंबना सामने

आ जाती है। उस समय के समाज में स्त्री की स्थिति की ऐसी मार्मिक अभिव्यक्ति शायद ही किसी और की रचना में हुई हो ! रामस्वरूप चतुर्वेदी ने काम के प्रेम और रति के लज्जा में रूपांतरण को मनुष्य की सांस्कृतिक परिष्कृति के रूप मे परिभाषित किया है। देवसंस्कृति के नाश को सामंती अतीत के विनाश के रूप में देखना भी गलत नहीं है। आचार्य शुक्ल ने भी संकेत किया है कि प्रसादजी का लेखन साम्यवादी विचारों से प्रभावित था।

स्वाभाविक रूप से प्रसाद के बाद निराला पर ध्यान जाता है। रामविलास शर्मा की लिखी तीन खंडों में प्रकाशित 'निराला की साहित्य साधना' इनके जीवन और साहित्य की समझ के लिए सर्वोत्तम पुस्तक है। निराला के प्रत्येक काव्य-संग्रह में काव्य-बोध के बदलाव तथा काव्य-कला की नई ऊँचाई पर अनेक आलोचकों ने टिप्पणी की है। नागार्जुन के पहले निराला ही थे जिन्होंने कविता के सीमांत छुए और वहां भी कविता को संभव किया। कविताओं के मामले में उनकी कीर्ति का आधार उनकी लंबी कविताएँ हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' शीर्षक कविता में उन्होंने माइकेल मधुसूदन दत्त की 'मेघनादवध' की तरह संस्कृतनिष्ठ पदावली की झड़ी लगा दी। 'सरोज-स्मृति' शीर्षक कविता उन्होंने अपनी पुत्री के देहांत पर शोकगीत के ढाँचे में लिखी। इस कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कवि पिता ने अपनी पुत्री का सौंदर्य वर्णन किया है। यह संयमित वर्णन कविता की दुनिया में दुर्लभ है। इस कविता में निजी व्यथा को निराला ने अपने सामाजिक और साहित्यिक संघर्ष के साथ गूंथ दिया है जिसके जरिए सामंती समाज के दबावों से मुक्ति की छायावादी छटपटाहट व्यक्त हुई है। 'तुलसीदास' शीर्षक कविता भक्तिकाल के इस महान कवि के सांस्कृतिक उन्मेष की रचनात्मक व्याख्या है। 'कुकुरमुत्ता' शीर्षक कविता अभिजात सौंदर्याभिरुचि पर प्रहार है। गीतों की रचना में भी उन्हें बहुत सफलता मिली। इन गीतों की विषयवस्तु भक्ति से लेकर करुणा तक विस्तृत है। उन्होंने कविता से पहले गद्य लिखना शुरू किया था। बाद के उपन्यासों में यथार्थवाद की मौजूदगी को अनेक लोगों ने पहचाना है लेकिन शुरुआती उपन्यासों में भी पर्याप्त गहराई है जिसका विश्लेषण अभी तक नहीं किया गया है। पात्रों के मामले में नौजवानों और स्त्रियों की भरपूर उपस्थिति उन्हें इस पहलू से भी प्रेमचंद से जोड़ती है। आलोचना भी उन्हें काफी लिखनी पड़ी थी। उनकी कहानियां नये किस्म के कहानी लेखन की संभावना का संकेत करती हैं। निबंधों में गद्य की सृजनात्मकता को पहचानने की जरूरत रामविलास जी ने लक्षित की ही है। आचार्य शुक्ल ने ठीक ही उनकी प्रतिभा को 'बहुवस्तुस्पर्शिनी' कहा था। नागार्जुन ने स्त्री समुदाय के प्रति उनकी सहानुभूति को ठीक ही लक्षित किया है जो कविताओं के अतिरिक्त 'देवी' जैसी कहानी में भी बहुत स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है।

महादेवी वर्मा ने कवयित्री के रूप में जो प्रसिद्धि अर्जित की उसके कारण उनका क्रांतिकारी रूप छिप जाता है। उन्होंने गीतों के लेखन में अपनी काव्य-प्रतिभा लगाई। उनके गीतों में दुख की अभिव्यक्ति के बराबर ही उद्‌बोधन के भाव भी हैं। गद्य लेखन में उनके रेखाचित्रों और संस्मरणों में स्त्रियों-ग्रामीणों और साथी साहित्यकारों के बहुत ही जीवंत चित्र अंकित हुए हैं। इन पात्रों के विवेचन में व्यक्त उनकी यथार्थवादी दृष्टि को बौद्ध करुणा के सहारे ही नहीं समझा जा सकता। उनका विद्रोह बहुआयामी था। व्यावहारिक जगत में इसके प्रमाण तो उपलब्ध हैं ही तत्कालीन सामाजिक और सौंदर्यबोधीय मान्यताओं की उनकी मुखालफत की पहचान अभी बाकी है। इनके अतिरिक्त उनका वैचारिक लेखन भावावेग और सूझबूझ से भरा हुआ है। उनकी किताब 'श्रृंखला की कड़ियाँ' भारतीय स्त्री पर आरोपित सभी व्यवस्थित सामाजिक बंधनों का विश्लेषण है। उस समय हिन्दी के पौरुषेय वातावरण में किसी भी स्त्री रचनाकार

के लिए अपनी जगह बनाना लगभग असंभव काम था जो महादेवी ने कर दिखाया।

सुमित्रानंदन पंत की कविताओं ने प्रकृति-चित्रण के नाते हिंदी साहित्य में खास जगह बनाई। हिमालय की छवियों के सहारे उन्होंने चित्ताकर्षक प्राकृतिक बिम्ब उकेरे। इसी कारण उन्हें लोकप्रिय भाषा में 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा जाता है। प्रकृति चित्रण के अतिरिक्त उन्होंने वैचारिक कविता भी लिखने की कोशिश की। उनकी इन कविताओं में वैचारिकता की गहराई नहीं है और गांधीवाद, मार्क्सवाद से लेकर अरविंद दर्शन तक को उन्होंने काव्य का विषय बनाया। हिंदी में उत्तर छायावादी दौर में प्रचलित हालावाद का भी उन्होंने अनुकरण करने की कोशिश की।

इन कवियों के बाहर छायावाद का प्रसार प्रेमचंद के लेखन में भी है। उनके स्त्री पात्रों के गढ़ने में छायावादी संस्कार प्रत्यक्ष हैं। हिंदी कहानी की दुनिया में प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद को विरोधी प्रवृत्तियों का लेखक माना जाता है और इसी आधार पर इन दोनों के नाम पर दो स्कूलों की कल्पना की जाती है लेकिन खुद प्रेमचंद इस विरोध को तात्विक नहीं मानते थे। उनका मानना था कि वे दोनों ही आदर्श समाज की इच्छा से संचालित होकर यथार्थ का चित्रण करते हैं। स्वाधीनता आंदोलन की दोनों धाराओं-समाज सुधार और राजनीतिक आजादी-का सामंजस्य प्रेमचंद के लेखन में मिलता है। असल में समूची छायावादी चेतना को ही हम इस सामंजस्य से आप्लावित पाते हैं। इन सबने अपने समय को समझने और बदलने में अपनी समूची प्रतिभा लगा दी। उनका समय औपनिवेशिक उत्पीड़न और सामंती समाज की मौजूदगी से निर्मित था ।

उस समय रचनारत आलोचक रामचंद्र शुक्ल के बारे में यह अपवाद ही है कि वे छायावाद के विरोधी थे। छंद को ध्वनि आवर्तों का पैटर्न मानने में छायावादी काव्य संस्कारों की गूंज है। इसके अतिरिक्त 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में रीतिकालीन कवियों में बिहारी के मुकाबले देव की कविता का पक्ष लेने तथा रीतिमुक्त काव्य-धारा में घनानंद की प्रतिष्ठा के पीछे छायावादी काव्य संस्कारों का प्रभाव महसूस किया जा सकता है। कविता की भाषा में लाक्षणिकता का उल्लेख शुक्लजी ने घनानंद और छायावादी कवियों के ही प्रसंग में किया है। छायावादी कविता की शक्तियों और सीमाओं की सबसे सटीक पहचान आचार्य शुक्ल को थी।

छायावाद की कोई ऐसी मान्यता निर्मित करना मुश्किल है जिसके भीतर इन सभी रचनाकारों के लेखन की विशेषताएं समा जाएं। फिर भी स्वाधीनता की आकांक्षा, प्रकृति-वर्णन, वैयक्तिकता का उभार, मुक्त छंद की स्थापना, मनोभावों का सूक्ष्म चित्रण, स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की प्रस्तुति, समाज के वंचितों के प्रति सहानुभूति, कल्पना की उड़ान और कविता की भाषा के बत्तौर खड़ी बोली हिंदी की स्थापना आदि छायावाद की प्रमुख विशेषताएं और योगदान कहे जा सकते हैं। वह समय भारत की आजादी की लड़ाई में व्यापक जनता की भागीदारी का समय था। साथ ही हिंदी क्षेत्र में शहरी मध्यवर्ग का विकास हो रहा था। इस नवोदित मध्यवर्ग का रिश्ता अभी देहाती जड़ों से टूटा नहीं था। अधिकतर लेखक इस मध्यवर्ग का अंग थे। सामाजिक बदलाव की इस मध्यवर्ग की आकांक्षा और हिंदी भाषी समाज के सामंती यथार्थ के बीच की टकराहट छायावाद की शक्ति और सीमा दोनों को रूपायित करती है। इसी के कारण मुक्ति की प्रस्तुति एक तरह के सामाजिक संकोच के साथ साहित्य में आती है।

❑❑❑

छायावाद : कुछ नोट्स

❍ निरंजन सहाय

आधुनिक हिन्दी कविता के इतिहास में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा जैसे रचनाकारों की कविताओं ने जिस नये आस्वाद से 20वीं सदी के आरंभिक दशकों को समृद्ध किया, उसे 'छायावाद' का दौर कहा गया। 'छायावाद' के साथ प्राय: दो और पदों का प्रयोग किया जाता है- 'रहस्यवाद' और 'स्वच्छंदतावाद'। उस दौर की कविताओं में प्राय: ये तीनों प्रवृत्तियाँ एक साथ दिखायी देती हैं। 'छायावाद' का संबंध जहाँ चित्रण की विशेष शैली से जोड़ा जाता है, वहीं 'रहस्यवाद' अज्ञात की जिज्ञासा या कौतूहल से संबद्ध है और 'स्वच्छदंतावाद' का सघन रिश्ता रूढ़ियों से मुक्ति से जुड़ता है।

इस काल खंड का फैलाव 1918 से 1936 ई. तक है। 'छायावाद' की पहली रचना के रूप में प्रसाद रचित काव्य-संग्रह 'झरना' का उल्लेख किया जाता है, जिसकी रचना 1918 ई. में हुई थी। वहीं अंतिम कृति के रूप में शिखर रचना 'कामायनी' के उल्लेख की परिपाटी रही है, जिसकी रचना 1936 ई. में हुई। इस अवधि में ही रचित जयशंकर प्रसाद के काव्य-संग्रहों 'आँसू', 'लहर', निराला के काव्य-संग्रहों 'अनामिका', 'परिमल', 'गीतिका', 'तुलसीदास' पंत की रचनाओं 'पल्लव', 'वीणा', 'गुंजन', 'युगांत' और महादेवी वर्मा के गीत संग्रहों 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' ने कविता के इतिहास में संवेदना और विन्यास की दृष्टि से उल्लेखनीय ऊँचाइयों का स्पर्श किया। आइए इस कालखंड का और भी विस्तृत अध्ययन करें।

कविता के इतिहास में द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता, स्थूलता के बरअक्स सूक्ष्म विवरण संपन्न कल्पना प्रधान और ललित पद विन्यास से समृद्ध नए काव्य आस्वाद की ऐतिहासिक जरूरत को 'छायावाद' ने पूरा किया। 'द्विवेदी युगीन कविता' और 'छायावादी कविता' की पृथकता को विश्लेषित करने के जो प्रयास हुए, उनके अनुसार छायावादी काव्य के मूल स्वरूप को समझने के लिए उसे ऐतिहासिक सन्दर्भ में रखकर देखना अनिवार्य है। द्विवेदी युगीन काव्य विषयनिष्ठ, वर्णन-प्रधान और स्थूल था। इसके विपरीत छायावादी काव्य व्यक्तिनिष्ठ और कल्पना-प्रधान है। प्रसाद, निराला आदि कवियों ने अधिकतर अपनी सुख-दुखमयी अनुभूतियों को ही मुखरित किया है। जिस प्रकार द्विवेदी युगीन कविता में सृष्टि की व्यापकता और अनेक रूपता को समेटने का प्रयास है, उसी प्रकार छायावादी काव्य में मनोजगत् की गहराई को वाणी में संजोने का प्रयत्न किया गया है। मनोजगत् का सत्य सूक्ष्म होता है जिसे सर्जना द्वारा साकार करने के लिए छायावादी कवियों ने ऊर्वरा कल्पना शक्ति का उपयोग किया है। कल्पना का उपयोग अनुभूति के विविध पक्षों और प्रतीकों तथा बिम्बों की उद्‌भावना में भी किया गया है। इसीलिए छायावादी अभिव्यंजना पद्धति विशिष्ट और सांकेतिक हो गयी है।

आधुनिक हिन्दी कविता में ब्रजभाषा बनाम खड़ी बोली विवाद के कारण छायावादी कवियों ने आग्रहपूर्वक खड़ी बोली को अधिक सूक्ष्म, चित्रात्मक और लाक्षणिक बनाया। भाषा के इन प्रयोगों ने छायावाद को विशिष्ट भंगिमाओं से सम्पन्न किया। अभिव्यंजना-पद्धति की इन विशेषताओं ने तत्कालीन काव्य-परिदृश्य में नवीनता और ताजगी का अहसास कराया।

'छायावाद' नामकरण के संबंध में अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं। आलोचक रामचन्द्र शुक्ल ने इसे ईसाई संतों के फैंटेसमाटा (छायाभास) शब्द से जोड़ते हुए बंगला का अनुकरण माना है। वे अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में कहते हैं, 'पुराने ईसाई संतों के छायाभास तथा यूरोपीय काव्यक्षेत्र में प्रवर्तित आध्यात्मिक प्रतीकवाद के अनुकरण पर रची जाने के कारण बंगाल में ऐसी कविताएँ 'छायावाद' कही जाने लगी थीं। यह वाद क्या प्रकट हुआ, एक बने-बनाए रास्ते का दरवाजा खुल पड़ा और हिन्दी के कुछ नए कवि उधर एकबारगी झुक पड़े। कहना न होगा रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मशहूर कृति 'गीतांजलि' में वर्णित प्रकृति-चित्रण, मानवीय प्रेम और आध्यात्मिक संश्लेष का प्रभाव 'छायावाद' में मान लिया गया।

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में 'छायावाद' का उल्लेख 1920 ई. से मिलने लगा। मुकुटधर पाण्डेय ने जबलपुर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'श्री शारदा' के जुलाई, सितम्बर, नवम्बर 1920 ई. के अंकों में 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से चार निबन्धों की एक लेखमाला लिखी। नामवर सिंह ने इसे 'छायावाद' पर लिखा पहला निबंध माना है। इसके बाद सरस्वती के जून 1921 ई. के अंक में सुशील कुमार लिखित 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक एक संवादात्मक निबंध प्रकाशित हुआ। 'छायावाद' शब्द के अर्थ को लेकर हिन्दी संसार में काफी विवाद रहा।

जहाँ यर्थाथवाद, प्रगतिवाद आदि वादों के अंतर्गत स्वीकृत रचनाओं से बुनियादी स्वरूप प्रकट हो जाता है, वहीं 'छायावाद' शब्द किसी स्पष्ट अर्थ का बोध नहीं कराता। 'छायावाद' के दो अर्थ आरम्भ में निर्धारित किए गए, उसमें 'छाया' शब्द के अर्थ की विवेचना के ही प्रयास हुए। आचार्य शुक्ल ने इसके व्यापक अर्थ में 'रहस्यवाद' को भी शामिल कर लिया। वे सीमित अर्थ में इसे एक शैलीविशेष मानते हैं, जिसमें लाक्षणिक मूर्तिमत्ता, प्रतीक-विधान, विरोध, चमत्कार, विशेषण-विपर्यय, मानवीकरण, अन्योक्ति-विधान आदि पर बल होता है। शैलीगत विशेषताओं के साथ-साथ प्रेम, सौन्दर्य में बुनियादी अंतर है। प्रसंगवश इसे समझ लेना चाहिए। वस्तुतः रहस्यवादी भावना का आलंबन जहाँ अमूर्त निराकार ब्रह्म है, वहीं छायावाद का विषय लौकिक संदर्भों से ही जुड़ा रहता है। आरंभ में इसका संबंध स्वच्छंदतावाद से भी जोड़ा गया, लेकिन आज छायावाद, रहस्यवाद और स्वच्छंदतावाद के संदर्भों में व्यापक अंतर है। तत्कालीन परिदृश्य की विवेचना से यह समझना काफी आसान है। जहाँ नयी रचना-धारा के विरोधियों ने 'छाया' का अर्थ प्रभाव या अनुकरण लिया, वहीं दूसरे वर्ग ने इसका अर्थ 'सूक्ष्म' और 'वायवीय' माना। एक अर्थ 'अस्पष्ट' ग्रहण किया गया। जयशंकर प्रसाद ने छाया की व्याख्या की, 'मोती के भीतर छाया की जैसी तरलता'। उन्होंने यह भी कहा कि छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। नंददुलारे वाजपेयी ने 'छायावाद' का संबंध युगबोध से जोड़ते हुए व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव कहा। डॉ. नगेन्द्र की दृष्टि में छायावाद 'स्थूल' के प्रति 'सूक्ष्म' का विद्रोह है। नामवर सिंह की बहुचर्चित कृति 'छायावाद' के अनुसार, 'छायावाद वस्तुतः कई काव्य-प्रवृत्तियों का सामूहिक नाम है और वह उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति पाना चाहता था और दूसरी तरफ विदेशी पराधीनता से'।

द्विवेदी युगीन कविता की इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता से अलग 'छायावाद' ने जिस नये काव्य

आस्वाद से हिन्दी पाठकों को परिचित कराया, वह अनेक अर्थों में विशिष्ट अनुभव था। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा की काव्यानुभूति से गुजरते हुए हम उन विशिष्टताओं को बखूबी रेखांकित कर सकते हैं। 'मधुचर्या', 'पलायन बोध' जैसे विशेषणों के अतिरिक्त प्राय: हम छायावादी कविता संसार की उपलब्धियों को नकार देते हैं। लेकिन 'छायावाद' ने जिन स्थायी संदेशों को प्रकट किया वह सक्रियता की अवधारणा से जुड़ा था। इस संदर्भ में नामवर सिंह के विश्लेषण को यहाँ उद्धृत किया जा सकता है, "छायावादी कविता की आत्मीयता, प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य-भावना, संवेदनशीलता, अथक जिज्ञासा, जीवन की लालसा, उच्चतर जीवन की आकांक्षा और इन सबके लिए संघर्ष करने की अनवरत प्रेरणा, छायावादी कविता का स्थायी संदेश है। छायावाद हमें रसमग्न करके निष्क्रिय नहीं बनाता बल्कि उद्बुध करके सक्रिय बनाता है। वह परिवर्तित करता है।" यह समझने का प्रयास किया जाए कि किन तत्त्वों से प्रेरित हो छायावादी कविता की अवधारणा ने हिन्दी कविता के इतिहास में हस्तक्षेप किया।

छायावादी कविता की आत्मीयता ने पाठकों को विशेष रूप से आकर्षित किया। हिन्दी कविता परंपरा में यह काव्य प्रविधि बिल्कुल नए ढंग की थी। इस काव्य संसार में कवि निर्वैयक्तिकता का सारा आवरण उतारकर एक आत्मीय की भाँति बेहद निजी ढंग से बातें करता दिखायी पड़ता है। मन के भावों को प्रकट करने के लिए वह कल्पित कहानी, पौराणिकता, आध्यात्मिकता या राधा-कृष्ण के श्रृंगार वर्णनों की ओट नहीं लेता। वह अपनी बात सीधे-सीधे अपने-अपने मुँह से उत्तम पुरुष-शैली में कहता है। कहना न होगा इससे कवि और पाठक के बीच जिस सुखद अनुभूति का संचार होता है, वह पहले के काव्य अनुभवों से विलक्षण है।

इस निजता और आत्मीयता के पीछे आधुनिक युवक का वह व्यक्तित्व है जो खुद को सीधे-सीधे अभिव्यक्त करने के लिए सामाजिक स्वाधीनता की कामना रखता है। उसकी वैयाक्तिक चेतना निर्वैयक्तिकता की प्रचलित हिन्दी परंपरा में घुट रही थी। भक्तिकाल के प्रचलित 'आत्मनिवेदन' और रीतिकाल की 'रूढ़िगत तटस्थता' के बरअक्स वैयक्तिकता का यह आग्रह विद्रोही था। छायावादी कवियों ने साहसपूर्वक काव्य में व्यक्त अनुभूतियों का अपनी अनुभूतियाँ कहकर प्रस्तुत किया। काव्य-संसार में 'मैं', 'मेरा' जैसे शब्द एकबारगी प्रखर वेग से प्रकट होने लगे। निराला ने लिखा-

'मैंने 'मैं' शैली अपनाई'
या
'देखा मुझे उस दृष्टि से'

पंत की यह घोषणा कितनी रूढ़ि भंजक थी- 'बालिका मेरी मनोरम मित्र थी'। इस तरह की अन्य अभिव्यक्तियाँ भी आसानी से मिल जाती हैं।

छायावाद के पहले यह चेतना बमुश्किल नजर आती थी। यदि आती भी तो आध्यात्मिकता की ओट में। प्रेम में जब रचनाकारों ने सामाजिक स्वाधीनता की छूट ली, तब इसे आधुनिक चेतना की जनतांत्रिक विजय से नवाजा गया। इस संदर्भ में नामवर सिंह की टिप्पणी गौरतलब है, 'कविता में जहाँ देवताओं के प्रेम का वर्णन होता था। वह स्थान साधारण मनुष्य ले ले यह जनतांत्रिक भाव की विजय है। यह मध्यवर्ग की पहली सामाजिक स्वाधीनता है।'

इस स्वाधीनता के अन्य आयामों से भी हिन्दी कविता संपन्न हुई। निराला ने 'सरोज-स्मृति' शोकगीत में निजी जीवन की जिन बातों को साफ-साफ कहा वह हिन्दी कविता की विशिष्ट उपलब्धि है। कविता

में निराला की आत्मकथा का बहुलांश मार्मिकता से अभिव्यक्त हुआ है। पंत ने 'उच्छवास' में, प्रसाद ने 'आँसू' में स्वयं को अभिव्यक्त किया। लेकिन आत्माभिव्यक्तियों के संदर्भ में कई बार रचनाकारों को रूढ़ियों के प्रहार की आशंका भी होती थी। इस आशंका का ही एक सिरा उस समय के रहस्यवाद से जुड़ता है। आचार्य शुक्ल ने इस वास्तविकता को पहचानते हुए लिखा, 'इनकी रहस्यवादी रचनाओं को देखकर चाहे तो यह कहें कि इनकी मधुचर्या के मानस प्रसार के लिए रहस्यवाद का परदा मिल गया अथवा यों कहें कि इनकी सारी प्रणयानुभूति ससीम से कूदकर असीम पर जा रही है।' कहना न होगा आलोचक और पाठक संसार छायावादी अथवा रहस्यवादी कविताओं को आत्मानुभूति की कोटि में ही रख रहे थे।

छायावादी कवि की जिज्ञासा का संबंध भाव विह्वलता से है। इस भाव विह्वलता का स्वरूप भक्तिकालीन आवेगों से अलग है। जहाँ भक्तिकालीन आवेगों को मर्यादा नियंत्रित करती है, वहीं छायावादी कवि धीरज, विवेक और विश्वास को कवि कर्म के समय भूल जाता है। पंत के 'उच्छवास' और 'ग्रंथि' को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। इस भावावेश का एक सिरा प्रकृति और संसार के प्रति छायावादी कवियों की जिज्ञासा और कुतूहल से जुड़ता है। नामवर सिंह कहते हैं, 'हर चीज के प्रति अथक 'जिज्ञासा' और 'कुतूहल' छायावाद का मंगलाचरण है और यही वह रचनात्मक शक्ति है जिसके द्वारा कवि, दार्शनिक अथवा वैज्ञानिक अपने-अपने क्षेत्र में कोई नयी चीज दे जाता है। छायावाद में इस नयी शक्ति का उन्मेष था। इसलिए उसने हिन्दी साहित्य को कुछ नया दिया। द्विवेदी युग में अथवा रीतिकाल में इसकी कमी थी। इसलिए इन युगों की रचनात्मक देन बहुत कम है।'

इसे कुछ उदाहरणों के माध्यम से समझने की कोशिश करें। सुबह के समय चिड़ियों का चहकना तो पहले भी लोगों ने देखा था। पेड़-पौधों का झूमना भी लोगों ने देखा था। लेकिन छायावादी कवियों के देखने की मुद्रा अलग थी-

'प्रथम रश्मि का आना रंगिणि, तूने कैसे पहचाना?' -सुमित्रानंदत पंत

या

'तोड़ दो यह क्षितिज मैं भी देख लूँ उस ओर क्या है?' -महादेवी वर्मा

छायावादी कवियों की रहस्य भावना का संबंध इसी जिज्ञासा भाव से है। छायावादी परिवेश, प्रकृति या परम सत्य सबके बारे में जानना चाहते हैं।

जिज्ञासा का संबंध कल्पना से है। नामवर सिंह का विश्लेषण ध्यान देने लायक है, 'जिज्ञासा अपने आप में किसी वस्तु को जानने में समर्थ नहीं है। केवल प्रश्न से ही उत्तर नहीं मिल जाता। जिज्ञासा की तीव्रता जिज्ञासु के मन में एक दूसरी शक्ति को जन्म देती है, जिसके द्वारा मन उस वस्तु के अंत:स्थल में प्रवेश करता है। इस शक्ति का नाम है- कल्पना। कल्पना शक्ति के द्वारा मन अगम वस्तु तक पहुँच जाता है। दुर्लभ वस्तु को भी प्राप्त कर लेता है। अज्ञात और अज्ञेय वस्तु को भी जान लेता है तथा अदृष्ट वस्तु का भी रूप निर्धारित कर सकने में समर्थ हो जाता है। जिज्ञासा ने छायावादी कवि को यही कल्पना शक्ति प्रदान की।'

छायावादी कल्पना अलंकार और प्रतीक योजना कर संपन्न नहीं हो जाती। वह सत्यान्वेषी अंतर्दृष्टि तक अपना विस्तार करती है। यही कारण है कि छायावादी युग में कल्पना और कविता पर्याय हो गए। 'पल्लव' के कवि पंत की रचना पर काव्य टिप्पणी है- 'कल्पना के ये विह्वल बाल'। निराला की दृष्टि में कविता 'कल्पना के कानन की रानी' है। प्रसाद कहते हैं-

'हे कल्पना सुखदान
तुम मनुज जीवन प्रान
तुम विशद व्योम समान।'

कल्पना की इस अवधारणा के कारण ही छायावादियों ने सर्वाधिक प्रिय वस्तुओं की उपमा कल्पना से दी। जयशंकर प्रसाद हिमालय को 'विश्व कल्पना' कहते हैं। सुमित्रानंदन पंत बादल को 'त्रिभुवन की कल्पना महान' कहते हैं।

छायावादियों की कल्पना की इसी समझ ने दुखद वर्तमान में मनोहर स्वप्न लोक की सृष्टि की।

छायावादी रचनाकारों ने रूढ़ मर्यादाओं के विरुद्ध सामाजिक स्वाधीनता और वैयक्तिक चेतना पर बल देने के साथ प्रकृति प्रेम को भी अपनी काव्य भूमि के रूप में चुना। देश प्रेम या राष्ट्रीय जागरण से समृद्ध उस दौर की अनेक कविताओं का उत्स प्रकृति प्रेम में निहित है। देश प्रेम का आखिर प्रकृति से क्या रिश्ता है? इसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने बखूबी स्पष्ट किया है, 'यदि किसी को अपने अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, कण, पर्वत, नदी, निर्झर सबसे प्रेम होगा। सबको वह चाह भरी दृष्टि से देखेगा सबको सुध करके विदेश में आँसू बहाएगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है? वे यदि दस बने ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का पता बताकर देश-प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि भाइयों बिना परिचय का यह प्रेम कैसा?'

पर छायावादी रचनाकार के प्रकृति प्रेम के पीछे देश प्रेम नहीं है। क्योंकि वह भाव तो प्रकृति से परिचय के बाद पैदा होता है। वस्तुत: जड़ सामूहिकता एवं सामाजिकता से उबरने के लिए छायावादी रचनाकारों ने प्रकृति में प्रवेश किया। उन्हें लगा कि प्रकृति में उन्मुक्तता एवं स्वच्छंदता के लिए अवकाश है। प्रकृति प्रेम वैज्ञानिक उपलब्धियों से भी जुड़ा है। मनुष्य स्वभावत: द्वंद्वात्मक होता है। वह एक तरफ प्रकृति से संघर्ष करता है तो दूसरी तरफ उससे प्रेम भी करता है। जंगल नष्ट करता है तो बाग आबाद करता है। छायावाद के प्रकृति प्रेम के पीछे उल्लिखित सभी कारणों की मौजूदगी है।

सामाजिक स्वाधीनता एवं प्राकृतिक मुक्ति से अर्जित छायावादी प्रकृति प्रेम में पाठकों ने एक नयी जीवन दृष्टि महसूस की। 'प्रथम रश्मि' कविता में पंत ने सुबह के सूरज की पहली किरण के जादू का प्रभावी चित्रण किया। जहाँ निराकार तम में सब कुछ अस्पष्ट था, वहाँ सुन्दर सृष्टि दिखायी देने लगी-

'निराकार तम मानो सहसा
ज्योति-पुंज में हो साकार
बदल गया द्रुत जगज्जाल में
धर कर नाम रूप नाना।

इसके बाद तो जैसे पूरी प्रकृति झूमने लगी। हर तरफ जागरण का संदेश फैल गया-

'खुले पलक, फैली सुवर्ण छवि
जगी सुरभि, डोले मधुबाल
स्पंदन, कंपन और नवजीवन
सीखा जग ने अपनाना।'

नवजीवन की यह अर्थछवि छायावादी कवि की निजी विशेषता है।

छायावादी कवियों ने स्वतंत्र प्रकृति–चित्रण में जो मिसाल कायम की वह आधुनिक हिन्दी कविता में एक उल्लेखनीय संदर्भ है। कहना न होगा इससे प्रकृति की स्वतंत्र सत्ता का बोध हुआ। जहाँ पहले अधिक से अधिक प्रकृति का चित्रण कथा प्रसंग अथवा मानवीय क्रिया की पृष्ठभूमि में किया जाता था, वहीं छायावादियों ने प्रकृति को इतना महत्व दिया कि किसी अपरिचित और छोटे से फूल के पौधे को भी स्वतंत्र रूप से कविता का विषय बनाया। ओस की बूँद पर कविता के पूरे विधान को रचा गया। पंत ने बादल पर एक पूरी कविता लिखी। उपेक्षित प्रकृति को छायावादी कवियों ने पूरा सम्मान दिया और इस प्रक्रिया में उसे मध्ययुगीन बंधनों से मुक्त किया।

महादेवी वर्मा ने प्रकृति की विराटता को माँ के गरिमामय रूप से संबद्ध करते हुए कहा–

'इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अंकों में भर विशाल
झुक सस्मित शीतल चुंबन से
अंकित कर इसका मृदुल भाल
दुलरा दे ना बहला दे ना
यह तेरा शिशु जग है उदास।'

आधुनिक दृष्टि ने जिस विराट चेतना को देखा था, उसके सम्मुख प्रकृति के प्रति ऐसी श्रद्धा स्वाभाविक थी। नामवर सिंह ने लिखा है, "वस्तुतः प्रकृति ने जिस दिव्य रूप में आधुनिक मानव को दर्शन दिया था, उसकी विराटता के सामने कवि की यह श्रद्धा स्वाभाविक है। इसलिए कुछ कवियों ने 'विश्व सुंदरी प्रकृति पर चेतनता का आरोप' करके उसे विश्वप्रिया शक्ति का रूप दे दिया और कुछ ने "प्रकृति की अनेकरूपता में, 'परिवर्तनशील विभिन्नता में तारतम्य खोजने' के फलस्वरूप उसके कारण पर 'मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण' करके अपना प्रिय बना लिया। पहली प्रवृत्ति प्रसाद की है और दूसरी महादेवी की।"

छायावादी कविता के विश्लेषक यह मानते हैं कि छायावाद पूर्व के युगों में प्रकृति के इस विराट रूप का चित्रण नहीं मिलता।

छायावादी कविता प्रकृति के साथ स्त्री को भी कविता के प्रधान विषय के रूप में चुनती है। इस प्रवृत्ति के कारण छायावाद को बहुत दिनों तक आलोचना का पात्र भी बनना पड़ा। उसे 'स्त्रैण काव्य' की उपाधि तक दी गयी। द्विवेदी युग का शुद्धिवादी आग्रह नारी के प्रति दया का भाव तो रखता है लेकिन सम्मान के भाव से वह दूर है। इससे नीरसता और वर्जना के भाव को विस्तार मिला। प्रसंगवश आलोचक नामवर सिंह का विश्लेषण उद्धृत करना उचित होगा, "द्विवेदी युग का यह काव्य एक प्रकार से अनाथालय प्रतीत होता है। जिसमें नारी को आश्रय देने के साथ ही बंदिनी भी बना दिया गया और इस तरह वह अपने सहज जीवन से विच्छिन्न कर दी गयी। आर्य समाज की कट्टर शुद्धिवादी (प्यूरिटन) नैतिकता ने द्विवेदी युग के संपूर्ण काव्य को नीरसता और वर्जना से भर दिया, चारों ओर 'निरस विसद गुनमय फल' वाले कपास का वातावरण छा गया।"

छायावादी कविता ने नारी चित्रण दो रूपों में किया। वह दैहिक रूप जो पुरुष के शाश्वत आकर्षण का विषय है, उसने छायावादी कवियों को प्रभावित किया। दूसरा वह रूप है जिसमें स्त्री को बंधनमुक्त करने की चाहत है। कहना न होगा छायावाद नारी के प्रति मानवीय सहृदयता की दृष्टि रखता है, सुमित्रानंदन पंत ने लिखा–

'देवि माँ सहचरि प्राण।।'

साहित्य में पहली बार स्त्री एवं पुरुष के बीच वैयक्तिक स्वच्छंद प्रेम का अभ्युदय हुआ। इस स्वच्छंद प्रेम का अनिवार्य सिरा व्यक्ति स्वातंत्र्य से जुड़ा है। नारी को प्रेयसी का ऊँचा आसन इसी चेतना के कारण दिया गया। छायावादी कवियों ने 'प्रेयसी', 'प्रिये', 'प्रियतमे' और 'सजनी' जैसे संबोधनों का प्रयोग बहुतायत रूप में किया। इन संबोधनों के चलते छायावादियों को 'सजनी संप्रदाय' जैसे उपहासों का सामना करना पड़ा। लेकिन खिल्ली उड़ाने वाले दरअसल स्त्री-पुरुष समानता के रूढ़िवादी संबंधों के कायल हैं- यह स्पष्ट होते देर नहीं लगी।

जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' में मनु के जीवन में प्रेम की दस्तक बहुत सुंदर रूप में अभिव्यक्त है-

श्रुतियों में चुपके चुपके से / कोई मधु धारा घोल रहा,
इस नीरवता के परदे में / जैसे कोई कुछ बोल रहा,
स्पर्श मलय के झिलमिल सा / संज्ञा को और सुलाता है।
पुलकित हो आँखें बंद किये / तंद्रा को पास बुलाता है।
उठती है किरनों के ऊपर / कोमल किसलय के छाजन सी,
स्वर का मधु निःस्वन रंध्रों में / जैसे कुछ दूर बजे वंशी।
था व्यक्ति सोचता आलस में / चेतना सजग रहती दुहरी,
कानों कान खोल करके / सुनती थी कोई ध्वनि गहरी।

यही प्रेम काम में रूपांतरित हो मनु में एक और जीवन की चाहत उत्पन्न करता है, साथ ही कर्म की प्रेरणा भी प्रदान करता है।

इस 'प्रेम' को निराला की कविताएँ अलग अंदाज में पहचानती हैं। वैसे तो अनेक कविताओं में उन्होंने प्रेम का परोक्ष चित्रण किया, लेकिन उन्होंने 1932 ई. में 'प्रेम के प्रति' एक कविता लिखी। इस कविता में वे प्रेम के स्वरूप पर टिप्पणी करते हैं-

"प्रेम सदा ही तुम असूत्र हो
उर-उर के हीरों के हार,
गुँथे हुए प्राणियों की भी
गुँथे न कभी सदा ही सार।"

प्रेम के इस स्वरूप में बंधे प्रेम की आकांक्षा प्रकट हुई। 'पंचवटी प्रसंग' कविता में महाकवि प्रेम को उदात्त की अवधारणा तक ले जाते हुए कहते हैं-

'छोटे से घर की लघु सीमा में
बंधे है क्षुद्र भाव
यह सच है प्रिये
प्रेम का पयोधि तो उमड़ता है
सदा ही निःसीम भू पर।'

प्रेम की प्रगल्भता के चित्रण की दृष्टि से उनकी 'प्रगल्भ प्रेम' कविता बेहद उल्लेखनीय है। नीरस जीवन में सरसता के आग्रह से युक्त उस युग की प्रेम कविताओं ने छायावादी काव्य को पूर्ववर्ती कविताओं

से अलग और विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया। छायावादी प्रणय भावना स्त्री एवं पुरुष दोनों के पारस्परिक मानस-द्वंद्व का परिणाम है। मध्ययुग में नारी इस स्वतंत्र मुद्रा की अधिकारिणी नहीं थी। छायावाद में असमानता का स्वर अलविदा हो गया।

भावावेग युक्त छायावादी प्रेम में उद्दाम भाव तो अभिव्यक्त हैं, पर अश्लीलता के निषेध के साथ। निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' में इस नवीन प्रणयानुभूति का बेहद मार्मिक चित्रण हुआ है। राम और सीता के उत्कट लगाव का यह स्वरूप तुलसीदास की कविता में भी नहीं था-

याद आया उपवन
विदेह का -प्रथम स्नेह का लतांतराल मिलन
नयनों का- नयनों से गोपन प्रिय संभाषण,
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान पतन,
काँपते हुए किसलय-झरते पराग-समुदय,
गाते खग नव जीवन परिचय- तरु मलय-वलय,
ज्योतिः प्रपात स्वर्गीय- ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कंपन तुरीय।'

प्रेम की इस उदात्त चेतना के उद्दाम आवेग में सारे बंधन टूट गए। रूढ़ियों पर प्रहार की यह आधुनिक दृष्टि मुक्ति का समयानुकूल आह्वान करती है-

'दोनों हम भिन्न-वर्ण,
भिन्न-जाति, भिन्न-रूप,
भिन्न-धर्मभाव, पर
केवल अपनाव से, प्राणों से एक थे।'

छायावादी सौन्दर्य-चित्रण और प्रेम की अभिव्यक्ति जिस आदर्शवादी धरातल पर हुई, उसका स्पर्श द्विवेदी युगीन शुद्धिवादिता भी नहीं कर सकती थी। सौन्दर्य-चित्रण और प्रेम की अभिव्यक्ति की इस विशेषता का वर्णन नामवर सिंह ने इस प्रकार किया है, 'अभिव्यक्ति भी....... उतने ही आदर्शवादी धरातल पर हुई। दोनों की ही भूमिका अत्यंत उदात्त है। द्विवेदी युग की शुद्धिवादिता भी इस ऊँचाई को नहीं छू सकती है। उस उदात्त वृत्ति ने ही छायावादी कवि को ऐसी सूक्ष्म सौन्दर्य दृष्टि दी कि उसने नारी सौन्दर्य के चटकीले रंगों की जगह सूक्ष्म रेखाओं और वर्णछायाओं को भी उकेरने में सफलता प्राप्त की। इसी उदात्त वृत्ति के कारण छायावादी कवि को प्रेम की बारीक से बारीक अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की शक्ति मिल गयी। साथ ही वह प्रेम का ऊँचा आदर्श भी प्रतिष्ठित कर सका।

नारी के अन्य रूपों का भी छायावादी कविता ने वर्णन किया। लेकिन माँ, बहन, कन्या के रूप की अपेक्षा प्रेयसी रूप को ही अधिक प्रधानता मिली।

छायावादी कविता ने अनेक बार प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक और सामाजिक संदर्भो में अपनी काव्य अभिव्यक्तियों को प्रकट किया। पराधीनता के दौर में अतीत का गौरव गान या पुनरुत्थान भावना जातीय गौरव अर्जित करने का ही एक प्रयास है। वर्तमान की पराधीनता का हल अतीत की विजयों से संबद्ध किया गया। जयशंकर प्रसाद की नाट्य कृतियों (चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त) के गीतों में इस जातीय चेतना की प्रखर उपस्थिति है। 'स्कंदगुप्त' के एक गीत में प्रसाद कहते हैं :

‘वही है रक्त, वही है देह, वही साहस है, वैसा ज्ञान,
वही है शांति, वही है शक्ति, वही दिव्य आर्य संतान।
जिएँ तो सदा, उसी के लिए, यही अभियान रहे यह हर्ष,
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।

प्रसाद की ‘पेशोला की प्रतिध्वनि’ और ‘शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण’ कविताओं में जातीय पराजय की मार्मिक झांकी का वर्णन करते हुए विजय की आकांक्षा प्रकट की गयी है। इस आकांक्षा का एक छोर छायावादियों के अपने समय से ही प्रच्छन्न रूप से जुड़ता है -

‘कौन लेगा भार यह ?
कौन विचलेगा नहीं ?
साधना पिशाचों की बिखर चूर-चूर हो के
धूल-सी उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से ?’

निराला के काव्य संसार में क्रांति, विद्रोह और विप्लव का स्वर सर्वाधिक प्रखर है। ‘महाराज शिवाजी का पत्र’ कविता में औरंगजेब के समर्थक जयसिंह की ही खबर नहीं ली गयी है, उसकी व्यंजना अंग्रेज समर्थकों तक भी जाती है-

‘एकीभूत शक्तियों से एक हो परिवार
फैल समवेदना
व्यक्ति का खिंचाव यदि जातिगत हो जाए
देखो परिणाम फिर,
स्थिर न रहेंगे पैर,
पस्त हौसला होगा,
ध्वस्त होगा साम्राज्य।
जितने विचार आज
मारते तरंग हैं,
साम्राज्यवादियों की भोगवासनाओं में
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जाएँगे।’

लेकिन यह बात ध्यान देने योग्य है कि अतीत की चर्चा करने के बावजूद वे उस स्वर्णयुग में लौटने की तरफदारी नहीं करते, वहाँ अतीत प्रेरणा स्रोत के रूप में उपस्थित है। छायावादी कवि समकालीन संदर्भों में उद्बोधन का नया संदर्भ अतीत की पीठिका पर रच रहे थे। इसे ‘चन्द्रगुप्त’ नाटक के इस प्रयाण गीत से बखूबी समझा जा सकता है-

“हिमाद्रि तुंगश्रृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती -
अमर्त्यवीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो,

प्रशस्त पुण्य पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।"

अंतर्वस्तु या कविता के आंतरिक सौन्दर्य भावना के अनुरूप ही रूप-विन्यास की निर्मिति होती है। द्विवेदी युग की कविता का रूप-विन्यास आर्यसमाजी सौन्दर्य-भावना से प्रेरित होने के कारण सादा और सरल है। इस संसार में राग-रंग की वस्तुओं का प्रवेश वर्जित है। यहाँ प्रकृति-चित्रण का अंदाज कुछ इस तरह है -

'कहीं लौकियाँ लटक रही हैं,
काशीफल कुष्माण्ड कहीं है।'

और किसी मार्मिक संदर्भ की पुनर्रचना का अंदाज है-

'हम कौन थे? क्या हो गये हैं? और क्या होंगे अभी?
आओ विचारें आज मिलकर ये समस्याएँ सभी।'

इससे अलग छायावादी रूप-विन्यास अलंकार और रूप-सज्जा तथा चित्रण-शैली की सूक्ष्मता के प्रति अतिरिक्त सजग है। लेकिन इस अलंकारप्रियता और रूप-सज्जा की बनावट रीतिकालीन सौन्दर्यबोध से भी पर्याप्त भिन्न है। इसे छायावादी रचनाकारों ने अनेक बार स्पष्ट किया। रीतिकालीन सौन्दर्यबोध मध्यकालीन सौन्दर्यबोध से प्रेरित है जबकि छायावादी सौन्दर्यलोक का प्रेरक आधुनिकता-बोध है।

रूप-विन्यास में छायावादी आकार साम्य के बजाए प्रभाव साम्य पर बल देते हैं। इस संदर्भ में नामवर सिंह की टिप्पणी ध्यान देने योग्य है, 'छायावाद' ने अपना ध्यान प्रभाव साम्य पर विशेष केन्द्रित किया। जबकि पुराने कवि आकार साम्य की ओर अधिक दौड़ते थे। जैसे रीतिवादी कवि बादल के लिए आकार साम्य पर 'हाथी' की उपमा देते थे। लेकिन जब पंत ने उसे 'धीरे-धीरे उठे संशय-सा' कहा तो उनका ध्यान बादल के धीरे-धीरे उठने वाले धर्म की ओर गया। प्रेयसी को 'चंद्रिका की झनकार', 'तारिकाओं की तान' वगैरह कहना इसी प्रभाव साम्य का परिणाम है। 'छायावादियों ने प्रभाव साम्य के ही विस्तार स्वरूप प्रतीक योजना में भी विशिष्टता का निर्वाह किया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावादी अप्रस्तुतों का विश्लेषण करते हुए लिखा, 'ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप या प्रतीकवत् होते हैं जैसे सुख आनंद, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुल, प्रेमी के स्थान पर मधुप, श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुंद, रजत, माधुर्य के स्थान पर मधु, दीप्तिमान या कांतिमान के स्थान पर स्वर्ण, विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अंधेरी रात या संध्या की छाया, पतझड़, मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफान, भाव तरंग के लिए झंकार, भाव प्रवाह के लिए संगीत या मुरली के स्वर इत्यादि। कहना न होगा छायावादियों ने रूप विन्यास की एक नयी दृष्टि का उन्मेष किया।

शब्द-समूह की नींव पर रूप-विन्यास की पीठिका खड़ी होती है। छायावादियों की काव्यभाषा संस्कृत परंपरा का युगानुरूप परिष्कार करती है। तत्सम पदावली द्विवेदी-युग में भी थी, पर जहाँ द्विवेदी युग में वह खुरदुरी थी, वहीं छायावाद में वह कोमलकांत पदावली में रूपांतरित हो मधुर भावों का सुंदर वाहक बनी। ब्रजभाषा की सुदीर्घ काव्य-परम्परा के सामने खड़ी बोली काव्य की प्रारंभिक रचनाएँ आलोचकों के एक बड़े वर्ग को शंकित कर रही थी। छायावाद ने इस चुनौती को स्वीकार कर अपनी श्रेष्ठता का लोहा मनवाया। नामवर सिंह का विश्लेषण बेहद सटीक है, 'पद रचना में छायावाद की होड़ ब्रजभाषा से थी। ब्रजभाषा के समर्थकों का कहना था कि खड़ी बोली में कविता हो ही नहीं सकती।

उन्हें खड़ी बोली की खरखराहट इतनी कर्णकटु और पौरुषमय लगती थी कि लोग प्रायः इसे कविता जैसी कोमल वस्तु का माध्यम मानने से इनकार करते थे। जो लोग ब्रज माधुरी में पगे थे उन्हें द्विवेदी युग की तथ्यवादी कविता से संतोष न होना स्वाभाविक था। छायावाद ऐसी ही कोमल रुचि वाले लोगों को जवाब देने का उपाय ढूंढ़ रहा था। भाषा की कोमलता छायावाद का पहला वादा था और कहना न होगा कि उसने इसे पूरा कर दिखाया, यहाँ तक कि छायावाद की खड़ी बोली की कविता के सामने ब्रजभाषा खुरदरी मालूम होने लगी।"

द्विवेदी युग के बाद हिन्दी कविता का यह कालखंड अनेक दृष्टियों से उल्लेखनीय साबित हुआ। भाव एवं भाषा की बनावट और बुनावट में उल्लेखनीय प्रस्थानों के कारण यह काव्य-समय खड़ी बोली हिन्दी कविता के इतिहास का वह संदर्भ बना, जिसके बल पर ब्रजभाषा काव्य की सुदीर्घ परंपरा के सामने खड़ी बोली कविता उल्लेखनीय और समयानुकूल साबित हो सकी। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत और महोदवी वर्मा जैसे रचनाकारों के प्रभावी सृजन से बना यह कालखंड लगभग बीस वर्षों तक (1918-1936) हिन्दी कविता संसार का नेतृत्व करता रहा।

संदर्भ :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, सं. 2050
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग-3, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 1981
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेन्द्र (सं.), नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, 1982
4. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, 199037
5. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993

❑❑❑

छायावादी कविता का वैशिष्ट्य

❍ प्रवीन कुमार यादव

छायावादी काव्य सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह विशिष्टता वस्तु और शिल्प दोनों स्तरों पर विद्यमान है। छायावादी कवियों की लेखनी से कविता की ऐसी निर्झरिणी फूटी है, जिसमें स्नान करके काव्यानुरागी आज भी आनन्द विभोर हो उठते हैं तथा आने वाले समय में भी होते रहेंगे। कोई भी काव्यांदोलन अपने युग की बदली हुई चेतना से संवाद और संघर्ष किए बिना बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो सकता। यों तो कहने को हर युग में कविता का विषय मानव जीवन, सम्पूर्ण चराचर सृष्टि और सृष्टिकर्ता रहे हैं, किन्तु हर युग में मनुष्य का मनुष्य से, मानवेतर सृष्टि और अदृश्य सृष्टिकर्ता से रिश्ता एक-सा नहीं रहा है। यह संसार निरन्तर परिवर्तनशील है। इसीलिए हर युग में युग की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुसार युगदृष्टि बदलती रही है और उसी के साथ काव्य-दृष्टि भी। काव्य-दृष्टि में परिवर्तन के साथ ही काव्य का स्वरूप भी परिवर्तित होता रहा है। रचनाकार युग की चेतना से तथा जीवन से प्राप्त अनुभूतियों से ही युगांतकारी साहित्य का सृजन नहीं करता। वह इनमें अपनी आकांक्षाओं को भी सम्मिलित करते हुए अपनी कल्पनाशक्ति के सहारे अविस्मरणीय साहित्य संसार की रचना करता है। सौभाग्य से 'छायावाद युग' को ऐसे कल्पनाप्रवण और युगचेतना सम्पन्न रचनाकार प्राप्त हुए जिन्होंने अपनी उर्वर कल्पना शक्ति तथा अन्य काव्य उपादानों के बल पर ऐसा मनोहारी काव्य रचा जिसका कोई जोड़ नहीं। अपनी भाव प्रवणता व्यक्ति स्वातंत्र्य, सांस्कृतिक चेतना, कोमलकान्त पदावली, प्रतीक योजना तथा अभिव्यंजना कौशल के लिए छायावादी कविता चिरस्मरणीय रहेगी।

'व्यक्तिस्वातंत्र्य' छायावादी कविता की प्रथम प्रवृत्ति है। डॉ. नामवर सिंह ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'छायावाद' में लक्षित किया है – "कवि निर्वैयक्तिकता का सारा आवरण उतारकर एक आत्मीय की भाँति अत्यंत निजी ढंग से बातें कह रहा है। अपने मन की बातें कवि सीधे-सीधे अपने ही मुख से उत्तम पुरुष में कह रहा है और पाठक को इस तरह उन भावों के साथ तादात्म्य स्थापित करने में सुगमता होती है।" कुल मिलाकर छायावादी कविता में भक्तिकालीन कविता के बाद कवि सीधे-सीधे अपनी बात कहता है। भक्तिकाल के कवि कबीर, सूर, तुलसी, मीरा भगवान से आत्मनिवेदन करते हुए सीधे-सीधे अपनी बात 'मैं' शैली में कहते हैं। लेकिन भक्त कवियों के आत्मनिवेदन में धार्मिक आवरण था, परमतत्व से साक्षात्कार की बात थी। लेकिन जीवन में अपनी प्रणयानुभूति को, निजी अनुभूतियों को कविता में अभिव्यक्ति की आजादी नहीं थी। इसीलिए निर्वैयक्तिक ढंग से अन्य का आवरण लेकर प्रेमानुभूतियों का वर्णन होता रहा है। रीतिकाल में राधिका कन्हाई का आवरण है। यह आधुनिक युग में मध्यवर्ग के बनने और उसे अपनी अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने की लोकतांत्रिक छूट का नतीजा है कि पहली बार कवि सीधे-सीधे अपने को अभिव्यक्त कर रहा है। इसीलिए यह काव्य पाठकों को अत्यंत आत्मीय जान पड़ा

–

- 'मैंने मैं शैली अपनायी'
- पीड़ा मेरे जीवन में भीगे पट-सी लिपटी है।
- बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
- जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति-सी छाई,
  दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई।

डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है, "पुराना कवि अपने निजी प्रणय सम्बन्ध को सीधे-सीधे ढंग से व्यक्त करने में असमर्थ था। रीतिकाल के कवियों के लिए भी 'राधा-कन्हाई' की ओट अनिवार्य थी। सामन्ती नैतिकता का बन्धन इतना कड़ा था। इस बंधन को अस्वीकार करते हुए आधुनिक कवि पंत ने 'उच्छ्वास' और 'आँसू की बालिका' के प्रति सीधे शब्दों में अपना प्रणय प्रकट किया। कविता में जहाँ देवताओं के प्रेम का वर्णन होता था, वह स्थान साधारण मनुष्य ले ले यह जनतांत्रिक भाव की विजय है। यह मध्यवर्ग की पहली सामाजिक स्वाधीनता है।"

इसी क्रम में निराला ने अपनी बेटी सरोज की मृत्यु के उपरान्त उसकी स्मृति में 'शोकगीत' लिखा और उसमें अपने निजी जीवन की अनेक बातें अत्यंत स्पष्ट रूप से कह डाली। यह कविता निराला के निजी जीवन प्रसंगों के साथ युग की अनेक विसंगतियों का भी मार्मिक ढंग से उद्घाटन करती है –

लखकर अनर्थ आर्थिक पथ पर
हारता रहा मै स्वार्थ समर।

छायावादी कवि सच्चे अर्थों में स्वच्छंदता प्रेमी और सौन्दर्य पिपासु है। स्वच्छंदता छायावाद की सबसे प्रबल प्रवृत्ति है। इसी स्वाधीन चेतना के चलते कवि रूढ़ि-जर्जर समाज की जड़ीभूत आरोपित नैतिकताओं से मुक्ति की आकांक्षा के लिए सौन्दर्य एवं स्वच्छंदता की असीम राशि प्रकृति की ओर उन्मुख हुआ। कवि रामनरेश का 'पथिक' अपनी प्रिया से कहता है-

'जाना नहीं चाहता हूँ मैं क्षण भर को भी जग में।'

इसका कारण यह है कि 'प्रकृति में प्रेम राज्य है, अनंत सुषमा है, अक्षत सौन्दर्य है और सबसे बढ़कर अबाध स्वच्छन्दता- (डॉ. नामवर सिंह)।'

इसीलिए प्रकृति का मानवीकरण छायावादी कविता में बहुत हुआ है। 'वर्षा सुन्दरी के प्रति' कविता में महादेवी ने वर्षा को एक सद्य:स्नाता सुन्दरी के रूप में चित्रित करते हुए कविता के अन्त में संसार-रूपी शिशु की ममतामयी माँ के रूप में मानवीकृत किया है।

'संध्या-सुन्दरी' में संध्या का सुन्दरी के रूप में चित्रण अपूर्व और अविस्मरणीय है –

"मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवों को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती,
सुलाती उन्हें अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के अगणित मीठे सपने"

इसी तरह 'राम की शक्ति-पूजा' में युद्ध के मैदान से लौटते हुए राम के हताश, निराश मन का प्रकृति से साम्य दिखाते हुए निराला ने विराट दृश्य की रचना की है –

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला- पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार,
चमकती दूर तारायें हों ज्यों कहीं पार।
है अमानिशा, उगलता गगन घन अंधकार
खो रहा दिशा का ज्ञान, स्तब्ध है पवन-चार,
अप्रतिहत गरज रहा पीछे, अम्बुधि विशाल,
भूधर ज्यों ध्यान-मग्न, केवल जलती मशाल।

प्रकृति प्रेम ही नहीं, देश प्रेम और असीम सत्ता के प्रति प्रेम भी इसी स्वच्छंदतावादी प्रवृत्ति से परिचालित है। अपने अत्यंत चर्चित गीत में निराला माँ वीणावादिनी से इसी स्वतंत्र रव की याचना करते हैं -

'वर दे, वीणावादिनि वरदे !
प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे !'

कामायनी में श्रद्धा मनु से कहती है -

'शक्तिशाली हो, विजयी बनो'
विश्व में गूँज रहा जय-गान।
डरो मत अरे अमृत संतान
अग्रसर है मंगलमय वृद्धि,
पूर्ण आकर्षण जीवन केन्द्र
खिंची आवेगी सकल समृद्धि।

इसी आशा और विश्वास से भर छायावादी कवि जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा अपनी कविताओं से देता है।

छायावादी काव्य में लौकिक प्रेम के साथ ही रहस्य का आवरण लिए हुए अलौकिक प्रेम भी है। यह प्रेम असीम सत्ता के प्रति है। एक तरह से लौकिक प्रेम का उदात्तीकरण करते हुए इसे अलौकिक रूप देने की सुन्दर कोशिश है।

प्रसाद लिखते हैं-

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रांत भवन में टिक रहना
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं।

निराला ने लिखा है -

तुम तुंग हिमालय श्रृंग और मैं चंचल गति सुर सरिता।
तुम विमल हृदय उच्छवास और मैं कांति कामिनी कविता।।

महादेवी लिखती हैं - प्रिय तुम मुझमें फिर परिचय क्या ...

छायावादी कविता में वस्तु व्यंजना अथवा भाव पक्ष जितना भव्य है उतनी ही प्रभावशाली है उसकी

रूपयोजना। श्रेष्ठ काव्य वस्तु और रूप की पूर्ण संगति से ही संभव हो पाता है। इसके साथ ही रूप विन्यास के विभिन्न उपादानों और पक्षों में भी संगति होनी चाहिए, क्योंकि रूप विन्यास में असंगति से काव्य का उत्कर्ष बाधित होता है।

छायावादी कविता के अभूतपूर्व सौन्दर्य सृष्टि के पीछे कवियों की कल्पनाशक्ति की महती भूमिका है। इसी कल्पना शक्ति के बल पर उन्होंने ऐसी अप्रस्तुत योजना की है जो पूर्ववर्ती साहित्य में बमुश्किल मिलेगी। डॉ. नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'छायावाद' में 'रूप विन्यास' अध्याय के अन्तर्गत रीतिकालीन कवि सेनापति और छायावादी कवि पंत के बादल वर्णन की तुलना करते हुए छायावादी काव्य में रूढ़ियुक्त उपमानों की जगह उपमानों की नवीनता को रेखांकित करते हुए लिखा है। काले-काले बादलों को देखकर मध्ययुग के कवि सेनापति कहते हैं कि 'आते हैं पहाड़ मानों काजर के ढोइकै', और दूसरे कवि भी इसी तरह के उपमानों की सीमा में रहते हैं। परन्तु पंत के बादल को देखें तो वह दर्जनों उपमाओं का उपमेय दिखाई पड़ेगा। कभी वह जमुन जल में तैरते हुए 'विशाल जाम्बाल जाल की तरह मालूम होता है तो कभी आकाश के मधुगृह में लटके हुए 'स्वर्ण-मृगों की तरह, कभी वह अनिल स्रोत में 'तमाल के पात' की तरह बहता है तो कभी गगन की शाखाओं पर 'मकड़ी के जाल' की तरफ फैल जाता है।

इतना ही नहीं, क्षितिज पर बादल की उठान 'संशय'-सी मालूम होती है, उसका शीघ्र फैल जाना अपयश-सा प्रतीत होता है, नभ में उसका उमड़ना 'मोह' की तरह प्रतीत होता है और उसका फैलाव 'लालसा' सा दिखलाई पड़ता है।

अपनी प्रखर कल्पनाशक्ति के बल पर कविवर पंत जी ने 'ग्रंथि' के रूप-वर्णन में रूढ़ उपमाओं के आधार पर भी नया चमत्कार पैदा कर दिया है।

छायावाद से पूर्ववर्ती कवियों की उपमाओं में आकार साम्य के आधार पर अप्रस्तुत की योजना की जाती रही है, छायावादी कवियों ने आकार साम्य के बजाय प्रभाव साम्य के आधार पर उपमाएँ दी हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने छायावाद की इस विशेषता को लक्षित किया था। "जैसे रीतिवादी कवि बादल के लिए आकार साम्य पर हाथी की उपमा देते थे, लेकिन जब पंत ने उसे 'धीरे-धीरे उठ संशय सा' कहा तो उनका ध्यान बादल के धीरे-धीरे उठने वाले धर्म की ओर गया। .... रत्नावली के दूर चले जाने पर निराला के 'तुलसीदास' को और भी मधुर लगने लगी।" (छायावाद, पृष्ठ 97) जैसे दूर की तान ज्यादा मीठी लगती है -

वह आज हो गयी दूर तान।
इसलिए मधुर वह और गान।।

इस तरह की उपमाओं की रचना सिद्ध कवियों के द्वारा ही सम्भव हो पाती है। प्रभाव साम्य ही आगे चलकर प्रतीक योजना करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए लिखा है-

"छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रखकर चला है। कहीं-कहीं तो बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यंत अल्प या न रहने पर भी आभ्यंतर प्रभाव साम्य लेकर ही अप्रस्तुतों का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप या प्रतीकवत् होते हैं-

जैसे- सुख, आनंद, प्रफुल्लता, यौवनकाल, इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल; प्रिया के स्थान पर मुकुल; प्रेमी के स्थान पर 'मधुप'; श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुंद, रजत;

माधुर्य के स्थान पर मधु; दीप्तिमान या कांतिमान के स्थान पर स्वर्ण; विषाद या अवसाद के स्थान पर अंधकार, अंधेरी रात या संध्या की छाया, पतझड़; मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफान; भाव-तरंग के लिए झंकार; भाव प्रवाह के लिए संगीत या मुरली के स्वर इत्यादि।"

छायावादी कवियों के पास अन्तर्दृष्टिदायिनी दुर्लभ और अक्षय कल्पनाशक्ति मौजूद थी जिसके द्वारा वे ऊपरी तौर पर दो भिन्न प्रतीत होने वाली वस्तुओं में निहित आभ्यंतर साम्य आविष्कृत कर लेते थे। अपनी इसी अन्तर्दृष्टि के बल पर छायावादी कवि मनुष्य मनुष्य के बीच तथा मनुष्य और प्रकृति के बीच सम्बन्ध स्थापित करते हुए एक से एक विराट बिम्बों की रचना कर सके -

अवनि अंबर की रूपहली सीप में
तरल मोती-सा जलधि जब काँपता
तैरते घन मृदुल हिम के पुंज से
ज्योत्स्ना के रजत पारावार में। (महादेवी)

यहाँ महादेवी जी ने अवनि और अम्बर को जो विशाल सीपी बना दिया और उसमें अपार जलधि के तरल मोती की प्रतिष्ठा कर दी वह छायावादी विराट कल्पना का प्रमाण है।

महाप्राण निराला तो अपने विराट बिम्बों के लिए प्रसिद्ध ही हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' में युद्ध के मैदान से लौट रहे राम की वेशभूषा और बाह्य प्राकृतिक परिवेश के माध्यम से उनके आंतरिक मनोभावों को अभिव्यंजित करने वाले विराट बिम्ब की रचना की गई है -

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर वक्ष पर विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशांधकार,
चमकती दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार।

छायावादी कवियों ने अपनी अन्तर्दृष्टिदायिनी कल्पना शक्ति के बल पर जहाँ एक ओर विराट उपमाओं की योजना की, वहीं दूसरी ओर सूक्ष्म लघु अमूर्त उपमाओं का भी विधान किया। हालाँकि, मूर्त के लिए अमूर्त उपमाओं की योजना संस्कृत साहित्य के कवियों वाल्मीकि, भवभूति आदि में भी मौजूद हैं, लेकिन ऐसी उपमाओं की संख्या बहुत कम है।

छायावादी काव्यभाषा अत्यंत चित्रात्मक है। "छायावादी कविता की चित्रमयता के पीछे छायावाद की सामाजिक चेतना का सैद्धान्तिक आधार है। यह आधार है वैयक्तिकता। चित्र विशेष का होता है, किसी एक का होता है। .... चित्र विशेष द्वारा सामान्य की अभिव्यक्ति करता है।" (छायावाद पृष्ठ 99)

महादेवी ने अपनी कृति 'यामा' में कविताओं के समांतर चित्र की रचना की है। दृश्य चित्रण में छायावादी काव्य में प्राय: सभी इन्द्रिय ग्राह्य विषयों के चित्र देने की चेष्टा की है। पंत की 'नौकाविहार' कविता में चित्र योजना बहुत सुन्दर है। अपनी कल्पनाजनित संवेदना के सहारे उन्होंने वर्ण, गंध, ध्वनि आदि के बड़े सूक्ष्म चित्र खींचे हैं। जैसे लहरों पर बुझती हुई सांझ की लाली का यह चित्र -

लहरों पर स्वर्ण रेख सुंदर, पड़ गई नील, ज्यों अधरों पर
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर।

वर्षा ऋतु की रात का यह चित्र अविस्मरणीय है -

पपीहों की पीन पुकार
निर्झरों का भारी झर-झर,
झींगुरों की झीनी झनकार
घनों की गुरु गम्भीर घहर
बिन्दुओं की छनती छनकर
दादुरों के वे दुहरे स्वर!

पंत का जन्म उत्तरांचल में हुआ। पहाड़ों की सुरम्य वादियों के बीच उन्होंने हिन्दी कविता को बहुत से दुर्लभ पहाड़ी चित्र प्रदान किए हैं।

विशेषण विपर्यय छायावादी कविता की एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण विशेषता है। एक विशेषण जिस विशेषता के लिए रूढ़ है, उसका प्रयोग प्राय: किसी अन्य विशेषता के लिए करना विशेषण विपर्यय कहलता है।

डॉ. नामवर सिंह ने बहुत सही लिखा है कि, 'भावावेग में वचन अपने आप बंकिम हो उठते हैं और विशेषण उलट-पुलट जाते हैं। ..... नि:संदेह विशेषणों के इस विपर्यय में कल्पना का बहुत अधिक हाथ रहता है। .....जिस तरह उषा की सखी चित्ररेखा ने सोते हुए अनिरुद्ध को उठाकर उषा के पास ला सुलाया, उसी तरह छायावाद की सहेली कल्पना ने भी दूर-दूर पड़े हुए अनेक विशेषणों और विशेष्यों को लाकर एक जगह कर दिया।"

जैसे 'सुरीला' विशेषण बांसुरी का है परंतु पंत ने उसका प्रयोग हाथ के लिए किया है। सुरीला हाथ कहकर कवि हाथ की किस विशेषता की ओर संकेत करना चाहता है इसके लिए पाठक में भी यथोचित कल्पना की आवश्यकता है। छायावादी कवियों में अनेक शब्द स्वयं गढ़कर हिन्दी कविता को भेंट किए हैं। शब्द निर्माण के लिए भी हिन्दी कविता छायावादी रचनाकारों की ऋणी है।

इस तरह छायावादी कविता अपने कथ्य की उदात्तता, अपनी मनोहारी कल्पनाशीलता तथा शब्द चयन, पद योजना, अलंकार योजना, बिम्ब योजना, प्रतीक योजना में और नाद सौन्दर्य में अपूर्व और विशिष्टि है। यह उत्तरवर्ती कवियों के लिए प्रेरणास्रोत और काव्य पाठकों के लिए चिरस्मरणीय है।

❑❑❑

प्रसाद और निराला का काव्य-चिंतन

❍ दिलीप राम

छायावादी कविता जिन विशिष्टताओं के लिए जानी जाती है उसका प्रतिनिधि रूप प्रसाद, पंत, निराला और महादेवी की कविताओं में निहित है। अतः आलोचना के केन्द्र में भी प्रमुखतया यही कवि हैं और इनकी कविताएँ हैं। आलोचकों का विरोध व आक्षेप का सामना भी मुख्य रूप से इन्हीं कवियों को करना पड़ा। परिणामतः इन्हें कविता-कर्म के साथ-साथ अपनी कविताओं की प्रवृत्ति-विवेचन एवं विश्लेषण हेतु आलोचना-कर्म के लिए भी बाध्य होना पड़ा। कवि समीक्षक सोद्देश्य आलोचना लिख रहे थे और अपनी कविताओं पर लगे आक्षेप का जवाब दे रहे थे, इसलिए उनकी आलोचना एकांगिता का शिकार हो गई; वह विशुद्ध आलोचना की कोटि में परिगणित नहीं की जा सकती। इसके बावजूद कवि समीक्षकों की आलोचना में मौलिक चिंतन का पर्याप्त समावेश है। उनके चिंतन से किसी सर्वमान्य सिद्धांत की स्थापना तो नहीं होती, परंतु एक सीमा के भीतर अनेक मौलिक तत्वों की व्याख्याएँ जरूर सामने आती हैं। इन व्याख्याओं से असहमति संभव है परंतु उससे मिलने वाली चिंतन की नई दिशा के संकेत से इंकार नहीं किया जा सकता।

छायावादी कवियों में प्रसाद जी अपनी इतिहास-दृष्टि और गंभीर विश्लेषण के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। उनके काव्य-चिंतन में ऐतिहासिक तथ्यों का विशेष उपयोग हुआ है। वे आनन्दवादी चिंतन-धारा के समर्थक थे और उसकी लंबी परंपरा से वाकिफ भी थे। उनके अनुसार आनन्दवाद की शुरुआत वैदिक युग में ही हो गई थी। तब से लेकर वर्तमान तक वह विविध रूपों में प्रवहमान रही है। इसके समानान्तर/विपरीत बुद्धिवादी चिंतनधारा का विकास भी होता आया है। ये दोनों चिंतनधाराएँ भारतीय इतिहास की घटनाओं को आकार देने में महत्वपूर्ण रही हैं। प्रसाद जी ने अपने काव्य-चिंतन में उक्त बातों को ध्यान में रखा है।

प्रसाद जी के चिंतन में काव्य, कला, यथार्थवाद, छायावाद और रहस्यवाद से संबंधित विविध पक्षों पर विचार हुआ है। काव्य पर विचार करते हुए प्रसाद जी का कहना है कि काव्य सत्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है। सत्य की अभिव्यक्ति का एक और माध्यम है- शास्त्र। "शास्त्र में श्रेय का आज्ञात्मक ऐहिक और आमुष्मिक विवेचन होता है और काव्य में श्रेय और प्रेय दोनों का सामंजस्य होता है। शास्त्र मानव-समाज में व्यवहृत सिद्धांतों के संकलन हैं। उपयोगिता उनकी सीमा है। काव्य या साहित्य आत्मा की अनुभूतियों का नित्य नया-नया रहस्य खोलने में प्रयत्नशील है, क्योंकि आत्मा को मनोमय, वाङ्मय और प्राणमय माना गया है। इसलिए कवित्व को आत्मा की अनुभूति कहते हैं। मनन-शक्ति और मनन से उत्पन्न हुई अथवा ग्रहण की गई निर्वचन करने की वाक्-शक्ति और इनके सामंजस्य को स्थिर करने वाली सजीवता अविज्ञात प्राणशक्ति ये तीनों आत्मा की मौलिक क्रियाएँ हैं।"[1]

लेखक के अनुसार मन संकल्पात्मक और विकल्पात्मक है। विकल्प विचार की परीक्षा करता है, तर्क-वितर्क द्वारा श्रेय की प्रतिष्ठा करता है। सत्य अथवा श्रेय को अभिव्यक्त करने का यह रास्ता शास्त्र का है, जबकि संकल्प अनुभूति द्वारा सत्य को ग्रहण करता है जिसे काव्य अभिव्यक्त करता है। अतः "काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है जिसका संबंध विश्लेषण, विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेय रचनात्मक ज्ञानधारा है। विश्लेषणात्मक तर्कों से और विकल्प के आरोप से मिलन न होने के कारण आत्मा की मनन क्रिया जो वाङ्मय रूप में अभिव्यक्त होती है वह निस्संदेह प्राणमयी और सत्य के उभय लक्षण प्रेय और श्रेय, दोनों से परिपूर्ण होती है।"[2]

प्रसाद जी के अनुसार उक्त कारण से ही हमारे साहित्य का आरंभ काव्यमय है। "वह एक द्रष्टा कवि का सुंदर दर्शन है।"[3] संकल्पात्मक मूल अनुभूति का अर्थ समझाते हुए प्रसाद जी लिखते हैं कि "आत्मा की मनन-शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में सहसा ग्रहण कर लेती है, काव्य में संकल्पात्मक मूल अनुभूति कही जा सकती है।.... असाधारण अवस्था युगों की समष्टि अनुभूतियों में अंतर्निहित रहती है, क्योंकि सत्य अथवा श्रेय ज्ञान कोई व्यक्तिगत सत्ता नहीं, वह एक शश्वत चेतनता है, या चिन्मयी ज्ञानधारा है, जो व्यक्तिगत स्थानीय केन्द्रों के नष्ट हो जाने पर भी निर्विशेष रूप से विद्यमान रहती है। प्रकाश के किरणों के समान भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के दर्पण में प्रतिफलित होकर यह आलोक को सुंदर और ऊर्जस्वित बनाती है।"[4]

काव्य के विषय में उक्त विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए प्रसाद जी यह बताना चाहते हैं कि "आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति का स्वरूप रहस्यवादी कविताओं में ही लक्षित होता है क्योंकि रहस्यवाद का संबंध उस अद्वैत आनन्दवाद से है जो अहम् और इदम् को विभक्त करके नहीं वरन् एक करके देखता है। विश्वसुंदरी प्रकृति में चेतनता का आरोप है।"[5] अर्थात् रहस्यवाद ही स्वाभाविक काव्य है, रहस्यवाद से इतर काव्य अस्वाभाविक है। 'वर्तमान हिंदी में इस अद्वैतवाद रहस्यवाद की सौंदर्यमयी व्यंजना हाने लगी है। यह साहित्य रहस्यवाद का स्वाभाविक विकास है। इसमें अपरोक्ष अनुभूति, समरसता तथा प्राकृतिक सैंदर्य के द्वारा अहम् का इदम् से समन्वय करने का सुंदर प्रयत्न है।'

कला पर विचार करते हुए प्रसाद जी ने यह प्रतिपादित किया है कि काव्य और कला में मौलिक भेद है। आमतौर पर हिंदी समीक्षा में काव्य को भी कला मान लिया गया है, वह भी श्रेष्ठ कला। ऐसा हीगेल के प्रभाव के कारण हुआ। परंतु प्रसाद जी और शुक्ल जी ने हीगेल से अप्रभावित रहते हुए कला और काव्य को पृथक माना है। प्रसाद जी ने हीगेल की दृष्टि और अपने पक्ष को स्पष्ट करते हुए यह बताने का प्रयास किया है कि इन दो दृष्टियों के मूल में 'दो भिन्न देशों के ज्ञान और सौंदर्य-बोध हैं जो देश, काल और परिस्थितियों से तथा प्रधानतः संस्कृति के कारण भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते हैं।' प्रसाद जी का मानना है कि भारतीय काव्य का मूल आधार है आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति, जबकि पाश्चात्य कला के मूल में अनुकरण की प्रवृत्ति को महत्व दिया गया है। इसलिए पश्चिमी कला और भारतीय काव्य में स्पष्ट अंतर है। दोनों को एक नहीं माना जा सकता। अतः काव्य और कला पृथक हैं।

प्रसाद जी ने छायावाद और यथार्थवाद पर भी गंभीरता से विचार किया है। उनकी दृष्टि में भारतेन्दुकाल से प्रारंभ होने वाली वेदनावादी कविता ही यथार्थवादी कविता है। यथार्थवाद का प्रधान गुण है लघुता की ओर साहित्यिक दृष्टिपात करना। लघुता का आशय साहित्य के माने हुए सिद्धांत के अनुसार महत्ता के काल्पनिक चित्रण के अतिरिक्त व्यक्तिगत जीवन के दुख और अभावों के वास्तविक उल्लेख से है। यथार्थवाद में स्वाभाविक रूप से दुख की प्रधानता और वेदना की अनुभूति होती है। यथार्थवाद

काल्पनिक महानताओं को महत्व नहीं देता, उसका झुकाव आम आदमी की तरफ होता है। एक यथार्थवादी साहित्यकार के लिए किसी व्यक्ति की शक्तियाँ और अच्छाइयाँ ही महत्व नहीं रखतीं, शक्तियों एवं अच्छाइयों के अतिरिक्त वह कमजोरियों तथा पतन का चित्र भी खींचता है। किसी व्यक्ति की कमजोरियाँ भी यथार्थवादी साहित्यकार के लिए सहानुभूति का विषय होती हैं। अतः वह उन कमजोरियों की खोज करता है, उसकी मनोवैज्ञानिक अवस्थिति को समझाने का प्रयास करता है तथा उसके लिए जिम्मेदार सामाजिक परिस्थितियों की पड़ताल करता है। इस पड़ताल का परिणाम जिस विषमता की खोज के रूप में होता है उसमें वेदना का ही प्रभुत्व प्रकट होता है। "साहित्यिक न्याय की व्यावहारिकता में यह संदिग्ध होता है। तथ्यवादी पतन और स्खलन का भी मूल्य जानता है। और वह मूल्य है, स्त्री नारी है और पुरुष नर है; इनका परस्पर यही संबंध है।.......वेदना से प्रेरित होकर जन-साधारण के अभाव और उनकी वास्तविक स्थिति तक पहुँचने का प्रयत्न यथार्थवादी साहित्य करता है।"[6]

छायावाद पर विचार करते हुए प्रसाद जी यह मानते हैं कि 'कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुंदरी के बाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे छायावाद के नाम से अभिहित किया गया। रीतिकालीन प्रचलित परंपरा से- जिसमें बाह्य वर्णन की प्रधानता थी- इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नए ढंग से अभिव्यक्ति हुई। ये नवीन भाव आंतरिक स्पर्श से पुलकित थे।... बाह्य उपाधि से हटकर आंतर-हेतु की ओर कवि-कर्म प्रेरित हुआ।"[7]

मोटे तौर पर प्रसाद जी की ये बातें ही उनके काव्य-चिंतन के अंतर्गत आती हैं। उनकी सभी बातों से भले ही सहमत होना कठिन हो लेकिन उनकी सूझ-बूझ, विश्लेषण क्षमता और विस्तृत ज्ञान पर संदेह नहीं किया जा सकता। प्रसाद जी इतिहास और प्राचीन साहित्य के गहन विश्लेषक तथा मर्मज्ञ थे। वे इस क्षेत्र में इतने गहरे उतर गए थे कि किसी भी समस्या पर विचार करते समय शास्त्रीय हो जाया करते थे। नये प्रश्नों पर सोचते हुए भी उनकी दृष्टि प्राचीन शास्त्रों का सहारा लेने लगती थी। प्रो. रामदरश मिश्र ने ठीक ही कहा है कि 'समाजशास्त्रीय प्रभाव जैसे उनपर था ही नहीं। नयी समस्याओं को नए युग के भौतिक परिपार्श्व में न देखकर उन्हें सनातन दार्शनिक धारा में प्रवाहित देखना चाहते थे और वे शायद यह कहना चाहते थे कि दार्शनिक चिंतन-धाराएँ ही परिस्थितियों को प्रभावित करती हुई उन्हें बदलने का प्रयास करती हैं।'

छायावादी कवियों में निराला का व्यक्तित्व अप्रतिम है। उन्होंने छायावादी काव्य को नवीन उपलब्धियों से तो मंडित किया ही, काव्य-चिंतन के क्षेत्र में भी उनकी मौलिकता रेखांकित करने योग्य है। कविता की व्याख्या और उसके मर्म की मीमांसा करने में निराला जैसा सामर्थ्य हिंदी जगत में बहुत कम लोगों के पास है। कविता की बारीकियों को समझने व समझाने में निराला ने अद्‌भुत क्षमता का परिचय दिया है। 'पंत जी और पल्लव' तथा 'मेरे गीत और कला' में निराला की कला मर्मज्ञता को देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त उनके काव्य-संग्रहों की भूमिकाओं में भी कला पर उनका विचार व चिंतन उभरकर सामने आया है जो उनकी कला मर्मज्ञता का प्रमाण है। विदित है कि 'पंत जी और पल्लव' निराला का प्रतिक्रियात्मक लेख है जिसमें उन्होंने पंत की कविताओं की व्याख्या करते हुए अनेक दोष दिखाए हैं तथा पंत को चौर्य-कला में निपुण सिद्ध किया। चूँकि, यह लेख पंत की प्रतिभा और उनकी छवि को धूमिल करने के उद्देश्य से लिखा गया था इसलिए उसमें एकांगिता का समावेश अपेक्षाकृत

अधिक है। परंतु ऐसा करते हुए भी निराला ने कोरा प्रलाप नहीं किया है। जो कहा है उसका ठोस प्रमाण भी दिया है। और वह प्रमाण खारिज करने योग्य नहीं है। 'पल्लव' की भूमिका में व्यक्त पंत के विचारों का निर्मम खंडन करते हुए और पंत की कविताओं की कमजोरी दिखाते हुए निराला जिस प्रतिभा का परिचय देते हैं वह श्रेष्ठ साहित्य के श्रेष्ठ अध्येता की प्रतिभा है।

पंत की कविताओं में निराला मुख्यत: तीन प्रकार के दोष दिखाते हैं – शब्दों का अचिंत्य प्रयोग, मौलिकता का अभाव (यानी चौर्य-कला में निपुण) और ओज का अभाव। लेकिन इसके साथ ही पंत-काव्य की सबसे बड़ी विशेषता की तरफ संकेत करने से भी अपने आपको रोक नहीं पाते। निराला के अनुसार पंत-काव्य की सबसे बड़ी विशेषता उसकी 'मधुरता' है।

पंतजी पर निराला का प्रथम आक्षेप यह है कि वे अपनी कविताओं में शब्दों का सुचिंतित प्रयोग नहीं करते। उदाहरणार्थ :

गिरिवर के उर से उठ-उठ कर
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर
है झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल कुछ चिंतापर

इस उद्धरण में 'झाँक रहे' अचिंत्य प्रयोग है। निराला लिखते हैं कि "यहाँ निर्वाह अच्छा नहीं हुआ। पहाड़ के हृदय से उठकर पेड़ आसमान पर झाँकते हैं, ठीक नहीं, वाक्य ही असंगत है। आसमान की ओर झाँकते हैं यह ठीक नहीं, झाँकने के लिए पहले तो एक झरोखे का चित्र कहिए, जिनका इन पंक्तियों में अभाव है। फिर झाँकने वाले को दृश्य से ऊपर रहना चाहिए, नीचे से ऊपर की ओर झाँका नहीं जाता, पेड़ नीचे हैं आसमान ऊपर हैं, नीचे से ऊपर की ओर पेड़ क्या झाँकेंगे ? अपरंच झाँकना चंचलता का द्योतक है, झाँकते समय पेड़ों को अनिमेष अटल और चिंता पर बतलाना प्राकृतिक सत्य की प्रतिकूलता है। यदि कोई कहे 'नभ पर पानी' यानी 'नभ की गोद में रहकर' तो अन्यान्य विरोधों से संगति ठीक नहीं बैठती।"

इस प्रकार अनेक और उदाहरणों से निराला जी ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि पंत जी शब्दों के उचित और सुचिंतित प्रयोग पर ध्यान नहीं देते।

पंत की कविताओं पर निराला का दूसरा आक्षेप यह है कि उनमें मौलिकता का अभाव है। निराला के अनुसार 'पंतजी ने दूसरे कवियों से अच्छे भावों की चोरी की है और वे इस कला में निपुण हैं। हालाँकि, दूसरे के भाव लेकर प्राय: कवियों ने कविता लिखी है, परंतु वहाँ प्रत्येक कवि ने दूसरे के भाव पर विजय प्राप्त करने की कोशिश करते हुए उससे आगे बढ़कर चमत्कार दिखाने की चेष्टा की है। लेकिन पंतजी में यह बात नहीं है। निराला जी के अनुसार पंतजी भाव चोरी कर उसमें अपना हिस्सा मिला कर चमत्कार उत्पन्न करने में प्राय: असफल रहे हैं; हाँ, कहीं-कहीं सफलता अवश्य मिली है। जहाँ सफलता नहीं मिली है वहाँ उन्होंने भावों के सौंदर्य-वृद्धि की बजाय नष्ट ही कर डाला है। कुल मिलाकर निराला ने यह कहना चाहा है कि पंत जी भावों के सौंदर्य पर उतना ध्यान नहीं देते जितना शब्दों के सौंदर्य पर। इस प्रकार पंत जी में मौलिकता का अभाव है। अगर उनमें कोई मौलिकता है तो वह है मधुरता।

पंत-काव्य पर निराला का तीसरा आक्षेप 'ओज के अभाव' का है। निराला का कहना है कि "परिवर्तन को छोड़कर पंतजी की अन्यान्य कविताएँ जो 'पल्लव' में आयी हैं, जितनी मधुर हैं उतनी

ओजस्वी नहीं। जान पड़ता है बाल रचनाएँ हैं। पंखड़ियों के बोलने की चेष्टा की गई है।"[8]

'पंत जी और पल्लव' में निराला जी पंत की कविताओं की कमजोरियाँ दिखाने में मशगूल हैं, परंतु जिन बातों की तरफ उनका संकेत है वह वायवीय नहीं है और उससे काव्य की मार्मिक पक्ष पर प्रकाश पड़ता है साथ में यह भी पता चलता है कि काव्य-समीक्षा में किस टूल्स का इस्तेमाल काव्य की बारीकियों को खोलने में कितना कारगर है।

निराला का काव्य-चिंतन 'परिमल', 'गीतिका' की भूमिका के साथ-साथ 'मेरे गीत और कला' में अपेक्षाकृत ज्यादा मुखर तथा संतुलित है। 'मेरे गीत और कला' में निराला ने वर्ण-विन्यास पर विचार किया है और वर्ण-विन्यास की भारतीय परंपरा को स्पष्ट किया है। ऐसा करते हुए उन्होंने पंत को कालिदास की तरह 'श, ण, व, ल' स्कूल का माना है। इसी क्रम में उन्होंने कुछ कविताओं की भी व्याख्या की है जो उनकी मार्मिक मीमांसा का सुंदर उदाहरण है। प्रसंगवश निराला ने यह स्थापना भी दे दी है कि 'भारतीय आदर्श की व्यंजना करना ही कला का उच्च लक्ष्य है।' इसके अतिरिक्त निराला का आग्रह है कि 'कृति का संपूर्ण रूप जाने बिना उसके प्रति कुछ कहना उसके साथ अन्याय है।'

निराला जी के काव्य-व्यक्तित्व की सबसे बड़ी उपलब्धि 'मुक्त छंद' है। लेकिन पंत जी ने 'पल्लव' की भूमिका में स्वयं को मुक्त छंद का प्रथम प्रयोक्ता घोषित किया और 'मुक्त छंद' का स्वरूप विवेचन भी किया। निराला जी ने उनकी घोषणा पर आपत्ति प्रकट करते हुए लिखा कि "पंत जी की कविताओं में स्वच्छंद छंद की एक लड़ी भी नहीं है।" इसके उपरांत पंत जी के द्वारा किए गए मुक्त छंद के स्वरूप विवेचन को भी निराधार बताया। पंतजी ने मुक्त छंद के बारे में लिखा है कि 'स्वच्छंद छंद ह्रस्व-दीर्घ मात्रिक संगीत पर चल सकता है।' निराला जी इस धारणा को भ्रामक मानते हैं और कहते हैं कि "स्वच्छंद छंद में 'आर्ट ऑफ म्यूजिक' नहीं मिल सकता, वहाँ है 'आर्ट ऑफ रीडिंग'। वह स्वर प्रधान नहीं है। वह कविता की सुकुमारता नहीं, कवित्व का पुरुष-गर्व है। उसका सौंदर्य गाने में नहीं, वार्तालाप करने में है।"

निराला मुक्त छंद के कुशल प्रयोक्ता ही नहीं थे सम्यक विश्लेषक भी थे। उन्होंने मुक्त छंद और मात्रिक छंद पर गहराई से विचार किया है। उनके विवेचन में मुक्त छंद और मात्रिक छंद का जो तात्विक भेद उभरकर सामने आया है वह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। निराला के अनुसार मुक्त छंद का विकास 'कवित्त छंद से हुआ है। कवित्त भारतीय परंपरा का अपना छंद है जो राग-रागिनियों से बद्ध है। गाँव के सीधे सादे लोग इसकी आवृत्ति को बेहद पसंद करते हैं। निराला ने कवित्त छंद के विविध संगीतात्मक स्वर, पुरुष और स्त्री का विश्लेषण भी किया और इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया कि कवित्त छंद जैसी व्यापकता किसी अन्य हिंदी छंद में नहीं है।

वस्तुत: निराला जी के चिंतन में मानवतावादी और विकासशील विचार का आधार मौजूद है। वे भाव परंपरा के पोषक कवि भी हैं, जिसका प्रभाव उनके चिंतन में स्पष्ट दिखाई पड़ता है। इन सबके बावजूद पंत जी की स्थापनाओं को खारिज करने के प्रयास में उनका चिंतन एकांगी और प्रतिक्रियात्मक हो गया है। परिणामत: वे पंतजी की नवीनताओं को निराधार साबित करने के लिए अपने दार्शनिक ज्ञान और प्राचीनता-प्रेम को हथियार बनाते हैं।

कुल मिलाकर निराला का काव्य-चिंतन श्रेष्ठ साहित्य के गंभीर अध्येता का काव्य-चिंतन है, परंतु प्रतिक्रिया में लिखे जाने के कारण असंतुलित और सीमित हो गया है। अगर तटस्थ भाव से निराला काव्य-चिंतन में प्रवृत्त होते तो उनकी उपलब्धियाँ सैद्धांतिक हिंदी आलोचना को एक नई गति दे सकती

थीं। दूसरी तरफ प्रसाद का काव्य-चिंतन भी दार्शनिकता, शास्त्रीयता और अतीत प्रेम के कारण हिंदी आलोचना को प्रभावित न कर सका। परिणामतः इन कवि-समीक्षकों की आलोचना चर्चा का विषय बनकर रह गयी, काव्य-चिंतन की मुख्य धारा में कुछ विशेष जोड़ने से चूक गयी।

संदर्भ :

1. 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, पूर्वोद्धृत : भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा, सं. डॉ. नगेन्द्र, तृतीय संस्करण 1975, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ. 446
2. वही।
3. वही।
4. वही।
5. छायावाद का रचनालोक, रामदरश मिश्र, 2009, वाणी प्रकाशसन, दिल्ली, पृ. 133.
6. भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा, डॉ. नगेन्द्र, पृ. 448
7. वही।
8. पूर्वोद्धृत, छायावाद का रचनालोक, रामदरश मिश्र, पृ. 147.

❑❑❑

ROMANTICISM (CHHAYAVAD) IN HINDI LITERATURE

❍ BHAWNA MISHRA

As we know literature is the mirror of the society. Which helps in expanding the horizons . It is also a reflection of humanity, a way to understand people. Some books mirror society, and also allow us to understand the world we live in. Hindi literature is divided into various stages(काल). The present paper aims to know about romanticism (chhayavad) in Hindi literature. Romanticism (chhayavad) is a movement, it is not just about the beautification of any object. Romanticism (chhayavad) is marked not only as sense of sense of self expression, but it another name of humanism. It also deals with symbolism and mysticism.

The four great pillars (stambh) of romanticism(chhayavad) are *Jaishankar Prasad*, *Suryakant Tripathi Nirala, Sumitranandan Pant and Mahadevi Verma*.

Chhayavad is approximated in English as romanticism literally translated as shadowism. Romanticism (chhayavad)is known for its theme of love and beautification of nature through symbolism, imagery. It deals with individualism too. Poems of this age is really a new form…form of mysticism. Romanticism (chhayavad) tells us that nature should be treated as living beings . It is ripple of emotions full of life. It is marked as romantic and humanist content. It also denotes awakening of nationalism. It also shows emotional attachment of poets with national freedom struggle. Romanticism (chhayavad) represents adolescence of Hindi poetry. It can be marked as the beauty of expression as well as, flow of emotions. Romantic poets (chhayavadi) believed in humanism, naturalism and imaginism, they dismissed materialism. Poems of this age also break traditional poetic approach. It also demands freedom from salvation. Romanticism (chhayavad) talks about individuality in which the poet wants

to know more about mysticism of nature. We all have heard chirping of birds, but chhayavadi poet wants to know more about nature. Mysticism seen seen in this line...

तोड़ दो यह क्षितिज, मैं भी देख लूँ, उस ओर क्या है – (महादेवी वर्मा)

This curiosity reveals mysticism. The Poet wants to know more about this world. Romantic poets (chhayavadi) Nirala also used symbolism..

ऐ विप्लव के वीर

He also talks about social life of peasants. He talks about rich people of our society. *Sumitranandan* Pant was also inspired by nature . Jaishankar Prasad's great piece 'Kamayani' as, he is considered to be the pioneer of chhayavad. As a mystic poet, he reached the summit of his achievement by 'kamayani' (divine comedy). Which was the motto of his early poetry...

honey tingling and cool blushing
never fading and sweet smiling
the many unfolding golden lotus
the image be of my hearts devotion

'Kamayani' is Prasad's magnum opus. '*Kamayan*i' is as universal in its subject as 'Paradise Lost' by John milton. Prasad protests against materialism. He stresses on beauties of nature, charm of spring, buzzing of bees, flowing of breeze. *Sumitranandan Pant* compares nature with human. His poetry has power to heal. He believed in humanism. Pant is also known as Wordsworth of Hindi poetry. He published his legendry collection of poems in *'Pallav'* in 1926.

Those who only knows and read about flowers external beauty began to read about the existential crisis faced by the flower. They believe in free verse. Love for nature is his qualities . Spritualism love is seen in his poem.

बीती विभावरी जाग री !
अम्बर-पनघट में डुबो रही –
तारा-घट ऊषा नागरी।

Mahadevi Verma began the era of romanticism in Hindi literature. She is also known as modern 'Meera'. Her poems are also full of emotions and intellect. She got Gyanpeeth award for her great work *'Yama'*. Poet Nirala called her 'Goddess Sarswati of Hindi'. She is an epitome of child prodigy. She talks about her childhood in ‘mere bachpan ke din’.

While others used to play outside,
Me and Subhadra used to sit on a

Tree, and let our creative thoughts
Flow together.

(मेरे बचपन के दिन – महादेवी वर्मा)

Chhayavadi Kavi (romantic poets) talks about condition of women what their existence. She is like puppet, her life is full of troubles. She is suppressed by family and society. chhayavadi poets put life on their poem. '*Kamayani* ' depicts the interplay of human emotions and thoughts. *Jaishankar Prasad* used mythological metaphors. Chapters are named after these emotions like चिंता chinta (anxiety), आशा (hope) श्रद्धा (belief ,faith ,virtue of being woman), काम (sexual love), वासना (passion for material pleasure) लज्जा (shyness), कर्म (action), ईर्ष्या (jealousy) इड़ा (logic,intellect) , स्वप्न (dream), संघर्ष (internal conflict) निर्वेद (disregard of worldly things) , दर्शन (philosophy) रहस्य (mystery), आनंद (bliss).

Romanticism (chhayavad) was really an age of change and transformation of thoughts. Romantic poets composed their works on social reality. The pain and suffering of common man is shown by us. High value was attributed to the individual experience, personal & intense emotions. Metonymy is used by chhayavadi poets. Romantic poets have enormous love for nature. It is based on imaginism. It talks about soul and absolute soul and their relations.

Works cited:

- Hindi Sahitya ka saral Itihas : Vishwanath Tripathi
- Chhayavad : Namvar Singh

❑❑❑

CHHAYAVAD: A POETIC REVOLUTION

❍ JAY PRAKASH SINGH

The word **'Chhayavad'** (Romanticism) is very famous in Hindi Literature. At the same time, the term is quite complicated too. It has been a great issue of debate among the Hindi critics for long years but no definite definition has yet been formed unanimously. The glory of Chhayavad could not be confined under the narrow boundary of definition. There is no need at all to make the subject matter mysterious instead of doing a perfect explanation of any subject. The question can be put on all the former critics of previous eras.

According to T.S. Eliot, a modern critic, **'comparison and analysis are the two chief tools of a critic'.** But if a critic is not traditional she/he may be right at the same time wrong. The primary critics of Chhayavad would have had the same complications regarding the concerned topic.

According to Mahadevi Verma, **Every true artist realizes direct truth as well as indirect truth.**

The tendency of revolution in Hindi literature is not new. Revolution was started in Bhaktikaal (devotional period). Although, mission of the poets of this period was not the advertisement and endorsement of literature, still achievement was of greater importance for them in various forms. Chhayavad too comes before us in the form of a revolution of poetry. The initial condition of Chhayavad was adverse, as a result, a consolidated revolution could not be built. But it was not its humiliation because it is quite natural in the initial stage. In course of the development of poetry, the directions of poetry became clear and in the seventh decade, creations were left behind, and the tendency of revolution came in forefront. Consequently,

the poets who were hungry of achievement and reputation started founding revolution in place of poetic creation, by which the relation of poetry almost got detached from poetry. It became migrant in its own home. It is very true that no systematic scheme can be put into action for poetic creation. Basically, the form of poetry is solely individual. Therefore, it gets disturbed when confined under the four walls of system and management. Those creations are evaluated to be weaker which are created in such circumstances. Liberal tendency has been the quality of the poets of Chhayavadi Yuga (romantic era).

Romantic Poetry and Mysticism:

It is supposed that there are four pillars of Romantic Poetic Movement in Hindi Literature:

I) Mahapran Nirala
II) Jai Shankar Prasad
III) Sumitranandan Pant; and
IV) Mahadevi Verma

Chhayavad is a revolt against concrete. The battle of 1857 is known and assumed to be the beginning of the freedom of India. The British rule had been in force and Indian currency and money started to move in abroad. Majority of Indian public were compelled to live in pauper condition. There was acute dearth of education in the lives of Indian people. Britishers established universities in Mumbai, Chennai and Kolkata, etcetera. Very few Indian people got the opportunity to get education in those institutions and whoever got it, they became suitable as clerk and Saaheb (officers). These institutions helped in conducting the British rules. At that time, Baal-Paal-Laal revolted against British rule and challenged to demolish it to make India free. Slowly, the movement gained momentum. The Britishers started to subdue and suppress the voice of Indians. Many efforts were made to break the backbone of Indian culture and society. Slogans like- 'Swatantrata Hamara Janm Siddh Adhikaar Hai (Independence is our birth right), were voiced and the very awareness started echoing in the lives of common people of India. The British rule became very cruel and gave deaf ear to listen to their voice and suppressed it brutally. With the passage of time, English education and English culture dominated the youths of India who were easily tempted to adapt it in their life-style. Romantic Poetry writing in Hindi was started in the influence of English Romantic Poetry. It was started to be written in Bengali. Acharya Ramchandra Shukla coined this poetic

form as a romantic poetry satirically. The very satirical word became the name of new poetic movement. In modern Hindi poetic era, the movement beginning from Dvivedi Yug, incessantly moved from 1915 to 1942. Mahadevi Verma is known to be one of the foremost Hindi Romantic Poets. Imaginary and abstract feelings are in abundance in Chhayavadi Kaavya Dhara (Romantic Poetic Movement). At that time, movement of independence did not succeed. So, Indian people were very disappointed. Literature is the mirror of society-like people, like literature. Literature reflects the images of political, social, and economical circumstances. The philosophy of reaction of expression in the hearts of the exploited Indian people is possible in Chhayavadi Kaavya (Romantic Poetry).

Chhayavadi Kaavya Dhara (Romantic Poetic Movement) has a very specific significance in modern Hindi Literature. Abstract expression and portrayal of Nature are found much in Chhayavadi poetry. Chhayavadi poets portray their feelings and emotions on Nature. Through the medium of Nature, they convey each minute and broad feeling which is inherent in their hearts. That's why, portrayal of Nature is of greater importance in Chhayavadi Kaavya. According to William Wordsworth, one of the greatest romantic poets in English: Nature is a nurse, guide, teacher, beloved and philosopher which is ever ready to endow and bestow on us with every knowledge and vision of life. Wordsworth is of the opinion:

"One impulse from a vernal wood,
May teach you more of man,
Of moral evil and of good,
Than all the sages can"

In romantic poetry, the feelings are expressed through various images and symbols; words and dictions. Imaginative power is supreme in Chhayavadi poetry. Let us take another example of William Wordsworth:

"Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, recollected in tranquility. It is the finer spirit of all knowledge."

On account of burdened awareness and excess imagination, Chhayavadi poetry is treated to be very complicated. Romantic poets try to express their original feelings and emotions through great artistic texture. Personification of Nature is the major characteris`tics of Chhayavadi Kavi (Romantic Poets).

Principal Reason of the Origin of Chhayavadi Kaavya (Romantic Poetry)
According to Dr. Nagendra: Immovable power and rigid morality of social reformation was not giving opportunity to express the multifaceted feelings of dissatisfaction and revolt. These feelings started becoming introvert and slowly it was engulfed into unconsciousness. To compensate it, Chhayachitra (romantic and imaginative picture) came into being.

Conclusion:

We can conclude that romantic poets write Chhayavadi poetry in order to be understood precisely. Chhayavad has been well acclaimed by majority of Hindi poets. Though the English critics,T.S. Eliot, is of the opinion that romanticism is the mere expression of individual personality. He strongly denunciates these kinds of poets and their poetry. In one of his revolutionary essays, 'Tradition and the Individual Talent', he says : "**Poetry is not a turning loose of emotion, but an escape from emotion; it is not the expression personality, but an escape from personality".**

But to endorse Chhayavadi poetry, we can take the reference of another English poet, P.B. Shelley, who truly justifies romanticism as a powerful literary weapon. He uses the West Wind to symbolize the power of Nature and imagination inspired by it. 'Ode to the West Wind' is active and dynamic as a romantic poem. Shelley has strong belief in Nature and says that even if there is anarchy and chaos in the world, Nature will take its course and put everything in order by destroying the evils and preserving the good. He expresses his romantic view as: "**If winter comes, can spring be far behind?"**

Hence, we see that Chhayavadi Kaavya Dhara (Romantic Poetic Movement) is one of the most significant revolutions in Hindi Literature.

Works cited:

i) Aadhunik Hindi Kaavya- Dr. K.C. Pandya
ii) Mahadevi Verma Ke Kaavya Mein Samaj avam Sanskriti- Dr. Kirti /Kumar S. Jadav
iii) William Wordsworth's poem –' Lamia' and 'Tables Turned'
iv) T.S. Eliot's Impersonal Theory – 'Tradition and the Individual Talent'
v) P.B. Shelley's poem—'Ode to the West Wind'

❑❑❑

आलोचना जागते हुए सिपाही की आवाज़ है

❍ क्षमा शंकर पांडेय

हिन्दी साहित्य में 'छायावाद' काल को प्रायः अध्येताओं द्वारा मात्र कविता के सृजन तक ही सीमित कर पढ़ा-पढ़ाया गया है। इस काल-खण्ड अर्थात् (1918-1936) में हुआ बहुविध और बहुआयामी सृजन लगभग अलक्षित ही रह गया, फिर चाहे वह विपुल परिमाण में लिखा हुआ सर्जनात्मक गद्य हो या आलोचनात्मक गद्य। अलग से इन विधाओं पर भले ही कुछ विचार हुआ है, पर उनकी निर्मिति में छायावादी प्रवृत्तियों का भी कुछ प्रभाव है, ऐसा विवेचन-विश्लेषण प्रायः विरल है। छायावादी कवि चतुष्ट्य में सम्मिलित हर कवि ने आलोचनात्मक गद्य लिखा है, पर उनके कवि-कर्म के प्रकाश में वह प्रायः गौण ही रहा। निराला जैसे महत्वपूर्ण रचनाकार का आलोचना कर्म भी उतनी विशिष्टता से रेखांकित नहीं हो सका। हिन्दी में कवियों द्वारा किया गया आलोचना-कर्म भी उतनी विशिष्टता से रेखांकित नहीं हो सका। हिन्दी में कवियों द्वारा किया गया आलोचना-कर्म अलग से विश्लेषण की अपेक्षा रखता है। छायावादी कवियों के आलोचनात्मक प्रदेय को स्वीकार करते हुए डॉ. निर्मला जैन ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी में लिखा है कि "छायावादी कवियों की आलोचनात्मक देन की चर्चा में याद रखने की बात यह है कि वे पेशेवर आलोचक न थे और न ही आलोचना उनका मुख्य कर्म था। ये आलोचनाएँ वस्तुतः रचना कर्म के बीच से उत्पन्न हुई थीं। यही उनकी शक्ति भी है और सीमा भी।" (हिन्दी आलोचना की बीसवीं सदी, पृ. 43) यह एक सामान्य दृष्टि हो सकती है, पर पूरी तरह सच नहीं। रचनाकार आलोचकों के बारे में डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने अपनी पुस्तक 'अनभै साँचा' में लिखा कि, "वैसे तो रचनाकारों की आलोचनात्मक चेतना के प्रमाण उनकी रचनाओं में बहुत पुराने जमाने से मिलते हैं, लेकिन सार्थक रचनाकार, आलोचक आधुनिक युग की देन हैं। रचनाकारों ने आधुनिक युग में आत्मरक्षा की भावना से पीड़ित होकर आलोचना लिखने का काम किया है और आलोचकों द्वारा अपनी उपेक्षा के उत्तर के रूप में भी आलोचना लिखने का दायित्व सँभाला है। यह भी देखा गया है कि अपने समय के आलोचनात्मक व्यवहार की असमर्थता को देखकर भी रचनाकार आलोचना के मैदान में उतरे हैं। कई बार रचनाकार नई रचनात्मक प्रवृत्ति या आंदोलन को स्थापित करने, समझाने और व्यापक रूप से ग्राह्य बनाने की कोशिश करते हुए मजबूरी में आलोचक बने हैं।" (अनभै साँचा, पृ. 213) इस कथन में इतना तो बिल्कुल सच है कि रचनाकार विभिन्न मजबूरियों में ही आलोचनात्मक लेखन को बाध्य हुए हैं। निराला का आलोचनात्मक लेखन भी इसका अपवाद नहीं है।

गद्य को 'जीवन संग्राम की भाषा' (निराला रचनावली भाग-5, पृ. 509) मानने वाले निराला मूलतः कवि थे। उनका आलोचनात्मक लेखन, उनकी पत्रकारिता का सह-उत्पाद है। यह तय है कि पत्रकारिता के पीछे निराला की प्रातिभ प्रेरणा कम, गृहस्थ के जरूरी प्रयोजन के समाधान प्रधान थे; फिर भी वहाँ

उन्होंने पर्याप्त लेखन किया। इस संदर्भ में यह ध्यातव्य है कि निराला द्वारा लिखित आलोचना मात्र आत्मरक्षा में ही नहीं लिखी गई है, बल्कि स्वतंत्र रूप से भी वे आलोचनात्मक लेखन कर रहे थे। पुस्तक-समीक्षा या पत्र-पत्रिकाओं की आक्रामक समीक्षा भी उसका एक रूप था। निराला भाषा, साहित्य और समाज के प्रश्नों से टकराते हुए बड़े ही सतर्क ढंग से आलोचनात्मक लेखन कर रहे थे। उनका 1920 में सरस्वती में प्रकाशित लेख 'बंगभाषा का उच्चारण' भाषा-संबंधी था। मतवाला में आने से पूर्व 'समन्वय' में काम करते हुए उनके तीन लेख 'हिन्दी भाषा कैसी होनी चाहिए', 'हिन्दी और बंगला की कविता' तथा भाषा की गति और हिन्दी की शैली' प्रकाशित हुए जो कमोबेश भाषा के सवाल से जुड़े हुए थे। साहित्य और दर्शन की जमीन से जुड़े उनके लेख 'भारत में श्री रामकृष्णावतार' और 'तुलसीकृत रामायण में अद्वैत तत्व' भी आलोचनात्मक लेख ही थे।

1923 में कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले 'मतवाला' से सूर्यकांत त्रिपाठी, 'निराला' के रूप में अवतरित हुए। इस पत्र में 'कसौटी' और 'चाबुक' में किया हुआ उनका लेखन उनकी आलोचनात्मक मेधा एवम् विवेक का सबल साक्ष्य है। यह मतवाला ही था जिसके बारे में निराला का मानना था कि 'यदि मतवाला न होता तो निराला न होता'। मतवाला के दो स्तम्भ 'कसौटी' एवम् 'चाबुक' मूलत: समीक्षात्मक स्तम्भ थे। 'कसौटी' में जहाँ पुस्तक समीक्षा होती थी वहीं 'चाबुक' में समकालीन पत्र-पत्रिकाओं की समीक्षा। 'कसौटी' में मतवाला के प्रारंभिक चार अंकों में निराला ने न केवल 'चतुर्वेदी चातुर्य चर्चा' के बहाने जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी के नाटक 'मधुर मिलन' की समीक्षा की अपितु, आलोचना विषयक अपना मत भी दिया। 'मतवाला' के प्रवेशांक अर्थात् 26 अगस्त 1923 के अंक में उन्होंने अपना लेखकीय परिचय देते हुए लिखा, "मैं यह समालोचना का 'हथियार' हर्गिज न खड़ा करता अगर हिन्दी साहित्य की दुर्दशा देख मेरे मित्र 'श्रीमान् गरियार' न गिर जाते और उसकी श्रीवृद्धि के लिए शोक न करते। साहित्य सहोदर श्रीमान् 'घुग्घू', श्रीमान् हट्ठा कट्ठा त्रिपट्टा' तथा 'श्रीमान् गरगज सिंह वर्मा आदि और भी साहित्य शार्दूलों को मैं सविनय, सप्रेम, सोत्साहित तथा सशोक धन्यवाद देता हूँ जिनकी कृपा ने खींच तान कर मुझे समालोचना के मैदान में खड़ा किया।" (मतवाला, प्रवेशांक : 26 अगस्त 1923 पृ. 4) इन्हीं छद्म नामों में से एक 'हथियार' के नाम से निराला इसे लिखते थे। निराला का यह पुस्तक-समीक्षा वाला लेखन अभी कहीं संकलित नहीं है।

कसौटी में प्रस्तुत 'चतुर्वेदी-चातुर्य चर्चा' की पहली किस्त तीन खंडों में विभाजित थी। पहला उपक्रम, दूसरा 'परिचय एवम् तीसरा 'विषयारंभ'। पहले खंड में तद्युगीन आलोचनाकर्म और उसके सैद्धांतिक पहलू पर विचार किया गया है। शुरू करते हुए उन्होंने लिखा, "इस समय भारत में ही नहीं, संसार भर में, आलोचना या समालोचना आम सड़क हो रही है। सुनते हैं, समालोचना का द्वार पहले पहल पश्चिम के विद्वानों ने ही खोला है और उन्हीं की कृपा से संसार को उस रास्ते का फ्री पास टिकट मिला। अत: यह स्वत: सिद्ध सिद्धांत हो गया कि समालोचना के मार्ग पर स्वच्छंद घूमने का हमें भी अधिकार है।" (मतवाला, प्रवेशांक : 26 अगस्त 1923, पृ. 6) ध्यातव्य है कि हिन्दी में वह समय प्राय: तुलनात्मक समीक्षा का है। सैद्धांतिक समीक्षा के क्षेत्र में कतिपय प्रयास हो रहे थे। ऐसे में इसी खण्ड में निराला ने समालोचना की सार्वभौम सूक्तिपरक परिभाषा दी। उन्होंने लिखा, "आलोचना जागते हुए सिपाही की आवाज है। आवाज भी ऐसी जो संसार के कानों तक पहुँच जाय"। (मतवाला : प्रवेशांक : पृ. 06) आशय यह कि निराला की नजर में आलोचक जागता हुआ सतर्क सिपाही है, जिसका दायित्व साहित्य की संरक्षा एवं सुरक्षा है। इसी खण्ड में निराला ने विद्वान शब्द के अर्थ क्षरण पर चिंता व्यक्त

करते हुए लिखा कि, "विद्वान शब्द का अर्थ है ज्ञानी, सुबोध। परंतु अब तो विद्वान शब्द का अर्थ है शब्द-शास्त्र का ज्ञाता, नहीं, चंचल प्रकृति का शब्दास्त्र छोड़ने वाला यंत्र। युक्तियाँ जोड़ना उनका स्वाभाविक धर्म है। युक्तियों के ही बल पर उन्होंने लोकहित का बीड़ा उठाया है। जिसकी युक्ति में जितना बल है उसका दल उतना ही बड़ा समझिए।" (मतवाला, प्रवेशांक, पृ. 06) उपक्रम के इस अंश को पढ़ते हुए यह अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि निराला पर अभी आक्रमण शुरू नहीं हुए थे, पर वे आलोचना क्षेत्र में हो रही गतिविधियों से पूरी तरह अवगत थे। तरह-तरह की सामग्री से सरस्वती के भंडार को समृद्ध करने के दावेदार रचनाकारों की पहचान और परख आलोचक का ही दायित्व है। 'हथियार' की इस मार से चतुर्वेदी जी और उनकी पीढ़ी पूरी तरह तिलमिला गई थी।

दूसरे खंड परिचय में अपने छद्म नामों को परिचय देने के बाद विषयारंभ खंड में चतुर्वेदी जी का व्यंग्यात्मक परिचय दिया गया। पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी हिन्दी-संसार के परम परिचित सभापति, और अंधाधुंध लेखक हैं। आप ऐसे निर्भीक 'तीसमार' हैं कि हिन्दी संसार के श्रेष्ठ समझे जाने वाले श्रीमान् पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा श्रेष्ठ कवि पण्डित नाथू राम शर्मा शंकर पर भी वार कर चुके हैं। अभी भी आपका एक नाटक प्रकाशित हुआ है। उसकी समालोचना करते हुए हम आपकी ऐसी तारीफ करेंगे कि कानों पर हाथ रखना होगा-समालोचना का जो पुल बँधेगा वह बिना अधिक प्रयास के ही आपको आकाश में चढ़ा सकता है, हवाई जहाज की क्या जरूरत ...। (मतवाला, प्रवेशांक, पृ. 06) इस समीक्षा में प्रयुक्त शब्दों, पद विन्यासों और विशृंखलताओं की खूब खबर ली गई।

मतवाला के दूसरे अंक की 'कसौटी' में नाटक के प्रकाशक गंगा प्रसाद मोती का, एम.ए.बी.एल. काव्यतीर्थ और नाटक के पद्यों के संशोधन कर्त्ता पं. नारायण प्रसाद बेताब को निशाने पर रखा गया। इस समीक्षा की तीसरी किस्त 8 सितंबर, 1923 काफी बड़ी थी। इसमें निराला ने नाटक में पात्र विनियोजन की अवैज्ञानिकता, भावगुंफ में टूटन, भाषागत अभाव और काव्य-दोषों पर पर्याप्त चर्चा की। अंत में एक तरह से नाटक को खारिज करते हुए उन्होंने लिखा, "हम लज्जित हैं कि हमें उस पुस्तक की आलोचना करनी पड़ी जिसकी भाषा वाहियात और भाव गंदे हैं। समय का अपव्यय न करके, संक्षेप में ही, हमने उसे समाप्त किया। (मतवाला : 8 सितंबर 1923, पृ. 7) यह था निराला का व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में प्रवेश। यहाँ यह अवश्य ध्यातव्य है कि निराला ने आलोचना के लिए जो शैली अपनाई थी वह अम्बिका दत्त व्यास के 'पीयूष-प्रवाह' की शैली थी। उसमें थोड़ा और तीखापन निराला ने मिलाया था। 'कसौटी' स्तम्भ के बाद मतवाला में जिस स्तम्भ में निराला की बेधक आलोचना परवान चढ़ी वह स्तम्भ था चाबुक। इस स्तम्भ में समकालीन पत्र-पत्रिकाओं की समीक्षा होती थी। भाषा परिष्कार का जो अभियान आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से चलाया था, निराला ने उस परियोजना को अपने स्तम्भ के माध्यम से और आगे बढ़ाया। वे मात्र भाषा के व्याकरण की ही चिंता नहीं कर रहे थे बल्कि शब्दों की संगति, वाक्य रचना की अन्विति और अर्थ की व्यावहृति के लिए भी संघर्ष कर रहे थे। यह स्तम्भ वे 'श्रीमान् गरगज सिंह वर्मा' साहित्य शार्दूल के छद्म नाम से लिखते थे।

अपनी प्रखर और मुखर भाषा दृष्टि के चाबुक से निराला ने अपने समय की प्रसिद्ध पत्रिकाओं यथा सरस्वती, माधुरी, श्रीशारदा, प्रभा, मनोरमा और नागरी प्रचारिणी पत्रिका आदि की खूब खबर ली। वे यह मानते थे कि अगर प्रतिष्ठित लेखक ही भाषा-प्रयोग में अनर्थ का कारण बनेंगे तो अनुयायी रचनाकारों की भाषा का क्या होगा। इस अभियान में साहित्य के प्रतिष्ठित चतुर्वेदी उनके निशाने पर आ गए थे। उन्होंने जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी, माखनलाल चतुर्वेदी और बनारसीदास चतुर्वेदी

किसी को भी माफ नहीं किया। यह सच है कि इस क्रम में काफी कठोर हो गए थे। 1942 में जब 'चाबुक' की आलोचनाएँ पुस्तकाकार प्रकाशित हुईं तो उसकी भूमिका में निराला ने लिखा, "मैं करबद्ध होकर कटुता से समालोचित पूज्य साहित्यिकों से क्षमा चाहता हूँ। इस कटुता को ज्यों का त्यों जाने दे रहा हूँ कि देखूँ, अगर कुछ सत्य भी है, तो वह कितनी कटुता हज्म कर सकता है।" इसी में आगे उन्होंने लिखा, चाबुक शीर्षक से मैं एक दूसरे नाम से 'मतवाला' में व्याकरण पर आलोचनाएँ लिखा करता था। आलोचना यथार्थता लिए हुए जितनी भी हो, कटुता लिए हुए अवश्य थी। आज जिन लेखकों और सम्पादकों पर मेरी श्रद्धा है, उसे उस समय, मैंने अपनी श्रद्धा नहीं दी।" (निराला रचनावली भाग-5 पृ. 534) यह सच है कि ये आलोचनाएँ कटु थीं, पर उसकी प्रशंसा भी हो रही थी। इसका प्रमाण मतवाला में प्रकाशित स्तंभ 'मतवाला पर मत वालों का मत' में प्रकाशित टिप्पणियाँ हैं। सन् 1923 के अंतिम दिनों में झाँसी से जी. आई. पी. संघ प्रकाश ने लिखा था, "यह वास्तव में मतवाला ही है, हिन्दी में ऐसे मतवालों की जरूरत है। इसके चाबुक की चोट से ही साहित्य-वाटिका चोरों और सीनाजोरों से सुरक्षित और स्वच्छ रह सकेगी ऐसी आशा है।" (मतवाला : 5 जनवरी 1924, पृ. 13)। इसी प्रकार सागर की ख्यातिलब्ध पत्रिका 'समालोचक' ने अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा कि, "चाबुक और कसौटी शीर्षक भी अपने ढंग के एक हैं। इन शीर्षकों में साहित्य समालोचना रहती है। आशा तो यही होती है कि ये समालोचनाएँ हिन्दी-साहित्य-वाटिका की रक्षा में उपयोगी सिद्ध होंगी।" (मतवाला : 26 जनवरी 1924 पृ. 2) आशय यह कि मतवाला काल के आलोचक निराला सचमुच जागते हुए सिपाही की भूमिका का निर्वाह कर रहे थे। निराला के आलोचनात्मक लेखन में इस आक्रामकता का बाद में एकदम लोप हो गया हो ऐसा नहीं कहा जा सकता। उनकी प्रसिद्ध आलोचना 'पंत जी और पल्लव' में इसकी ध्वनि साफ सुनी जा सकती है।

जीवन और साहित्य में अनुभव के विस्तार के साथ ही उनकी प्रारंभिक धारणाओं में परिवर्तन भी हुआ। साहित्य के विकास के लिए वे आलोचना को जरूरी मानते थे। 'सुधा' में जुलाई 1933 के संपादकीय में 'हिन्दी में आलोचना' शीर्षक से उन्होंने लिखा, "आलोचना साहित्य का मस्तिष्क है। अत: साहित्य के विकास का श्रेय अनेक अंशों में उसे ही प्राप्त है" (हिन्दी में आलोचना, निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 498) वे स्पष्ट रूप से मानते थे कि बिना सही आलोचना के साहित्य का सम्पूर्ण विकास नहीं हो सकता। सही आलोचना के लिए कितनी तैयारी या अध्ययन की आवश्यकता होती है, इसे निराला कृत 'पंत जी और पल्लव' या 'रवीन्द्र-कविता-कानन' अथवा तुलनात्मक आलोचना के रूप में लिखे निबंधों से जाना जा सकता है। वे यह मानते थे कि, "अच्छी आलोचना वह है जो कृति से पीछे न रहे, चाहिए कि बढ़ जाय।" (निराला रचनावली, भाग-5 पृ. 489)। तात्पर्य यह कि रचना के लिए जितनी तैयारी की आवश्यकता होती है, उससे कहीं ज्यादा तैयारी सही आलोचना के लिए होती है। इतनी शक्ति सम्पन्न आलोचना ही दृष्टि सम्पन्न होकर सर्जनात्मक होती है। आलोचना को साहित्य में सकारात्मक परिवर्तन का कारण मानते हुए उन्होंने लिखा कि, "मनुष्य मन ही साहित्य है और आलोचना ही मानसिक परिवर्तन का मूल" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 500)। वे तथ्यपरक और यथार्थ आलोचना के पक्षधर थे। अतिशयोक्तिपूर्ण आलोचना को वे साहित्य के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक मानते थे। 'सुधा' मासिक के अक्टूबर 1934 के अंक में उन्होंने 'साहित्य में समालोचना' विषयक निबंध लिखा। इसमें उन्होंने स्पष्ट कहा कि, "अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा और निंदा साहित्य के लिए दोनों घातक हैं।'' (साहित्य में समालोचना, निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 516) अपनी बात को और स्पष्ट करते हुए इसी निबंध में उन्होंने आगे

लिखा कि, "साहित्य और समाज के प्रति अपने महान उत्तरदायित्व को समझ आलोचक को दलबन्दी या वैयक्तिक ईर्ष्या-द्वेष किंवा उसके प्रतिकूल भावों को पहले मन से निकाल देना होगा।" (रचनावली भाग-5 पृ. 516-517)। अच्छी आलोचना के लिए वे तटस्थता को आवश्यक और अनिवार्य शर्त मानते थे। आलोचना की व्यापकता को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा कि, "समालोचना लिखे हुए साहित्य की ही छान-बीन नहीं करती, भावी साहित्य के निर्माण के लिए क्षेत्र भी तैयार करती है।" (रचनावली भाग-5 पृ. 516-517) इस तरह निराला न केवल व्यावहारिक आलोचना कर रहे थे बल्कि सही आलोचना के स्वरूप का भी निर्धारण कर रहे थे।

आलोचना के क्षेत्र में अपनी लेखनी चलाते हुए निराला उन चुनौतियों और खतरों से पूरी तरह वाकिफ थे, जो इस मार्ग में आने वाली थीं। समूची साहित्यिक परंपरा का अवगाहन ही नहीं संस्कृति, समाज आदि आनुषंगिक संदर्भों से भी प्राणों की शक्ति ग्रहण कर आलोचना प्राणवान हो सकती है। निराला का समूचा आलोचना-कर्म इस तथ्य का प्रत्यक्ष प्रमाण है। आलोचना-कर्म के खतरों के बारे में उन्होंने 'साहित्य में समालोचन' शीर्षक अपने निबंध में लिखा कि, "प्रत्येक लेखक, जो अपनी सच्ची मौलिकता से किसी कृति को जन्म देता है, अपना एक निराला वायुमण्डल अपने साथ रखता है। संभव है उसकी कृति के भीतर पैठने के लिए आलोचक को अपने सभी पूर्व विवादों को बदलना पड़े। सहृदयतापूर्वक आलोचक जब तक ऐसा करने को प्रस्तुत नहीं रहता, वह लेखक की सच्ची आत्मा जो उसकी कृति के भीतर बोल रही है, पहुँचने की आशा नहीं कर सकता।" (रचनावली भाग-5, पृ.-516) इस तरह पूर्वाग्रह से मुक्त होकर और रचनाकार के साथ पूर्ण सहानुभूति रखते हुए ही आलोचक सही आलोचना के पथ पर अग्रसर हो सकता है। इस कथन के पीछे छायावादी काव्य पर हो रहे तल्ख आक्रमणों की अनुगूँज भी पहचानी जा सकती है। वे स्पष्ट मानते थे कि "काव्य की बारीकियाँ समझने के लिए आलोचक को कवि से अधिक समर्थ होना चाहिए।" (नवीन काव्य : निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 480)।

इस तरह निराला की नजरों में आलोचक रचनाकार से कहीं भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। वाद मुक्तता, स्वतंत्र चिंतन, प्रखरता, नवीन एवं प्राचीन का सामंजस्य तथा समय एवं संस्कृति से साक्षात्कार प्रभृति गुणों को अपनी आलोचना में अंतर्भुक्त कर निराला ने हिन्दी आलोचना का एक पथ निर्मित करने का प्रयास किया।

निराला का आलोचनात्मक लेखन पुस्तकाकार कम तथा निबंधों एवं टिप्पणियों के रूप में अधिक है। पुस्तकाकार 'रवीन्द्र-कविता-कानन' और 'चाबुक' स्तम्भ की टिप्पणियाँ ही हैं। उनके निबंध 'प्रबंध पद्म', 'प्रबंध-प्रतिमा', 'चयन' और 'संग्रह' में संकलित हैं। इनमें से पहले दो संग्रह निराला ने स्वयं तैयार किए थे। 'चाबुक' को उमाशंकर सिंह एवं अंतिम दो डॉ. शिवगोपाल मिश्र ने तैयार किया था। इस सामग्री का पारायण करते हुए यह देखा जा सकता है कि उनकी आलोचना का स्वरूप आलोचना और प्रत्यालोचना की प्रक्रिया में निर्मित होता है। उनकी सुचिंतित आलोचना 'रवीन्द्र-कविता-कानन' और 'पंत जी और पल्लव' में दिखती है, तो प्रत्यालोचना 'कला के वियोग में जोशी-बंधु' और छायावाद पर हुए आक्रमणों का जवाब देते हुए लिखे निबंधों में मिलती है। विषयगत विभाजन की दृष्टि से छायावाद-संबंधी वाद-विवाद, साहित्य-समीक्षा, कविता में भाषा और छंद, भाषा, राष्ट्रभाषा और खड़ी बोली का संबंध, अन्य रचनाकारों पर लिखित आलोचना और साहित्येतर विषयों पर लिखी उनकी आलोचना को समाहित किया जा सकता है। अपनी आलोचना के द्वारा उन्होंने साहित्य में प्राचीन मान्यताओं के विरुद्ध संघर्ष किया और उसमें नयी दृष्टि तथा नयी संवेदना के विकास में मूल्यवान योगदान किया। उन्होंने न केवल अपने

समसामयिक रचनाकारों की आलोचना की अपितु हिन्दी कविता की और विशेषत: खड़ी बोली हिन्दी कविता की प्राय: अपने समय तक की पूरी यात्रा की। अपनी आलोचना में वे केवल साहित्य के सौन्दर्यपरक और शिल्पगत मूल्यों पर ही ध्यान नहीं दे रहे थे बल्कि उसके सामाजिक संदर्भों को भी स्पष्ट करने का प्रयास उन्होंने किया। उनकी आलोचना में नाटक, आलोचना, उपन्यास, कविता और भाषा–विज्ञान प्रभृति सभी विषयों पर टिप्पणियाँ मिलती हैं।

छायावादी युग, जिसमें देश अपनी स्वतंत्रता का समर लड़ रहा था, एक ओर जहाँ अपनी परंपरा, अपनी संस्कृति पर बल देने का युग था, वहीं निरंतर विभिन्न माध्यमों और स्रोतों से विभिन्न क्षेत्रों में स्वयं को समृद्ध करने का भी युग था। ऐसे में अपनी संस्कृति और परंपरा के प्रति पूरा सम्मान भाव रखते हुए भी निराला का मानना था कि साहित्य का भावी विकास तभी होगा जबकि परिवर्तित परिस्थितियों और समय के अनुसार वह चलेगा। इसके लिए संकीर्णता छोड़कर वैचारिक समृद्धि हेतु पश्चिमी जगत से संपर्क की आवश्यकता वे महसूस कर रहे थे। 'नवीन साहित्य और प्राचीन विचार' शीर्षक टिप्पणी में उन्होंने लिखा कि, "विजातीय भावों के मिश्रण से ही संस्कार हो सकता है। यदि किसी सृष्टि को प्रगतिशील रखना है तो उसकी शक्ति बढ़ाने के लिए विजातीय भावों का समावेश करना अत्यंत आवश्यक है। ... यह भाव–मिश्रण साहित्य के लिए भी आवश्यक है, नहीं तो कुछ काल तक एक ही संस्कार और एक ही प्रकार के विचारों की नेमि में चक्कर काटता हुआ साहित्य भी निर्जीव हो जाता है।" (निराला रचनावली, भाग–5, पृ. 441) इसी टिप्पणी में आगे वे कहते हैं कि, ''एक देशीय साहित्य से बहुत बड़ी उन्नति बहुत बड़े लाभ की संभावना नहीं। इसके अतिरिक्त एक युग धर्म भी हुआ करता है। वह अपनी विशेषता लेकर आता और उसी को अपने लिए महत्व देता है। अब यह युग सार्वभौम साहित्य का, सब साहित्यों के संगठन का है।" (निराला रचनावली, भाग–5, पृ. 442) इस संदर्भ में उल्लेख्य है कि भावों और विचारों की उन्नति के लिए विजातीय मिश्रण की वकालत करने वाले निराला आत्म–गौरव से हीन नहीं हैं, क्योंकि अपनी जमीन पर खड़े रह कर ही मूल्यवान विचारों और भावों का समावेश उन्हें काम्य है। वस्तुत: जिसे अपनी पहचान नहीं है वह विश्व की दूसरी भाषाओं के साहित्य की पहचान क्या करेगा। इस बात को स्पष्ट करते हुए 'साहित्य में समालोचना' शीर्षक टिप्पणी में उन्होंने लिखा कि, "अपने साहित्य का सम्पूर्ण अध्ययन कर, अपनी संस्कृति का पूरा ज्ञान प्राप्त कर, जब हम दूसरों की संस्कृति व साहित्य को पहचानेंगे, उस संघर्ष से सभ्यता का जो वायुमण्डल उत्पन्न होगा, भावी हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि के बीज उसी में छिपे होंगे।" (निराला रचनावली भाग–5, पृ. 517)। इस तरह दूसरों को देखने से पूर्व खुद को अच्छी तरह जान लेना वे आलोचक और आलोचना दोनों के लिए हितकर मानते थे।

अपने आलोचनात्मक विवेक को मार्जित एवं समृद्ध करते हुए निराला ने न केवल पुराने सवालों पर विचार किया बल्कि नए उठने वाले सवालों पर भी अपना पक्ष रखा। साहित्य में विचारों के महत्व पर वे वैचारिक समृद्धि के पक्षधर थे। 'नवीन काव्य' शीर्षक टिप्पणी में वे 'विचार को काव्य का ज्ञानकाण्ड' बतलाते हुए कहते हैं कि, "साहित्यिक विचार ज्यों-ज्यों पुष्ट होते जाते हैं, भविष्य के साहित्यिकों को अधिक मार्जित साहित्य की सृष्टि के लिए सुविधा मिलती जाती है। यही कारण है कि खड़ी बोली के काव्य को बाहरी सुविधाएँ न मिलने के कारण भीतर बड़ी–बड़ी अंत:प्रेरणाएँ नहीं मिलीं" (निराला रचनावली, भाग–5, पृ. 480) कविता में भावों को वरीयता देते हुए भी वे विचारों की उपस्थिति को अनिवार्य मानते थे। 'हिन्दी आलोचना' शीर्षक टिप्पणी में उन्होंने स्पष्ट लिखा कि, "हृदय का महत्व

लेकर निकलने वाली कविता भी यदि विचार और श्रृंखला से सम्बद्ध नहीं, तो शैशव संलाप की तरह भावोच्छ्वास मात्र है, उससे साहित्य को बड़ी प्राप्ति नहीं हो सकती।" (निराला रचनावली भाग-5, पृ. 498)। निराला हर कीमत पर हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि चाहते थे। वे हिन्दी के उन विरल कवियों में से हैं जो साहित्य में विचारों से परिपूर्ण साहित्य ही समाज को गति देने में सक्षम होता है। जो साहित्य समाज की रुचियों का परिष्कार करते हुए उसे गतिशील नहीं बनाता, ऐसा साहित्य उन्हें काम्य नहीं था। 'रचना-रूप' शीर्षक टिप्पणी में विचारों का महत्व प्रतिपादित करते हुए उन्होंने स्पष्ट लिखा कि, "नवीन रक्त-संचार की तरह नये विचारों का निर्गमागम जब साहित्य तथा समाज में होता है तभी समाज गतिशील और साहित्य जीवित रह सकता है।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 504) इस तरह विचार उनके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं।

निराला की आलोचना में यदि प्रत्यालोचना को छोड़ दिया जाय, तो उनकी आलोचना प्रायः समष्टिपरक रही है। जहाँ भी उन्होंने पूरे मनोयोग से आलोचना की है, वहाँ सारे विन्दुओं को ध्यान में रखा है। वहाँ न वे भाषा को छोड़ते हैं, न शिल्प को, न शब्द प्रयोग को, न सामाजिक संपृक्ति को। यह अनायास नहीं है कि रवीन्द्र की समीक्षा करते हुए वे कविता के सामाजिक संदर्भों को भी स्पष्ट करते हैं। देश और देश की दशा की उपेक्षा करने वाला कभी भी बड़ा कवि नहीं हो सकता। इस संदर्भ में उनका मानना कि कवि ही यदि देश की दशा का अध्ययन न करेगा तो कौन करेगा, एक किस्म से रचनाकार के दायित्व की ओर भी संकेत करता है। अपने अध्ययन और परंपरा के अवगाहन से जो तथ्य उन्होंने उपलब्ध किया था वह यह कि संतुलन एवं समन्वय ही शक्ति और सौन्दर्य का वाहक होता है। जो चिंतन एवं प्रयोग महात्मा गाँधी देश के राजनीतिक परिदृश्य में कर रहे थे, निराला वही काम रचना और आलोचना के क्षेत्र में कर रहे थे। यही कारण है कि ध्रुवांतों से बचते हुए वे बराबर संतुलन और समन्वय की बात करते हैं। यह चाहे आदर्श और यथार्थ की बात रही हो या कलात्मक समन्वय की वे सर्वत्र समष्टि की बात करते हैं। 'रचना-सौष्ठव' नामक टिप्पणी में उन्होंने स्पष्ट लिखा कि, "साहित्यिक यदि किसी समूह के अनुसार चलता है तो वह उच्चता प्राप्त नहीं कर सकता, जो समष्टि को लेकर चलता है।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 506) उनके मत में कला का अर्थ ही है 'अन्विति'। इसी 'अन्विति' की साधना वे अपने रचनात्मक कर्म में करते हैं, और इसी की माँग रचना और रचनाकारों से करते हैं। अपने प्रसिद्ध निबंध, 'मेरे गीत और कला' में इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा कि, "कला केवल वर्ण, शब्द, छन्द, अनुप्रास, रस, अलंकार या ध्वनि की सुंदरता नहीं, किंतु इन सभी से सम्बद्ध सौन्दर्य की पूर्ण सीमा है।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 407) वे इस तथ्य से भली भाँति परिचित थे कि जिंदगी में सब कुछ सुंदर या असुंदर नहीं अपितु इन दोनों का योग है। 'साहित्य का आदर्श' शीर्षक टिप्पणी में उन्होंने अपना मत स्पष्ट करते हुए लिखा कि, "सत्साहित्य की सृष्टि के लिए जीवन की सभी दिशाएँ आवश्यक हैं क्योंकि कोई गिर जाता है तो उसके गिरने के कारण हैं, वे साहित्य के लिए उतने ही जरूरी हैं जितने कि उठने वाले कारण।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 489)। अपने रचना-कर्म में उन्होंने इस आदर्श का पूरी तरह पालन किया। उन्होंने यदि 'जुही की कली' लिखी तो 'कुकुरमुत्ता' भी लिखा, और तुलसीदास लिखा तो 'चतुरी चमार' भी लिखा। इस तरह आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व में उन्हें दोनों स्वीकार हैं पर निश्चित मात्रा के अनुसार। एक संतुलन, समन्वय या कि कहें अन्विति की तलाश उन्हें बराबर रही है।

निराला आलोचना लिखते हुए केवल अपने समय के आलोचकों से टकरा ही नहीं रहे थे, बल्कि

कहीं-कहीं उनमें अद्‌भुत साम्य भी मिलता है। 'कवि और कविता' नामक निबंध में निराला ने यह बताने की कोशिश की कि साहित्य में भाव, भाषा या परिभाषा कुछ भी शाश्वत नहीं है बल्कि सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार वे बनते बदलते हैं। उन्होंने लिखा, "यह निर्विवाद है (कि) कवि पर देश, काल और समाज का प्रभाव पड़ता है। कवि ही पर क्यों संपूर्ण मनुष्य जाति पर यह प्रभाव पड़ता है। जिन कार्य-कारणों के घात-संघातों से मानवीय मस्तिष्क के विचार बदलते हैं, चाल-चलन, वेश-भूषा में उलट-फेर होते रहते हैं, स्मृतियाँ और व्यवस्थाएँ परिवर्तित होती रहती हैं, वही कार्य और कारण भाषा और साहित्य के रूपांतरित होने के कार्य और कारण कहे जाते हैं।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 164) इन पंक्तियों को पढ़ कर आचार्य रामचंद्र शुक्ल की वह प्रसिद्ध पंक्ति याद आती है कि, "प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।" यह साम्य काफी कुछ कहता है। निराला ने आलोचना के विरोध में जहाँ प्रत्यालोचना की वह भी मन मार कर। उदाहरण के लिए जब जोशी बंधुओं ने सुधा में' 'साहित्य-कला और विरह' विषयक निबंध लिखते हुए छायावादी कवि की प्रेम और संवेदनशीलता को प्राचीन साहित्य और सृष्टि से उल्टा बताया, तो निराला ने 'सुधा' में ही 'कला के विरह में जोशी बंधु' शीर्षक लेख लिखा। इसके प्रारम्भ में ही उन्होंने लिखा कि "कभी सोचा था, दलबंदी के दलदल में न फसूँगा, मार का जबाब प्यार से दूँगा, परंतु 'आपन चेती होय नहिं, हरि चेती तत्काल' की आफत का पहाड़ हरि की इच्छा से मुझी पर आ टूटा। जिस रोज मैंने साहित्य के खाते में नाम लिखाया, उसी रोज से हिन्दी साहित्य के आचार्यों ने पाठ पढ़ाना शुरू कर दिया कि जब तक जियो, अपने हाथों अपनी नाक काटकर दूसरों का सगुन बिगाड़ते रहो, बस, साहित्य सेवा के यही माने हैं।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 272) यह उद्धरण यह बताने को पर्याप्त है कि वे आरोप-प्रत्यारोप से किस प्रकार दु:खी एवं क्षुब्ध थे। आलोचक पद्‌म सिंह शर्मा का उल्लेख उन्होंने 'साहित्य की नवीन प्रगति पर' नामक लेख में किया है। इसमें उन्होंने शर्मा जी के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद से दिए भाषण का संदर्भ लिया। शर्मा जी ने नवीन कविता को तिरस्कृत करते हुए एक शेर पढ़ा था जो निम्नवत् था–

> मगर एक इल्तजा इन नौजवानों से मैं करता हूँ,
> खुदा के वास्ते अपने बुजुर्गों का अदब सीखें।

इसका उत्तर देते हुए निराला ने तुलसी को उद्धृत किया कि –

> "तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।
> बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रजबनितनि, भये मुद मंगलकारी।।"

तथा लिखा कि, "आपने अकबर का यह उदाहरण दिया है उस जगह आपकी समझ को देखते हुए यदि गोस्वामी जी का यह पद रख दिया जाय तो कैसे वसूल हो... क्या तुलसीदास जी का यह जबाब उन्हीं बुजुर्गों के लिए नहीं था जो नाकाबिल समझे गए।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 238)

निराला की आलोचना पर अपना अभिमत देते हुए डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा कि, "निराला की आलोचना एक कवि की लिखी हुई आलोचना है। उसमें जगह-जगह ऐसी अंतर्दृष्टि है जैसी आलोचना विशेषज्ञों में कम मिलती है। निराला की लिखी हुई आलोचना उनके काव्य के किसी न किसी पक्ष को उजागर करती है। अवश्य ही आलोचना जितनी महत्वपूर्ण है, उसके काव्य-संदर्भ के कारण उससे ज्यादा मालूम हो सकती है किंतु काव्य-संदर्भ को हटा देने पर भी पाठक यदि विवेक से आलोचना पढ़ेगा, तो

उसमें अनेक महत्वपूर्ण बातें दिखाई देंगी।" (निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ. 488) कुछ इसी तरह का मत प्रो. सूर्य प्रकाश दीक्षित का भी है। वे कहते हैं कि, "यह निर्विवाद सत्य है कि निराला में विविध मनोभावों और उत्कृष्ट कला की सूक्ष्म परख है। वे हर शब्द का वजन और उसका स्वर-संगीत पहचानते हैं और अधिकांशत: उसके उपयुक्त प्रयोग की गरिमा का पालन भी करते हैं। कवि जीवन के आरंभ में हिन्दी समीक्षकों में उनके प्रति जो उपेक्षा का भाव रहा उससे संयस्त होकर, साथ ही अपनी पूर्वापेक्षा के अनुसार यथोचित महत्व न पाकर वे स्वमूल्यांकन के लिए तत्पर हुए। ... निराला की प्रस्तुत आलोचनाएँ हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में तथ्यपरक तथा निर्भीक अभिमत प्रकट करने में समर्थ हैं।" (निराला का गद्य, पृ. 105-106) ये दोनों मत इस तथ्य का तो प्रतिपादन करते ही हैं कि निराला की आलोचना पर्याप्त महत्वपूर्ण है।

आत्मालोचन और अन्यालोचन की परिधि में विन्यस्त निराला की आलोचना केवल साहित्य और भाषा के सवालों से ही नहीं टकराती, बल्कि अपने समय के ज्वलंत प्रश्नों के क्षेत्र में भी हस्तक्षेप करती है। निराला के इस क्षेत्र पर विचार करते हुए रामविलास जी ने लिखा है कि, "काव्य, कथा-साहित्य, आलोचनात्मक निबंधों के अलावा निराला ने देश की राजनीतिक, सामाजिक समस्याओं पर बहुत कुछ लिखा है। ऐसी काफी सामग्री 'सुधा' की सम्पादकीय टिप्पणियों में बिखरी हुई है। इनका अध्ययन निराला के कलात्मक साहित्य के भरे पूरे विवेचन के लिए आवश्यक है, उस युग की राजनीति के अंतर्विरोधों को समझने के लिए आवश्यक है, सबसे अधिक आज की राजनीतिक परिस्थिति को समझने के लिए आवश्यक है। आज देश में जो कुछ हो रहा है, उसका गहरा संबंध स्वाधीनता पूर्व के भारत से है। प्रेमचंद और निराला अपने युग के दो जागरूक साहित्यकार थे। इनकी राजनीतिक विचारधारा का उनके साहित्य से स्वतंत्र-महत्व है। उसके अध्ययन से हम उस समय के राजनीतिज्ञों, उनकी विचारधारा उनकी कार्यवाही को नए सिरे से परखना सीखेंगे।" (निराला की साहित्य साधना, भाग-2, भूमिका) पत्रकार के दायित्व का निर्वाह करते हुए साहित्येतर प्रश्नों से टकराना उनकी विवशता थी। देश के स्वाधीनता समर में अपने ढंग से रचनाकारों ने भी आहुति दी। यतीन्द्रनाथ दास की मृत्यु पर निराला ने घोषणा की, "भारतवर्ष ने जितना सहना था, सह लिया। वह समय निकल गया जब खिलौना पाकर भारत बहल जाता था। देश समझ गया है कि हाथ पर हाथ धर कर बैठने से काम न चलेगा। भारत में एक नई लहर पैदा हो गई है। नवयुवकों ने रणभेरी बजा दी।" (निराला की साहित्य साधना, भाग-2, पृ. 15-16)

स्वतंत्रता आंदोलन के साथ ही चल रहे किसान आंदोलन पर भी निराला की पैनी नजर थी। किसानों पर हो रहे अत्याचार के बारे में उन्होंने लिखा, "भारत अंग्रेजी माल को खपाने के लिए अंग्रेजों का सबसे बड़ा केंद्र है। यहाँ से कच्चे माल की जितनी पैदावार होती है उसका अधिकांश वहीं के व्यापारियों के हाथ लगता है, जिसके एक-एक के सैकड़ों वसूल होते हैं। शासन अपने ही हाथ में है। ... पर यहाँ यह बात नहीं, यहाँ तो व्यवसाय की पराधीनता और भी कठोर तथा पीसने वाली है। यही कारण है कि किसानों की दुर्दशा का अंत नहीं होता। पाट, सन, रूई, गल्ला आदि जितना कच्चा माल यहाँ पैदा होता है, मुँहमांगे दामों पर ही दिया जाता है। किसान लोगों में माल रोककर रखने की दृढ़ता नहीं, उस दृढ़ता की जड़ को काट दिया गया है। कारण लगान देने के तकाजे का ख्याल उन्हें विवश कर देता है कि वे मुँह माँगे दामों पर ही दिया जाता है। किसान लगान देने के तकाजे का ख्याल उन्हें विवश कर देता है कि वे मुँह मांगे भाव पर माल बेच देते हैं। यह इतनी बड़ी दासता है, जिसका उल्लेख नहीं हो सकता।" (निराला रचनावली, भाग-6, पृ. 18) किसानों को ही आधार बना कर 'सुधा' में उन्होंने 'किसान और

उसका साहित्य' शीर्षक टिप्पणी लिखी। स्त्रियों के सवाल पर भी उन्होंने अपनी कलम चलाई। 'देश की स्थिति और सरकार' या इस जैसी अन्य टिप्पणियाँ उनके सरोकारों और जागते हुए सिपाही की भूमिका के साथ न्याय करती हैं।

आलोचक की मेधा की पहचान तब होती है जब वह अन्य रचनाकारों की रचनाओं का मूल्यांकन करता है। अगर प्रत्यालोचना की बात छोड़ भी दें तब भी निराला ने अन्य रचनाकारों पर भी लिखा है। 'मतवाला' काल की 'कसौटी', या 'चाबुक' हों अथवा अन्यत्र यथासमय वे यह काम करते रहे हैं। उन्होंने समकालीन ही नहीं प्राचीन, भक्तिकालीन और रीतिकालीन कवियों को भी अपने अध्ययन और आलोचना का विषय बनाया। इस मार्ग की चुनौतियों को रेखांकित करते हुए रामविलास शर्मा ने ठीक लिखा है कि, "किसी भी साहित्यकार की कला का विवेचन कठिन कार्य है। बहुत सी सैद्धांतिक समस्यायें विवेचन प्रारंभ होने से पहले अपना समाधान चाहती हैं। साहित्यकार भी स्थापत्यकार की तरह अपना निर्माण-कौशल प्रदर्शित करता है। इस कौशल को हम कैसे परखें? निर्माण-कौशल के लिए उसकी रचना-सामग्री क्या है? भाषा, शब्दों का अर्थ, उसकी ध्वनि, छंद-प्रवाह, मूर्ति-विधान, इन सबका परस्पर संबंध क्या है?" (निराला की साहित्य साधना, भाग-2, भूमिका) इस सारी चुनौती को स्वीकार करते हुए निराला ने रचनाकारों पर लिखा। 'रवीन्द्र-कविता-कानन' और 'पंत जी और पल्लव' शीर्षक आलोचनाएँ इस दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इस मूल्यांकन में रचनाकार की विशिष्टता तो उभरती ही है, काव्य के संदर्भ में उनकी दृष्टि का भी खुलासा होता है। मसलन रवीन्द्र की विशेषता निरूपित करते हुए उन्होंने लिखा, "दूसरी खूबी उनके वर्णन की है। प्रकृति का पर्यवेक्षण करने वाला ही कवि नहीं हो जाता, उसे और भी बातों की नाप-तौल करनी पड़ती है। एक ही शब्द के पर्यायवाची अनेक शब्द होते हैं। उसमें किस शब्द का प्रयोग उचित होगा, किस शब्द से कविता में भाव-व्यंजना अधिक होगी इसका भी ध्यान कवियों को रखना पड़ता है। शब्दों की परीक्षा में रवीन्द्रनाथ अद्वितीय हैं।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 113) इस पूरे उद्धरण में एक ओर जहाँ भारतीय काव्यशास्त्र के 'औचित्य' की अनुगूँज है, तो दूसरी ओर संस्कृत के प्रकृति वर्णन की 'नाम परिगणन' वाली प्रणाली निशाने पर है।

विश्वनाथ त्रिपाठी निराला के 'पंत जी और पल्लव' को उनकी आलोचना का प्रखरतम रूप मानते हैं। उन्होंने स्पष्ट लिखा कि, "आलोचक निराला का प्रखरतम रूप 'पंत जी और पल्लव' में प्रकट हुआ है। हिन्दी खड़ी बोली के साहित्य में ऐसा संयोग दुर्लभ रहा है कि एक ही धारा के एक समर्थ कवि ने अपने समकालीन अन्य समर्थ कवि की ऐसी पैनी आलोचना की हो। यह ठीक है कि निराला ने पंत के गुणों से अधिक दोष ही दिखाए हैं। किन्तु उन्होंने जिस मर्मभेदिनी दृष्टि से पंत की रचनाओं की समीक्षा की है वह कई नामधारी समालोचकों को भी नहीं मिली है। पंत ने 'पल्लव' के 'प्रवेश' में निराला की कुछ पंक्तियों में छंद-विषयक दोष ढूँढा था। निराला ने उसका तो उत्तर दिया ही है, साथ में 'पल्लव' की कविताओं का अन्य कवियों की कविताओं में स्रोत तथा उनकी कविताओं में भाषा-भावगत दोष ढूँढे। लेकिन इन सबसे कहीं अधिक महत्वपूर्ण निराला की साहित्य, छंद-संबंधी तथा आनुषंगिक उक्तियाँ हैं, जिनसे निराला के व्यापक अध्ययन, गहन चिंतन तथा मौलिक सूझ का संकेत मिलता है।" (हिन्दी आलोचना, पृ. 92) निराला की इस आलोचना में जो बिन्दु उठाए गए हैं, वे अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनमें से कवित्त छंद एवं मुक्त छंद तथा ब्रजभाषा विषयक निराला का पक्ष द्रष्टव्य है। कवित्त छंद को हिन्दी का औरस नहीं पोष्य पुत्र मानने वाले पंत का प्रतिकार करते हुए निराला ने लिखा, "हिन्दी के प्रचलित छंदों में जिस छंद को एक विशाल भू-भाग के मनुष्य कई शताब्दियों तक गले का हार बनाए रहे, जिसमें

उनके हर्ष-शोक, संयोग-वियोग और मैत्री शत्रुता की समुद्गत विपुल भाव राशि आज साहित्य के रूप में विराजमान हो रही है—आज भी जिस छंद की आवृत्ति करके ग्रामीण सरल मनुष्य अपार हर्ष का अनुभव करते हैं, जिसके समकक्ष दूसरा छंद उन्हें जँचता ही नहीं, करोड़ों मनुष्य के उस जातीय छंद को उसके प्राणों की जीवनी शक्ति को परकीया कहना कितनी दूरदर्शिता का परिचायक है, पंत जी स्वयं समझें।" (प्रबंधपद्म, पृ. 93) पंत जी की आक्रामक आलोचना के बाद भी निराला उन्हें हिन्दी का गौरव मानते थे तभी तो उन्होंने लिखा, "खड़ी बोली की जिस कविता का प्रचार किया गया, जिसके प्रचारकों एवं कवियों को कितनी गालियाँ खानी पड़ीं, उसका स्वाभाविक विकास अब इतने दिनों बाद आया है और हिन्दी का यह गौरव-कुसुम श्री सुमित्रानंदन पंत हैं।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 149)

भक्ति साहित्य में निराला के प्रिय कवि तुलसीदास थे। उन पर न केवल उन्होंने कविता लिखी बल्कि उन पर छोटे-बड़े छः लेख लिखे। ये लेख हैं, "तुलसीकृत रामायण में 'अद्वैत ज्ञान और भक्ति' (समन्वय, 1922), 'गोस्वामी तुलसी दास' (समन्वय, 1923), 'तुलसीकृत रामायण का आदर्श' (माधुरी, 1923), 'गोस्वामी तुलसीदास' (समन्वय, 1927) और 'दो महाकवि : गोस्वामी तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ' (मतवाला के चार अंकों में 1929)। तुलसी को जनता का कवि मानने वाले निराला मानते थे कि जनमानस और शास्त्र दोनों को ध्यान में रखकर कविता करने वाला ही जनता का कवि हो सकता है। वे जनता को प्रमाण मानते हुए लिखते हैं कि, "जनता तो हृदय देखती है, हृदय की बात सुनती है और हृदय की प्रेरणा से अपने कर्तव्य का निर्णय करती है। फिर भी शब्दों को वह तत्काल थाह लेती है। सविकार भावों को तौलकर स्वभावतः जन-समूह पीछे हट जाता है। बढ़ता वहाँ है जहाँ उसे सरस वाक्यों से विशाल हृदय की सूचना मिलती है। (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 141) इसी क्रम में निराला के एक और छोटे लेख 'विज्ञान और गोस्वामी तुलसीदास' का ध्यान दिया जाना जरूरी है। तुलसी की कविता में वैज्ञानिक तत्त्व पर संभवतः निराला ही ध्यान देते हैं। निराला ने रवीन्द्र को तुलसी के साथ ही नहीं परखा बिहारी के साथ भी उन्हें परखने का प्रयास किया। अपने समय की रचनाशीलता की पहचान करते हुए उन्होंने प्रदीप, अंचल और नंददुलारे वाजपेयी पर भी लिखा। नंददुलारे वाजपेयी उस समय युवा समीक्षक ही थे। उन पर लिखते हुए निराला ने लिखा, "वाजपेयी जी नयी आलोचना शैली को जीवन देते हुए उसे इस तरह आगे बढ़ाते हैं कि हिन्दी के ऊपर मौलिक साहित्य के उज्जीवन की तरह आलोचना अपने सच्चे अस्तित्व को आँखों से देखती है, अपनी सत्ता में प्रतिष्ठित होकर साँस लेती है। वाजपेयी की समीक्षा मुख्यतः मनोवैज्ञानिक विवेचन पर आधारित है। इस विवेचन में न केवल रचयिता की मनोवृत्ति की, बल्कि उसकी रचना के साहित्यिक सौष्ठव की परीक्षा हो जाती है। वाजपेयी की समीक्षा में साहित्य की सामाजिक और सांस्कृतिक प्रेरक शक्तियों की भी उपेक्षा नहीं है।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 144) आशय यह है कि वे साहित्यिक कृति की आलोचना करते हुए साहित्यिक सौष्ठव की परीक्षा को तो आवश्यक मानते ही थे, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रेरणा को भी अनिवार्य समझते थे।

'आत्मसंघर्ष' का जो मुहावरा बाद में आलोचना में सक्रिय हुआ, वह जिस प्रकार निराला के सृजनात्मक साहित्य में प्रत्यक्ष है, वह उनकी आलोचना में भी है। उनके व्यक्तित्व की निर्मिति में जो तत्त्व प्रभावी रहे हैं वे हैं वेदांत, रामकृष्ण, विवेकानंद, तुलसीदास, रवीन्द्र एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि। वे एक तरफ वेदान्त, दूसरी तरफ देश और समाज, एक तरफ अद्वैतवाद, दूसरी तरफ श्रृंगार, इन सब के बीच संगति तलाशने की दिशा में प्रयत्नशील रहते हैं। वेदांत की भूमि से ही वे हिन्दी कविता साहित्य

की प्रगति पर विचार करते हैं और इसमें 'दिव्यता' का अभाव पाते हैं। लगभग इसी जमीन पर वे तुलसीदास को रवीन्द्र से बड़ा पाते हैं। वेदान्त के सकारात्मक पक्ष को ध्यान में रख कर ही वे 'साहित्य की समतल भूमि' और 'मुसलमान और हिन्दू कवियों में विचार साम्य' जैसे निबंध लिखते हैं। तुलसी और रवीन्द्र जहाँ उनके साहित्यिक मानस को पुष्ट आधार प्रदान करते हैं तथा सांस्कृतिक दृष्टि देते हैं वहीं रामकृष्ण और विवेकानंद के माध्यम से उनकी समाज और वेदांत के मध्य सबल सेतु निर्मित करने की दृष्टि का विकास होता है। उनकी सृजनात्मक निर्मिति और आलोचनात्मक गति में ये तंतु प्रभावी हैं। कविता और साहित्य के संबंध में आलोचक निराला ने ढेर सारी महत्वपूर्ण बातें कही हैं। वे कला, रचना सौष्ठव, भाव और भाषा, साहित्य और भाषा, साहित्य और जनता शीर्षक टिप्पणियों में न केवल अपने समय की रचनाशीलता से जूझते हैं बल्कि परम्परा को खँगालते हुए अपनी बात पुष्ट करने का भी प्रयास करते हैं। यह एक ऐतिहासिक सच है कि अपने समकालीनों में सर्वाधिक प्राणवान, प्रगतिशील, प्रयोगशील एवं रचनात्मक ऊर्जा से सम्पन्न होने के बाद भी निराला सर्वाधिक उपेक्षा के शिकार हुए थे। अपना पक्ष रखते हुए उन्होंने न केवल समूचे साहित्य को आकार देने का प्रयास किया बल्कि युगीन रचनाशीलता की शक्ति और सीमा दोनों को पहचाना। अपने-अपने काट के साहित्य की माँग जो परवर्ती साहित्य में उठी उसके लिए निराला की 'साहित्य और जनता' शीर्षक टिप्पणी का यह अंश द्रष्टव्य है, "कभी-कभी उपयोगितावाद और सौंदर्यवाद एक दूसरे से मिले रहते हैं, जैसे मनुष्य का जीवन अधिक स्वच्छ, सुंदर, सुखमय होकर अधिक स्वस्थ भी हो। इसी तरह किसी वाद-विशेष को साहित्य में अलग महत्व न देकर साहित्य के एक ही द्रुम से भिन्न-भिन्न शाखा की तरह सन्निविष्ट समझें, तो विचार में मिट्टी, जल, आग, हवा और आसमान की तरह जुड़ी हुई सारी सृष्टियों की भिन्नता के भीतर से देख सकते हैं। यही उद्यम साहित्य का सर्वोत्तम विकास है।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 495-96) आश्चर्य की बात है कि मुक्तिबोध के यहाँ भी यथार्थ के तत्व परस्पर गुंफित होते हैं। वे खण्ड सौन्दर्य को नहीं बल्कि संपूर्ण सौंदर्य को आयत्त करना चाहते हैं। यह निराला की सकारात्मक सोच का परिणाम है जो अपने युग को ही नहीं परवर्ती युग-चेतना को भी प्रेरित करती है।

कतिपय असंगतियों के बावजूद निराला की आलोचना सैद्धांतिक, व्यावहारिक, तुलनात्मक, प्रभाववादी आदि शास्त्रीय शब्दावलियों की परिधि में परिगणित होते हुए भी उस सीमा का अतिक्रमण करती है। प्राचीन मान्यताओं को झकझोरते हुए उसे नयी दृष्टि एवं संवेदना से समृद्ध करते हुए निराला ने हिन्दी आलोचना के लिए नए द्वार खोले। सूक्ष्म और नवीन सौन्दर्य बोध की अपनी निजी ताकत के बल पर वे छायावाद के अन्य आलोचकों की तुलना में अलग दिखाई पड़ते हैं। भले ही वे मजबूरीवश आलोचना के क्षेत्र में उतरे हों, पर उनके इस क्षेत्र में आने से हिन्दी आलोचना समृद्ध हुई इसमें कोई दो राय नहीं है। उनके आलोचनात्मक विवेक की परिधि धर्म, संस्कृति, समाज, भाषा आदि सभी चीजों को समेटती है। जातीय जीवन और उसकी पहचान उनकी रुचि के विषय थे। यहाँ तक कि भाषा के संबंध में भी वे उसी भाषा को प्राणवान मानते थे जो जातीय जीवन से संबद्ध हो। 'मेरे गीत और कला' शीर्षक निबंध में उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि, "प्रकृति की स्वाभाविक चाल से भाषा जिस तरफ भी जाय, शक्ति, सामर्थ्य और मुक्ति की तरफ या सुख-दुखात्मक, मृदुता और छंद साहित्य की तरफ, यदि उसके साथ जातीय जीवन भी संबद्ध है तो यह निश्चित रूप से कहा जाएगा कि प्राण शक्ति उस भाषा में है।" (निराला रचनावली, भाग-5, पृ. 395) उनके चिंतन में समाज, देश, स्वाधीनता प्रभृति विषय इस तरह समाविष्ट हैं कि उन्हें एक दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता। इसका अपने देश, माटी और

परिवेश से प्राण-शक्ति आयत्त करते हुए वे ऐसे साहित्य के सृजन के पक्षधर थे जिसकी भावना विश्वभर में फैले जैसा कि उन्होंने कहा भी कि, "विश्व के लोग उसी कविता का आदर करेंगे जो भावना में विश्व भर की कही जा सकेगी। उसके बाहरी उपकरण तो एक देशीय होंगे ही।" (निराला रचनावली, भाग-5 पृ. 215)। इस तरह हर प्रकार के सृजनात्मक एवं आलोचनात्मक प्रयासों के द्वारा हिन्दी को समृद्ध करना ही उस महाप्राण व्यक्तित्व को काम्य था।

समग्रत: यह कहा जा सकता है कि महाप्राण निराला हिन्दी साहित्य के उन विरल रचनाकार आलोचकों में से हैं जिन्होंने अपनी प्रखर दृष्टि, मुखर चिंतन और अदम्य संघर्ष क्षमता के बल पर हिन्दी एवं हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने का प्रयास किया। इस प्रक्रिया में उनका आलोचनात्मक विवेक न केवल लिखे हुए साहित्य की छानबीन करता है बल्कि स्वयं आत्मपरिष्कार भी करता है। उन्होंने न केवल बाढ़ मुक्त होकर समग्र दृष्टि से साहित्य को देखने की वकालत की बल्कि विचार की प्रमुखता पर भी बल दिया। साहित्य के परीक्षण में मात्र शैल्पिक या भाषिक दृष्टियों तक ही केन्द्रित न रह कर उन्होंने सांस्कृतिक एवं सामाजिक दृष्टियों को भी प्रश्रय दिया। आलोचना उनके मत में जागते हुए सिपाही की आवाज इसी अर्थ में है कि यह आलोचक का दायित्व है कि साहित्यिक सामाजिक स्वास्थ्य के लिए हितकारी स्वरों को ही साहित्य में प्रवेश की अनुमति देकर उसे प्रोत्साहित करे। साहित्य का मस्तिष्क आलोचना को कहते हुए वे दर असल विचार की ताकत को वरीयता दे रहे थे। सच तो यह है कि निराला का आलोचनात्मक विवेक परम्परा से पोष्य प्राप्त कर, समकालीन साहित्य का परीक्षण करते हुए भविष्य के लिए मार्ग निर्धारित करता है। अपने सूक्ष्म सौंदर्यबोध एवं निर्भीक आलोचना के लिए निराला चिरस्मरणीय रहेंगे। छायावादी काल की आलोचना का यह आयाम न केवल छायावाद की साहित्यिक व्याप्ति का एक पक्ष है अपितु रचनाकार-आलोचक की सार्थक पहल भी है।

❑❑❑

छायावादी विषाद तत्त्व : मिथक और यथार्थ

❍ रवि रंजन

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि छायावाद हजारों साल की भारतीय रचनाओं की प्रकृति व 'टाइप' को अस्वीकार करता है और इस प्रकार हमारा साहित्य एक नवीन क्षेत्र में पदार्पण करता है। स्पष्ट ही इस परिवर्तन के अपने सामाजिक कारण थे। कहना न होगा कि अपवादस्वरूप घनानंद सरीखे कुछ गिनेचुने रचनाकारों को छोड़कर पहले के अधिकतर कवि किसी मिथकीय या ऐतिहासिक घटना, कहानी आदि में आए चरित्रों के बहाने प्रेम की कविता लिखते थे। पर, छायावादी कवि पहली बार हमारे साहित्य में अपने प्रेम की कविता लिखने के लिए अग्रसर होते हैं। सुमित्रानंदन पन्त ने 'ग्रंथि' में, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने 'जुही की कली' में तथा जयशंकर प्रसाद ने 'आँसू' में निजी प्रेम की कविता लिखी है।

बीसवीं सदी के आरम्भिक चरण में सामंती सामूहिकता के विरुद्ध व्यक्ति स्वातंत्र्य का आत्यंतिक आग्रह जब हिंदी कविता में रचनात्मक स्तर पर प्रकट होने लगा तो उसके बारे में तद्‌युगीन प्रवाह-पतित पंडितों की प्रतिक्रिया क्या थी, यह जगजाहिर है। जहाँ तक इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल के मंतव्य का प्रश्न है, यह ध्यान रखना जरूरी है कि वे उस युग के एकमात्र ऐसे आलोचक हैं, जिनका रिश्ता अपने समकालीन छायावादी आन्दोलन के साथ द्वंद्वमूलक था। पर जैसा कि किसी आलोचक ने लिखा है कि इस द्वंद्व को झगड़े के रूप में अधिक और द्वंद्वात्मक (परस्परतापरक) रूप में कम देखा गया है। सही बात तो यह है कि समीक्षा का लक्ष्य समकालीन सर्जना के जिस द्वंद्व को पकड़ना होता है, छायावाद के सन्दर्भ में अधिकांश शुक्लोत्तर समीक्षक उसे पकड़ने में प्रायः असमर्थ सिद्ध हुए। परम्परा से आचरित सामाजिक बंधनों को नकारनेवाली नवीन रचनाशीलता को लेकर आचार्य नंददुलारे वाजपेयी या डॉ. नगेन्द्र की प्रतिक्रियाओं को उसे शास्त्रीय अनुशासन में बाँधने की एक पुरजोर कोशिश के रूप में देखा जाना चाहिए, जिसे सामाजिक स्वाधीनता के आकांक्षी नवीन चेतनासंपन्न कवियों ने अपनी रचनात्मक ऊर्जा से विफल कर दिया।

छायावादी रचनाभियान के मूल्यांकन को लेकर जहाँ तक प्रगतिशील समीक्षकों के रुख का प्रश्न है, हम पाते हैं कि आरम्भ में उनकी दृष्टि घोर प्रतिक्रियावादी थी। एक जमाने से प्रगतिशीलता का दमामा पीटते-पीटते कालान्तर में अप्रासंगिकता की स्थिति में पहुँच जाने वाले प्रगतिशील आलोचक शिवदान सिंह चौहान ने तो कभी यहाँ तक लिखा था कि 'इस छायावाद की धारा ने हिंदी साहित्य को जितना धक्का पहुँचाया है उतना शायद ही भारत को हिन्दू महासभा या मुस्लिम लीग ने पहुँचाया हो'(1937, विशाल भारत)। बहरहाल, इस संदर्भ में सुखद बात यह है कि आगे चलकर प्रगतिशील समीक्षकों द्वारा ही छायावादी काव्यान्दोलन का ठीक-ठाक मूल्यांकन संभव हो सका। उस युग के साथ-साथ छायावादोत्तर

काल के अनेकानेक आलोचकों को यदि छोड़ भी दें तो डॉ. रामविलास शर्मा या डॉ. नामवर सिंह के छायावाद विषयक आलोचनात्मक चिन्तन में जो सूक्ष्म दृष्टि है, उसके बरअक्स शांतिप्रिय द्विवेदी एवं जानकीवल्लभ शास्त्री जैसे सहृदय प्रभाववादी समीक्षकों के आलोचकीय विवेक में कितनी गंभीरता है, यह अलग से बताने की जरूरत नहीं है।

रचना के स्तर पर अभिव्यक्ति के लिए आकुल-आतुर जनता की मुक्ति की आकांक्षा को शास्त्रीय अनुशासन में बाँधने की एक खतरनाक प्रवृत्ति हमें वहाँ भी दिखाई देती है, जब 'छायावाद' को अंग्रेजी की 'रोमांटिक पोएट्री' का पर्याय तथा इसी तर्ज पर छायावादी विषाद-तत्त्व को 'रोमांटिक एगोनी' की प्रतिलिपि बताने का उपक्रम किया जाता है। आज हम इक्कीसवीं शताब्दी के आरंभिक चरण में हैं, जिसकी सबसे बड़ी उपलब्धि है- उपनिवेशवाद की समाप्ति। छायावादी कविता को 'रोमांटिक पोएट्री' का पर्याय बताना तथा 'रोमांटिक एगोनी' की अवधारणा को पृष्ठभूमि में रखकर 'छायावादी विषाद-तत्त्व' पर बातें करने से हिंदी कविता के मूल्यांकन के क्षेत्र में उसी औपनिवेशिक जेहनियत से ग्रस्त होने का खतरा नजर आता है, जिसकी समाप्ति पिछली शताब्दी की सबसे बड़ी उपलब्धि मानी जा रही है।

प्रसंगवश आचार्य शुक्ल की 'बीज भाव' वाली बात मानीखेज प्रतीत होती है। 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' निबंध में शुक्ल जी ने 'करुणा' और 'प्रेम' को विश्व की तमाम उल्लेखनीय साहित्यिक कृतियों के 'बीज भाव' के रूप में मान्यता दी है। यह बात अलग है कि उन्होंने जिन कृतियों में 'प्रेम' को 'बीजभाव' बताते हुए उन्हें सिद्धावस्था का काव्य घोषित किया है, उनमें से भी अनेक में अंत:सलिला की तरह 'करुणा' प्रवहमान दिखाई देती है। भले ही वहाँ उतनी व्यापकता न हो, जितनी कि साधनावस्था वाले काव्य में होती है। जाहिर है कि इस तरह के विभाजन के अपने खतरे हैं और हमें नहीं भूलना चाहिए कि 'छायावाद का ताजमहल' कही जाने वाली कृति 'कामायनी' भले ही शुक्ल जी के विभाजन के अनुसार 'साधनावस्था का काव्य' मानी जाए पर वहाँ भी अंतिम सर्ग 'आनंद' है, जिसके उपभोग के लिए ही श्रद्धा और मनु कैलास की यात्रा करते हैं। इस बात की ओर मुक्तिबोध ने भी इंगित किया है: "छायावाद के कवि-चतुष्टय में प्रसादजी समाज और सभ्यता की व्याख्या करते हुए अरूप, आध्यात्मिक सामरस्यवाद की ओर निकल गए, संसारातीत रहस्यवाद की आनंदमयी भूमि में विचरण करने लगे।"

डॉ. परमानंद श्रीवास्तव ने लिखा है कि 'महान कविता अकेले क्रोध से पैदा नहीं होती वह पैदा होती है क्रोध और करुणा के तनाव में।' (शब्द और मनुष्य, पृ. 198) आनंदवर्द्धन ने वाल्मीकि रामायण पर टिप्पणी करते हुए कवि हृदय में उत्पन्न जिस विक्षोभ या शोक को ही श्लोक के रूप में अभिव्यक्त हुआ देख कर उसमें करुण रस की बात की है, वहाँ भी अन्यायी (व्याध) के प्रति क्रोध या आक्रोश की कमी नहीं है। सच तो यह है कि जब युगीन परिस्थितियों के दबाव या कई बार रचनाकार की निजी मनोवैज्ञानिक बुनावट के कारण इस 'करुणा' में से 'आक्रोश' गायब हो जाता है या कम हो जाता है तो 'करुणा' वहाँ अपनी रक्षणमूलक व्यापकता खोकर 'विषाद' के रूप में तत्वान्तरित हो जाती है। वाल्मीकि के राम जब कहते हैं कि -

'राज्यं भ्रष्टं वने वास: सीता नष्टा मृतो द्विज:
ईदृशीयं ममालक्ष्मीर्दहेदपि हि पावकम् ।'

(राज्य गया, वनवास मिला, सीता नष्ट हुई, पिता का मित्र जटायु मारा गया । मेरा दुर्भाग्य ऐसा है कि वह अग्नि को भी जला दे।)

- तब निश्चय ही यह विषादग्रस्त मनोदशा की अभिव्यक्ति है, जिसमें वह करुणाजन्य गत्वरता नहीं

है, जिसकी प्रतिमूर्ति राम माने जाते हैं। संभवतः इसी परिप्रेक्ष्य में छायावाद के अग्रणी पुरोधाओं में एक जयशंकर प्रसाद ने एक स्थान पर 'विषाद' को 'करुणा का विश्रांत चरण' कहा है-

'किसी हृदय का यह विषाद है
छेड़ो मत यह सुख का क्षण है
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ
करुणा का विश्रांत चरण है ।'

प्रसाद ने यहाँ 'विषाद' को 'सुख का क्षण' कह कर उसे जिस अतिरिक्त महिमा से मंडित किया है, वह न केवल प्रसाद की, बल्कि छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है और शायद इसी कारण निराला को छोड़कर प्रायः सभी छायावादी कवि यथार्थ की भूमि पर इस अति वैयक्तिक 'विषाद-तत्त्व' के मूलभूत कारणों से जूझते नजर नहीं आते। लेकिन इसका यह मतलब कतई नहीं है कि छायावाद मनुष्य की आत्यंतिक वैयक्तिकता से निष्पन्न विषाद-भाव के नकारात्मक पक्ष से अपरिचित था :

ओ जीवन की मरु मरीचिका,
कायरता के अलस विषाद !
अरे ! पुरातन अमृत अगतिमय
मोहमुग्ध जर्जर अवसाद । (कामायनी)

किन्तु, जयशंकर प्रसाद जब कहते हैं कि "मेरा अनुराग फैलने दो नभ के अभिनव कलरव में', तो अपनी कल्पना शक्ति से वे 'विषाद-दृष्टि' का अतिक्रमण करते प्रतीत होते हैं। अपने एक प्रसिद्ध गीत में उन्होंने 'विषाद-विष' पद का भी प्रयोग किया है:

अपने विषाद-विष से मूर्च्छित
काँटों से बिंधकर बार-बार
धीरे से वह उठता पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार !

महान कविता का समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य प्रायः अत्यंत प्रच्छन्न होता है। इसलिए अच्छे पाठक का दायित्व है कि उसमें जहाँ कहीं भी आधारभूत वैचारिक पृष्ठभूमि अंतर्निहित हो, उसे वह खोज निकाले। छायावाद के संदर्भ में ऐसा ही महत्वपूर्ण कार्य गजानन माधव मुक्तिबोध ने किया है। 'कामायनी' पर अपनी विलक्षण सूझ के साथ पुनर्विचार करते हुए मुक्तिबोध ने वहाँ विस्तार के साथ वर्णित जल-प्रलय के जातीय मिथक को सामन्ती सभ्यता के ध्वंस से जोड़ कर देखा है, जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के एक धक्के से छिन्न-भिन्न हो गयी थी। एलियट की शब्दावली में यदि कहें तो 'कामायनी' में वर्णित जल-प्रलय का मिथक बीसवीं सदी में सामन्ती सभ्यता के विघटन का 'मूर्त विधान' (ऑब्जेक्टिव कोरिलेटिव) है। प्रसाद जब कामायनी के 'चिंता' सर्ग में लिखते हैं -

'भरी वासना सरिता का वह
कैसा था मदमत्त प्रवाह'

या,

'कंकण क्वणित रणित नूपुर थे,
हिलते थे छाती पर हार;

मुखरित था कलरव, गीतों में
स्वर लय का होता अभिसार।'

– तो वे देव जाति की विलासिता के वर्णन के बहाने प्रकारांतर से सामन्ती समाज की ही विलासिता को चित्रित करते हैं जिसके अनेक उदाहरण रीतिकाव्य में मिलते हैं :

(i) गुलगुली गिल में गलीचा है, गुनीजन हैं
चाँदनी है, चिक है, चिरागन की माला है। – पद्माकर

(ii) सटपटाति सी ससिमुखी, मुख घूंघट पट ढांकि
पावक झर सी झमकि पड़ी, गयी झरोखा झाँकि। – बिहारी

रीतिकालीन कवियों द्वारा वर्णित सामन्ती विलासिता के चित्रों से मेल खाती अनेकानेक पंक्तियाँ जयशंकर प्रसाद के काव्य में विद्यमान हैं। 'कामायनी' के मनु का सारा विषाद इसी सभ्यता के ध्वंस को लेकर हैं जिसका वह भी एक सदस्य था –

'गया सभी कुछ गया, मधुरतम
सुरबालाओं का शृंगार'

'कामायनी' के रचयिता ने मनु को देव-सभ्यता के विध्वंस के बाद जिस मानव सभ्यता के विकास के नेता के रूप में प्रस्तुत किया है वह वस्तुतः मध्यवर्गीय सभ्यता है, जिसे मार्क्सिस्ट जार्गन में 'बुर्जुआ सभ्यता' कहा जाता है। स्वार्थ, स्पर्धा और अहं की आधारभूमि पर खड़ी इस नयी सभ्यता में मनुष्य की चेतना का विघटन स्वाभाविक है। 'कामायनी' में मनु का व्यक्तित्व किसी व्यक्ति या नायक का व्यक्तित्व-मात्र नहीं है। सच तो यह है कि कवि ने उसे व्यापक संदर्भ में संपूर्ण मध्यवर्ग के प्रतिनिधि पात्र के रूप में रखा है तथा उसके द्वारा पौराणिक आख्यान की जमीन पर आधुनिक मध्यवर्गीय मनुष्य के शील एवं उसकी विषादग्रस्त विघटित चेतना का निरूपण किया है जो हमारे युग की एक महत्वपूर्ण समस्या है। आधुनिक मनुष्य के भीतर विषाद भरा हुआ है और इससे उसकी चेतना का कौशल स्खलित हो गया है –

'स्खलन चेतना के कौशल का
भूल जिसे कहते हैं
एक बिंदु जिसमें विषाद के
नर तिरते रहते हैं।'

'चेतना का इतिहास' लिखते हुए प्रसाद मनु के बहाने आधुनिक मनुष्य की चेतना में पैदा हो गई दरार को अभिव्यंजित करते हैं और स्पष्ट ही ऐसी विघटित चेतना वाला व्यक्ति कदापि सच्चे-प्रेम का वाहक नहीं हो सकता। 'कामायनी' के इड़ा सर्ग में मनु से काम कहता है –

'तुमने तो पायी सदैव उसकी सुन्दर जड़ देह मात्र
सौन्दर्य जलधि से भर लाये केवल तुम अपना गरल पात्र।'

वस्तुतः गाँधी-युग में भारतीय सामाजिक जीवन में जो एक नैतिक वातावरण निर्मित हो रहा था, छायावाद भी कहीं-न-कहीं उससे अवश्य प्रभावित हो रहा था। निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' में भी यह प्रभाव छिटपुट रूप में देखा जा सकता है –

'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर ।'

प्रसाद के अनुसार आधुनिक मध्यवर्गीय मनुष्य की चेतना में उत्पन्न इस दरार का मूल कारण इच्छा, क्रिया व ज्ञान के क्षेत्रों में समन्वय का अभाव है। 'कामायनी' में आया 'व्यस्त' शब्द इसी बिखराव (डिसइंटीग्रेशन) की ओर इंगित करता है और इसे 'समस्त' या 'इंटीग्रेटेड' बनाये बिना मनुष्य पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता:

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हों जो निरुपाय
समन्वय उसका करे समस्त
विजयिनी मानवता हो जाय।

'कामायनी' में श्रद्धा द्वारा गाए जाने वाले गीत के एक अंतरे में चेतना की जिस थकान की चर्चा है वह भी प्रकारांतर से आधुनिक मनुष्य की विघटित चेतना का ही संकेत है, जिसे दूर करने के लिए प्रसाद की श्रद्धा वहाँ मलय-पवन की तरह आती है -

'विकल होकर नित्य चंचल
खोजती जब नींद के पल
चेतना थक-सी रही तब
मैं मलय की वात रे मन।'

यहाँ चेतना का 'थकना', प्रसव-पीड़ा से उस माता का 'थकना' है, जो कालिदास की कल्पना में जब इंदुमती के रूप में आती हैं तब 'रघुवंश' में वे लिखते हैं - 'पाश्चिमात यामिनी यामात प्रसादमिव चेतना।' रात्रि के अंतिम प्रहर में जैसे चेतना प्रसार पाती है, वैसे ही प्रौढ़ावस्था में पुत्र को जन्म देकर इंदुमती ने अपनी चेतना का प्रसार पाया। यदि कोई चाहे तो 'कामायनी' के इस गीत में आई 'मलय की वात' की रचनात्मक प्रतिध्वनि रघुवंश में वर्णित शैशव की पुलक में सुन सकता है।

'कामायनी' की रचना से बहुत पहले जयशंकर प्रसाद ने लिखा था -

ओ री मानस की गहराई !
तेरा विषाद-द्रव तरल-तरल
मूर्च्छित न रहे ज्यों पिए गरल
* * * * *
तू हँस जीवन की सुघराई ।

प्रसाद की रचनाशीलता के आरम्भिक चरण में आया 'विषाद-द्रव' ठोस कारण के साथ 'कामायनी' में अभिव्यंजित हुआ है। पर सवाल यह उठता है कि कवि ने जिस तरह मनु के मन में 'नटराज का नर्तन' कराकर उसके तमाम व्यभिचरण को कृति के अंतिम सर्ग में नष्ट होता हुआ दिखाया है, वह कहाँ तक स्वाभाविक लगता है। कहना न होगा कि प्रसाद ने मनु को जिस मानव सभ्यता के विकास के नेता के रूप में प्रस्तुत करना चाहा है, उसके नवनिर्माण की प्रक्रिया में सबसे बड़ा बाधक तत्त्व उसका सामन्ती संस्कार है। वह किसी भी तरह से उदात्त नायक सिद्ध नहीं होता, जैसा कि डॉ. नगेन्द्र सिद्ध करते रहे हैं। कारण यह कि उसमें इंद्रियलिप्सा के साथ-साथ घोर अहंकार है। उसका अपना वक्तव्य है -

(i) इन्द्रिय की अभिलाषा जितनी,
सतत सफलता पावे

जहाँ हृदय की तृप्ति विलासी
मधुर मदिर कुछ गावे।

(ii) दौड़ कर मिला न जलनिधि अंक,
आह ! वैसा ही हूँ पाखंड।

(iii) मेरा सब कुछ क्रोध-मोह के,
मृषा दान से गठित हुआ।

कोई कह सकता है कि व्यक्तिवाद का तिरोहण 'कामायनी' के नायक की उपलब्धि है। पर गंभीरतापूर्वक विचारने से कृति के अंतिम सर्ग में उसका हृदय जिस प्रकार परिवर्तित-सा होता दिखाया गया है, वह कतई स्वाभाविक नहीं लगता। कारण यह कि व्यक्तिवाद, छायावाद के साथ समाप्त नहीं हो जाता है, बल्कि उसके बाद उसका अत्यंत भयानक तथा ज्यादा घिनौना रूप समाज के सामने आया है। प्रसाद जिसे दर्शन की भाषा में इच्छा, क्रिया व ज्ञान में बिखराव कहते हैं वह और वीभत्स रूप में आज के विषादाकुल पाखंडी बुद्धिजीवी की 'ट्रैजेडी' है, जो मुक्तिबोध की 'ब्रह्मराक्षस' कविता में व्यक्त हुई है -

आत्मचेतस किन्तु इस
व्यक्तित्व में थी प्राणमय अनबन...
विश्वचेतस-बे-बनाव !!
महत्ता के चरण में था
विषादाकुल मन !
....
पिस गया वह भीतरी
औ बाहरी दो कठिन पाटों बीच,
ऐसी ट्रैजेडी है नीच !!

फर्क यह है कि जहाँ एक हद तक निराला को छोड़कर अन्य छायावादी कवियों ने आधुनिक मनुष्य की इस विषादग्रस्त रुग्ण मनोदशा का बहुत हद तक भाववादी ढंग से वर्णन-चित्रण तथा समाधान प्रस्तुत किया है, वहीं अपवादस्वरूप कुछ रचनाओं को छोड़कर निराला एवं उनकी परम्परा से जुड़े परवर्ती यथार्थवादी रचनाकारों में वास्तविकता की जमीन पर इस समस्या से जूझने की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।

बावजूद इसके, याद रहे कि छायावादी कवियों का भाववाद एक ऐसा विवेकशील भाववाद है जो अंततः भौतिकवाद का सहयोगी सिद्ध होता है, जबकि हमारे समय के कुछ नारेबाज कवियों का अविवेकी भौतिकवाद कुल मिलाकर भाववाद में पर्यवसित होता हुआ-सा प्रतीत होता है।

❑❑❑

छायावाद के आलोचकों की दृष्टि पर पुनर्विचार

❍ इमरान अंसारी

हिन्दी साहित्य में छायावाद विशेष महत्व रखता है, इसके महत्वपूर्ण होने के दो कारण हैं- पहला तो यह कि इस वाद ने आधुनिक हिन्दी साहित्य को नया नजरिया दिया और दूसरा यह कि आदिकाल और भक्तिकाल के बाद छायावाद ही वह पड़ाव है, जिस पर हिन्दी आलोचकों, चिंतकों द्वारा सर्वाधिक लिखा-पढ़ा गया। यह चिंतन का ही परिणाम है कि सौ साल बाद आज भी नए पाठक के लिए छायावाद तिलस्म बना हुआ है। असल में यह वाद उतना उलझा नहीं था जितना कि सुलझाने के चक्कर में और उलझा दिया गया। सीधे-सीधे कहा जाए तो हिन्दी साहित्य की यह प्रवृत्ति पश्चिम से आयी। इससे किसी की असहमति नहीं है। लेकिन इस बाहरी प्रवृत्ति के अनुकरण से लोगों को परहेज है। रामचंद्र शुक्ल छायावाद को स्वीकार तो करते हैं परंतु निरुत्साह रूप से। छायावाद के सम्बन्ध में जो दो बातें वे कहतें हैं, वे छायावाद के प्रति उनकी रुचि को व्यक्त करती हैं। वे लिखते हैं- "छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य-वस्तु से होता है।. .... दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में। सन् 1885 में फ्रांस में रहस्यवादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवाद (सिंबलिस्ट्स) कहलाया।" (हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ संख्या 362)

यहाँ शुक्ल जी की दोनों बातों में एक चीज समान है, वह है 'रहस्यवाद'। यह रहस्यवाद शुक्ल जी के यहाँ पहली बार नहीं आया है। यह रहस्यवाद ही है जो शुक्ल जी की निगाह में नाथों से लेकर कबीर तक के महत्व को कम कर देता है। शुक्ल जी छायावाद के प्रति अपनी अरुचि व्यक्त करने के लिए उसकी सभी प्रवृत्तियों में से 'रहस्य' पर ही ज्यादा जोर देते हैं। हालाँकि, 'पंत' के प्रकृति चित्रण पर मोहित होकर "पंत जी की रहस्य भावना प्राय: स्वभाविक ही रही।" कहकर ठीक वैसे ही अपना लेते हैं जैसे नागमती के विरह वर्णन पर मुग्ध होकर जायसी को। एक बात जो घूम-फिरकर दिमाग में आ रही है वह यह कि छायावाद का समय भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का समय रहा है। 1918 से 1936 तक एक तरफ गाँधी तो दूसरी तरफ चंद्रशेखर आजाद और भगत सिंह का दौर रहा। इस दौर में अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ भारतीय समाज पूरी ऊर्जा के साथ लगा हुआ था। उसमें भी हिन्दी लेखकों, रचनाकारों सहित पूरा हिन्दी समाज विशेष रूप से सक्रिय था। ऐसे में 'छायावाद' के रूप में साहित्य के भीतर- रहस्यवाद, वैयक्तिकता, कल्पना, करुणा, पलायन जैसे भाव, जिन पर छायावादी कविताओं में विशेष जोर दिया गया है, इसकी आवश्यकता ही क्या थी ? क्या इसलिए कि इस राह पर चलकर टैगोर 'गीतांजलि' लिखकर विश्व के महान साहित्यकारों में खुद को दर्ज करा चुके थे ? या फिर इसलिए कि नए साहित्य का यही मूल स्वर बनकर पश्चिम से उभरा था ?

देखा जाए तो पूरे यूरोप में 'विज्ञान' क्रांति के रूप में नया सवेरा लेकर आया। यह वैज्ञानिक चेतना ही थी जिसने पूरे यूरोप से 'चर्चों' द्वारा स्थापित शोषणवादी परंपरा को हिला कर रख दिया। इसी का प्रभाव रहा कि पूरे यूरोप में 1650 से लेकर 1780 तक के दशक को यूरोप का 'ज्ञानोदय' के रूप में देखा गया। यह प्रभाव इतना व्यापक रहा कि इसने साहित्य, राजनीति, संस्कृति, चित्रकला के साथ-साथ औद्योगीकरण के नए तरीकों को स्थापित किया। लेकिन इस बदलाव को साहित्यिक चिंतकों द्वारा अलग नजरिए से देखा गया। 18वीं शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते कविता पर यह आरोप लगाया जाने लगा कि कविता में बुद्धि-तत्व की प्रबलता हो गई है। कविता का भाव-पक्ष दब सा गया है। कविता में भाषा, छंद, अलंकार आदि पर ज्यादा जोर देने के कारण कविता यांत्रिक व नीरस सी हो गई है और इसके प्रतिक्रियास्वरूप स्वच्छंदतावादी काव्य का जन्म हुआ। (यह बात ठीक वैसे ही है जैसे हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया में छायावाद को देखा जाता है) इस बात में दम तो है लेकिन सिर्फ एक हद तक, क्योंकि जिस प्रकार से हिन्दी साहित्य में माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, गुप्त जी लिख रहे थे ठीक उसी प्रकार से पाश्चात्य साहित्य में भी विभिन्न रचनाकारों के साथ एक बड़ा नाम 'ब्लेक' का जुड़ता है। जिनको यूरोपीय स्वच्छंदतावादी साहित्य का अगुआ कहा गया। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार से हिन्दी साहित्य के द्विवेदीयुगीन सभी रचनाकार इतिवृत्तात्मक और केवल कविता के शिल्प पक्ष तक ही अटके हुए नहीं थे, ठीक उसी प्रकार से पश्चिम में भी इस युग के सभी रचनाकार केवल भाषा और शिल्प तक सीमित नहीं थे।

स्वच्छंदतावाद का नाता फ्रांसीसी क्रांति से भी जोड़कर देखा जाता है और यह दावा पेश किया जाता है कि- '17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही फ्रांस के रचनाकार, विचारक तथा दार्शनिक अंग्रेजी साहित्य के लिए प्रेरणा स्रोत बनने लगे थे। ऐसे में यह कैसे हो सकता है कि इस क्रांति का प्रभाव इंग्लैंड पर नहीं पड़ रहा था। इस क्रांति से व्यक्ति-स्वातंत्र्य की जो आवाज उठ रही थी वही आवाज स्वच्छंदतावादी काव्यधारा का मुख्य स्रोत बनी।'

अगर ऐसा था तो एक सवाल स्वत: ही मन में उठता है कि क्या फ्रांस की क्रांति कोई साहित्यिक घटना थी ? और स्वयं रूसो का साहित्य से क्या सम्बन्ध था ? क्या रूसो साहित्य जगत के लिए भी कोई नारा दे रहे थे ? क्या यह मान लिया जाए कि रूसो की "Man is born free, but every where he is in chains" यह ललकार स्वच्छंदतावाद को जन्म देने का जरिया बनी ? अगर यह सही है तो फ्रांस की क्रांति जो -1789 में हुई और उसी फ्रांस में स्वच्छंदतावाद का उदय लगभग 1830 में क्यों दिखता है ? इससे इतर अंग्रेजी स्वच्छंदतावाद, उसका जन्म, उस पर प्रभाव और उसके सम्पूर्ण स्वरूप पर बात करते हुए अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध इतिहासकार लिंग्विस बहुत साफ तौर पर कहते हैं- "It was Germany that supplied the new impulse and indeed that philosophical doctrine that made romanticism conscious of its aspirations; and English romanticism, in so for it was nourished by foreign thought went to school in Germany." (Emile Legouis, A Short History of English Literature, Oxford university press & page 276, 1998) लिंग्विस सीधे-सीधे एक तरफ दर्शन को स्वच्छंदतावाद का उन्नायक मानते हैं तो दूसरी तरफ जर्मनी से उसका सम्बन्ध जोड़ते हैं। देखा जाए तो यह मत बहुत हद तक सही साबित होता है। शास्त्रवाद और स्वच्छंदतावाद पर तुलनात्मक बहस सबसे पहले जर्मनी में ही देखने को मिलती है। जब जर्मन समीक्षक गेटे स्वयं कहते हैं कि - "शास्त्रवादी और स्वच्छंदतावादी कविता की प्रकृति में अलगाव का विचार जो कि मेरे और शिलर की

बहस के बीच आए।" उनका (शिलर) का लेख 'Naike and sentimental poetry' इस बात को पुष्ट करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यूरोप में और विशेष रूप से अंग्रेजी साहित्य में स्वच्छंदतावाद के उद्‌भव में जितना गहरा असर दर्शन का रहा है, बाकी सब का प्रभाव उस पर कम ही दिखता है। इस प्रकार स्वच्छंदतावाद की पृष्ठभूमि मूलतः जर्मन दर्शन को आधार बनाकर नए रूप में विकसित हुई। भावना, कल्पना, प्रतीक, बिम्ब, मिथक, स्वप्न, रूपक, व्यक्तिवादी भाव आदि विभिन्न पहलुओं पर अधिक जोर दिया जाना जर्मन-दर्शन का ही असर रहा। लेकिन इन सबके बावजूद यह नहीं कहा जा सकता कि अंग्रेजी साहित्य में स्वछंदतावाद जर्मनी की ही देन है। क्योंकि प्रत्येक साहित्य अपने समाज और वातावरण के अनुरूप ही किसी प्रभाव को ग्रहण करता है और यह बात अंग्रेजी और दुनिया के सभी साहित्य पर भी लागू होती है।

इन सभी मानकों पर जब हम हिन्दी साहित्य में 'छायावाद' को देखने का प्रयास करते हैं तो पहली बात यह सामने आती है कि छायावाद द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता के खिलाफ प्रतिक्रिया मात्र नहीं है। न ही इसका संबंध भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से उस गहराई तक है जितना हिन्दी के कथा साहित्य का है। एक चीज और कि इस दशक में गाँधीवाद का प्रभाव सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य पर दिखाई देता है लेकिन छायावादी काव्यधारा के भीतर इसका प्रभाव उस रूप में नहीं दिखता जिस रूप में इस युग की गद्य रचनाओं में दिखता है। मतलब साफ है कि पाश्चात्य साहित्य का जो प्रभाव बंगला से होकर हिन्दी में आ रहा था, जिसमें टैगोर 'गीतांजलि' जैसी विश्व स्तरीय रचना लिख चुके थे, उस शैली को छायावादी रचनाकरों ने अधिक महत्व दिया। यह प्रभाव छायावादी कवियों द्वारा अपनी-अपनी रुचि के अनुरूप ग्रहण किया गया। ठीक वैसे ही जैसे पश्चिम में वड्‌र्सवर्थ फ्रांस जाकर वहाँ की राजनीति में सक्रिय होते हुए भी आनंद की खोज में सब कुछ त्याग कर 'प्रकृति' को अपना माध्यम चुनते हैं और 'लिरिकल बैलेड्‌स' जैसी महत्वपूर्ण रचना देते हैं। उसी प्रकार प्रसाद, निराला, महादेवी और पंत अपनी अभिव्यक्ति और आनंद की खोज में अलग-अलग जमीन की तलाश करते हैं। इसलिए सब में विविधता तो है लेकिन अपनी अपनी विशेषता के साथ।

छायावाद के उद्‌भव के संदर्भ में जिस दर्शन और उसके प्रभाव की चर्चा की जा रही है, उसका ठीक-ठीक प्रमाण छायावादी रचनाकारों द्वारा भी हमें प्राप्त होता है। मसलन जयशंकर प्रसाद छायावाद को -"वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति" मानते हैं, तो महादेवी- "प्रकृति के बीच जीवन का उद्‌गीथ।" पन्त के अनुसार -"वह उस भावना की पुकार थी जो बाहर की ओर राह न पाकर भीतर की ओर स्वप्न सोपानों पर आरोहण करती हुई युग के अवसाद तथा विषमता को वाणी देने का प्रयत्न कर रही है।" तो वहीं निराला साफ-साफ लिखते हैं - "रवीन्द्रनाथ द्वारा बंगभाषा को वह जीवन मिलता है। उनकी अकेली शक्ति बीस कवियों का जीवन तथा इंद्रजाल लेकर साहित्य के हृदय केंद्र से निकली और फैली। हिन्दी में छायावादी कहलाने वाले कवियों से इसका श्री गणेश हुआ।" ('प्रबंध-पद्य' से)

छायावादी चार प्रमुख रचनाकारों में से जयशंकर प्रसाद को छोड़कर शेष तीनों ने छायावाद का असर बंगला से और बंगला में रवीन्द्रनाथ के प्रभाव को साफ तौर पर स्वीकार किया है। लेकिन इन रचनाकारों से इतर ज्यों ही हम आलोचकों पर नजर डालते हैं तो नामवर सिंह कहते हैं- "छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता है और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।" (छायावाद, पृष्ठ संख्या 17) तो शम्भुनाथ के अनुसार, "यह सामंतवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध उठते हुए पूँजीवाद का विद्रोह था।" (छायावाद युग) तो रामविलास शर्मा कहते

हैं, "छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा है वरन् थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामंती साम्राज्यवादी बंधनों के प्रति विद्रोह रहा है।" रामस्वरूप चतुर्वेदी कहते हैं, "वह (छायावाद) मूलतः शक्ति काव्य है, पुनर्जागरण चेतना का व्यापक और सूक्ष्म रूप है।"

यहाँ छायावादी रचनाकारों के मत और छायावाद पर आलोचकों के मत को रखने का प्रयोजन सिर्फ इतना ही है कि छायावादी रचनाकार स्वीकार करते हैं कि उनके लेखन में बाहरी दखल है तथा उनके लेखन का मूल स्वर अध्यात्म के धरातल पर मानव मुक्ति की आकांक्षा है। लेकिन हिन्दी आलोचकों का खेमा यह सिद्ध करने में लगा है कि छायावाद में मूलतः साम्राज्यवाद, सामंतवाद का विरोध और राष्ट्रीय जागरण ही मूल स्वर है। नामवर सिंह और उनके साथी आलोचक जिस राष्ट्रीय जागरण और सामंती तथा साम्राज्यवादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह के रूप में छायावादी काव्य को स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं, वास्तव में वह प्रवृत्ति छायावादी काव्य में दिखाई ही नहीं देती। अगर छायावादी काव्यधारा का लक्ष्य ठीक-ठीक यही होता जो नामवर सिंह और उनके साथ बाकी आलोचक बता रहे हैं, तो फिर 1936 तक छायावाद का पतन क्यों होने लगता है ? क्या इन सभी समस्याओं से 1936 तक निजात मिल जाती है? जिस कारण छायावाद के अंत की घोषणा कर दी जाती है। नामवर सिंह लिखते हैं- "वैयक्तिक स्वाधीनता से ही स्वस्थ समाज का विकास सम्भव है। पुराने ढंग की निर्वैयक्तिक अथवा व्यक्तित्व को दबाने वाली सामाजिकता से राष्ट्रीय भावना का उदय न हो सका लेकिन ज्यों ही आधुनिक युग में लोगों ने व्यक्तिगत-स्वाधीनता का अनुभव किया राष्ट्रीय स्वाधीनता की ओर भी कदम उठने लगा। पारिवारिक सीमा में इस बात को यों समझ सकते हैं कि विशाल सम्मिलित परिवार में लोगों के बीच उतना सौहार्द नहीं रहता जितना उनके विघटित हो जाने के बाद छोटे-छोटे परिवारों की विभिन्न इकाइयों में हो जाता है।" (छायावाद, नामवर सिंह, पृ. 36-37)

नामवर सिंह जिस वैयक्तिकता को स्वस्थ समाज का आदर्श बता रहे हैं और जिसे राष्ट्रीय जागरण से जोड़ रहे हैं, अगर वैयक्तिकता ही वह बीज है जिससे राष्ट्रीय भावना जागती है फिर तो 21वीं सदी के दूसरे दशक का हमारा यह समाज राष्ट्रीय भावना से अब तक का सर्वाधिक ओत-प्रोत समाज होना चाहिए था और परिवारों में सर्वाधिक प्रेम सौहार्द दिखना चाहिए था।

नामवर सिंह 'पुनरुत्थान-भावना' को पराधीन देश में राष्ट्रीयता की भावना के उदय के लिए आवश्यक बताते हैं और यह भावना अंग्रेजों के प्रयास से हम भारतीयों में उत्पन्न बताते हैं। वे लिखते हैं- "हर पराधीन देश में राष्ट्रीयता की भावना का उदय पुनरुत्थान-भावना से होता है। ...अंग्रेजों में सभी एक ही प्रवृत्ति के न थे। उनमें कुछ विद्याव्यसनी भी थे; उनके मन में भारतीय संस्कृति को जानने की सच्ची लगन थी। ...अंगरेजों ने इनकी खुदाई चाहे जिस उद्देश्य से की, परन्तु इन्होंने भारतीयों में अपनी सांस्कृतिक परम्परा का बोध जगा दिया। भारतवासियों को अपने भूले हुए अतीत का नवीन परिचय प्राप्त हुआ। सम्पूर्ण जाति में आत्म-गौरव का भाव जाग उठा।" (छायावाद, नामवर सिंह, पृ. 72-73)

अगर ऐसा है तो नामवर सिंह से यह सवाल पूछने लायक है कि भोजपुरी क्षेत्र के जो अनपढ़ गिरमिटिया मजदूर अंगरेजो द्वारा फीजी, सूरीनाम, मारीशस ले जाये गए उनमें कैसे सांस्कृतिक परम्परा का बोध जगा रहा और आज तक जगा हुआ है ? उनके बीच वे कौन लोग थे जो उनके भूले अतीत से उनका परिचय करा रहे थे ? हमारे भीतर अंगरेजों द्वारा जगाए आत्म-गौरव से उनका स्वतः जागृत आत्म-गौरव कहीं से भी कम है क्या ? देखा जाए तो अपनी भाषा, संस्कृति के प्रति हमसे कहीं ज्यादा प्रेम उनके बीच है। नामवर जी इस जातीय जागरण को प्रसाद के नाटकों ('चन्द्रगुप्त' और 'स्कंदगुप्त') में दिखाते

हैं। अब समझने वाली बात यह है कि प्रसाद के नाटक, कहानी, उपन्यास और इस दौर के अन्य रचनाकारों की गद्य-रचनाओं का छायावादी काव्यधारा से कोई ताल-मेल है क्या ? ले-देकर तीन कविताएँ- 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' (प्रसाद), 'महाराज शिवाजी का पत्र' (निराला) और 'जागो फिर एक बार' (निराला) ही छायावादी काव्यधारा की वे रचनाएँ दिखती हैं जिनका सम्बन्ध हम भारतीय स्वाधीनता से जोड़ सकते हैं। बाकी रचनाएँ चाहे 'तुलसीदास' हो या फिर 'राम की शक्ति-पूजा' छायावाद के अवसान की उस रचनाकार की रचना है जो 1936 के बाद छायावाद से अलग हो जाता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिन समस्याओं को नामवर सिंह छायावादी काव्य का मूल स्वर बता रहे हैं असल में वे सारे तत्व भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता से पहले भारतीय समाज में ज्योति बा फूले, विद्यासागर, राजा राममोहन राय, पेरियार, दयानंद सरस्वती आदि चिंतकों द्वारा उठाए जा चुके थे और इन्हीं समस्याओं के केंद्र में भारतीय स्वाधीनता संग्राम की बुनियाद डाली गयी थी। अतः इन समस्याओं से छायावादी काव्य किसी भी स्तर पर रू-ब-रू होते नहीं दिखाई देता। लेकिन इसके विपरीत छायावादी काल-खंड के भीतर लिखी गई गद्य रचनाओं (कहानी, उपन्यास, नाटक आदि) का गहरा लगाव उन सभी तत्वों से सीधे-सीधे जुड़ता है जिसका सम्बन्ध नामवर जी छायावादी काव्य से जोड़कर देखते हैं। अगर छायावादी काव्य का सम्बन्ध भारतीय स्वाधीनता से है, तो यह काव्य किस तरह की स्वाधीनता की बात कर रहा था जिसका प्रसार हिन्दी क्षेत्र के बाहर तो छोड़ ही दीजिए स्वयं हिन्दी क्षेत्र के भीतर अकादमिक जगत तक सिमटा हुआ है। इसके विपरीत प्रेमचंद का साहित्य या स्वयं प्रसाद के नाटक हिन्दी जगत और उसके बाहर भी किस स्तर तक लोकप्रिय है, हम सब बखूबी जानते हैं। अगर 'छायावाद' का अध्ययन हम उसके पतन के आधार पर करें तो वहाँ भी राष्ट्रीय जागरण और सामंती प्रवृत्ति और साम्राज्यवादी ताकतों से लड़ता हुआ यह कहीं से भी नहीं दिखता, बल्कि इन तत्वों के अभाव को ही इस धारा के पतन का मुख्य कारण बताया गया है। देवराज की किताब 'छायावाद : उत्थान पतन पुनर्मूल्यांकन' में इलाचंद्र जोशी का कथन है- "छायावाद की स्त्रैणता को उसके विनाश के लिए उत्तरदायी ठहराया गया था।" वहीं प्रगतिवादियों का कहना है- "इस पतन का कारण छायावाद की पलायन प्रवृत्ति अर्थात समाज और सभ्यता के नव-निर्माण से विमुखता और उसकी खराबियों से बचने के लिए स्वप्न या कल्पना लोक में भागने की उत्सुकता थी।" स्वयं पंत कहते हैं- "छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाश, नवीन भावना का सौंदर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था।"

कहने का तात्पर्य यह है कि छायावादी काव्यधारा का संदर्भ किसी भी स्तर पर भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता, राष्ट्रीय जागरण और सामंती, साम्राज्यवादी ताकतों का विरोध करता नहीं दिखता। छायावादी काव्यधारा की अवधारणा पाश्चात्य परंपरा की रही है जिसका गहरा सम्बन्ध तत्कालीन विश्व पटल पर हो रही हलचलों से प्रभावित दुनिया भर की साहित्यिक रचनाओं के अनुरूप था। यह बात ठीक वैसे ही समझी जानी चाहिए जैसे निर्मल वर्मा की रचनाओं का सीधा सरोकार भारतीय सामाजिक परिवेश से नहीं जुड़ता।

इन सब के बावजूद छायावाद का हिन्दी साहित्य में अपना महत्व है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में जिस तरह से सम्पूर्ण साहित्य की अवधारणा परिवर्तित हुई, उससे कविता का स्वरूप अधिक प्रभावित हुआ। खड़ी बोली की शुरुआती दौर की कविताओं में तुकबंदी और सपाटबयानी ही अधिक दिखती है। ऐसे में 'छायावाद' हिन्दी कविता के लिए नयी जमीन तैयार करता है। सम्भवतः पहली बार ऐसा हो रहा

था जहाँ कविता विषय वस्तु के स्तर पर स्थूलता से निकलकर मन मस्तिष्क के सूक्ष्म पटल से जोड़ी जा रही थी। इस तरह छायावाद हिन्दी साहित्य के भीतर कविता को नई पहचान देता है। उसका यह प्रयास उसकी महत्ता को और बढ़ा देता है।

❑❑❑

छायावाद के संदर्भ में 'कामायनी' का अध्ययन

❍ राहुल प्रसाद

सन् 1918 से लेकर 1936 तक के समय को हिंदी साहित्य में छायावाद के नाम से अभिहित किया जाता है। प्रसाद, निराला, पन्त एवं महादेवी इस काल के महत्वपूर्ण कवि के रूप में समादृत हैं। आत्माभिव्यक्ति, आत्मीयता, प्रकृति प्रेम, सौन्दर्य भावना, नारी स्वातंत्र्य की भावना, मानवतावाद, रूढ़ियों से मुक्ति, अथक जिज्ञासा, रहस्यवादिता, कल्पना का नवोन्मेष, मानवीकरण, लाक्षणिकता इत्यादि छायावाद की विशेषताएँ हैं।

छायावाद का सम्पूर्ण रूप 'कामायनी' में उभरकर आता है। छायावाद के सन्दर्भ में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं कि "छायावाद का स्थायित्व उसके व्यक्तिवाद में नहीं, उसकी आत्मीयता में है, काल्पनिक उड़ान में नहीं, आत्मप्रसार में है, समाज भीरुता में नहीं, प्रकृति प्रेम में है, प्रकृति पलायन में नहीं, नैसर्गिक जीवन की आकांक्षा में है, आवेगपूर्ण भावोच्छवास में नहीं, संवेदनशीलता में है, सौंदर्य की कल्पना में नहीं, सौंदर्य की भावना में है, स्वप्न में नहीं, स्वप्न की वास्तविक आकांक्षा में है, अज्ञात की जिज्ञासा में, ज्ञान के प्रसार में है, आदर्श में नहीं, यथार्थ में है, कल्पना में नहीं, वास्तविकता में है, दृष्टिकोण में नहीं दृष्टि में है, उक्ति वैचित्र्य में नहीं, अभिव्यंजना के प्रसार में है। छायावादी कविता की आत्मीयता, सौंदर्य-भावना, संवेदनशीलता, अथक जिज्ञासा, जीवन की लालसा, उच्चतर जीवन की आकांक्षा और इन सब के लिए संघर्ष करने की अनवरत प्रेरणा इसका स्थायी संदेश है।"[1] छायावाद को हिंदी साहित्य में भक्तिकाव्य के बाद द्वितीय स्थान दिया जाता है। 'कामायनी' छायावाद का प्रतिनिधि काव्य है। वह छायावाद की अनेक बिखरी रचनाओं के बीच स्तम्भ के समान खड़ी है।

छायावाद की कविता का आरम्भ वस्तुतः व्यक्ति के महत्त्व को स्वीकार करने एवं करवाने से हुआ है। रीतिकालीन कविता के उपरान्त व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति छायावादी कविता में मुखर रूप से देखने को मिलती है। वैयक्तिकता समूह से भिन्न अस्मिताबोध का परिचायक है। कामायनी का मनु इस वैयक्तिकता का प्रतीक है -

'मैं हूँ, यह वरदान सदृश क्यों लगा गूंजने कानों में,
मै भी कहने लगा 'मैं रहूँ' शाश्वत नभ के गानों में'[2]

वस्तुतः यह व्यक्तिवाद ही छायावादी कविता का केंद्र बिंदु भी है। छायावादी कवियों ने व्यक्तिवाद का आत्मविस्तार किया है। 'कामायनी' में इसी आत्मविस्तार और मूल्य चेतना को प्रस्तावित किया है -

'अपने में सब कुछ भर व्यक्ति कैसे विकास करेगा
यह एकांत स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा'[3]

प्रकृति-वर्णन के सन्दर्भ में डॉ. नामवर सिंह लिखते हैं कि – "प्रकृति-चित्रण में पहले के कवि जहाँ पेड़-पौधों का नाम गिनाकर अथवा प्राकृतिक दृश्यों के स्थूल आकार का वर्णन करके संतुष्ट हो लेते थे, वहाँ छायावादी कवि ने प्रकृति के अन्तःस्पंदन का सूक्ष्म अंकन किया।"[4] छायावाद में प्रकृति केवल उद्दीपन मात्र नहीं रही अपितु वह आलंबन हो गयी और कवियों की अंतर्दृष्टि उसके एक-एक व्यापार का, अन्तः सूक्ष्म चित्रण करने लगी। प्रकृति की उन्मुक्तता ने छायावादी कवियों को आत्मविस्तार के लिए प्रेरित किया। छायावादी कवियों ने प्रकृति के परमतत्व की सुन्दर अभिव्यक्ति की है। प्रसाद कृत कामायनी भी इससे अछूता नहीं रहा –

कर रही लीलामय आनंद-महाचिति सजग हुई-सी व्यक्त
विश्व का उन्मीलन अभिराम-इसी में सब होते अनुरक्त'[5]

जयशंकर प्रसाद के लिए यह प्रकृति परम रमणीय है। परन्तु देव संस्कृति भोगवादी और विलासी थी। वे सोचते थे –

स्वयं देव थे हम सब तो क्यों न विश्रृंखल होती सृष्टि
अरे अचानक हुई इसी से कड़ी आपदाओं की वृष्टि।'[6]

'कामायनी' में 'उषा सुनहले तीर बरसाती जय लक्ष्मी सी उदित हुई' और उस नीरवता में अलसाई कलियों में खिली थी ,...प्रकृति यहाँ बेहद संवेदनशील और कोमल है। छायावादी आत्मविस्तार में प्रकृति का मानवीकरण हो गया। प्रकृति को छायावादी कवि मानवीय रूप में देखते हैं –

'सिन्धु सेज पर धरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी-सी',
और
'वह विवर्ण मुख त्रस्त प्रकृति का आज लगा हँसने फिर से'[7]

'कामायनी' में प्रकृति-वर्णन के सन्दर्भ में आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं – "स्थान-स्थान पर प्रकृति की मधुर, भव्य और आकर्षक विभूतियों की योजना का तो कहना ही क्या है। प्रकृति के ध्वंसकारी भीषण रूपवेग का भी अत्यंत व्यापक परिधि के बीच चित्रण हुआ है।"[8]

सम्पूर्ण 'कामायनी' में प्रकृति के अलग-अलग रूपों का चित्रण हमें देखने को मिलता हैं। प्रकृति की भयावहता हमें चिंता सर्ग में इस रूप में देखने को मिलती है –

'दिग्दाहों से धूम उठे, या जलधर उठे क्षितिज तट के
सघन गगन में भीम प्रकंपन झंझा के चलते झटके'[9]

छायावादी कविताओं में प्रेम का बाहुल्य रहा है। कई आलोचकों ने छायावाद को प्रेम का काव्य ही माना है। छायावाद में पहली बार स्त्री एवं पुरुष के बीच स्वच्छंद प्रेम का स्वरूप दिखाई देता है। छायावादी कवियों ने अनुभव किया कि मूल प्रश्न नारी स्वाधीनता का है, प्रश्न विवाह का नहीं है, प्रेम का है, बंधन का नहीं, मुक्ति का है। 'प्रेम पथिक' प्रसाद की महत्वपूर्ण कृति है जिसमे प्रसाद ने अपने जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा की है। प्रसाद का काम पौराणिक काम से अधिक भव्य, उदात्त, एवं आधुनिक है। 'कामायनी' में मनु के रूप में भी हम इसे देख सकते हैं –

प्यासा हूँ मैं अब भी प्यासा संतुष्ट ओघ से मैं न हुआ'[10]

इस सन्दर्भ में नन्ददुलारे वाजपेयी लिखते हैं – "कामायनी प्रसाद जी की अब तक की कृतियों

में अंतिम है। अंतिम ही नहीं, विकास और विस्तार की दृष्टि से वह अन्यतम भी है। ...प्रकृति के द्वारा प्रेम, प्रेम के द्वारा प्रकृति के विकासपूर्ण सामंजस्य से प्रसाद जी का काव्य गंभीर और समुन्नत हो उठा है। अपनी मर्म-ग्राहिणी प्रतिभा के द्वारा मानव प्रकृति का विश्लेषण कर प्रसाद जी ने इस सुन्दर काव्य की रचना की है।"[11]

भारतवासियों ने स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान आर्थिक, राजनैतिक स्वतंत्रता भले न प्राप्त की हो किन्तु मानसिक रूप से स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी। छायावादी कवियों ने इसी मानसिक स्वाधीनता के कारण विचार एवं भावों का प्रसार किया। प्रसाद के नाटक इसके अन्यतम उदाहरण हैं। विह्वलता, संवेदनशीलता, ऐन्द्रिकबोध अथक जिज्ञासा का इनमें फलतः विकास हुआ है। छायावाद के सन्दर्भ में कहा जाता है कि कल्पना का जितना अधिक प्रयोग इस काल में हुआ उतना इससे पहले कभी नहीं हुआ। यहाँ तक कि इस युग की कविता को कल्पना का पर्याय तक कहा जाने लगा। पन्त अपने 'पल्लव' को कल्पना का विह्वलबाल बोलते हैं तो निराला कविता को 'कल्पना के कानन की रानी' मानते हैं और प्रसाद 'हे कल्पना सुखदान/तुम मनुज जीवन-प्रान/तुम विषाद समान' मानते हैं। एक ही कविता में अनुभूति की तीव्रता और कल्पना की उड़ान कामायनी में दिखती है जहाँ मनु एक ओर चिंता में डूबे हुए भी हैं और दूसरी ओर उनकी कल्पना में ध्वस्त देव-सृष्टि के मोहक चित्र भी उभरते जाते हैं। इसीलिए छायावाद में कल्पना को इतना महत्त्व है। छायावादी कवियों को कल्पना इतनी प्रिय थी कि उन्होंने सबसे अधिक सुन्दर, उदात्त, भव्य और महान वस्तुओं की उपमा कल्पना से दी। प्रसाद हिमालय को विश्व कल्पना कहते हैं। भावना और कल्पना के ऐश्वर्य से मंडित कर प्रसाद जी ने मानव चेतना के विकास का ऐसा भव्य चित्र अंकित किया है जो अपनी सीमाओं के रहते हुए भी विश्व साहित्य की अपूर्व उपलब्धि है। छायावादी कवि दु:ख की अति तीव्र अनुभूतियों को प्रकट करने में सिद्धहस्त है। कामायनी में भी हम इसे देख सकते हैं -

निकल रही थी मर्म वेदना, करुणा विकल कहानी सी
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही, हँसती सी पहचानी सी'[12]

छायावादी कवियों की अथक जिज्ञासा एवं कौतूहल उनके काव्य में जगह-जगह देखने को मिलता है। ऐसा लगता है जिज्ञासा इन कवियों में अंतस्थल तक पैठी हुई है। इस सन्दर्भ में नामवर सिंह लिखते हैं - "हर चीज के प्रति अथक जिज्ञासा और कुतूहल छायावाद का मंगलाचरण है। छायावाद में इस नयी शक्ति का उन्मेष था, इसीलिए उसने हिंदी साहित्य को कुछ नाम दिया।"[13] रहस्यवाद के कारण 'कामायनी' के काव्य-सौन्दर्य में विस्तार भी आता है और समृद्धि भी। यह रहस्य तांत्रिकों के साधनात्मक रहस्य और संत कवियों के ज्ञानात्मक रहस्य से भिन्न है। इसे कल्पनात्मक या सर्जनात्मक रहस्यवाद कहा जा सकता है -

महानील इस परमव्योम में अंतरिक्ष में ज्योतिर्मान
ग्रह नक्षत्र और विद्युत्कण किसका करते ये संधान'[14]

छायावाद के सन्दर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि - "छायावाद मूलतः एक शक्ति काव्य है। पुनर्जागरण चेतना का व्यापक और सूक्ष्म रूप है। अपने अर्थ प्रक्रिया में मानव को गहरे स्तरों पर समृद्ध करता है।"[15] कामायनी में देव और असुर संस्कृतियाँ भिन्न, और उनकी तुलना में अधिक सर्जनात्मक मानवीय संस्कृति के विकास का आख्यान है। उसके वर्तमान संकट की समझ है और इस संकट के

बचाव की संभाव्य दिशा सांकेतिक है। थके और पराजित मनु के प्रति अपने उद्‌बोधन का समापन श्रद्धा इन शब्दों में करती है –

> शक्ति के विद्युत्कण, जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय
> समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय'[16]

वस्तुत: छायावादी कवियों की भावुकता एवं कल्पना नए छंदों का आग्रह करने लगी थी; अत: पुराने छंदों का मोह त्याग दिया गया। परंपरागत रूढ़ियाँ जो उपमानों में प्रयोग होती थीं उनकी जगह नए उपमानों की योजना की गई। प्रसाद इस सन्दर्भ में अग्रणी पंक्ति में आते हैं। 'कामायनी' में आल्हा/वीर छंद के भेदोपभेद का प्रयोग किया गया। छायावादी कारीगरी की बारीकियों को समझने के लिए 'कामायनी' सबसे अच्छा उदाहरण है –

> 'ओ जीवन की मरु मरीचिके, कायरता के आलस विषाद'
> और
> 'अरुण की एक किरण अम्लान, अधिक अलसाई हो अभिराम'[17]

रामधारी सिंह दिनकर कामायनी एवं छायावाद के सन्दर्भ में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए लिखते हैं – "कामायनी में छायावाद के सभी लक्षण भरे पड़े हैं। ...वैयक्तिकता छायावादियों में कूट-कूट कर भरी थी। किन्तु छायावादियों की वैयक्तिकता कभी भी आक्रामक नहीं हुई न उनकी कल्पनाशीलता ही उन्हें भटकाकर वीभत्स या अवांछनीय दिशा में मोड़ सकी। ....कामायनी में रहस्यवाद उतना ही है जितना पन्त के 'मौन निमंत्रण' तथा 'स्वप्न' शीर्षक कविताओं में दिखलाई पड़ता है। ...'कामायनी' में ऐसे कई पद हैं जिनमें कल्पना अपनी पूरी विराटता में क्रीड़ा करती है और जिनके भीतर समाहित चित्रों का विस्तार, आसानी से मापा नहीं जा सकता –

> पंचभूत का भैरव मिश्रण, शंपाओं के सकल निपात
> उल्का लेकर अमर शक्तियाँ खोज रहीं ज्यों खोया प्रात
> बार-बार उस भीषण रव से कम्पित धरती देख विशेष
> मानो नील व्योम उतरा हो आलिंगन के हेतु अशेष'[18]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'कामायनी' छायावाद ही नहीं सम्पूर्ण हिंदी साहित्य की ऐसी कालजयी कृति है, जो छायावादी सभी प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। चाहे प्रकृति प्रेम हो, प्रकृति वर्णन हो, रहस्यात्मक प्रवृत्तियाँ हों, अनुभूति की सघनता हो, अथक जिज्ञासा हो, स्वाधीनता आन्दोलन की अनुगूँज हो, राष्ट्रीय चेतना का स्वर हो अथवा कल्पना शक्ति की प्रधानता हो, सभी के चित्र कामायनी में हमें देखने को मिलते हैं। यही कारण है कि 'कामायनी' को अनेक आलोचकों ने छायावाद का प्रतिनिधि महाकाव्य कहा है।

सन्दर्भ :

1. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या- 54
2. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या- 2
3. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या- 24
4. वही, पृष्ठ संख्या- 19
5. वही, पृष्ठ संख्या- 71

6. वही, पृष्ठ संख्या- 14
7. वही, पृष्ठ संख्या- 18
8. हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, कमल प्रकाशन, पृष्ठ, संख्या- 395
9. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या- 56
10. वही, पृष्ठ संख्या, 38
11. जयशंकर प्रसाद, नन्ददुलारे वाजपेयी, भारती भण्डार इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या- 61
12. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या-11
13. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, संस्करण 2010, पृष्ठ संख्या -
14. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या- 26
15. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या- 110
16. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, संस्करण 2012, पृष्ठ संख्या- 34
17. वही, पृष्ठ संख्या- 11
18. 'कामायनी दोष रहित, दूषण सहित', रामधारी सिंह 'दिनकर', लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ संख्या- 67

❑❑❑

जापान की क्रांतिकारी कवयित्री आकिको योसानो और महादेवी वर्मा

○ तोमोको किकुचि

जापानी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का प्रारंभ मेजी युग (1868) से माना जाता है, तब से जापान के समाज में पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव पड़ने लगा और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। साहित्य के क्षेत्र में भी पश्चिमी दर्शन के प्रभाव के साथ रोमांटिसिज़्म का उदय हुआ और विदेशी साहित्य का अनुवाद भी शुरू हुआ ।

आकिको योसानो जापानी साहित्य के रोमांटिसिज्म की प्रतिनिधि कवि हैं और उनका कविता-संग्रह "मिदारेगामी"(पेचीदा बाल) का उस युग में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

20वीं शताब्दी के शुरू में जापान और भारत की स्त्री की स्थिति में काफी समानताएँ पाई जाती हैं। जैसे, भारतीय स्त्री की व्यथा, बंधन, पराधीनता, परतंत्रता आदि कठिनाइयाँ थीं; लगभग वैसी ही स्थिति जापान की स्त्री में भी पाई जाती थी। जापान में भी पुरुष का सम्मान आवश्यकता से अधिक किया जाता था और स्त्री की घोर उपेक्षा हो रही थी, लड़कियों की शिक्षा की स्थिति बहुत खराब थी। विवाहित स्त्री से मात्र यही अपेक्षा की जाती थी कि वह घर को सँभाले और बच्चे की देखभाल करे, इसलिए स्त्री को पुस्तक पढ़ने या शिक्षा प्राप्त करने की कोई जरूरत नहीं थी। आदर्श स्त्री के लिए विनम्रता प्रथम शर्त थी, अपने विचार या आवाज की सार्वजनिक प्रस्तुति अशिष्टता का प्रमाण था और वैसे ही स्त्री दूसरे दर्जे में रखी गई थी। ऐसे युग के समाज में आकिको का प्रवेश एक क्रांतिकारी कवयित्री और समाज विचारक के रूप में हुआ। उनकी रचना और जीवनी को तत्कालीन स्त्री की वास्तविकता को समझने की सर्वोत्तम विधा कह सकते हैं। क्रांतिकारिता और स्वाधीनता की दृष्टि से आकिको प्रथम और अनन्य महिला थीं। वह एक नई स्त्री थीं और अनोखी रोमांटिक कवयित्री थीं। स्त्री पाठकों को उनकी रचना के माध्यम से स्वाधीनता एवं जागरुकता की असीम प्रेरणा मिली।

आकिको योसानो का जन्म 7 दिसंबर, 1878 को जापान के पश्चिमी क्षेत्र, ओसाका जिले के सकाई शहर में हुआ। वह संपन्न पारिवार की बेटी थी, 9 साल की उम्र में वह स्कूल भेजी गई और आगे चलकर उसे उच्च शिक्षा पाने का दुर्लभ अवसर भी प्राप्त हुआ। 12 साल की आकिको साहित्यिक पत्रिका और उपन्यास पढ़ने लगी। 20 साल की हुई तो उसने कविता लिखना शुरू किया और कई पत्रिकाओं को अपनी कविताएँ भेजने लगी। 1900 में 22 साल की आकिको की मुलाकात सुप्रसिद्ध कवि तेक्कन योसानो से हुई और वह उनसे प्रेम करने लगी। आकिको जानती थी कि तेक्कन विवाहित थे, फिर भी उसने तेक्कन से प्रणय निवेदन किया। जाहिर है कि तत्कालीन सामाज में आकिको का व्यवहार स्वीकार्य नहीं था। फिर भी आकिको ओसाका अपना घर छोड़कर तेक्कन के पास तोक्यो भाग चली। तेक्कन द्वारा संपादित अत्यंत लोकप्रिय एवं रोमांटिसिज़्म की प्रतिनिधि साहित्यिक पत्रिका "म्योजो" (ज्योति) में

आकिको की प्रेमानुभूति से भरी हुई भावुक कविताएँ छपने लगी। 1901 को आकिको का पहला कविता –संग्रह 'मीदोरिगामि' (पेचीदा बाल) का प्रकाशन हुआ, जिसमें उसने स्त्री की कामानुभूति का खुलकर चित्रण किया। इस पुस्तक के साथ आकिको रोमांटिक कवयित्री के रूप में सहसा लोकप्रिय हो गई। 20वीं शताब्दी के शुरू में जापानी स्त्रियों के साथ अनेक प्रकार के सामाजिक बंधन थे । प्रेम, स्वाधीनता आदि विषयों की सार्वजनिक अभिव्यक्ति निषिद्ध थी। ऐसे युग में आकिको ने स्त्री की प्रेमानुभूति का स्वतंत्र चित्रण कर दिखाया। रूढ़िवादी साहित्यकारों व आलोचकों ने उसकी कविता की घोर निंदा की, परंतु युवा पाठकों के बीच आकिको अत्यंत लोकप्रिय बनी और युवा पीढ़ी ने उसकी कविता की खुलकर प्रशंसा करते हुए जोश के साथ उसका स्वागत किया। इस प्रकार न केवल जापानी साहित्य के क्षेत्र में बल्कि संपूर्ण समाज में आकिको की रचना के साथ बड़ी क्रांति हुई।

जापान की क्रांतिकारी कवयित्री आकिको का परिचय मिलने के बाद हमारे मन में सहसा हिन्दी साहित्य की छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा की याद आ जाती है। 20वीं शताब्दी के मध्य के भारत में महादेवी जैसी स्त्री का अस्तित्व आश्चर्यजनक था। उनके युग और समाज को ध्यान में रखते हुए हमें पुनः यह अच्छी तरह समझना चाहिए कि भारतीय स्त्री की स्वतन्त्रता के लिए महादेवी की रचनाओं का कितना महत्वपूर्ण स्थान है। उस समय के समाज में स्त्री द्वारा रचित कविता एक असीम साहस का प्रमाण थी। तत्कालीन सामान्य स्त्री के लिए महादेवी जैसे साहस को अपनाना लगभग असंभव था, फिर भी स्त्री पाठक महादेवी के साहित्य में आशा की किरण जरूर देखती थीं और अपनी क्षमता एवं शक्ति की संभावना की ओर धीरे धीरे जागृत होने लगती थीं। साहित्यकार और समाज सेविका के रूप में महादेवी की प्रेरणा बहुत प्रभावशाली थी ।

माहदेवी ने प्रयाग महिला विद्यापीठ कॉलेज की प्रधानाचार्या के रूप में लड़कियों की शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण योगदान किया, इतना ही नहीं वे गाँव के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने के लिए शिक्षा अभियान भी चलाती रहीं। उनका आश्चर्यजनक व्यक्तित्व है जिन्होंने एक ही समय में अनेक भूमिकाओं का सफलतापूर्वक निर्वाह किया। ठीक वैसे ही आकिको का भी जीवन रहा, वे अपने पति के स्थान पर आजीविका चलाने की कोशिश करती रहीं, उनको अकेले घर की आर्थिक स्थिति संभालनी पड़ती थी। केवल कविता ही नहीं, बल्कि निबंध, बाल कथा, समीक्षा, उपन्यास आदि उनको लेखन का जो भी काम मिला, वे सब स्वीकार करती थीं, क्योंकि आकिको ने सिर्फ लेखन के काम के जरिए आजीविका चलाने का दृढ़ संकल्प किया था।

इन दो महाकवयित्रियों का अत्यंत व्यस्त एवं बहुरूपी जीवन था। महादेवी कहती हैं, "सब स्त्रियों में जागृति उत्पन्न करने, उन्हें अभाव का अनुभव कराने का भार विदुषियों पर है और बहुत समय तक रहेगा" "यदि वे (विदुषियाँ) अपने उत्तरदायित्व को समझ लेंगीं तो वे अपने आप में उसे पूर्ण करने की शक्ति का भी अनुभव कर सकेंगी।" जाहिर है कि उत्तरदायित्व बोध ही उनके अगम जीवन को सँभालने की शक्ति का स्रोत रहा होगा। महादेवी के युग और समाज में स्त्री द्वारा रचित साहित्य स्वयं एक असीम साहस का प्रमाण था, और आकिको के संदर्भ में भी वही कह सकते हैं। इन कवयित्रियों का साहस भी उस उत्तरदायित्व बोध पर ही आधारित था।

जैसे आकिको और महादेवी के विचार और व्यक्तित्व में काफी सामंजस्य है, वैसे ही उन दोनों के साहित्य में भी आश्चर्यजनक समानताएँ हैं।

आकिको का नाम जितना कवयित्री के रूप में प्रसिद्ध है उतना ही अनुवादक के रूप में भी। प्राचीन जापानी साहित्य में "गेंजि मोनोगतरी" (राजकुमार गेंजी की कहानी) का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, जिसे विश्व में प्राचीनतम उपन्यास माना जाता है। आकिको ने उस विशाल उपन्यास का आधुनिक जापानी भाषा में रूपान्तरण किया। यद्यपि महादेवी के साहित्य में इस पर कम ध्यान दिया गया है, पर उन्होंने अनेक संस्कृत काव्य का उत्कृष्ट हिन्दी रूपांतरण करते हुए उसे अपनी इतिवृत्तात्मकता से मुक्त करने का सफल प्रयास किया। इस प्रकार दोनों कवयित्रियों ने प्राचीन साहित्य को नई दृष्टि से देख कर आम पाठकों तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान किया ।

महादेवी ने 'चाँद' पत्रिका की संपादिका के रूप में तत्कालीन स्त्री की स्थिति को सुधारने का पूरा प्रयास किया, ठीक वैसी ही कोशिश आकिको ने भी की कि 1911 में प्रकाशित उनकी समीक्षा और संस्मरण का संकलन 'इचिगूयोरि' (एक कोने से) में उन्होंने समाज में विद्यमान विरोधाभास एवं अन्याय की सख्त आलोचना की। उसी समयपत्रिका 'सेतो' (नीला मोजा) का भी जन्म हुआ, जो स्त्री रचनाकार एवं संपादिका द्वारा स्त्री पाठकों के लिए प्रकाशित जापान की प्रथम स्त्री पत्रिका थी। 'सेता' में आकिको की कुल 12 कविताएँ छपी थीं ।

महादेवी भारत की उत्तरी सीमा पर चीन के आक्रमण के समय 'हिमालय' काव्य संग्रह को, और बंगाल के अकाल पर 'बांग दर्शन' काव्य संग्रह को प्रकाशित कर अपनी सामाजिक चिंता व्यक्त की। आकिको ने भी जापान-रूस युद्ध के समय उनकी सुप्रसिद्ध कविता 'कीमिशिनितमोकोतोनाकारे', यानी "मेरे भाई, तुम अपना जीवन कभी न चला जाने दो" की रचना की, जिसमें वह खुलकर युद्ध का विरोध करती हैं और युद्ध स्थल पर जाने वाले अपने भाई को संबोधित करती हैं। उस युग के जापान में युद्ध के बलिदान को आदर्श पुरुष का अंतिम लक्ष्य माना जाता था। परंतु वास्तविकता अलग थी कि कोई नागरिक अपने पिता, भाई, पति और दोस्त की मृत्यु नहीं चाहता था। वही सहज मानवीय संवेदना है, फिर भी सार्वजनिक रूप में उस प्रकार के सहज मानवीय भाव को प्रकट करने की हिम्मत किसी नागरिक के पास नहीं था। ऐसी स्थिति में उपर्युक्त आकिको की कविता में उसके दृढ़ संकल्प का स्वर संपूर्ण स्त्री जाति की कामना का प्रतिनिधित्व करता है।

महादेवी की रचना में करुणा और दुख की प्रधानता है, जो कविता और गद्य दोनों की अनुभूति का आधार है। एक ओर कविता में उसकी अभिव्यक्ति मार्मिकता के साथ हुई, तो दूसरी ओर उनके गद्य में आक्रोश के साथ। उनके गद्य में समाज के अन्याय के प्रति घोर असंतोष और आक्रोश है और महादेवी की करुणा चीख उठती है। फिर भी अगर हम उनकी कविताओं को ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं तो उनमें भी महादेवी का आक्रोश दिखाई देने लगता है। दूसरों के दुख को देखकर दुखी होना करुणा की विशेषता है, अतः अन्याय के प्रति क्रोध का उत्पन्न होना सहज है । महादेवी की निम्न कविता में करुणा और क्रोध का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है,

अलि मैं कण कण को जान चली,
सब का क्रंदन पहचान चली !
जो आँसू से धुल धुल उजला
जो निष्ठुर चरणों का कुचला
मैं मरु उर्वर में कसक भरे

अणु अणु का कंपन जान चली
प्रति पग को कर लयवान चली ?

इन आँखों के रस से गीली !
रज भी है दिव से गर्वीली !
मैं सुख से चंचल दुख बोझिल
क्षण क्षण का जीवन जान चली !
मिटने को कर निर्माण चली !

(दीपशिखा)

इस कविता में भारत की स्त्री की खीझ प्रस्तुत है। जापान में भी एक कवयित्री खीज उठती है। 20वीं शताब्दी के शुरू के जापान में गर्भावस्था एवं प्रसूति को अशुद्ध माना जाता था। आकिको के कुल 11 बच्चे हुए। जब उनकी छठी प्रसूति में दूसरी बार जुड़वां बच्चे का जन्म होने वाला था तब उन्होंने निम्न कविता लिखी। वह सोचती थी कि स्त्री असहनीय दर्द सह कर, जान की बाजी लगाकर बच्चा जनती है, फिर भी क्यों समाज में स्त्री का सम्मान नहीं होता। आकिको की मशहूर कविता प्रस्तुत है,

मैं पुरुष पर आरोप करती हूँ
न तू बच्चा जनता
न ही जान की बाजी लगती
बस फुरसत भरा अवकाश

महादेवी मिटने की बात करती हैं और आकिको जनने की बात करती हैं, फिर भी दोनों कवयित्री स्त्री की निर्माण-शक्ति की ओर संकेत करती है।

महादेवी की अद्भुत सृजनशीलता है जो पाठकों के दिल को झकझोरकर प्रेरित करती है। निम्न कविता में उनकी सुदृढ़ आवाज गूँज रही है,

चिर सजग आँखें उनींदी आज कैसा व्यस्त बाना !
जाग तुझको दूर जाना !

बाँध लेंगे क्या तुझे यह मोम के बंधन सजीले?
पंथ की बाधा बनेंगे तितलियों के पर रँगीले ?
विश्व का क्रंदन भुला देगी मधुप की मधुर गुनगुन,
क्या डुबा देंगे तुझे यह फूल के दल ओस-गीले ?
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना !
जाग तुझ को दूर जाना !

("सांध्य गीत")

ठीक वैसे ही आकिको भी 'यामा नो उगोकु हि' (एक दिन पहाड़ हिलता है) की कविता में स्त्री के जागरण का गीत गाती है।

मैं कहती हूँ, आज पहाड़ जरूर हिलता है

मगर लोग विश्वास नहीं करते
पहाड़ केवल थोड़ी देर के लिए सो रहा है
एक जमाने में वह आग उगलकर हिलता था
भले ही कोई उसका विश्वास न करे,
पर लोगों, सिर्फ इसका विश्वास करें
नींद में डूबी सभी औरतें अब जागकर हिलती हैं

जापान की स्त्रियाँ दूसरे दर्जे में रहने के लिए विवश थीं, वे इस कविता से प्रेरित होकर खड़ी होने लगीं। आदिकाल के जापान की स्त्रियाँ तत्काल की स्त्रियों से अधिक जीवंत थीं और अपनी क्षमता का उपयोग स्वतंत्रता के साथ कर सकती थीं, लेकिन समयान्तर से उस स्थिति का पतन हो गया। आकिको इस कविता के साथ स्त्रियों को याद दिलाती हैं कि अब खड़ा होने का समय आ गया। उनकी कविता में व्यक्त पहाड़ स्त्री का प्रतीक है, ठीक वैसे ही महादेवी की कविता में भी हिमालय व्यक्तिगत आदर्श का विषय होने के साथ साथ श्रेष्ठ स्त्री का प्रतीक है। 'हिमालय' पुस्तक में प्राचीन काल से आधुनिक युग तक के हिमालय से संबंधित अनेक कविताओं को संकलित किया गया। उसमें महादेवी हिमालय की स्तुति इस प्रकार करती है

"तू वज्र-कठिन किसलय-कोमल !"

इस कविता में स्त्री की दो विपरीत प्रकृति पर प्रकाश डाला गया है। अन्यत्र भी महादेवी की अनेक कविताओं में कोमल एवं कठिन जैसी स्त्री की विपरीत प्रकृतियों का समन्वय हुआ; जैसे,

"नयनों में दीपक से जलते, पलकों में निर्झरिणी मचली"

असल में ऐसा समन्वय स्त्री की अनुभूति में सहज है, जिससे स्त्री के एक खास व्यक्तित्व का निर्माण होता है।

महादेवी और आकिको की कविता में काफी समानताएँ होने के बावजूद एक बड़ा अंतर भी है। आकिको की कविता में ऐंद्रिकता की विशेषता है और यौन विषय एवं प्रेमानुभूति की खुलकर अभिव्यक्ति हुई जो उनके प्रथम काव्य संग्रह 'मिदारेगामि' (पेचीदा बाल) की प्रमुख विशेषता है। इस काव्य संग्रह से कुछ कविताएँ प्रस्तुत हैं, जिनके साथ आकिको ने समाज तथा स्त्री के जीवन में क्रांति लाई थी।

बीस बरस की मैं
कंघी से बहते काले बाल
खुद को निहारती सगर्व
सुंदर बसंत सी नवयौवना

यह अत्यंत चित्रात्मक कविता है, जिसमें यौवन के प्रति गर्व एवं हर्ष की भावना का प्रभावशाली चित्रण हुआ। बीस साल की युवती अपने लंबे, काले और बहुत सुंदर बालों में मंत्रमुग्ध होकर कंघी कर रही है। शीशे में खुद को निहारते हुए वह अपने बालों के सौंदर्य और अपने यौवन की रमणीयता की खुलकर प्रशंसा करती है। 20वीं शताब्दी के शुरू में इस प्रकार की भावुक कविता लिखने वाली केवल आकिको ही थी

मेरी इस कोमल त्वचा के भीतर

बहता गरम रक्त
उसे छुए बिना तुम अकेले
केवल देते रहते हो उपदेश

तत्कालीन जापान में स्त्री अपने शरीर के अंगों को नहीं दिखाती थी और संपन्न परिवार की स्त्री के लिए ऐसा करना वर्जित था। परंतु आकिको की उपर्युक्त कविता उस प्रकार के सामाजिक मानदंड को नकारती है। नायिका अपने शारीरिक सौंदर्य की ओर संकेत करते हुए पुरुषों को चुनौती देती है कि तुम हमेशा अकेले रहते हो और लोगों को सिर्फ उपदेश देते रहते हो, तुम्हारा जीवन कितना नीरस है। असल में इस विषयात्मक कविता ने न केवल स्त्री को बल्कि पुरुष सहित संपूर्ण पाठक समाज को हैरान कर दिया।

महादेवी की कविता में आकिको जैसी विषयात्मक प्रवृत्ति बिलकुल नहीं पाई जाती। उनकी कविता में प्रेमानुभूति की रहस्यमय और अप्रत्यक्ष अभिव्यक्ति हुई और इसी कारण कभी कभी उनकी कविता दुरूह हो जाती है। फिर भी आकिको की प्रवृत्ति की छाया महादेवी की निम्न कविता में देख सकते हैं। महादेवी जीवन की क्षणभंगुरता की ओर संकेत कर, इस छोटे से पद के माध्यम से जीवन के सत्य की ओर संकेत करती हैं,

"यहाँ किस का अनंत यौवन, अरे अस्थिर छोटे जीवन",

महादेवी कहती हैं कि हमारा यौवन काल क्षणिक है, वैसे ही जीवन भी क्षणिक है। यह आश्चर्य की बात है कि आकिको ने भी ठीक वैसे ही विचार निम्न कविता में प्रस्तुत किया,

कुछ दिन का बसंत
जीवन की अमरता क्या
तुम्हारे हाथ खींचती हूँ
अपने उन्नत स्तन की ओर

यह बहुत सुंदर और ऐंद्रिक कविता है, जिसमें प्रेम के आनंद का खुलकर चित्रण हुआ है। आकिको स्त्री की कामानुभूति को सहज भावना के रूप में समर्थन करती है। यौवन काल वसंत ऋतु की तरह होता है, बहुत देर तक नहीं रहता। किसी का भी जीवन अमर नहीं हो सकता। कविता में नायिका का यौवन परिपक्व हो रहा है और वह सोचती है कि अपने प्रेमी को उसे समर्पित क्यों न करूँ। इस कामना के साथ वह दुस्साहस करती है। वह अपने स्तन की ओर प्रेमी का हाथ खींच लेती है।

यद्यपि इन दो कवयित्रियों के स्वभाव में बड़ा अंतर है, पर एक ओर आकिको में विवाहित पुरुष तेक्कन से प्रणय निवेदन करने का साहस था, तो दूसरी ओर महादेवी ने विवाह को ही अस्वीकार करने का साहस समाज को दिखाया। इस प्रकार प्रतिरोधी स्थिति में डटकर खड़ी रहने का साहस और सुदृढ़ता उन दोनों कवयित्रियों के व्यक्तित्व के केंद्र में स्थित है।

आकिको और महादेवी ने कविता के माध्यम से समाज को जो चुनौती दी, यह उन दो कवयित्रियों के असीम साहस का प्रमाण है। दोनों कवयित्री की कभी मुलाकात नहीं हुई, लेकिन दोनों की कविता में आश्चर्यजनक समानता है, तो हमें लगता है कि महादेवी और आकिको की कविता में स्त्री की शाश्वत समस्या को उठाया गया है, जो दुनिया के हर कोने में पाई जाती है।

महादेवी गाती हैं-

'विस्तृत नभ का कोई कोना
मेरा न कभी अपना होना
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !'
(सांध्य गीत)

जब आकिको ने 'इचिगूयोरि' यानी 'एक कोने से' नाम का निबंध संग्रह प्रकाशित किया, उसी समय उसने निम्न कविता भी लिखी-

केवल प्रथम पुरुष का प्रयोग कर लेख लिखना चाहती हूँ
मैं एक कोने में रहेने वाली एकाकी स्त्री हूँ
केवल प्रथम पुरुष का प्रयोग कर लेख लिखना चाहती हूँ
मैं, मैं।

उस समय की स्त्री को सिर्फ परिवार के लिए जीना पड़ता था, मात्र वही समाज की माँग थी। स्त्री का अपना विचार, अपनी इच्छा और अपनी सुविधा के लिए कोई जगह नहीं थी, अर्थात 'मैं' का प्रयोग नहीं कर सकती थी। आकिको इस कविता में उस प्रकार के सामाजिक वर्चस्व का विरोध करती हैं। वह स्त्री का आत्म सम्मान चाहती हैं और अपने विचार को अपने इच्छानुसार लिखने की स्वतन्त्रता चाहती हैं। वे दो कवयित्रियाँ जिस रूप में अपनी आवाज उठाती रहीं, उसमें भी आश्चर्यजनक समानता है। उनकी आवाज में अपने समाज की संपूर्ण स्त्रियों की आवाज शामिल है। दुनिया के आधे हिस्से की स्त्रियों को जीने के लिए समाज में एक कोना ही मिला। उस कोने से स्वतन्त्रता पाने के लिए और अपनी जगह बनाने के लिए दोनों कवयित्रियाँ चीख रही थीं।

❑❑❑

छायावादी काव्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि

❍ तेलानी मीना होरो

प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व भारतीय राजनीति में जो हलचल पैदा हुई उसी के बीच से साहित्यिक चेतना की नवीन लहर का आगमन हुआ जिसके विकसित रूप को आगे चलकर 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया, अर्थात् छायावादी साहित्य की परिस्थितियों का निर्माण उन्नीसवीं सदी के अंत तक आते-आते हो चुका था और उसकी अभिव्यक्ति भी साहित्य में होने लगी थी। ये दीगर बात है कि उसकी पहचान उस समय नहीं हो पाई। होती भी कैसे, साहित्य की वह नवीन चेतना अंतर्मुखी जो थी। वह रहस्यमयता और सूक्ष्मता की चादर में लिपटी हुई थी। वस्तुतः 'ब्रिटिश साम्राज्य की अचल सत्ता और समाज में सुधार की दृढ़ नैतिकता असंतोष और विद्रोह की भावनाओं को बहिर्मुखी अभिव्यक्ति का अवसर दे भी नहीं सकती थी।' परिणामतः साहित्य की नवीन चेतना छायाचित्रों में अभिव्यक्ति हुई।

छायावादी काव्य की राजनीतिक पृष्ठभूमि का तार 1857 की घटना से जुड़ा है। 1857 की घटना केवल सत्ता के खिलाफ विद्रोह नहीं थी। वह अंग्रेजी सभ्यता, शासन-नीति और सामाजिक-आर्थिक शोषण के विरुद्ध भारतीय चेतना का जागरण थी। इस जागरण की साहित्यिक अभिव्यक्ति तीन चरणों में हुई। प्रथम चरण भारतेन्दु युग, द्वितीय चरण द्विवेदी युग और तृतीय चरण छायावाद के रूप में। छायावाद को परिवर्तन या क्रांतिकाल भी कहा जाता है। यह समय पूर्व में हुए प्रयासों का परिणाम है। साहित्य और राजनीति दानों की दृष्टि से इस काल की उपलब्धियाँ महान और अविस्मरणीय हैं। राजनीति के क्षेत्र में जिसे गाँधी युग के नाम से जाना जाता है, साहित्य के क्षेत्र में उसे 'छायावाद' के नाम से जाना जाता है। अतः छायावाद का तत्कालीन राजनीतिक उथल-पुथल से गहरा संबंध है। यह संबंध भले ही पद्य में मुखर नहीं है, परंतु गद्य में सुस्पष्ट है। हिंदी का गद्य साहित्य अपने समय और समाज को आवाज देने में अग्रणी है जबकि कविता उसके पीछे-पीछे चलती हुई दिखाई पड़ रही है। संभवतः एक युग पीछे।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में 'भारतीय राजनीतिज्ञ अंग्रेजी सभ्यता, शिक्षा-दीक्षा, शासन-पद्धति तथा साम्राज्यवाद के प्रति आस्थावान दिखाई पड़ते हैं। यह आस्था बीसवीं सदी के प्रथम दशक तक देखी जा सकती है। इसके बावजूद नेतृत्वकर्त्ताओं में एक वर्ग ऐसा भी था जो राष्ट्र की स्वतंत्रता का प्रबल समर्थक था और वह सामाजिक जागरूकता एवं राष्ट्रीय एकता के लिए लगातार प्रयास कर रहा था। ऐसे ही नेताओं के प्रयास से राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ तथा स्वतंत्रता की मांग बढ़ने लगी।[1] इसी समय विश्व राजनीति का समीकरण भी उन्मादी रूप लेने लगा। सन् 1904 में जापान और रूस के बीच युद्ध हुआ, जिसमें रूस की पराजय हुई। इस पराजय ने भारतीयों को एक संदेश दिया कि जब रूस जैसा शक्तिशाली देश पराजित हो सकता है तो अंग्रेजी साम्राज्यवाद से मुक्ति क्यों नहीं मिल सकती। फलस्वरूप भारतीय

राष्ट्रवाद का आत्मविश्वास बढ़ा और अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध नारे बुलंद हुए।

सन् 1919 के बाद भारतीय राजनीतिक गतिविधियों में अप्रत्याशित परिवर्तन दिखाई पड़ता है जो राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण साबित हुआ। यह परिवर्तन प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामों के कारण था। प्रथम विश्वयुद्ध ने सारी दुनिया की राजनीतिक वस्तुस्थिति को पलट कर रख दिया। प्रेमचंद जैसे साहित्कार ने प्रथम विश्वयुद्ध को साधारण जनता के हक में अत्यंत महत्त्वपूर्ण पाया। वे लिखते हैं, "सचमुच जनता का इतना गौरव इस युद्ध से पहले कभी न था। वास्तव में इस युद्ध में अगर किसी की जीत हुई तो वह है जनता की जीत। इस युद्ध ने जनता के लिए वह कर दिया है जो फ्रांस की राज्य क्रांति ने भी न किया था।"[2]

निस्संदेह, प्रथम विश्वयुद्ध ने राजनीति को गहराई से प्रभावित किया। इस युद्ध की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि अनेक साम्राज्यवादी देश आपस में लड़कर कमजोर हो गए और सामान्य जनता के ऊपर से उनकी पकड़ कमजोर पड़ गई। आस्ट्रिया और जर्मन साम्राज्य टूट गए और पूर्वी यूरोपीय देश के लोग आजाद हो गए। आस्ट्रिया और जर्मनी में भी राजतंत्र समाप्त हो गया तथा लोकतंत्र की स्थापना हुई। इसी तरह बलगारिया में कृषक संघ को सत्ता प्राप्त हुई। इतना ही नहीं इंग्लैंड की साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था चरमरा गई, उसके प्रशासक कमजोर पड़ गए और अंततः उन्हें इंग्लैंड के मजदूरों व औरतों की मांगों को मानने के लिए विवश होना पड़ा। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि प्रथम विश्वयुद्ध ने साम्राज्यवादियों की शक्तिहीन कर मजदूर, किसानों एवं औरतों के क्रांतिकारी आंदोलन को नई ऊर्जा दी।

इस युद्ध की महत्त्वपूर्ण घटना यह हुई कि "साम्राज्यवाद की विश्व-व्यवस्था की एक कड़ी टूटकर हमेशा के लिए अलग हो गई; सोवियत संघ में बोल्शेविकों के नेतृत्व में मजदूर वर्ग का शासन कायम हुआ जो सारी दुनिया की मेहनतकश जनता के लिए शोषण-उत्पीड़न और वर्ग समाज के लिए क्रांतिकारी संघर्ष की प्रेरणा का केन्द्र बन गया।"[3]

भारत में चल रहे राष्ट्रीय आंदोलन को भी उक्त परिस्थितियों ने त्वरा दी। भारतीय समाज गहराई तक प्रथम विश्वयुद्ध से प्रभावित हुआ। भारतीयों के लिए यह युद्ध नहीं था, 'लड़ाई' थी। एक ऐसी लड़ाई जिसमें भारतीयों का बहुत कुछ दांव पर लगा था। प्रो. वीर भारत तलवार ने इस संदर्भ में ठीक ही लिखा है कि "लड़ाई शब्द भारत के किसानों की जिंदगी का हिस्सा बन गया क्योंकि इस लड़ाई के लिए उनसे 'चंदा' लिया गया था; लड़ाई चंदा। वह लड़ाई भारत के किसानों के पैसों से चल रही थी। उसमें लड़ने वाले सिपाही भी भारत के किसान ही थे; किसानों के भाई-बेटों को रंगरूट बनाकर लड़ाई के मैदानों में भेजा गया था। यूरोप के मैदानों में जो खून बह रहा था, उसमें भारत के किसानों का खून बह रहा था। भारत के सभी अखबार चाहे राष्ट्रवादी हों या अंग्रेजों के पिट्ठू - यूरोप की लड़ाई की खबरों और तस्वीरों से भरे रहते थे।"[4]

प्रथम विश्वयुद्ध में भारतीयों की प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष भागीदारी ने उन्हें अनेक उम्मीदों से बाँध रखा था। साम्राज्यवादी सत्ता ने उनसे अनेक वादे किए थे उसके पूरा होने की कोई उम्मीद नजर नहीं आ रही थी। परिणामतः लड़ाई खत्म होते ही अगले कुछ वर्षों के भीतर यूरोप और एशिया के अन्य देशों की भाँति भारत में जन-आंदोलनों की आँधी आ गई। लड़ाई खत्म होने बाद भारत में जितने जन-आंदोलन हुए पहले कभी नहीं हुए थे। स्वराज्य-आंदोलन, किसान आंदोलन और मजदूर आंदोलन मुख्यतः ये तीन प्रकार के आंदोलन भारतीय राजनीति की दिशा बदल रहे थे।

1919 में प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के तुरंत बाद रौलट एक्ट के विरूद्ध संपूर्ण भारत में सत्याग्रह

आंदोलन चल पड़ा। लगभग इसी समय कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने मिलकर खिलाफ़त आंदोलन छेड़ दिया। कुछ समय पश्चात असहयोग आंदोलन की हवा चल पड़ी। मजदूरों ने भी हड़तालों का सिलसिला शुरू कर दिया। मजदूरों की हड़ताल निरंतर व्यापक होती जा रही थी। मजदूरों की हड़ताल विदेशी सत्ता के ऊपर एक बवंडर की तरह मंडरा रही था जिसे अनदेखा करना संभव नहीं था। ये सारे आंदोलन विश्वयुद्ध से प्रसूत परिस्थितियों की देन थे। वस्तुतः इन आंदोलनों के बीज पिछले कई दशकों से ब्रिटिश राज के संरक्षण में अंकुरित हो रहे थे। प्रथम विश्वयुद्ध ने उन बीजों को खाद-पानी देकर पौधा और वृक्ष बनने का मौका दिया।

प्रथम विश्वयुद्ध के परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति और समाज में व्यापक परिवर्तन लक्षित होता है, आर्थिक ढ़ाँचे में भी भारी फेर-बदल दिखाई पड़ता है। पारंपरिक सामाजिक वर्ग और उनके शक्ति-संतुलन के समीकरण बदलते हुए प्रतीत होने लगे; सामाजिक रूप से स्तरीकृत विभिन्न तबकों की मानसिकता भी बदलने लगी। परिणामतः अंग्रेजी सरकार के लिए पुरानी नीति के तहत शासन करना नामुमकिन हो गया। भारतीय समाज का प्रत्येक तबका नई आशाओं-आकांक्षाओं को जीने लग गया था और उसे पूरा करने के लिए कुछ भी बलिदान करने के लिए तैयार था। इसके अतिरिक्त विश्वयुद्ध ने स्वराज्य आंदोलन का चरित्र भी बदल दिया। स्वराज्य आंदोलन के शिक्षित मध्यवर्गीय नेतृत्वकर्त्ता अंग्रेजों की वादाखिलाफी से नाराज थे। युद्ध के समय अंग्रेजों ने ये आशा बंधायी थी कि लड़ाई के खत्म होने पर उन्हें राजनीतिक अधिकार दिए जाएंगे। इसी उम्मीद पर शिक्षित मध्यमवर्गीय नेताओं ने किसानों व मजदूरों से उन्हें मदद दिलवायी थी। लेकिनि युद्ध की समाप्ति पर उन्हें निराश होना पड़ा। फलतः स्वराज्य आंदोलन अपने सर्वाधिक उग्रतम रूप को प्राप्त कर अंग्रेजों के विरुद्ध नारा बुलंद करने में लग गया।

कुल मिलाकर 1918 से 1936 के बीच जो राजनीतिक माहौल निर्मित हुआ, उसमें प्रथम विश्वयुद्ध की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इस माहौल ने पत्रकारिता और साहित्य को नई शक्ति से लैस किया। भाषा को नए तेवर दिए, उसे अधिक व्यापक बनाया तथा राष्ट्रीय आंदोलन में उसका उपयोग किया। परंतु राष्ट्रीय आंदोलन की जरूरत को पूरा करने में जितनी अहम भूमिका हिंदी गद्य-साहित्य की रही उतनी पद्य-साहित्य की नहीं। इस बात पर आश्चर्य किया जा सकता है कि इतने व्यापक जन-आंदोलनों के बीच पलने वाला छायावादी साहित्य अपने समय और समाज से असंपृक्त कैसे रह सका; जबकि गद्य-साहित्य ने अपनी भूमिका बखूबी निभायी। इस तथ्य के बावजूद छायावादी काव्य में राष्ट्रीय चेतना के स्वर सुनाई पड़ते हैं। छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में यह विशेषता भी एक है।

संदर्भ :

1. छायावाद और मुकुटधर पांडेय, रामनारायण पटेल, 2015, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 15
2. विविध प्रसंग, भाग 2, 1978, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 20
3. किसान, राष्ट्रीय आंदोलन और प्रेमचंद : 1918-22, वीर भारत तलवार, 1990, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 112
4. वही, पृ. 113

❑❑❑

छायावादी कविता : मानवीय स्वतंत्रता की आवाज़

❍ राम बचन यादव

हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद एक आन्दोलन की तरह था। आधुनिक हिन्दी कविता की वास्तविक शक्ति और उसके स्वरूप की पहचान छायावाद में आकर होती है। छायावादी कविता गहरे अर्थों में आधुनिकता-बोध, इतिहास-बोध और मुक्तिकामी संघर्ष की कविता है। आधुनिक भावबोध तो गद्य साहित्य में भारतेन्दु युग से ही दिखाई देने लगता है लेकिन सही मायने में कविता में आधुनिक भावबोध व प्रतिरोध की चेतना छायावाद में आकर विस्तार पाती है। पहली बार व्यापक स्तर पर हिन्दी कविता में दलितों, किसानों मजदूरों व स्त्रियों के हक की आवाज पूरी मुखरता के साथ उठाई जाती है। जब छायावादी कवि आगे चलकर प्रतिगामी शक्तियों को ललकारते हुए 'अबे सुन बे गुलाब', कहता है तो लगता है कि वह क्रान्ति का आह्वान कर रहा है। छायावादी कवियों में राष्ट्रीय चेतना, प्रतिरोध व क्रान्ति की चेतना के उभार का प्रमुख कारण भारत की तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ थीं। उस समय आम जनमानस दोहरे शोषण का शिकार हो रहा था। एक ओर तो वह अंग्रेजी साम्राज्यवाद की चक्की में पिस रहा था और दूसरी ओर ब्राह्मण-पुरोहितवाद व सामंती ताकतों का शिकार हो रहा था। इसलिए छायावादी कवि एक ओर तो धर्म के ठेकेदारों व सामंतवादी ताकतों से लड़ रहा था तथा दूसरी ओर क्रूर अंग्रेजी साम्राज्यवाद से। वह जाति व वर्ण की दीवार को तोड़कर उस मानवता को मुक्त करना चाहता है जो सदियों से ब्राह्मण-पुरोहितवाद की गिरफ्त में है। पंत कहते हैं-

'जाति-वर्ण की, श्रेणी वर्ग की
तोड़ भित्तियाँ दुर्धर
युग-युग के बंदी गृह से
मानवता निकली बाहर।'[1]

दूसरी ओर निराला अंग्रेजी साम्राज्यवाद के खिलाफ हुंकार भरते हुए भारतीय जनता को जागृत करते हैं-

'शेरों की माँद में,
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार!'[2]

इस तरह "छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से।"[3]

छायावादी कविता के कलेवर में परिवर्तन केवल अभिव्यक्ति और संवेदना के स्तर पर ही नहीं दिखता, भाषा व शिल्प के स्तर पर भी दिखता है। छायावादी कवि किसी भी तरह का बंधन नहीं चाहता। न ही वह समाज में किसी प्रकार का बंधन चाहता है और न ही कविता में। पहली बार हिन्दी कविता

पारंपरिक छन्दों की जकड़न से मुक्त होती है। इस युग की कविता कवियों की संवेदना के गहरे अन्तस्थल में स्वतन्त्र होकर डुबकियाँ लगाती है। उसे पहली बार किसी सहारे की जरूरत नहीं पड़ती। कवि सारे बंधनों व रूढ़ियों (साहित्यिक-सामाजिक) को एक झटके में तोड़-फोड़कर नव सृजन के लिए निकल पड़ता है-

'छन्द बन्ध ध्रुव तोड़, फोड़कर पर्वत, कारा
अचल रूढ़ियों की, कवि, तेरी कविता धारा
मुक्त, अबाध, अमन्द, रजत-निर्झर-सी निःसृत,-
गलित, ललित आलोक राशि, चिर अकलुष, अविजित'[4]

छायावादी कवि नव सृजन की इस प्रवृत्ति के कारण मुख्यधारा की हिन्दी आलोचना का शिकार भी हुए। "आरंभिक स्तर पर छायावाद को अनेक कुदृष्टियों का सामना करना पड़ा। उसका नामकरण भी विरोधियों की उपहास-दृष्टि का ही परिचायक था, किन्तु अनेक आरोपों-प्रत्यारोपों के व्यंग्य-बाण सहकर भी वह इतना विकसित हो गया कि अन्ततः उसे हिन्दी कविता का स्वर्णकाल तक कहा जाने लगा।"[5] आलोचक अरुण होता ने इस संदर्भ में अपने एक लेख में टिप्पणी करते हुए कहा है कि, "छायावाद को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने शैली की पद्धतिमात्र स्वीकारा है तो नंद दुलारे वाजपेयी ने अभिव्यक्ति की एक लाक्षणिक प्रणाली के रूप में अपनाया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे रहस्यवाद के भूल-भुलैया में डाल दिया तो डॉ. नगेन्द्र ने 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह' कहा। आलोचकों ने छायावाद की किसी न किसी प्रवृत्ति के आधार पर उसे जानने-समझने का प्रयास किया। छायावाद सम्बन्धी विद्वानों की परिभाषाएँ या तो अधूरी हैं या एकांगी।"

यह सच है कि छायावाद को लेकर आरंभिक दिनों में हिन्दी आलोचना में बहस का दौर भी खूब चला। मुख्यधारा की हिन्दी आलोचना ने इसे लगातार नकारने का काम किया। तथाकथित युग प्रवर्तक आलोचकों और उस दौर के हिन्दी पण्डितों ने इस नूतन प्रवृत्ति और जनजागरण से लैस छायावाद पर अनेक आरोप-प्रत्यारोप लगाकर खारिज करने का अथक प्रयास किया। वे छायावादी कविता को संपूर्णता में न देखकर किसी एक पहलू को लेकर ही वाद-विवाद में मशगूल थे। वे आलोचक या तो छायावाद की क्रान्तिकारी पहल से डर रहे थे या इस नवीन प्रवृत्ति को समझ नहीं पा रहे थे। ऐसा तो नहीं लगता कि महावीर प्रसाद द्विवेदी, मुकुटधर पाण्डेय, रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. रामकुमार वर्मा से लेकर नंद दुलारे वाजपेयी व डॉ. नगेन्द्र जैसे भारी-भरकम आलोचक छायावादी कविता की संवेदना और नए शिल्प की व्यापकता को समझ नहीं पा रहे थे। बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि वे इस स्वच्छन्द और रूढ़ियों से मुक्त काव्यधारा को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे। उन्हें यह डर सता रहा था कि सामाजिक-सांस्कृतिक व साहित्यिक रूढ़ियों से मुक्त इस स्वच्छन्द काव्यधारा के आगमन से भारतीय संस्कृति की छद्म मर्यादा धार्मिक अन्धविश्वास और अमानवीय बंधन छिन्न-भिन्न हो जाएंगे। प्रसाद व निराला की शुरुआती कविताओं को न छापकर वापस कर देना और उस पर अश्लीलता का आरोप लगाना किसी कवि की कविता के संदर्भ में गर्भस्थ शिशु हत्या (भ्रूण हत्या) के समान ही था। जब सामाजिक सरोकरों के प्रति प्रतिबद्ध कवि की कविता पर ऐसे आरोप लगाए जाते हैं तो वह किस मानसिक यातना से गुजरता है इसे निराला ने 'सरोज-स्मृति' कविता में अभिव्यक्त किया है-

लिखता अबाध गति मुक्त छन्द,
पर सम्पादकगण निरानन्द

वापस कर देते पढ़ सत्वर
दे एक-पंक्ति-दो में उत्तर।[6]

वह आगे लिखते हैं-

"लौटी रचना लेकर उदास
ताकता हुआ मैं दिशाकाश
बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर
व्यतीत करता था गुन-गुन कर।"[7]

आगे चलकर रामविलास शर्मा, नामवर सिंह व चौथीराम यादव जैसे आलोचकों ने तद्युगीन परिस्थितियों के आलोक में छायावाद का मूल्यांकन समग्रता के साथ किया। इस संदर्भ में वरिष्ठ आलोचक नामवर सिंह की पुस्तक 'छायावाद' और लोकधर्मी आलोचक चौथीराम यादव की पुस्तक 'सांस्कृतिक पुनर्जागरण और छायावादी काव्य' विशेष महत्त्व रखती हैं।

छायावाद की भावगत, शिल्पगत और भाषायी प्रवृत्तियों का क्षेत्र बहुत व्यापक है। "मुक्ति का आग्रह, वैयक्तिकता, कल्पना, आवेश और अनुभूति की प्रखरता, रूढ़ियों का विरोध भाषा का लाक्षणिक प्रयोग आदि इस काल को पूर्ववर्ती काल से स्पष्ट अलग कर देते हैं।"[8] छायावादी कवियों की कविताओं में मुक्ति का आग्रह ही मानवीय स्वतंत्रता की आवाज है। मानवीय स्वतंत्रता की आवाज छायावाद की केन्द्रीय प्रवृत्ति है। मानवीय स्वतंत्रता का मतलब आजादी से है। छायावादी कवि हर उस व्यक्ति व समाज को आजादी दिलाना चाहता है जो किसी-न-किसी अमानवीय शोषण के शिकार है। भारत की सामाजिक संरचना में शोषण और अन्याय का प्रमुख कारण वर्ण और जाति है। यहाँ सदियों पहले दलित पिछड़े, किसान, मजदूर और स्त्री को हाशिए पर धकेल दिया गया। प्रतिगामी शक्तियों ने समाज में जाति और वर्ण का जो जहर हजारों साल पहले फैलाया वह आज भी उसी रूप में है। उत्तरआधुनिकता के इस दौर में भी भारत इस बीमारी से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाया है। छायावादी कविता इन सड़ी-गली परंपराओं और रूढ़ियों को तोड़ने की बात करती है। छायावादी कवि हर उस समाज को छिन्न-भिन्न कर देना चाहता है जिसकी नींव शोषण पर टिकी हुई है। वह किसी जाति, वर्ण, धर्म या सम्प्रदाय से बढ़कर मानवता को श्रेष्ठ मानता है। वह चाहता है कि जो समाज अलग-अलग बिखरा है वह एक होकर अमानवीय ताकतों से मुठभेड़ करे ताकि मानवता विजयी हो जाय-

'शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं, हो निरुपाय,
समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय!'[9]

छायावादी कवियों की काव्य-दृष्टि संघर्षरत भारतीय समाज का प्रमुख स्वर है। छायावादी कवि अपनी कविता के माध्यम से खोया आत्मविश्वास आम जनमानस के हृदय में फिर से पैदा करते हैं। प्रसाद वर्चस्ववादी शक्तियों के खिलाफ आम भारतीय जनता को खड़ा करते हैं। वह जानते हैं कि यह जनता ही मजबूती के साथ उनसे भिड़ा-भिड़ी कर सकती है। वह भले आज अपने अधिकारों के प्रति उदासीन है लेकिन वह जब जगेगी तो उसकी ताकत से साम्राज्यवादी व सामंतवादी शक्तियाँ छिन्न-भिन्न हो जाएंगी। 'स्कन्दगुप्त' नाटक में देवसेना एक गीत के माध्यम से सोई हुई जनता का आह्वान करते हुए कहती है-

'देश की दुर्दशा निहारोगे,
डूबते को कभी उबारोगे।
हारते ही रहे, न है कुछ अब

दाँव पर आपको न हारोगे।
कुछ करोगे कि बस सदा रोकर
दीन हो दैव को पुकारोगे।
सो रहे तुम, न भाग्य सोता है
आप बिगड़ी तुम्हीं सँवारोगे।'[10]

वर्णव्यवस्था को मजबूत और अकाट्य बनाने के लिए हिन्दू धर्म के ठेकेदारों व धर्म-पुरोहितों ने समय-समय पर पूर्वजन्म, कर्मफल, भाग्यवाद, अवतारवाद जैसी झूठी अवधारणाओं का विकास किया। वे इन झूठी अवधारणाओं के चलते ही आम जनता को मानसिक गुलाम बनाने में सफल हुए। धर्म और ईश्वर के डर से आम जनता इस यातना को नियति मानकर भाग्य का रोना रोती रही। प्रसाद 'सो रहे तुम, न भाग्य सोता है' कहकर भाग्यवाद को नकारते हैं।

छायावाद के सभी प्रमुख कवियों (प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी) की कविताओं में कल्पना का तीव्र भावावेग तो है लेकिन उनकी जड़ें अन्ततः जमीन में धँसी हुई हैं। इन कवियों का सौन्दर्य बोध कथा साम्राट मुंशी प्रेमचन्द के सौन्दर्य बोध से अलग नहीं है। जिस सामाजिक ताने-बाने का अंकन प्रेमचन्द कथा साहित्य में कर रहे थे उसी समाज के सच को छायावादी कवि अपनी कविता में रच रहे थे। श्रम का सौन्दर्य इन कवियों के लिए ज्यादा महत्त्वपूर्ण था। वे राजमहलों में सौन्दर्य ढूँढ़ने-ढाँढ़ने के बजाय मेहनतकश समाज में सौन्दर्य खोज रहे थे। निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' को इसके लिए हमेशा याद किया जाएगा। कभी प्रेमचन्द ने कहा था कि, "हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी। अभी तक यह कसौटी अमीरी और विलासिता के ढंग की थी। हमारा कलाकार अमीरों का पल्ला पकड़े रहना चाहता था, उन्हीं की कद्रदानी पर उसका अस्तित्व अवलम्बित था और उन्हीं के सुख-दुःख, आशा-निराशा, प्रतियोगिता और प्रतिद्वन्द्विता की व्याख्या कला का उद्देश्य था। उसकी निगाह अन्तःपुर और बंगलों की ओर उठती थी। झोपड़े और खंडहर उसके ध्यान के अधिकारी न थे। उन्हें वह मनुष्यता की परिधि से बाहर समझता था। ....उसके लिए सौन्दर्य सुन्दर स्त्री में है- उस बच्चों वाली गरीब रूप-रहित स्त्री में नहीं, जो बच्चे को खेत की मेंड़ पर सुलाये पसीना बहा रही है।"[11]

प्रेमचन्द की यह शिकायत जायज थी। हिन्दी साहित्य का एक बड़ा हिस्सा इस मानसिकता से ग्रस्त दिखता है। लेकिन छायावादी कवि इससे मुक्त थे। इनकी कविता में अगर कहीं कोई पात्र आभिजात्य वर्ग का आया भी है तो वह आम इंसान की तरह ही अपनी कमियों और अच्छाइयों के साथ आया है। निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर' की वह मजदूरन स्त्री संघर्ष और श्रम के सौन्दर्य की अनोखी मिशाल है। उसमें वेदना भी है और विद्रोह का स्वर भी। इसकी बानगी है कविता की कुछ पंक्तियाँ-

'कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
श्याम तन, भर बँधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार-बार प्रहार-
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, प्राकार।'[12]

इस कविता में मुक्ति और मानवीय स्वतन्त्रता का आग्रह भी है। वह स्त्री भारी हथौड़ा सिर्फ पत्थर

पर ही नहीं बरसाती है बल्कि वह सामंती और पूँजीवादी पत्थर को तोड़ना चाहती है। वह साम्राज्यवाद के शोषण तंत्र को अप्रतिहत गति से तोड़ देना चाहती है। इसीलिए वह बिना थके लगातार प्रहार करती है। यह विद्रोही स्वर वह भी एक स्त्री में छायावाद के पहले कभी नहीं दिखा।

छायावाद को आधुनिक काल के विकास-क्रम की दृष्टि से देखा जाय तो यह नवजागरण की फलश्रुति है। बुद्ध और भक्तिकालीन नवजागरण के बाद भारत में तीसरा नवजागरण (आधुनिक भारतीय नवजागरण) 19वीं सदी के पूर्वार्द्ध में आया। इस भारतीय नवजागरण का आविर्भाव आगत यूरोपीय संस्कृति और पुरानी भारतीय संस्कृति की टकराहट के फलस्वरूप होता है। इस नवजागरण के फलस्वरूप बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन में व्यापक बदलाव आता है। इस काल ने मानवीय चिन्तन, ज्ञान-विज्ञान एवं कला इत्यादि जीवन के हर क्षेत्र में महान सृजनात्मक प्रयासों को उद्बुद्ध किया और अनेक बड़े चिन्तकों, कलाकारों, कवियों, दार्शनिकों, समाज सुधारकों तथा राजनेताओं को जन्म दिया। इस युग की चेतना नवीनता, युक्तिपरकता, वैज्ञानिकता के साथ-साथ स्वतन्त्रता, समानता, मानवता और विश्वबन्धुत्व के नए आदर्शों से अनुप्रेरित है। 19वीं सदी और 20वीं सदी के आरंभिक तीन दशक नवजागरण काल के अन्तर्गत आते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि छायावाद तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक परिस्थितियों की उपज है। इस नवीन जागृति को राजाराम मोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, महात्मा ज्योतिबा फूले, रवीन्द्रनाथ टैगोर, विवेकानन्द, नारायण गुरु, सावित्री बाई फुले, पंडिता रमाबाई, ताराबाई शिंदे, फातिमा शेख, रूक्माबाई जैसे तमाम इंटलेक्चुअल लोग नई दिशा दे रहे थे। छायावाद भी इससे अछूता नहीं था। कहीं-न-कहीं इसका व्यापक असर छायावादी कवियों की चेतना में दिखता है। "छायावाद-युग भारत के लिए अस्मिता की खोज का युग है। सदियों की दासता के कारण भारतीय जनता आत्मकेन्द्रित होती हुई रूढ़िग्रस्त हो गई थी। पाश्चात्य साम्राज्यवादियों के आगमन ने देश में एक विराट तूफान पैदा कर दिया था, जिसके कारण रूढ़ियों में सुप्त देश की आत्मा पूरी शक्ति और उद्वेलन के साथ जाग उठी। पाश्चात्य ढंग की शिक्षा ने, विशेषकर अंग्रेजी की शिक्षा ने देश के बुद्धिजीवियों के सामने एक नए क्षितिज का उद्घाटन किया।"[13] छायावादी कविता पीड़ित समाज के असंतोष की प्रखर अभिव्यक्ति है। नवजागरण कालीन चेतना उसके रोम-रोम में बसी हुई है। वह पुरानी जीर्ण-शीर्ण परम्पराओं, रूढ़ियों, जातिवाद और अमानवीय कुरीतियों को ललकारते हुए पुकार उठता है-

"द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र!
हे स्रस्त-ध्वस्त! हे शुष्क-शीर्ण!
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीत-राग, जड़, पुराचीन!!
निष्प्राण विगत-युग! मृत विहंग।
जग-नीड़ शब्द औ, श्वास-हीन,
च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों-से तुम
झर-झर अनन्त में हो विलीन।"[14]

छायावादी कवि पंत को लगता है कि ये पुरानी सड़ी-गली परंपराएँ मानवीय स्वतंत्रता के लिए बाध क हैं। इसलिए यह मानवता के लिए जहर के समान हैं। वह चाहते हैं कि ये अमानवीय मान्यताएँ तार-तार हो जाएँ। पंत नवजागरण काल में सांस्कृतिक आन्दोलन से उपजी उस नवीन-चेतना का आह्वान करते हैं जो मानवीय स्वतन्त्रता के प्रति पूरी तरह प्रतिबद्ध है। वह कहते भी हैं कि,

"मंजरित विश्व में यौवन के
जग कर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय-स्वर मदिरा से
भर दे फिर नव युग की प्याली!"[15]

छायावादी कवि चाहता है कि यह मुक्तिकामी नव चेतना हर व्यक्ति तक जाए। उन्हें पता था कि यह नवीन चेतना ही मनुष्यता को बंधन-मुक्त कर सकती है। इसलिए वह हर शोषित-पीड़ित व्यक्ति को जागृत करता है-

"जाग जाग सुकेशिनी री!
अनिल ने आ मृदुल हौले,
शिथिल वेणी-बन्ध खोले,
पर न तेरे पलक डोले।"[16]

साम्राज्यवादी-सामंतवादी व धार्मिक बंधनों से छायावादी कवियों की आत्मा छटपटा रही थी। इसलिए इन बंधनों से मुक्त होने के लिए वह विद्रोह तक करता है। 'मुक्ति' कविता में निराला साहस के साथ इन बंधनों को तोड़ने की बात करते हैं-

"तोड़ो, तोड़ो, तोड़ो कारा
पत्थर, की, निकलो फिर,
गंगा-जल-धारा!"[17]

महादेवी वर्मा भी एक गीत में स्त्री-मुक्ति के लिए पुरुषवादी-सामंतवादी बंधनों को चुनौती देते हुए कहती हैं कि अगर तुम जग गई और अपने अस्तित्व, अस्मिता व अधिकारों को पहचान गई तो यह बंध न तुम्हें कभी बाँध नहीं सकते-

"बाँधे लेंगे क्या तुझे यह मोम के बन्धन-सजीले?
....
तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना।
जाग तुझको दूर जाना!"[18]

छायावादी कवि हर तरह की जड़ रुचियों का विरोधी था। वह हर तरह की संकीर्णता, जाति-भेद, वर्ण-भेद, कर्मकाण्ड, अंधविश्वास के विरुद्ध था। निराला कहते हैं-

"मानव-मानव से नहीं भिन्न
निश्चय, हो श्वेत, कृष्ण अथवा,
वह नहीं क्लिन्न;"[19]

निराला की सामाजिक चेतना अत्यन्त प्रखर थी। इनका व्यक्तित्व कबीर की तरह क्रान्तिकारी एवं निर्भीक था। 'सरोज-स्मृति' कविता में निराला बेटी सरोज के हाथों कुण्डली फड़वाकर भाग्यवादी अवधारणा को सिरे से खारिज करते हैं। वह उस जन्मकुण्डली को झूठा साबित करते हैं जिसमें उनके दो विवाह का योग लिखा था। निराला इस घटना का जिक्र करते हुए 'सरोज-स्मृति' कविता में लिखते हैं-

"पढ़ लिखे हुए शुभ दो विवाह
हंसता था, मन में बढ़ी चाह

खण्डित करने को भाग्य-अंक,
देखा भविष्य के प्रति अशंक।"[20]

"कुण्डली दिखा बोला- "ए-लो"
आयी तू, दिया, कहा, "खेलो"!
कर स्नान-शेष, उन्मुक्त-केश
सासुजी रहस्य-स्मित सुवेश
आयीं करने को बातचीत
जो कल होने वाली, अजीत,
संकेत किया मैंने अखिन्न
जिस ओर कुण्डली छिन्न-भिन्न;"[21]

छायावाद के केन्द्र में श्रमिक किसान, मजदूर और हाशिए के समाज की चिंता के साथ-साथ स्त्री स्वतंत्रता का प्रश्न भी है। छायावादी कवि स्त्री के संदर्भ में स्पष्ट हैं कि स्त्री को भी मुक्ति, गौरव, प्रतिष्ठा सम्मान से जीने का अधिकार है। स्त्री की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्थिति समाज में हमेशा दोयम दर्जे की रही है। पितृसत्तात्मक-सामंती समाज ने साजिशन उनसे उनके सारे अधिकार छीन लिए। वह कोई विरोध न कर सके इसलिए उस पर धार्मिक मुलम्मा चढ़ा दिया गया। धार्मिक और सामंती क्रूर चरित्र के चलते वह कभी अपना सर नहीं उठा सकी। लेकिन, नवजागरण काल में चेतना की ऐसी लहर चली कि उसने पूरे भारतीय परिदृश्य को बदल दिया। स्त्रियाँ पहली बार घर से बाहर निकलीं और अपने हक की बात करने लगीं। नवजागरण की पृष्ठभूमि में उपजी यह स्त्री-मुक्ति चेतना छायावाद को भी प्रभावित करती है। छायावाद स्त्री की पहचान और उसकी स्वतंत्रता को लेकर अपने पूर्ववर्ती काल से ज्यादा सजग है। वह स्त्रियों की स्वतंत्रता की बात पूरी प्रतिबद्धता के साथ अपनी कविताओं में उठाता है। "छायावाद के पूर्ववर्ती काव्य में नारी-सम्बन्धी रचनाएँ न हों, ऐसा तो नहीं है, किन्तु वे रचनाएँ पुरुष-प्रधानता की द्योतक हैं। द्विवेदी-युग की कविता में नारी के प्रति दया का भाव तो है, पर यथोचित सम्मान का भाव नहीं है; उस युग में निःसंदेह विधवाओं को लेकर अनेक कविताएँ लिखी गईं, लेकिन उन कविताओं में विधवा को खाना-कपड़ा दिलाने का ही आग्रह अधिक है, और इसीलिए विधवा-विवाह को आवश्यक ठहराया गया है। द्विवेदी युग का यह काव्य एक प्रकार से अनाथालय प्रतीत होता है, जिसमें नारी को आश्रय देने के साथ ही वंदिनी भी बना दिया गया और इस तरह वह अपने सहज जीवन से विच्छिन्न कर दी गई।"[22]

राजेन्द्र यादव जी ने कभी अपने एक लेख 'औरतें तुम्हारी खेती हैं' में लिखा था कि, "सामंती समाज ने स्त्री को सिर्फ तीन नाम दिए हैं: पत्नी, रखैल और वेश्या। इसके अलावा वह किसी चौथे सम्बन्ध को स्वीकार ही नहीं करता है।" यह सही है कि सामंती मानसिकता से ग्रसित पुरुषवादी समाज में स्त्री सिर्फ एक वस्तु है, संपत्ति है; उसे जरूरत पड़ने पर दाव पर भी लगाया जा सकता है। इस क्रूर सामंती मूल्य को प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा आदि छायावादी कवि अपनी कविता में नकारते हैं। छायावाद में आकर स्त्री के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों तरह के व्यक्तित्व का अंकन होता है। इस युग में स्त्री के विविध रूपों और छवियों का उद्‌घाटन हुआ है। जिस स्त्री को पितृसत्तात्मक-सामंती समाज ने पत्नी, रखैल और वेश्या का नाम दिया वह छायावाद में आकर 'देवि ! माँ ! सहचरि ! प्राण !' के रूप में स्थान पाती है। छायावादी कवियों के लिए स्त्री वस्तु या संपत्ति नहीं है, बल्कि मनुष्य है। यहाँ

स्त्री ऐसी प्रेरणा है जिसके स्पर्श मात्र से ही शुष्क पड़े जीवन में प्राण का संचार हो जाता है-

"तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा स्नान;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि!
त्रिवेणी की लहरों का गान
अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय साँसों में उपचार!
तुम्हारी छाया में आधार,
सुखद चेष्टाओं में आभार![24]

छायावाद की कालजयी कृति 'कामायनी' का वैचारिक निचोड़ हिन्दी साहित्य के कुछ आलोचक केवल आनंदवाद की स्थापना मानते हैं। इससे मेरी असहमति है। यह कहना 'कामायनी' की व्यापकता और गहराई तथा उसके मानवतावादी सौन्दर्यबोध को सीमित करने की साजिश है। कामायनी का वैचारिक उद्देश्य मानवीय स्वतंत्रता, समता, समानता व वैज्ञानिकता मूलक समाज की स्थापना है। प्रसाद ऐसा समाज चाहते हैं जो हर तरह के शोषण से मुक्त हो। प्रसाद 'कामायनी' में स्त्री व पुरुष के बराबर की भागीदारी का प्रश्न भी उठाते हैं। वह स्त्री के अधिकारों के साथ-साथ उसके सम्मान की भी बात करते हैं। 'कामायनी' की यह पंक्ति पुरुषवादी-सामंती समाज को कटघरे में खड़ी कर देती है-

"तुम भूल गये पुरुषत्व-मोह में कुछ सत्ता है- नारी की
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।"[25]

छायावादी कवियों प्रसाद, पंत, निराला की कविताओं में स्त्री-मुक्ति व स्त्री अधिकारों को लेकर संघर्ष तो दिखायी देता ही है, लेकिन महादेवी वर्मा तक आते-आते यह संघर्ष एक स्वस्थ व प्रखर रूप ले लेता है। स्त्री होने के कारण वह स्त्री-पारतंत्र्य की भोक्ता थीं, इसलिए उनका जीवन संघर्ष स्त्री-शोषण के प्रतिरोध में और तीव्र हो जाता है। महादेवी के अनेक गीतों में स्त्री-मुक्ति का आग्रह दिखाई देता है। वह स्त्री शोषण की सारी शृंखलाएँ तोड़ना चाहती हैं-

"कीर का प्रिय आज पिंजर खोल दो!
हो उठी हैं चंचु छूकर,
तीलियाँ भी वेणु सस्वर;
बन्दिनी स्पन्दित व्यथा ले,
सिहरता जड़ मौन पिंजर।"[26]

महादेवी वर्मा की इस आत्माभिव्यक्ति में स्त्री मुक्ति का स्वर स्पष्ट मुखरित हुआ है। वह जानती हैं कि सामंती समाज ने स्त्रियों के साथ तनिक भी न्याय नहीं किया है। सदियों से वह शोषित-पीड़ित जीवन बिता रही हैं। उसे जीवन में एक कोना भी नसीब नहीं हुआ-

"विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।"[27]

वह जानती हैं कि जब तक स्त्रियाँ खुद अपने अस्तित्व, अस्मिता, अधिकार और सम्मान के

लिए नहीं लड़ेंगी यह समाज उन्हें कुछ भी देने वाला नहीं है। उन्हें आगे आकर खुद अमानवीय बंधनों को तोड़ना होगा। इसीलिए "युग-युग के बन्धन को प्रिय! पल में हँस 'मुक्ति' करूँगी मैं!" कहकर वह सारे बंधन को तोड़ देना चाहती हैं।

"इस तरह छायावाद महज संध्या-सुन्दरी, चाँदनी रात या नौका विहार का चित्र नहीं है। वह मूलतः शक्ति काव्य है, पुनर्जागरण चेतना का व्यापक और सूक्ष्म रूप है और अपनी अर्थ प्रक्रिया में मानव व्यक्तित्व को गहरे स्तरों पर समृद्ध करता है।"[28] मानवीय स्वतंत्रता छायावाद के केन्द्र में है। छायावादी कवि मानवीय स्वतन्त्रता के लिए सिर्फ आशान्वित ही नहीं है, बल्कि वह उसके लिए लगातार संघर्ष भी करता है। वह किसी के लिए, किसी भी तरह के बंधन का प्रतिरोध करता है।

संदर्भ :

1. सांस्कृतिक पुनर्जागरण और छायावादी काव्य, चौथीराम यादव, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2016, पृ. 149
2. अपरा, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, छठा संस्करण-2017, पृ. 16
3. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, नौवीं आवृत्ति-2009, पृ. 17
4. तारापथ, श्री सुमित्रानन्दन पन्त, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण-2005, पृ. 123
5. सांस्कृतिक पुनर्जागरण और छायावादी काव्य, चौथीराम यादव, पृ. 25
6. अनामिका, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, दसवाँ संस्करण-2016, पृ. 91
7. वही, पृ. 91-92
8. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012, पृ. 334
9. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, मयूर पेपरबैक्स प्रकाशन, नोएडा, छठा संस्करण 2007, पृ. 19
10. स्कन्दगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2006, पृ. 130
11. साहित्य का उद्देश्य, प्रेमचन्द, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 2001, पृ. 20-21
12. अनामिका, पृ. 64
13. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सं. डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, नौएडा, संस्करण 2009, पृ. 517
14. तारापथ, श्री सुमित्रानन्दन पन्त, पृ. 109-110
15. वही, पृ. 110
16. यामा, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण (पुनर्मुद्रण)-2017, पृ. 101
17. अनामिका, पृ. 100
18. यामा, पृ. 97
19. अनामिका, पृ. 23
20. वही, पृ. 92
21. वही, पृ. 93
22. छायावाद, नामवर सिंह, पृ. 47
23. कांटे की बात-3 (गुलामी का आनन्द और स्वतन्त्रता के खतरे), राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृ. 145
24. पल्लव. श्री सुमित्रानन्दन पन्त, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण (आवृत्ति), 2011, पृ.68
25. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, पृ. 58
26. यामा, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण (पुनर्मुद्रण)-2017, पृ. 99
27. वही, पृ. 94
28. नीरजा, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण (पुनर्मुद्रण)-2016, पृ. 56
29. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण पृ. 110

❑❑❑

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और छायावाद

❍ शिवनंदन प्रसाद

हिंदी साहित्य में छायावाद का योगदान कई अर्थों में अपना विशेष महत्व रखता है। राष्ट्रीय चेतना छायावाद की एक प्रमुख प्रवृत्ति रही है। किंतु छायावाद पर बहुत दिनों तक यह आरोप लगता रहा कि जिस समय देश में स्वतंत्रता के लिए संघर्ष हो रहा था छायावादी कवि कल्पना में खोए हुए थे। पर ऐसा नहीं है। इस विषय में छायावाद के प्रमुख आलोचक डॉ. नामवर सिंह का मानना है– "जिसमें विश्लेषण की इतनी क्षमता नहीं होती या जो अपने दृष्टिकोण–विशेष के कारण साहित्य में तात्कालिक घटनाओं का अनुवाद ढूँढ़ता फिरता है, वह छायावाद के बारे में प्राय: शिकायत करता रहता है कि वह समकालीन सत्य से दूर रहा अथवा युगधर्म की उपेक्षा कर गया या वह तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन से उदासीन रहा।"[1]

छायावाद के कालखंड को 1918 से 1936 तक सीमांकित किया गया है इस दौरान कई महत्वपूर्ण राष्ट्रीय घटनाएँ घटीं; जैसे, 1919 में जलियाँवाला बाग हत्याकांड। इसने समस्त भारतीयों के अंदर क्रांति की ज्वाला फूँक दी। 1920 में महात्मा गाँधी ने असहयोग आंदोलन शुरू किया, पर इसका भी बहुत ज्यादा प्रभाव अंग्रेजों पर नहीं पड़ा। 1928 में साइमन कमीशन के विरुद्ध एक प्रदर्शन में अंग्रेजों के लाठीचार्ज ने लाला लाजपत राय की हत्या कर दी। 1931 में भगत सिंह को फाँसी दे दी गई। 1930 का सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं उसके बाद हुए तीन गोलमेज सम्मेलनों का भी राष्ट्र हित में कोई स्पष्ट परिणाम नहीं निकला। इन सब घटनाओं को ध्यान में रखते हुए डॉ. विश्वनाथ त्रिपाठी ने छायावाद की राष्ट्रीयता पर विचार करते हुए लिखा है, "यह समूची काव्य–साधना स्वाधीनता संग्राम के युग की है। अतएव स्वाधीनता–संग्राम के केंद्रीय भाव से जुड़कर ही यह सारी काव्य–साधना फलीभूत होती है इसलिए छायावाद अपनी सारी कल्पना–प्रवणता और रहस्य भावना के साथ शक्ति, जागरण और लोकमंगल का काव्य है, जिसमें व्यक्तिगत पीड़ा, दु:ख और अवसाद भी समाविष्ट है।"[2]

इस दौरान जो राष्ट्रीय घटनाएँ घटीं उससे स्वतंत्रता को लेकर जनता और भी उग्र हो उठी। छायावादी कवियों ने वर्तमान पराधीनता का उत्तर अतीत की जीत से दिया और जनता को स्वतंत्रता हेतु संघर्ष के लिए प्रेरित किया। यूँ तो छायावाद के सभी कवियों में राष्ट्रीयता के स्वर देखने को मिलते हैं किंतु जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के यहाँ इसकी सबसे अधिक मुखर अभिव्यक्ति हुई है। इस दौरान एक ही लक्ष्य था अंग्रेजों से देश को मुक्त करना, क्योंकि देश–मुक्ति से बड़ा न कोई कार्य है, न कोई जिंदगी और ना ही कोई संकल्प। प्रसाद ने अपने नाटकों में जो गीत योजना की है उसमें राष्ट्रीयता की भावना अपने चरम पर है।

स्कंदगुप्त (1928 ई.) की इस पंक्ति को देखें जिसमें उन्होंने जनता को स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व न्योछावर करने हेतु प्रेरित किया है –

"जिएँ तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दे हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारत वर्ष।"

स्वतंत्रता को लेकर प्रसाद की वाणी काफी मुखर है। चंद्रगुप्त (1931 ई.) नाटक में उन्होंने भारतीय इतिहास का स्वर्णिम चित्र खींचते हुए युवाओं से कहा -

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती -
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती –
अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है– बढ़े चलो, बढ़े चलो।"

भारत भूमि की प्रशंसा में प्रसाद ने अपने नाटकों में जागरण तथा आत्म गौरव की कई गीत योजना की है। 'चंद्रगुप्त' में कार्नेलिया द्वारा गाए हुए इस गान से अनुमान लगाया जा सकता है कि छायावादी देशप्रेम कितना भावात्मक और व्यापक था–

"अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर, मंगल कुंकुम सारा।"

लहर में संकलित 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' और 'पेशोला की प्रतिध्वनि' का निर्माण भी प्रसाद ने भावनात्मक उत्तेजना, ओज, विक्षोभ और आवेश के साथ किया है।

निराला द्वारा रची गई 'राम की शक्ति-पूजा' (1936 ई.) छायावाद की एक उत्कृष्ट रचना है। इस काव्य में 'निराला ने पौराणिक प्रतीक के माध्यम से देशोद्धार के लिए नैतिक शक्ति साधना का संदेश दिया है। इसके द्वारा निराला देश की स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत जनता को उत्साहित एवं प्रेरित करना चाहते हैं। उन्होंने रामकथा से एक अत्यंत संकटपूर्ण स्थल रावण के साथ युद्ध में राम की निराशा का चुनाव किया और अपनी सृजनात्मक कल्पना के योग से एक तरफ उसमें पौराणिक वातावरण की सृष्टि की और दूसरी तरफ उसमें नई अंतर्वस्तु का समावेश किया।'[3] यह कविता उस वक्त लिखी गई जब देश अंग्रेजों के अधीन था। यहाँ सीता अपहरण के प्रसंग का चुनाव कर राष्ट्र-मुक्ति हेतु नवयुवकों को प्रेरित किया गया है। निराला ने राम का मानवीकरण एक साधारण मानव के रूप में किया है जिसकी अस्मिता रावण के गिरफ्त में है और ऐसे में उस जीवन पर धिक्कार है जो राष्ट्र को स्वतंत्र न करा सके–
–

"धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन, जिसके लिए सदा ही किया शोध!
जानकी! हाय, उद्धार प्रिया का न हो सका।"

निराला दिखाते हैं कि जब राम जैसे शक्तिशाली पुरुष (अवतारी) के जीवन में इतनी बाधाएँ आती हैं तो हम तो फिर भी साधारण मानव हैं। कवि राम को टूटते भी दिखाते हैं किंतु उसी परिस्थिति से लड़कर पुन: अपना मार्ग निकालते भी दिखाते हैं। कवि जनता को यही संदेश देना चाहता है कि समस्याएँ जीवन का अनिवार्य हिस्सा हैं, उनसे हम पीछा नहीं छुड़ा सकते, वे आएँगी पर उनसे हमें टूटना नहीं है, हार नहीं मानना है–

"वह एक और मन रहा राम का जो न थका;
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय।"
अंग्रेजों का जुल्म अंधकार की तरह व्यापक हो रहा था –
"है अमानिशा; उगलता गगन घन अंधकार।"

इस भयावहता से भारतीयों की स्थिति किंकर्तव्यविमूढ़ की हो चुकी थी किंतु स्वतंत्रता के प्रति जो ललक थी उसकी चिंगारी सदैव जलती रही- "चमकतीं दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार।" निराला ने "विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि-खर-रुधिर स्राव" का जो दृश्य खींचा है उससे वह मध्यवर्गीय युवा मानसिकता की दृढ़ उत्सर्ग भावना को व्यंजित कर रहे हैं। उन्होंने राम के माध्यम से साधारण मध्यवर्गीय व्यक्ति के जीवन संघर्ष को बताना चाहा है। उनका मानना है कि हम अंग्रेज जैसी बाह्य शक्तियों को तभी पराजित कर सकते हैं जब ऊँच-नीच के भेदभाव की भावना को त्याग कर पूरे मनोयोग से एक होकर अंग्रेजों का सामना करें। वे जामवंत के माध्यम से केवल राम को नहीं वरन समस्त मानव समाज को जगाना चाहते हैं–

"रघुवर विचलित होने का नहीं देखता मै कारण,
हे पुरुष-सिंह तुम भी यह शक्ति करो धारण,
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर।"

छायावादी कवियों ने राष्ट्रप्रेम की बात करते हुए उस वर्ग को नहीं भुलाया जिसे स्वतंत्रता की सबसे अधिक आवश्यकता थी। समाज में व्याप्त विषमताओं के विरुद्ध लोकमंगल और मानव करुणा के रूप में स्वातंत्र्य भावना कि जो सबसे अधिक मुखर अभिव्यक्ति हुई है वह निराला के काव्य में देखने को मिलती है। निराला ने 'अनामिका की दान' (1935 ई.) नामक कविता में उन भक्तों पर व्यंग्य किया है जो वानरों के लिए झोली में पुआ तो लाए हैं किंतु दैन्य दुर्बल भिक्षुओं से मुँह फेर लेते हैं–

"मेरे पड़ोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन;
झोली से पुए निकाल लिए,
बढ़ते कपियों के हाथ दिये
देखा भी नहीं उधर फिरकर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर दानव
बोला मैं- 'धन्य, श्रेष्ठ मानव!"

जब समग्र जनता स्वाधीनता के लिए संघर्षरत था उस दौरान भी कुछ धनकुबेर अंग्रेजों की चाटुकारिता करके अपने स्वार्थ सिद्धि में लगे थे जबकि किसी-किसी को जिंदगी गुजारने भर की भी रोटी नसीब न थी। निराला ने 'भिक्षुक' कविता के माध्यम से उस वर्ग को कटघरे में लिया है जो अपनी तिजोरी भरने के लिए दीन दुर्बलों का ग्रास छीन लेते हैं कवि ऐसे बेसहारों को अपने हृदय का अमृत देकर संघर्ष में उतारना चाहता है–

"ठहरो, अहो मेरे हृदय में है अमृत, मैं सींच दूंगा।

अभिमन्यु जैसे हो सकोगे तुम
तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा।

अंग्रेजों ने किसानों को भी नहीं छोड़ा, उनका पूरा शोषण किया। निराला ने 'बादल राग' (1923 ई.) के माध्यम से क्षुब्ध किसानों को वाणी दी है-

"जीर्ण-बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर।"

छायावाद में 'नवजागरण' अपने में विशिष्ट स्थान रखता है। नवजागरण की विशिष्टताओं के कारण ही डॉक्टर रामविलास शर्मा ने छायावाद को नवजागरण का चौथा चरण माना है। जिस तरह हम प्रसाद के गीतों में नवजागरण की चेतना पाते हैं उसी तरह हमें निराला के यहाँ भी देखने को मिलती है। निराला ने ऐसी कई कविताएँ लिखी हैं जिनमें स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु भारतीयों के हृदय में नवजागरण का मंत्र फूँका गया हो। 'जागो फिर एक बार' (1921 ई.) शीर्षक कविता में अकाली सिक्खों के शौर्य का स्मरण कराते हुए निराला ने प्रतीकात्मक रूप में अंग्रेजों को खदेड़ने की बात की है—

"शेरों की माँद में
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार।"

भारत की गरिमामयी संस्कृति की उपेक्षा जब अंग्रेज कर रहे थे तो उन्होंने भारत माता के स्तुति गान गाए- 'भारती जय विजय करे'। 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' (1922 ई.) नामक कविता में देश की एकता और विदेशी साम्राज्यवाद के विरोध की प्रतिध्वनि को व्यंजित किया है—

"एकीभूत शक्तियों से एक हो परिवार
फैले संवेदना
साम्राज्यवादियों की भोगवासनाओं में
हिंदुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से
दासता के पाश कट जाएंगे।"

'तुलसीदास' (1935 ई.) नामक कविता में एक कवि के माध्यम से देश को पराधीनता से मुक्त कराने का संकल्प है-

"देश काल के शर से बिंधकर
यह जागा कवि अशेष छवि धर
इसके स्वर से भारती मुखर होंगी।"

छायावादी काव्य में प्रकृति की प्रमुखता रही है। इस दौर के कवि प्रकृति के जरिए हर छोटी-बड़ी वस्तु तक पहुँचते हैं और उनमें स्वच्छंदता का भाव ढूँढ़ते हैं, क्योंकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में कहें तो "यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, गुल्म, पेड़, पत्ते, वन, पर्वत, नदी, निर्झर, सबसे प्रेम होगा ... जो यह भी नहीं झाँकते कि किसानों के झोपड़ों के भीतर क्या हो रहा है वे यदि दस बने-ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का पता बता कर देश-प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि "भाइयों! बिना परिचय का यह प्रेम कैसा"।[4]

प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानदन पंत ने नवजागरण को इस रूप में व्यक्त किया है–

"प्रथम रश्मि का आना रंगिणी! तूने कैसे पहचाना?"

दु:ख और पीड़ा में बनी रहने वाली महादेवी ने भी राष्ट्रीयता पर अपना विचार व्यक्त किया– "हमारी राष्ट्रीयता ने अपनी व्यापकता के लिए जिस अध्यात्म का आह्वान किया, काव्य ने सौंदर्य काया में उसी की प्राण प्रतिष्ठा कर दी।" महादेवी ने अपना नाम प्रचारित किए बगैर इंकलाब के स्वर में जागरण की कविताएँ लिखीं–

"मस्तक देकर आज खरीदेंगे हम ज्वाला।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त छायावादी कवियों ने अपने अपने तरीके से राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में अपनी अहम भूमिका का निर्वाह किया।

संदर्भ :

1. 'छायावाद', नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, 2016, पृष्ठ संख्या–72
2. 'हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास', विश्वनाथ त्रिपाठी, एनसीईआरटी, 1986, कक्षा–12, पृ. सं.–107
3. 'निराला और मुक्तिबोध: चार लंबी कविताएं', नंदकिशोल नवल, राधाकृष्ण प्रकाशन, 1992, पृ. सं.–55
4. 'चिंतामणि' निबंध–लोभ और प्रीति, आ. रामचंद्र शुक्ल, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली 2012, पृ. सं. 62
5. 'दीपशिखा', महादेवी वर्मा, लोकभारती पेपर बैग्स, 2013, पृ. सं.–22

❑❑❑

छायावादी कवि : भारतीय परंपरा के राष्ट्रीय जननायक

❍ कृष्ण कुमार

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि अरविन्द, महात्मा गाँधी आदि राष्ट्रीय जननायकों ने अपनी ज्ञानरूपी ज्योति से भारतवर्ष को एक नवीन दिशा प्रदान की। इन राष्ट्रीय जननायकों ने एक ओर जहाँ सदियों के सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्तरों पर रूढ़िवाद और गुलामी रूपी बंधन से भारतवर्ष की मुक्ति का प्रयास किया तो दूसरी ओर उन्होंने अपनी भारतीय सामाजिक, राजनीतिक परम्परा को दृढ़ बनाने में अपना अतुलनीय योगदान भी किया है। वे छायावाद की पृष्ठभूमि में अपनी भारतीय धरोहरों को सहेजते हुए मानवीय रूढ़िवादी विचारधारा को तोड़कर मुक्ति की बात करते हैं। हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह वही समय है जब अंग्रेजी परम्परा में Romanticism प्रभावी था। उस समय अंग्रेजी परम्परा में विलियम वड्र्सवर्थ, कॉलिरिज, पी. बी. शैली जैसे विद्वानों ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं साहित्यक स्तर पर देश को बंधनमुक्त करने की रणभेरी बजायी थी; वहीं दूसरी ओर भारतीय परम्परा में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत एवं महादेवी वर्मा के माध्यम से भारतीयता के वजूद को कायम रखने वाली परम्परागत ऐतिहासिक पृष्टभूमि पर Romanticism के समानान्तर भारतीय धर्म, दर्शन, आध्यात्म, देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, रहस्यवाद, त्याग, तपस्या और राष्ट्रवाद का शंखनाद हो रहा था।

भारतवर्ष में स्वछन्दतावाद की शुरुआत बीजरूप में श्रीधर पाठक, मुकुटधर पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी आदि के नेतृत्व में होती है। वही बीजरूप विकसित होकर छायावाद रूपी वृक्ष में परिवर्तित होता है। भारतवर्ष की मिट्टी से उपजे छायावादी परम्परा की पृष्ठभूमि त्याग, तपस्या और बलिदानियों की विरासत रही है। इस प्राचीन भारतीय विरासत को कायम रखने हेतु निम्नवर्गीय जीवन यापन करने वाले मजदूरों, किसानों, दीनहीनों को छायावाद एक नवीन पहचान कायम करने की परम्परा का भी उद्घोष करता है। 'परिणामस्वरूप इस युग का साहित्य काल से कालातीत, अज्ञानता से ज्ञान, अविद्या से विद्या, मोह से निजस्वरूप, असत्य से सत्य, तमस से ज्योति, मृत्यु से अमरता, गुलामी से आजादी, क्षितिज के इस पार से उस पार, अंग्रेजी राज से हिन्दुस्तानी राज, वेश्यावृत्ति से आश्रम, शराब से खद्दर, यथार्थ से आदर्श, लघु से महत् की ओर उन्मुख है।'[1]

छायावादी रचनाएँ ज्ञान, विद्या, सत्य, ज्योति, अमरता, राष्ट्रीयता और आजादी का द्योतक है। जिसके कारण समाज में व्याप्त गुलामी और विषमता के विरुद्ध खड़ा होकर परम्परावादी तरीके से जन-जागरण व राष्ट्रवाद का संदेश देता है। जिसमें छायावादी परम्परावादी रीति-रीवाजों को कायम रखते हुए अनुशासनात्मक ढंग से बंधन और गुलामी का विरोध करता नजर आता है। स्वयं अवमानना, वितृष्णा, समाज की उपेक्षाभाव से प्रताड़ित होते हुए विपरीत स्थितियों से संघर्ष करते हुए समाज का मार्गदर्शन करता

है। वह आस्था के नाम पर, धर्म के नाम पर, ईश्वर के नाम पर विश्वास रखते हुए भी वह एक बार नहीं, बल्कि कई बार कई स्तरों पर टूटता है। फिर भी छायावादी रचनाकार अपने परम्परावादी आदर्श को छोड़कर नहीं चलते, बल्कि अपनी परम्पराओं का निर्वाह करते हुए आगे बढ़ते हैं। 'परम्परावादी कलाकार वस्तु एवं अभिव्यक्तिगत संगीत एवं सामंजस्य का मुखापेक्षी होता है। उनके अपने साहित्यादर्श होते हैं, जिन्हें वह किसी भी स्थिति में तिरस्कृत नहीं कर सकता, जबकि स्वच्छन्दतावादी रचनाकार अपनी स्वच्छन्दत राहों का अन्वेषी होता है। वह इश्क को दिल में जगह देने वाला होता है, इल्म को नहीं।'[2] यदि छायावादी दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो छायावाद में स्वच्छन्दतावादी एवं परम्परावादी दोनों ही गुणों का समावेश दिखाई पड़ता है। यहाँ जिस परम्परा की बात की जा रही है वह भारतवर्ष की मिट्टी की देन है, भारतवर्ष की भूमि का संस्कार है जो किसी रूढ़िगत पुरातन परम्परा के साथ आगे नहीं बढ़ता, बल्कि भारतीय मूल संस्कारों के साथ आगे बढ़ता है।

उपर्युक्त तथ्यों की दृष्टि से भारतीय परम्परागत पृष्ठभूमि पर आधारित छायावाद में भारतीय धर्म और दर्शन के साथ-साथ ज्ञान और विज्ञान भी समाहित है। परिणामतः छायावाद में समाहित समस्त धर्म, दर्शन, ज्ञान, विज्ञान का सम्बन्ध प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्षरूप से भारतीय परम्परा और राष्ट्रवाद से जुड़ा हुआ है, क्योंकि छायावाद की पृष्ठभूमि पर 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम आंदोलन से लेकर प्रथम विश्वयुद्ध तक और बाद में सामाजिक पृष्ठभूमि तक के समस्त क्रांतियों, आंदोलनों का प्रभाव परिलक्षित होता है। छायावादी रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्र की रक्षा व देशवासियों की चेतना को जगाया है। इस चेतना के माध्यम से भारतीयों में प्रेरणा भरने से वे कभी पीछे नहीं रहे, किन्तु धीरे-धीरे छायावाद की पृष्ठभूमि पर पूँजीवाद का प्रभाव पड़ने लगता है। यह वही पूँजीवाद है जो कार्लमार्क्स के चिंतन का केन्द्र बिन्दु था। पूँजीवाद के प्रभाव से भारतीयों में संचय की प्रवृत्ति हावी होने लगी। जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न प्रकार के उद्योग-धंधे, नौकरी, शिक्षा की ओर आकर्षण बढ़ा तो दूसरी ओर सामाजिक, पारिवारिक विघटन तीव्र गति से दिखाई पड़ने लगा। जिसका परिणाम एकाकीपन है और यह एकाकीपन की प्रवृत्ति छायावाद में पूर्णतः समायी हुई है। छायावाद का यह एकाकीपन/वैयक्तिकता मनुष्य को और भी मजबूत बनाती है। जिससे प्रत्येक भारतवासी स्वयं की व्यथा को सशक्त ढंग से उजागर करता है। जिसे देखकर स्पष्ट रूप से यह कहा जा सकता है कि रीतिमुक्त कवियों के बाद छायावाद पहला ऐसा दौर है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति पूर्णतः आजादी के साथ अपनी वैयक्तिक भावनाओं को व्यक्त करने में समर्थ हुआ है। पूर्णतः वैयक्तिक होते हुए भी छायावादी कवि अपनी बात को सही लहजे में भारतीय परम्परा के अनुकूल प्रस्तुत करते हैं। वे कहीं भी भारतीय परम्परा का अतिक्रमण करते नजर नहीं आते हैं। प्रकृति सौंदर्य से नारी सौंदर्य, भौतिक जगत से अभौतिक जगत, आत्मिक सौंदर्य से आध्यात्मिक सौंदर्य तक का वर्णन पूर्णतः भारतीय परम्परा के अनुरूप मिलता है।

नारी तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास-रजत-नग-पग-तल में
पीयूष स्रोत सी बहा करो, जीवन के सुन्दर समतल में। (कामायनी-प्रसाद)

छायावादी कवि सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक व पारम्परिक स्तर पर राष्ट्रीय आंदोलनों के ध्वजवाहक रहे। वे जीवन के किसी आयाम से अछूते नहीं हैं। समाज सेवाभाव से लेकर वैयक्तिकता, नारी प्रेम, स्वतंत्रता, शोषणभाव, दयाभाव, राष्ट्र प्रेम, प्रकृति चित्रण, काल्पनिकता, रहस्यवादिता, इतिवृत्तात्मकता आदि समस्त भावों को अपनी लेखनी में शब्दबद्ध किया है। डॉ. नामवर सिंह छायावादी

कवियों के नारी सम्बन्धी विचारधारा को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि 'छायावादी कवियों ने नारी को अपमान के पंक और वासना के पर्यंक से उठाकर देवी और सहचरी के उच्च आसन पर प्रतिष्ठित किया। नैतिकता के पुरातन रूढ़ियों को तोड़कर उसने मानव विवेक पर आधारित प्रेम सम्बन्धी नवीन नैतिक मूल्यों की स्थापना की। सूखे सुधारवाद की जगह छायावाद ने रागात्मक आत्म-संस्कार का बीजारोपण किया है।'[3] छायावादी कवियों के काव्य में नैतिकता व आत्मसंस्कार भारतभूमि की देन है जो इन छायावादी कवियों के काव्य में झलकती है। उन्होंने स्पष्टरूप से देशहित हेतु सामंतवाद के विरुद्ध खड़ा होकर राष्ट्रहित-गान कर समाज के शोषितों में आत्मगौरव का भाव जगाया है। निराला की कविता 'तोड़ती पत्थर, जागो फिर एक बार, भिक्षुक, तुलसीदास, राम की शक्तिपूजा' जैसी कविताएँ पढ़कर आधुनिक मानव देशप्रेम की भावना से भर उठता है। 'हिमाद्रि तुंग श्रृंग से, प्रबुद्ध शुद्ध भारती।' जैसी प्रसाद की पंक्तियाँ उपर्युक्त भाव का सूचक है। 'कामायनी' में जीवन से हताश-निराश मनु के मन में शक्ति का संचार करती हुई श्रद्धा कहती है कि -

शक्ति के विद्युतकण, जों व्यस्त/विकल विखरे हैं, हो निरुपाय।
समन्वय उसका करे समस्त/विजयिनी मानवता हो जाय।।

(कामायनी-प्रसाद)

यहाँ प्रसाद जी श्रद्धा के माध्यम से शक्ति के समन्वय की बात करते हैं। उन्होंने सिर्फ काव्यगीतों के माध्यम से ही नहीं, बल्कि साहित्य की अन्य गद्य विद्याओं के माध्यम से भारतीय परम्परा को कायम रखते हुए भारतवासियों के भीतर उसी शक्ति के माध्यम से देश-प्रेम, नारी चेतना व राष्ट्रगौरव का संचार किया है।

निराला के सम्बन्ध में डॉ. बच्चन सिंह लिखते हैं कि 'सरोज-स्मृति के पिता, राम की शक्तिपूजा के राम और तुलसीदास के तुलसीदास कहीं न कहीं एक-दूसरे से मिलते-जुलते हैं। कर्म-संन्यास, शक्ति-आराधना और उत्थानमूलक सांस्कृतिक चेतना एक ही मन:स्थिति के विकसनशील रूप हैं, तीनों बहुआयामी हैं, तीनों में युद्ध है- 'देखता रहा मैं खड़ा अपल/वह शरक्षेप, वह रण-कौशल' (सरोज-स्मृति), 'आज का तीक्ष्ण शर-विधृत क्षिप्र कर, वेग प्रखर' (राम की शक्ति-पूजा), होगा फिर से दुर्धर्ष समर।(तुलसीदास)[4] इन समस्त युद्धों के बीच शक्ति की मौलिक कल्पना भारतीय परम्परा का द्योतक है। 'राम की शक्तिपूजा' में श्रीराम स्वयं ईश्वर के अवतार होते हुए भी शक्ति का आह्वान करते हुए दिखाई पड़ते हैं, क्योंकि उस समय देश ऐसे दौर से गुजर रहा था जिसमें देश व राष्ट्रहित हेतु शक्ति का आह्वान अपेक्षित है।

शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो, रघुनन्दन।
हे सिंह पुरुष तुम भी यह, शक्ति करो धारण
...आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर ।

अर्थात् शक्ति के अभाव में युद्ध करना और युद्ध में विजयी होना दोनों ही स्थितियाँ असम्भव सी प्रतीत होती हैं, क्योंकि समकालीन समय में नकारात्मक शक्तियाँ प्रभावी थीं और आज भी सम्पूर्ण राष्ट्र उन नकारात्मक शक्तियों का शिकार हो रहा है। इसलिए शक्ति की मौलिक कल्पना करना, शक्ति को धारण करना मात्र स्वयं हेतु नहीं, बल्कि राष्ट्रहित हेतु है और यह सिर्फ राम-रावण का युद्ध ही नहीं,

बल्कि सत्य-असत्य, बुराई-अच्छाई की आधारशिला पर शक्ति की उपासना और सत्य की ओर से लड़ा जाने वाला युद्ध दो देशों और दो राष्ट्रों के बीच का युद्ध है। रामस्वरूप चतुर्वेदी उक्त संबंध में अपना विचार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि 'शक्ति की परिकल्पना अनुकरण में सम्भव नहीं, शक्ति को सदा मौलिक रूप में ही परिकल्पित किया जा सकता है। यहाँ राम जितने अपने लिए हैं उतने ही सामूहिक राष्ट्रीय मन के प्रतीक हैं और उतने ही स्वयं कवि व्यक्तित्व के। ये कई अर्थ-स्तर एक-दूसरे से टकरा कर मानवीय आत्मशक्ति का एक विराट आख्यान प्रस्तुत करते हैं।'[5] इसी मानवीय आत्मशक्ति से मानव समाज को शोषणवादी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाने का साहस मिलता है।

छायावादी कवियों में प्रसाद और निराला के सम्बन्ध में अपना मत प्रस्तुत करते हुए डॉ. रामविलास शर्मा कहते हैं कि 'स्वाधीनता आंदोलन के प्रति छायावादी कवियों का रुख उन्हें इतिहास को नए सिरे से समझने की प्रेरणा देने वाला है।......सामन्ती समाज के अन्तर्विरोधों, राजाओं के अत्याचारों तथा उच्चवर्णों द्वारा निम्नवर्णों के उत्पीड़न की पहचान प्रसाद और निराला दोनों में स्पष्ट है।'[6] छायावादी रचनाएँ देश-प्रेम, स्वाधीनता आंदोलन, वैयक्तिकता, प्रकृति और नारी सौंदर्य, धर्म, दर्शन, अध्यात्म का सीधा सम्बन्ध प्रकृति से जुड़ा हुआ है। समस्त छायावादी रचनाएँ नारी सौंदर्य और प्रकृति सौंदर्य दोनों ही दृष्टि से भारतीय परम्परा और राष्ट्रीयता के अनुरूप है। यहाँ अश्लीलता का अभाव है। सघन से सघन विरह को भी छायावादी रचनाकार श्रेष्ठता प्रदान करते हैं, क्योंकि जिस प्रकार सोने को आग में तपाने पर वह खरा होकर शुद्ध हो जाता है। उसी प्रकार छायावादी रचनाकार विरह की आग को प्रेम की कसौटी मानते हैं। जहाँ प्रेम की श्रेष्ठता का दर्शन होता है।

महादेवी की कविता 'मैं नीर भरी दुख की बदली' में प्रेम की कसौटी और विरह की सर्वोच्चता के साथ-साथ दार्शनिकता भी विद्यमान है। इसलिए इसमें विविध आयामी अर्थ प्रकट होता है। यदि राष्ट्रप्रेम एवं पुनर्जागरण चेतना की दृष्टि से अवलोकन किया जाय तो महादेवी वर्मा की कविता 'मैं नीर भरी दुःख की बदली' में जीवन की समस्त सम्भावनाएँ समाहित हैं और यहाँ बादल क्रांति के दूत के रूप में प्रकट होता है। बादल अर्थात 'क्रांति का दूत' जो समस्त सामाजिक संकीर्णताओं को तोड़कर राष्ट्र को एकाकार करने की कल्पना है।

> तोड़ दो यह क्षितिज मैं देख लूँ उस पार क्या है?
> जा रहे जिस पंथ से युग कल्प उसका छोर क्या है?
> नभ डुबा पाया न अपनी बाढ़ में वह क्षुद्र तारे
> ढूँढ़ने करुणा मृदुल घन चीर कर तूफान हारे।
>
> (फिर विकल हैं प्राण मेरे- महादेवी वर्मा)

डॉ. नामवर सिंह छायावाद में नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण, प्रेम और विरह की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि-'प्रसाद की श्रद्धा, पंत की अप्सरा और निराला की रत्नावली के सामने जायसी की पद्मावती, सूर की राधा, तुलसी की सीता और रीतिवादी कवियों की समस्त नायिकाएँ फीकी पड़ जाती हैं।'[7] इतना ही नहीं छायावादी कवियों की रीतिकालीन दरबारी परम्परा का विरोध करते हुए रीतिकालीन कविता को एक स्वच्छ, सुयोग्य और आदर्शवादी पृष्टभूमि पर ला खड़ा करते हैं। इस प्रकार छायावादी कवि रीतिकालीन कविता को घोर शृंगारिकता, मांसल चित्रण एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वातावरण से बाहर निकालकर शृंगार को एक उच्चकोटि का आदर्श दर्जा दिलाये हैं। चाहे नारी हो या प्रकृति दोनों

ही छायावादी कविता हेतु प्रेरणास्रोत हैं। इसलिए ये रीतिकालीन कवियों के नारी सम्बन्धी विचारधारा के बिल्कुल विपरीत है।

अपनी पुस्तक 'छायावाद' में राष्ट्र के विकास और मानव जीवन में प्रकृति की महत्ता को स्पष्ट करते हुए डॉ. नामवर सिंह कहते हैं कि 'राष्ट्रीय भावना के इतिहास में यदि पुनरुत्थान भावना प्रथम चरण है तो देशप्रेम द्वितीय चरण। अपने गाँव और प्रांत की सीमा से बाहर निकलकर सम्पूर्ण देश को अपनी जन्मभूमि समझना राष्ट्रीयता का मंगलाचरण है। लेकिन सच्चे देशप्रेम के लिए आवश्यक है अपने देश के पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-नाले, पहाड़-झरने, ग्राम-प्रांतर तथा यहाँ रहने वाले लोगों से घनिष्ठ परिचय तथा सहज स्नेह। अपने देश की प्रकृति सुषमा से जो आदमी प्रभावित नहीं होगा, वह देश की रक्षा के लिए क्या जान देगा? इसलिए पुनरुत्थान भावना के साथ ही हमारे देश में प्रकृति देश-प्रेम का उदय हुआ है।'[8] यहाँ छायावादी रचनाकार अपने परम्परागत मानवीय मूल्यों आधुनिकता से ही नहीं, बल्कि प्रकृति से भी जोड़े हैं। उन्होंने मानवीय संकीर्णताओं और विरोधात्मक मूल्यों पर प्रहारकर अपने देश के प्रति, राष्ट्र के प्रति और प्रकृति के प्रति भारतीयों में प्रेरणा का स्वर भरकर, समस्त बंधन और सीमाओं को तोड़कर मानवीय मूल्यों को सर्वोपरि बना दिया है।

जयशंकर प्रसाद अपनी कविता 'बीती विभावरी जाग री' और 'जागो जीवन के प्रभात' के माध्यम से भारतवासियों में प्रकृति के माध्यम से नवीन उर्जा का संचार करते हैं। वर्षों से सोयी हुई जनता को जगाकर उसे अपने कर्मपथ की ओर अग्रसर करने का कार्य करते हैं। वे अपने देश और राष्ट्र की जिम्मेदारियों से विमुख देशवासियों को कर्तव्यबोध कराते हैं।

सम्पूर्ण छायावाद में प्रसाद के पश्चात सबसे ज्यादा राष्ट्रीय स्वर सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला की कविताओं में दिखाई पड़ता है। प्रसाद जी के समान ही भारतीयों के भीतर राष्ट्रीय चेतना का संचार करते हुए सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला यह स्पष्ट कर देते हैं कि यह राष्ट्रीय चेतना भारतीय परम्परा की उपज है न कि पश्चिम (विदेशी) का प्रभाव -

भारति जय विजय करे/कनक-शस्य-कमलधरे/लंका पदतल शतदल।
गर्जितोर्मि सागर जल/धोता शुचि चरण-युगल/स्तव बहु अर्थ भरे।

प्रकृति के सर्वश्रेष्ठ कवि सुमित्रानन्दन पंत अपनी कविता 'बापू के प्रति' में राष्ट्रीय जननायक महात्मा गाँधी को मानवता की श्रेणी से उठाकर देवताओं की श्रेणी में ला खड़ा करते हैं। मनुष्य अपने स्वयं के कर्मों से ही बड़ा या छोटा बनता है। कर्म ही वह माध्यम है जो मनुष्य को अमरत्व तक पहुँचा देता है।

सुख भोग .....

परिणामतः छायावाद में नवीन चेतना के साथ-साथ नवीन भावभूमि पर स्थित देश-प्रेम, रहस्य, धर्म, दर्शन, आध्यात्म, प्रकृति-प्रेम, नारी-भावना, वैयक्तिकता, राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्र-अनुराग आदि समस्त मानक भारतीय परम्परा के अनुकूल है, क्योंकि छायावादी परम्परा की पृष्ठभूमि त्याग, तपस्या और बलिदानियों की पृष्ठभूमि रही है। छायावादी कवि अपनी कविताओं के माध्यम से सम्पूर्ण भारतवर्ष को जागरण का संदेश देते हैं जिससे भारतीय अपने राष्ट्र की रक्षा और चेतना से परिपूर्ण हो उठता है। छायावादियों का यह संदेश वैयक्तिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि देशव्यापी स्तर पर संचालित आंदोलन का प्रतीक है। इस आंदोलन में मानव के साथ-साथ प्रकृति भी पूर्णतः समाहित है।

प्रकृति से उन्हें प्रेरणा मिलती है, जीवन के आंतरिक जगत से लेकर बाह्य जगत तक प्रकृति समस्त छायावादी कवियों की प्रेरणा स्रोत रही है। छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, सुमित्रानन्दन पंत और महादेवी वर्मा की रचनाएँ भारतीय राष्ट्रीय गौरव का प्रतिमान है। इनकी कविताओं में भारतभूमि की परम्परा और संस्कार समाहित हैं। ये रचनाएँ भारतीयों में उत्साह भरती है। वर्षों की गुलामी, शोषण, दीनभाव, सामाजिक विघटन, स्त्री शोषण व विदेशी प्रभावों के विरुद्ध संघर्ष हेतु भी प्रेरित करती है। इसलिए छायावादी कवियों का साहस, शौर्य, तेज, बुद्धिमत्ता और नैतिक संस्कार शोषितों में आत्म गौरव व राष्ट्र गौरव का भाव जगाता है।

संदर्भ :

1. छायावादी कविताएँ, शिवकरण सिंह, डॉ. महेन्द्रनाथ राय(सम्पादक), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. संख्या–10.
2. छायावादी कवितॉं, शिवकरण सिंह, डॉ. महेन्द्रनाथ राय(सम्पादक), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.–14.
3. आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियॉं, डॉ. नामवर सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाबाद, पृ.–34.
4. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ.–349.
5. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास–रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद। सहस्त्राब्द संस्करण, पृ.–110.
6. छायावादी कविताएँ–शिवकरण सिंह, डॉ. महेन्द्रनाथ राय(सम्पादक), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.–22.
7. छायावाद, डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ.–63.
8. छायावाद, डॉ. नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, द्वितीय संस्करण, पृ.–77.

❑❑❑

छायावाद की सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना

❍ आरजू सिंह ❍ अजीत प्रताप सिंह

छायावाद का उदय लगभग 1920 ई. से माना जाता है। सम्भवतः यह वह समय था जब स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ने का प्रश्न है तो कवि ने जो यह 'मैंने मैं शैली अपनाई' वह शैली भर नहीं है। इस निजता और आत्मीयता के पीछे आधुनिक युवक का पूरा व्यक्तित्व है और वह अपने को अभिव्यक्त करने के लिए सीधे-सीधे सामाजिक स्वाधीनता चाहता है। इसलिए पहले जहाँ कविताओं में देवताओं के प्रेम का वर्णन होता था वह स्थान साधारण मनुष्य ने ले लिया। यह जनतांत्रिक भावों की विजय है। छायावादी कवि समाज में व्याप्त रूढ़ियों, सड़ी-गली मान्यताओं, धर्म के ठेकेदारों का वर्चस्व, ऊँच-नीच के द्वन्द आदि का विरोध करते हैं। छायावाद आधुनिक काल के अन्तर्गत आने वाला काल है तो उसके लिए यह जरूरी भी है क्योंकि आधुनिकता का अर्थ भी- 'एक चेतना है जो जीवन के प्रत्येक करणीय व निषेध का सन्तुलित निर्णय करती हुई मनुष्य को स्वविवेक व सन्तुलित चिन्तन की ओर प्रेरित करती है।' यह विद्रोह व समन्वयात्मक दोनों ही चरित्र में प्रसंगगत आवश्यकतानुरूप उपस्थित होती है। परम्परा व इतिहासबोध का प्रयोग इसके द्वारा एक उत्प्रेरक के रूप में होता है जो इसकी पृष्ठभूमि में रहते हुए उसके स्वरूप को दिशा प्रदान करते हैं तथा प्रतिदान में आधुनिकता ही इतिहास व परम्परा का वर्तमानजन्य संस्कार व परिष्कार करती है। डॉ. नामवर सिंह की दृष्टि में-"आधुनिकता ऐतिहासिक अवधारणा है और एक विशेष युग में उत्पन्न हुई है। यह एक शाश्वत तत्व नहीं है।"

अब प्रश्न छायावाद की सामाजिक चेतना का है। छायावादी साहित्य समाज में प्रबोधन की प्रक्रिया का सूत्रपात करता है। लोगों को उद्वेलित करता है। सत्य के सुखद परिणामों को रेखांकित करता है, तो असत्य के दुखद अंतों को स्पष्ट कर हमें सीख व शिक्षा भी प्रदान करता है।छायावाद समाज के नव-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। छायावादी साहित्य समाज को संस्कारित करता है, जीवन-मूल्य देता है एवं कालखण्ड की विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं विरोधाभासों को रेखांकित कर समाज को सन्देश देता है, छायावाद समाज को संजीवनी शक्ति प्रदान करके उसकी प्रशस्ति का मार्ग निर्धारित करता है। प्रसाद कहते हैं-

'औरों को हँसते देखो मनु हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।।'

साहित्य की तीन खूबियाँ हैं- वह अतीत से प्रेरणा ग्रहण करता है, वर्तमान को चित्रित करता है और भविष्य का मार्गदर्शन करता है। छायावादी साहित्य इस मानक पर शत-प्रतिशत खरा उतरता है। मुंशी प्रेमचन्द ने कहा है-

"जो दलित है,पीड़ित है, संत्रस्त है, उसकी साहित्य के माध्यम से हिमायत करना साहित्यकार

का नैतिक दायित्व है।"

छायावाद में सामाजिक समस्याओं को बखूबी अभिव्यक्त किया गया है। निराला ने सामाजिक विषमता को चिन्हित करने वाली कविताओं में क्रान्ति का आह्वान किया और शोषण का हर स्तर पर विरोध किया। 'तोड़ती पत्थर' नामक कविता में उन्होंने पत्थर तोड़ने वाली मजदूरनी का चित्रण किया है जो धूप में तपती हुई पत्थर तोड़ रही है और उसके सामने वे भवन हैं जिनके परकोटे में छायादार पेड़ हैं, सुख- सुविधा के सारे साधन हैं।इस सामाजिक विषमता का चित्रण करते हुए वे कहते हैं-

"वह तोड़ती पत्थर
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
कोंई न छायादार पेड़ वह
जिसके तले बैठी हुई स्वीकार।"

हम निःसंकोच कह सकते हैं कि छायावाद समाज से जुड़ा हुआ था और छायावादी कविताएँ इसकी पुष्टि करती हैं। छायावादी कविता दो विश्वयुद्धों के बीच की कविता है। छायावादी काल(1920 ई. -1936 ई.) में भारतीय जनमानस पर देश को स्वतन्त्र कराने की चेतना पूर्णतः छाई हुई थी। तिलक का उद्घोष 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' और सुभाष की हुंकार 'तुम मुझे खून दो मैं तुम्हे आजादी दूंगा' ने जनता को आजादी की लड़ाई की ओर उन्मुख किया, ठीक वैसे ही छायावादी कवियों ने भी सुषुप्त जनमानस को जाग्रत किया और उनके अन्दर स्फूर्ति भरने का महान कार्य किया। निराला कहते हैं-

जागो फिर एक बार
शेरों की माद में आया है आज स्यार।।

ऐतिहासिक दृष्टि से जिसे गांधी युग कहा जाता है, साहित्यिक दृष्टि से उसे ही छायावादी युग की संज्ञा दी जाती है। तात्पर्य यह कि छायावादी काव्य गांधी युग की मिट्टी में ही अंकुरित, पुष्पित और पल्लवित हुआ। गांधी युग राष्ट्रीय चेतना का उत्कर्ष काल था। उस समय भारतीय जनमानस में राष्ट्र-प्रेम का समुद्र हिलोरें मार रहा था। अतः छायावादी काव्य से भी यह आशा करना स्वाभाविक था और छायावादी काव्य पूर्णतः अपेक्षित परिणाम दे रहा था।

छायावादी काव्य में राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति की मुख्य रूप से तीन भाव-भूमियाँ हैं-

1. भारत के स्वर्णिम अतीत का गौरव-गान
2. भारत की वर्तमान दयनीय दशा का चित्रांकन, और
3. भारत के उज्ज्वल भविष्य का रूपांकन

छायावाद इन तीनों भाव-भूमियों को एक सूत्र में बांधने वाला कालक्रम ही नहीं मनोवैज्ञानिक क्रम भी है। किसी भी राष्ट्र का स्वर्णिम अतीत देशवासियों के लिए प्रेरणा और प्रोत्साहन का अक्षय स्रोत होता है। शताब्दियों से गुलामी के बन्धन में जकड़े हुए भारतवासियों में व्याप्त हीनता की भावना को दूर कर उसमें आत्मगौरव और आत्म-विश्वास का संचार करने के लिए भारत के स्वर्णिम अतीत का गौरव गान आवश्यक था

अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।।

इसी सन्देश को जन-जन तक पहुँचाने के लिए महाकवि निराला 'खंडहर के प्रति' नामक कविता में भारत के महामानवों का स्मरण दिलाते हुए कहते हैं-

आर्त भारत! जनक हूँ मैं,
जैमिनी, पतंजलि,व्यास ऋषियों का,
मेरी ही गोद पर शैशव विनोद कर,
तेरा ही बढ़ाया मान।।

इसी बात को प्रसाद जी आत्मसम्मान की दृष्टि से इस प्रकार कहते हैं-

किसी का हमने छीना नहीं,
प्रकृति का रहा पालना यही।
कहीं से हम आये थे नहीं,
हमारी जन्मभूमि यही।।

छायावादी काव्य में राष्ट्रीय चेतना अभिव्यक्ति की तीसरी भावभूमि है, भारत के स्वर्णिम भविष्य की कल्पना। इसमें गाँधी की मानवतावादी दृष्टि और रवीन्द्रनाथ की विश्वबन्धुत्व की भावना का समावेश है। जहाँ निराला ने भारत को भविष्य में पराधीनता से मुक्त होते दिखाया है-

आयेगी भाल पर भारत की गई ज्योति,
हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जावेंगे।।

वहीं पन्त जी ने भी समाज की सबसे छोटी ईकाई व्यक्ति को केन्द्र में रखा है। उनका मानना था कि व्यक्ति से ही समाज तथा समाज से ही राष्ट्र का निर्माण होता है। इसलिए यदि व्यक्ति सही रहेगा तो समाज तथा राष्ट्र का विकास स्वयं हो जायेगा। वसुधैव कुटुम्बकम् का आदर्श पन्त की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

क्यों न एक हों मानव-मानव सभी परस्पर,
मानवता निर्माण करें जग में लोकोत्तर।।

वहीं मानव को प्रेरित करते हुए वे मानव को ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति मानते हुए कहते हैं-

सुन्दर हैं विहग सुमन सुन्दर,
मानव तुम सबसे सुन्दरतम।।

यहीं अगर हम महादेवी की बात करें तो वह भी विरह एवं वेदना की कवयित्री जरूर थीं, लेकिन उनकी विरहाभिव्यक्ति में भी कहीं न कहीं राष्ट्र-प्रेम की झलक मिलती थी। तत्कालीन समाज में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थिति का अवलोकन करिये तो सबसे जरूरी बात जो निकलकर आती है, वह है 'जागरण'। जनमानस को जागृत करने की बहुत जरूरत थी। महादेवी जी कहती हैं-

चिर सजग आँखें उनींदी,
आज कैसा व्यस्त बाना,
जाग तुझको दूर जाना।।

यह जागरण सूक्ष्म सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय जागरण ही है। यह जागरण सांस्कृतिक, सामाजिक तथ्यों को उजागर करता है।यहीं एक ओर सामन्ती व्यवस्था में नारी को बहुत ही हीन दृष्टि से देखा जाता था।

इसके लिए भी महादेवी जी का अन्तस उनको धिक्कारता था। सही मायने में महादेवी जी से ही स्त्री-विमर्श की शुरुआत मानना गलत नहीं होगा। वे स्त्री-पुरुष समानता की पक्षधर थीं। इसी को व्यक्त करते हुए वे कहती हैं-

जब असीम से हो जायेगा,
मेरी लघु सीमा का मेल।
देखोगे तुम देव अमरता,
खेलेगी मिटने का खेल।।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि छायावाद में जहाँ एक ओर राष्ट्रीय चेतना को व्यक्त किया गया है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक चेतना को परिवर्तित करने का सार्थक प्रयास भी किया गया। छायावाद में शोषण, अन्याय व अत्याचार का खुलकर विरोध किया गया तथा मानव की प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया गया। छायावादी कवि एक ऐसे समाज के आकांक्षी थे जिसमें समता हो, प्रेम हो, समानता हो तथा पारस्परिक भ्रातृत्व भावना हो। छायावादी कवियों की कविता का धरातल राष्ट्रीय, विस्तृत एवं बहुरंगी है। छायावादी कवियों की राष्ट्रीय चेतना में देश की संस्कृति और गरिमा मुखरित हुई है और इसके माध्यम से उन्होंने जनमानस में अपूर्व उत्साह और ऊर्जा भरने की अनुकरणीय भूमिका निभाई है।

सन्दर्भ :

1. 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास', बच्चन सिंह
3. 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. 'छायावाद', नामवर सिंह
5. 'छायावाद के कवि', विजय बहादुर सिंह

❑❑❑

छायावादी उपन्यास

❍ खुशबू

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य भारतीय समाज और साहित्य में नवजागरण और आधुनिकता की जिन प्रवृत्तियों का उदय हुआ, उसे बीसवीं शताब्दी के आरंभिक चरण में गाँधी, तिलक, गोखले और अंबेडकर के नेतृत्व ने विशेष बल दिया। इनके नेतृत्व ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक आंदोलनों को जन आंदोलन बनाने का कार्य किया। इन आंदोलनों ने एक ओर भारतीय स्वाधीनता, राष्ट्रीय एकता, देश-प्रेम की भावना को गति प्रदान की वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज की पुरानी रूढ़ियों, मान्यताओं, असमानताओं को तोड़ने का काम भी किया। शिक्षा के प्रसार ने धर्म-दर्शन, जाति-वर्ग, स्त्री, दलित, नैतिक आचार-विचार, रूढ़ियों तथा मान्यताओं पर नए सिरे से विचार करने के लिए बाध्य किया। ज्योतिबा फुले, रामकृष्ण परमहंस तथा अरविंद जैसे सुधी विचारकों के चिंतन के प्रभाव से सामाजिक जागरूकता का विस्तार हुआ। इन सब के प्रभाव से आधुनिक भारतीय साहित्य में नई चेतना का विकास हुआ। काव्यात्मक स्तर पर हिन्दी साहित्य में कविता परंपरागत शास्त्रीयता से मुक्त होकर नई भाषा एवं शैली के साथ नए काव्यादर्शों पर लिखी जाने लगी। वहीं दूसरी ओर हिन्दी गद्य के विविध विधाओं ने भी बीसवीं शताब्दी में प्रौढ़ रूप धारण किया।

बीसवीं शताब्दी का दूसरा दशक भारत सहित पूरे विश्व के लिए संक्रमण काल रहा। प्रथम विश्व युद्ध जैसी घटना ने वैश्विक स्तर पर जो प्रभाव डाला, उसने भारतीय समाज के भीतर भी बदलाव की स्थिति को तेज किया। गाँधीजी के भारत आगमन से स्वाधीनता आंदोलन को नई ऊर्जा मिली। इसके साथ ही सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, प्रेम, बंधुत्व, मानवतावाद की स्थापना के लिए भी संघर्ष होने लगे। साहित्य में भी इन आंदोलनों का व्यापक असर हुआ। द्विवेदी युग की श्रेष्ठ रचनाओं में 'भारत भारती' (1912), 'प्रियप्रवास' (1914) और 'उसने कहा था' (1915) इस दशक के प्रारंभिक वर्षों में लिखी गई। इस दशक का अंतिम पाँच वर्ष हिन्दी में विशेषकर कविता और कथा साहित्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण रहा। निराला ने 'जुही की कली' लिखकर कविता के क्षेत्र में विभिन्न स्तरों पर बदलाव की जिस प्रक्रिया को शुरू किया, वैसा ही कुछ परिवर्तन कथा साहित्य में प्रेमचंद ने 1916 में 'पंच परमेश्वर' कहानी लिखकर किया। ये दोनों ही रचनाएँ अपनी-अपनी विधाओं में मील का पत्थर साबित हुई। इन रचनाओं ने भाषा के साथ-साथ विषयवस्तु के नए उदाहरण प्रस्तुत किए। नामवर सिंह लिखते हैं- "कविताओं में जहाँ देवताओं के प्रेम का वर्णन होता था, वह स्थान साधारण मनुष्य ले ले- यह जनतांत्रिक भाव की विजय है; यह मध्यवर्ग की पहली सामाजिक स्वाधीनता है।"[1]

1918 में प्रसाद का 'झरना' कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ और अधिकतर विद्वानों ने इस कृति से

कविता में 'छायावाद' के आरंभ को स्वीकार किया। इसी तरह 1918 में 'सेवासदन' उपन्यास लिखकर प्रेमचंद ने कथा साहित्य में एक नए युग की शुरुआत की, जिसे हिन्दी साहित्य में 'प्रेमचंद-युग' के नाम से ही जाना जाता है। सन् 1918 में हिन्दी कविता में 'छायावाद' और कथा साहित्य में 'प्रेमचंद युग' की शुरुआत महज एक संयोग नहीं था और न ही इसे द्विवेदी युग की प्रतिक्रिया स्वरूप लिखा गया साहित्य मानना उचित होगा। बल्कि यह उस सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तन का परिणाम था, जिसे विभिन्न आंदोलनों और विचारों ने बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में तेजी प्रदान की थी। इन आंदोलनों तथा विचारों पर गाँधीजी का व्यापक प्रभाव था। कृष्णदत्त पालीवाल लिखते हैं- "छायावादी युग स्वाधीनता आंदोलन की मुक्ति चेतना की समर्थ सर्जनात्मक अभिव्यक्ति है, जिसका शक्ति प्रवाह प्राणों में नवीन गति का संचार करता है। सच तो यह है कि उस पूरी संचार-शक्ति की प्रेरणा के पीछे महात्मा गाँधी हैं। पता नहीं कैसे कहा गया कि छायावाद ने युग यथार्थ का तिरस्कार करके पलायनवादी दृष्टि अपनायी। कवियों को कल्पनाजीवी और प्रेमचंद को आदर्शवादी, यथार्थवादी कहा गया; जबकि सच यह है कि प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी की मनोभूमि एक दूसरे से काफी निकट है। राष्ट्रीय मुक्ति चेतना, देशप्रेम, देशभक्ति, स्वराज की भावना में वे युग यथार्थ को आत्मसात करते हुए आगे बढ़ते हैं। हाँ, इस यथार्थ में उनकी दृष्टि भिन्नता है और यह दृष्टि भिन्नता ही इस गतिशील पदार्थ का सौंदर्य है। यथार्थ के अनेक रूपों का अद्‌भुत उदाहरण प्रेमचंद का उपन्यास कायाकल्प है।"[2]

युग चेतना की दृष्टि से छायावादी कवियों की अपेक्षा छायावादी कथा साहित्य तत्कालीन परिस्थितियों के अधिक निकट दिखाई देता है। छायावादी दौर के उपन्यासकारों में प्रेमचंद, निराला, शिवपूजन सहाय, जैनेंद्र, जयशंकर प्रसाद, भगवतीचरण वर्मा, राधिकारमण प्रसाद सिंह, सियारामशरण गुप्त, भगवती प्रसाद वाजपेयी, वृंदावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, अनूप लाल मंडल, ऋषभचरण जैन, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक आदि महत्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासकारों ने तत्कालीन समस्याओं को भिन्न-भिन्न कथा वस्तु और शिल्प के साथ लिखने का प्रयास किया है। आलोचकों ने भले ही छायावादी काव्यधारा को स्थापित करने के लिए उसे तत्कालीन राष्ट्रीय जागरण से जोड़ने का प्रयास किया, लेकिन छायावाद की मूल प्रवृत्तियाँ अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म से ही प्रेरित और प्रभावित रही हैं, इसे भी उन्हें स्वीकार करना पड़ता है। जबकि उपन्यास लिखने की प्रवृत्ति भले ही पश्चिम से हिन्दी में आई, लेकिन हिन्दी ने अपने समय, समाज और जरूरत के अनुसार इसकी विषय-वस्तु को निर्मित किया। प्रेमचंद जिस तरह उस दौरान वैचारिक स्तर पर भारतीय परिवेश से कथा साहित्य को जोड़कर लिख रहे थे उस तरह छायावादी कवि समाज से नहीं जुड़ते दिखते। यही वजह है कि छायावादी रचनाकारों से पाठक उतना जुड़ाव महसूस नहीं कर पाता, जितना कि प्रेमचंद या अन्य उनके समकालीन कथाकारों से। स्वयं प्रसाद जिस तरह कविता लिखते हैं, उस तरह कथा साहित्य नहीं लिख रहे होते हैं। उनके कहानी, उपन्यास या नाटकों में जिस तरह राष्ट्रीय जागरण और स्वतंत्रता की गूँज उठती है, उस तरह उनकी कविताओं में नहीं दिखाई देती। मुक्तिबोध भले ही 'कामायनी' को पूँजीवाद से जोड़कर देखने का प्रयास करते हैं, लेकिन उसमें काम, लज्जा, दर्शन, रहस्य, आनंद जैसे विधान 'चंद्रगुप्ता' 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक की तुलना में अधिक वायवीय अथवा काल्पनिक महसूस होते हैं। ध्रुवस्वामिनी जिस तरह क्लीव रामगुप्त की निंदा और परित्याग करती है, वह मुखरता या स्वाधीन चेतना श्रद्धा में नहीं है। ठीक यही बात गाँधी दर्शन के संदर्भ में भी लागू होती है। छायावादी कवियों में पन्त सबसे अधिक गाँधीवाद से प्रभावित माने जाते हैं, लेकिन छायावादी उपन्यासकारों के यहाँ गाँधीवाद जितने स्पष्ट और व्यापक रूप में दिखाई देता है उतना किसी छायावादी

कवि के यहाँ नहीं है। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि छायावादी कविता का कोई महत्व नहीं है। छायावादी कविता की अपनी विशेषताएँ हैं, जिसके कारण वह हिन्दी साहित्य में विशेष स्थान रखती है।

छायावादी उपन्यास का फलक कविताओं की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। यह विस्तार अनेक स्तरों पर है। प्रेमचंद ने 'सेवासदन' के माध्यम से हिन्दी उपन्यास में जिस परंपरा की शुरुआत की, उसका अनुसरण उनके समकालीन रचनाकारों में विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, चतुरसेन शास्त्री, प्रताप नारायण श्रीवास्तव, अनूप लाल मंडल, प्रफुल्लचंद ओझा, जगदीश झा विमल आदि ने किया। लेकिन प्रेमचंद से भिन्न सबसे पहले शिवपूजन सहाय ने 1925 में 'देहाती दुनिया' नाम से हिन्दी का पहला आंचलिक उपन्यास लिख कर उपन्यास के क्षेत्र में एक नवीन कार्य किया। जैनेन्द्र ने उपन्यास में मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि को आधार बनाया तो वहीं इलाचंद्र जोशी ने काम कुंठा जनित समस्या को केंद्र बनाकर एक अलग किस्म का प्रकृतवादी उपन्यास लिखने का प्रयास किया। इस तरह यशपाल, श्रीनाथ सिंह, निराला, प्रसाद आदि ने अलग अलग ढंग से उपन्यास लिखा। सामाजिक, राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक एवं आंचलिक उपन्यासों के अलावा ऐतिहासिक उपन्यास भी इसी काल में वृंदावनलाल वर्मा, हजारी प्रसाद द्विवेदी, भगवती चरण वर्मा, राहुल सांकृत्यायन आदि के माध्यम से लिखे गए। विषय वस्तु के अतिरिक्त शैली की दृष्टि से भी छायावादी उपन्यास हिन्दी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण रहे हैं। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' द्वारा 'चंद हसीनों के खतूत'(1927) पत्रात्मक शैली में लिखा गया हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। श्रीकृष्ण मिश्र द्वारा लिखित 'महाकाल'(1930) हिन्दी का पहला उपन्यास है, जिसमें पहाड़ी क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों के कष्टपूर्ण जीवन को दिखाया गया है। आत्मकथात्मक उपन्यास की परंपरा भी प्रेमचंद युग में ही शुरू होती है। कृपानाथ मिश्र द्वारा लिखित 'प्यास'(1932) नामक उपन्यास आत्मकथात्मक शैली में लिखा गया है। इसी तरह यूटोपिया पर आधारित हिन्दी का पहला उपन्यास राहुल सांकृत्यायन द्वारा 1931 में 'बाईसवीं सदी' लिखा गया है। दलित जीवन को केंद्र में रखकर इंद्र बसावड़ा ने 'घर की राह'(1935) नाम से उपन्यास लिखा है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रेमचंद युग में हिन्दी कथा साहित्य में विभिन्न नयी-नयी प्रवृतियों का रूप विकसित होता दिखायी देता है। ये प्रवृत्तियाँ बाद के हिदी कथा साहित्य में नयी धाराओं का स्रोत बनती हैं।

छायावादी उपन्यास प्रवृत्ति के साथ-साथ जीवन पर भी गंभीरता से बात करता है। व्यक्ति स्वतंत्रता की आवाज छायावादी उपन्यासकारों के यहाँ प्रमुखता से दिखाई देती है। स्त्री स्वाधीनता, विधवा जीवन, अशिक्षा, वेश्यावृत्ति, अनमेल विवाह, दलितों तथा किसानों की समस्या, जमींदारी, अस्पृश्यता, सांप्रदायिकता, दहेज, शोषण, निर्धनता, मध्यमवर्ग की कुंठा आदि शहरी एवं ग्रामीण जीवन से जुड़ी समस्याओं को छायावादी उपन्यासकारों के यहाँ प्रमुखता से उठाया गया है। प्रेमचंद के प्रयास से हिन्दी उपन्यास मनोरंजन के स्तर से उठकर सामान्य जन-जीवन की आवाज बने और बहुत कम समय में उपन्यास एक समृद्ध विधा के रूप में स्थापित हुआ। यही कारण है कि प्रेमचंद पूरे भारत में अहिन्दी भाषी और गैर साहित्यिक पाठकों के बीच जितने लोकप्रिय हुए, उतनी लोकप्रियता उस दौर की छायावादी कविताओं को नहीं मिली।

स्वाधीनता आंदोलन में जिस तरह स्त्री, दलित, किसान एवं मजदूर की भागीदारी बढ़ी थी उसका सीधा असर प्रेमचंद युगीन उपन्यासों में दिखाई देता है और इसका विस्तार 1936 में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना के बाद हिन्दी साहित्य में होता है। वहीं दूसरी ओर छायावादी कविता 1936 के बाद अपना विस्तार नहीं कर पाती। अतिशय भावुकता, कल्पनाशीलता, रहस्यवाद, प्रकृति प्रेम, अज्ञात के प्रति

लालसा यह सब तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं थे। यही कारण है कि स्वयं छायावादी कवि निराला और पंत भी इस का परित्याग कर देते हैं। इसका कारण तत्कालीन राजनीतिक परिवर्तन भी है। 1936 तक आते-आते गाँधी का भारतीय राजनीति में प्रभाव कम होने लगता है। नेहरू के कांग्रेस अध्यक्ष बनने के बाद कांग्रेस के चरित्र में भी परिवर्तन होता है। स्वाधीनता आंदोलन के गरम दल के क्रांतिकारी नेता मार्क्स और लेनिन से प्रभावित होते हैं और भारत के राजनीतिक चरित्र को प्रभावित करते हैं। किसान, मजदूर, स्त्री और दलितों की मजबूत भागीदारी स्वाधीनता आंदोलन की गति को तेज करती है। इन सब के सामने गाँधी का सत्य और अहिंसा का आन्दोलन कमजोर पड़ने लगता है। गाँधीवाद से मोह भंग प्रेमचंद में भी 1930 तक दिखने लगता है। चूँकि प्रेमचंदयुगीन हिन्दी उपन्यास शुरू से इन दमित वर्गों की बात करता है, इसलिए उसमें 1936 के बाद कथ्य की दृष्टि से कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता। प्रेमचंदोत्तर हिन्दी उपन्यास वस्तुत: प्रेमचंदयुगीन हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि का ही विस्तार है, जबकि छायावादी कविता के संबंध में ऐसा नहीं हो पाता।

प्रेमचंदयुगीन उपन्यासों में औपन्यासिक संरचना पर विशेष बल दिया गया। विषय वस्तु के साथ-साथ चरित्र चित्रण पर भी विशेष जोर दिया गया। संरचना के स्तर पर प्रेमचंद यूरोपीय यथार्थवादी संरचना को हिन्दी में विस्तार देते हैं और कथानक के स्तर पर भी परंपरागत कथावस्तु के स्थान पर नयी कथा संरचना का विकास हिन्दी में प्रेमचंद के यहाँ से ही शुरू होता है। प्रेमचंद के उपन्यासों में सिर्फ कथा को महत्व नहीं दिया गया बल्कि पूरे कथा-संसार को उपन्यासों में समेटने का प्रयास किया गया है, जिसके कारण उनके कई उपन्यासों में कथानक के स्तर पर बिखराव भी दिखाई देता है, किंतु उपन्यासों में पूरे कथासंसार को समेटने के कारण ही वह महाकाव्यात्मक अनुभूति के निकट पाठक को पहुँचाने में सक्षम हो पाता है।

छायावादी उपन्यासकारों के यहाँ कथा जगत की प्रचलित प्रविधियाँ-दृश्यात्मक और परिदृश्यात्मक दोनों का प्रयोग मिलता है। दृश्यात्मक प्रविधि में छायावादी उपन्यासकार अपने पूर्व की परंपरा यानी लाला श्रीनिवास दास, देवकीनंदन खत्री, बालकृष्ण भट्ट इत्यादि से दृश्य निर्माण और संवाद के स्तर पर थोड़े प्रभावित जरूर दिखते हैं। लेकिन कई सारी मौलिक नवीनतओं के साथ। वहीं दूसरी ओर परिदृश्यात्मक प्रविधि भी छायावादी उपन्यासकारों के यहाँ दिखाई देता है। इसका प्रयोग उपन्यास में प्रेमचंद से पूर्व यथार्थ से जुड़ता कम ही दिखाई देता है। होरी और धनिया के आपसी नोक-झोंक का दृश्य पाठक को जीवन यथार्थ के अधिक निकट ले जाता है। धनिया कहती है- "इसी से तो कहती हूँ कुछ जलपान कर लो। आज न जाओगे तो कौन हरज होगा ! अभी तो परसों गए थे।"(होरी) तू जो बात नहीं समझती, उसमे टांग क्यों अड़ाती है भाई ! मेरा लाठी दे दे और अपना काम देख"[3] ऐसे अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। इस तरह परिवेश वर्णन, बिम्ब निर्माण, पात्रों के चरित्र विश्लेषण या उसके मनोभावों का उद्घाटन जैसे सभी पहलुओं पर छायावादी उपन्यासकारों ने हिन्दी कथा साहित्य की परंपरा को समृद्ध किया है। प्रकृतिवादी तथा मनोविश्लेषणवादी उपन्यास अथवा आंचलिक उपन्यासों की पृष्ठभूमि के निर्माण का श्रेय भी छायावादी उपन्यासकारों को ही जाता है।

छायावादी उपन्यासकारों ने कथावस्तु, शिल्प, प्रविधि के साथ-साथ भाषा के स्तर पर भी बहुत महत्वपूर्ण काम किया है। प्रेमचंद द्वारा कथा साहित्य को कल्पना लोक से उतारकर यथार्थ के धरातल पर खड़ा करने में भाषा का सर्वाधिक योगदान रहा है। ग्रामीण तथा शहरी जीवन का चित्रण करते हुए प्रेमचंद ने भाषा के प्रति विशेष सतर्कता दिखाई है। प्रेमचंद के ग्रामीण पात्र ठेठ गवईं शब्दों, लोकोक्तियों

तथा मुहावरों का प्रयोग करते हैं। वहीं शहरी पात्र अंग्रेजी तथा उर्दू फारसी के शब्दों का अधिक प्रयोग करते हैं। इसी प्रकार पांडेय बेचन शर्मा उग्र की भाषा में विशेष अक्खड़ता उनके उपन्यासों की कथावस्तु तथा समस्या की जटिलता का परिणाम माना जा सकता है। प्रसाद तथा हजारी प्रसाद द्विवेदी ने संस्कृतनिष्ठ खड़ी बोली का प्रयोग करके हिन्दी उपन्यास को भाषा के स्तर पर एक अलग आयाम दिया है। इलाचंद्र जोशी तथा जैनेद्र ने पात्रों के अंतर्मन, पीड़ा तथा द्वंद्व को व्यक्त करने में भाषा के स्तर पर विशेष सफलता प्राप्त की है। शिवपूजन सहाय, वृंदावनलाल वर्मा आदि ने आंचलिकता को यथार्थ रूप में पाठक के सामने प्रस्तुत करने के लिए लोक विशेष की भाषा को महत्व देकर हिन्दी उपन्यास को समृद्ध किया है। प्रेमचंद युगीन सभी उपन्यासकारों ने भाषा के स्तर पर अपने परवर्ती उपन्यासकारों के लिए जमीन तैयार करने का काम किया है।

इस प्रकार अनेक दृष्टियों से छायावादी उपन्यास हिन्दी साहित्य के लिए महत्वपूर्ण रहा है। प्रेमचंद 'सेवासदन' से जिस नई परम्परा की शुरुआत करते हैं, उसे उनके समकालीन रचनाकारों ने और समृद्ध किया। यह समृद्धि अनेक स्तरों पर रही। इस युग ने हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में जिस समृद्ध परंपरा की शुरुआत की, उसे परवर्ती उपन्यासकारों द्वारा भी अपनाया जाता रहा है।

सन्दर्भ :

1. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 19
2. गाँधी और प्रेमचंद, सं. श्री भगवान सिंह, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, सं० 2015, पृ. 32
3. गोदान, प्रेमचंद, अनुपम प्रकाशन, पटना, पृ. 5

❑❑❑

प्रसाद की स्त्री-चेतना और 'ध्रुवस्वामिनी'

❍ जगमोहन सिंह

जयशंकर प्रसाद छायावाद के ही नहीं संपूर्ण हिंदी साहित्य के पुरोधा साहित्यकार हैं। साहित्य की हर विधा में उनकी लेखनी बेजोड़ है। विशेषकर नाटककार के रूप में उनकी ख्याति दिग-दिगंत में व्याप्त है, जिनके समक्ष अन्य साहित्यकार नहीं टिक सकते हैं। जयशंकर प्रसाद के नाटक हिंदी सहित्य ही नहीं विश्व साहित्य में अपना अमूल्य स्थान रखते हैं। प्रसाद के नाटकों की तुलना कालिदास और शेक्सपियर के नाटकों से की जा सकती है। उन्होंने ऐतिहासिक घटनाओं का आश्रय ग्रहण कर अपने नाटकों का सृजन किया, जहाँ कल्पना मिश्रित उद्‌भावानाएँ भी करवाईं, परंतु कल्पना में भी ऐसी पारखी और पैनी दृष्टि है कि वहाँ पाठक ठहर कर प्रसाद के चिंतन के साथ अपनी संगति बैठाने का भरसक प्रयास करता है। उन्होंने नाटकों की भूमिका में जिन ऐतिहासिक वक्तव्यों (तथ्यों) का आश्रय लिया है, वह अन्यथा नहीं है। इन ऐतिहासिक तथ्यों में भारत का इतिहास बोलता है। पिष्टपेषण की पद्धति से दूर जयशंकर प्रसाद अपने नाटकों में भारत के उत्कृष्ट इतिहास को पिरोते हैं। उनका प्रत्येक नाटक 'करुणालय', 'विशाख', 'जनमेजय का नागयज्ञ', 'एक घूँट', 'स्कंदगुप्त', 'चन्द्रगुप्त' और 'ध्रुवस्वामिनी' भारतीय इतिहास की अजस्र धरोहर को प्रस्तुत करते हुए कई समस्याओं को उजागर करता है। उनके नाटकों में राष्ट्रहित की अनुगूँज व्याप्त है। जयशंकर प्रसाद जब नाटक लिख रहे थे उस समय राष्ट्र की स्थिति अत्यधिक करुण थी। परतंत्र भारत में भारतीय मानव अपने अस्तित्व की तलाश में जुटा था। अपनी खोई हुई अस्मिता को पुनः प्राप्त करने के प्रयास में भारतवासी हतभागी होकर इधर-उधर भटक रहे थे। उन्हें सटीक मार्ग-दर्शक की तलाश थी। उस समय कई समस्याएँ विकराल रूप लेकर राष्ट्र को अंधकूप में ढकेल रही थीं। ऐसे विकराल समय में एक के बाद एक प्रसाद के नाटकों का अवतरण भारतीय इतिहास में अदभुत घटना थी। प्रो. गिरीश रस्तोगी प्रसाद के नाटकों की भूरी-भूरी प्रशंसा करती हुई कहती हैं, "जयशंकर प्रसाद ने भारतीय शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक परंपराओं को आत्मसात करते हुए समूचे राष्ट्रीय संघर्ष, उच्चतर मानवीय मूल्यों, चरित्र और आधुनिक मानवीय द्वंद्व चेतना को, नवीन सौन्दर्य बोध से नाटक को समृद्ध किया .....भारतीयता और आधुनिकता का संघर्षमूलक संगुम्फन, संगति और काव्य की आन्तरिक लय, मन:स्थितियों की सूक्ष्म जटिल संवेदना हिंदी नाटक में आज भी मौलिक और अकेली है।"[1] जयशंकर प्रसाद के नाटकों में भारतीयता की भावना की भूख है। वे अपने नाटकों का आश्रय लेकर भारतीयों के हृदय में भारतीयता की भावना को जगाने का भरसक प्रयास करते हैं। बच्चन सिंह की उक्ति है, "प्रसाद का आविर्भाव हिंदी नाट्य-साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ता है। उनके पहले के नाटककारों ने वर्ण्य वस्तु को ना तो श्रमपूर्वक उपलब्ध किया और न उनकी पुनर्रचना की। उन्होंने मुख्यत: नाटकों को विचारों या भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम माना। ....अपने रोमैंटिक दृष्टिकोण के कारण प्रसाद ने हिंदी नाटकों

का नया विन्यास किया।"[2] रोमैंटिक दृष्टि का आशय है जीवन के प्रति अमिट उल्लास, साहस, आवेगमयता, वैक्तिकता, गौरव की भावना से आप्लावित हृदय, सम्मान आदि। इसी कारण प्रसाद के नाटकों में एक ओर भारतीय संस्कृति की अदभुत विरासत को उजागर करने का प्रयास दृष्टिगत होता है तो वहीं दूसरी ओर मानव को मानव समझते हुए गौरव से जीवन यापन करते की ललकार ध्वनित होती है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक इसका ज्वलंत उदाहरण है। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में एक ओर जहाँ भारतीय संस्कृति की अनुगूँज है तो वहीं दूसरी ओर नारी अस्मिता के प्रश्न को उजागर करने के साथ-साथ मानव की पाशविक वृत्ति के प्रति कड़ी प्रतिक्रिया भी व्यक्त हुई है। गौतम सान्याल ध्रुवस्वामिनी का दृष्टांत देते हुए प्रसाद की दृष्टि को इस तरह उजागर करते हैं, "वे स्त्री की व्यक्तिगत भूमिका को जातीय, राष्ट्रीय, सामाजिक और नैतिक परिप्रेक्ष्य देते हुए उनकी 'नारी-परिकल्पना' को ऐसी प्रखरता, विमुग्धता और सौन्दर्य से आप्लावित कर देते हैं कि उनके अग्राह्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता।......ध्रुवस्वामिनी जैसा चरित्र 'अंधेरे में निवेदन या प्रार्थना-गीत' नहीं है बल्कि अंधेरे में एक स्पष्ट और दुर्दमनीय चीख है जिसे न सुन पाने का प्रश्न ही नहीं उठता।"[3]

'ध्रुवस्वामिनी' प्रसाद का अंतिम और श्रेष्ठ ऐतिहासिक समस्यामूलक नाटक है। प्रसाद का संपूर्ण कृतित्व मानों इस एक नाटक में ही मुखर होकर समाहित हो गया है। इसे केवल मात्र समस्यामूलक नाटक कहना भी अनुचित होगा, क्योंकि यहाँ केवल समस्या नहीं, बल्कि सामाजिक, शास्त्रीय, वैयक्तिक प्रश्नों-द्वंद्वों की बघिया उधेड़कर बने बनाए ढाँचे के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है। गिरीश रस्तोगी की उक्ति है, "ध्रुवस्वामिनी अपने छोटे से आकार में एक बृहद, जटिल, द्वंद्वात्मक रचना है- उसमें संवेदनात्मक धरातलों के साथ-साथ बौद्धिकता, प्रखरता, तार्किक संश्लिष्टता और शिल्पगत सचेतता एक साथ है।"[4] 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में नारी-अस्मिता के प्रश्न को उठाया गया है और यही नहीं इसमें मानव की मानवीयता की तलाश पर भी विशेष जोर दिया गया है। ध्रुवस्वामिनी मानव के पशुत्व व्यवहार, घृणित लिप्सा, अमानवीयता के विरुद्ध तीव्र रोष व्यक्त करके संपूर्ण मनुष्य जाति के समक्ष ज्वलंत शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करती है। मनुष्य में मनुष्यत्व की भावना के न रहने पर वह क्रूर, हिंसक, मतिभंगी हो जाएगा और ध्रुवस्वामिनी का प्रतिकार मनुष्य के इसी रूप से है। वह मानव को मानव बने रहना देखना चाहती है। ध्रुवस्वामिनी का संघर्ष मनुष्यत्व से है भले ही स्त्री उसका केन्द्र बिन्दु है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक के केंद्र में संपूर्ण स्त्री-जाति की अस्मिता को बनाए रखने का प्रयास किया गया है। इस नाटक में ध्रुवस्वामिनी ही नहीं कोमा, मंदाकिनी भी अपने अस्तित्व के रक्षार्थ द्वंद्व से ग्रस्त दिखाई पड़ती है। "स्त्री नारी है और पुरुष नर है।"[5] यह संबंध मात्र से प्रसाद संतुष्ट नहीं हैं। उनकी विचारधारा स्त्री में नर और पुरुष में नारी के गुणों की सीमा का भी अतिक्रमण करने की आकांक्षा रखती हैं। 'स्त्री में पुरुष के गुण आ जाएँ तो वह कुल्टा हो जाती है' इस भावना से प्रसाद कोसों दूर हैं। प्रसाद के पात्र समानता की बात करते हैं। यही कारण है कि ध्रुवस्वामिनी, कोमा एवं मंदाकिनी की हुंकार बने बनाए ढाँचे का अतिक्रमण करती है। नाटक के प्रथम दृश्य के प्रथम वक्तव्य में ध्रुवस्वामिनी का कथन कई ज्वलंत समस्याओं को उजागर करता है। वह कहती है, "यह तो मैं जानती हूँ कि इस राजकुल के अन्त:पुर में मेरे लिए न जाने कब से नीरव अपमान संचित रहा, जो मुझे आते ही मिला। किन्तु क्या तुम जैसी दासियों से भी वही मिलेगा ? .....मेरे भाग्य-विधाता ! यह कैसा इंद्रजाल? उस दिन राजमहापुरोहित ने कुछ आहुतियों के बाद मुझे आशीर्वाद दिया था, वह क्या अभिशाप था?"[6] प्रथम दृश्य में ध्रुवस्वामिनी

का यह कथन स्त्री-अस्मिता की पहल प्रस्तुत करने वाला सशक्त उदाहरण है। यहाँ कुल की रानी नहीं, बल्कि एक तरह से समस्त स्त्रियों की हूक उजागर हुई है। ध्रुवस्वामिनी का प्रश्न समाज में व्याप्त पुरुषवादी वर्चस्व से है, जहाँ स्त्रियाँ केवल घर-गृहस्थी संभालने वाली के अतिरिक्त कुछ नहीं है। विवाह जैसे पवित्र बंधन को अभिशाप मानना एक स्त्री की सबसे बड़ी करुण अवस्था का परिचायक है। यह तथ्य ध्यातव्य है कि प्रसाद के समय में स्त्री की स्वाधीनता और शोषण-मुक्ति की समस्या व्याप्त थी। वस्तुस्थिति वर्तमान में भी कुछ अधिक परिवर्तित नहीं हुई है। प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी का आश्रय लेकर जिस समस्या को उठाया वह उस समय का असाधारण जोखिम भरा काम था। प्रभाकर श्रोत्रिय कहते हैं, "हिंदू कोडबिल तो बड़ी कठिनाई से छठे दशक में हिंदू स्त्री को तलाक और पुनर्विवाह का संवैधानिक अधिकार देता है, परंतु प्रसाद जैसा स्रष्टा उसे तीसरे दशक में ही यह अधिकार दे देता है और वह भी शताब्दियों पूर्व के धर्मशास्त्रीय प्रमाण देकर।"[7] प्रसाद के नाटक इस कारण से भी उत्कृष्ट हैं कि उन्होंने इतिहास की गहरी जाँच-पड़ताल की और तब जाकर तर्क के आधार पर नारिकमा को पुनः प्रतिष्ठित करने का गंभीर प्रयत्न है। उन्होंने स्त्री-पुरुष की समानता को उजागर करते हुए स्त्री की ललकार को ध्वनित किया। ध्रुवस्वामिनी रोष में आकर कहती है, "इस राजकुल में एक भी संपूर्ण मनुष्यता का निदर्शन नहीं मिलेगा क्या ? जिधर देखो कुबड़े, बौने, हिजड़े, बहरे ....।"[8] अर्थात प्रयोजनहीन सब के सब। ध्रुवस्वामिनी का रोष उचित प्रतीत होता है। ध्रुवस्वामिनी अपने अस्तित्व की तलाश में भटकती हुई इस तरह दुःख व्यक्त करती है, "मैं तो अपने ही प्राणों का मूल्य नहीं समझ पाती।.... किन्तु मेरा नीड़ कहाँ ? यह तो स्वर्ण-पिंजर है।"[9] एक स्त्री का अपने प्राणों का मूल्य न समझ पाना क्या दर्शाता है। उसे चारों ओर कुबड़े, बौने, हिजड़े, गूँगे और बहरे क्यों दिखते हैं ? प्रसाद व्यंग्य रूप में ध्रुवस्वामिनी से क्यों तीक्ष्ण प्रहार करवाते हैं ? दरअसल एक ओर जयशंकर प्रसाद भारतीय गरिमा का बखान करते हुए आर्यों की भूमि की विशेषता उजागर कर रहे होते हैं तो वहीं दूसरी ओर समाज में व्याप्त रूढ़ियों, गुम हो चुकी राष्ट्रीय भावना, नारी-अस्मिता और मनुष्य के पशुत्व व्यवहार को उजागर कर रहे होते हैं। प्रसाद का स्पष्ट आक्षेप समाज के ठेकेदारों पर है कि क्या यही आर्यों की भूमि है ? आर्यों ने अपने स्वार्थ हेतु कभी हथियार नहीं उठाया ! देश-हित ही उनके लिए सर्वोपरि था ! आज आर्यों की भूमि की क्या अवस्था हो गई है ? जयशंकर प्रसाद ध्रुवस्वामिनी से यह कहलवाते हैं, "आह, कितनी कठोरता है ! मनुष्य के हृदय में देवता को हटाकर राक्षस कहाँ से घुस आता है ?"[10] 'देवता को हटाकर राक्षस का घुस आना' रामगुप्त की तरफ इंगित करता है। उसमें मानवीयता के गुण लेशमात्र भी निःशेष नहीं है। वह अपनी पाशविक वृत्ति का परिचय स्थान-स्थान पर उद्‌घाटित करता रहता है। वह ध्रुवस्वामिनी को उपहार स्वरूप भेंट में देने को प्रस्तुत हो जाता है। रामगुप्त एक ऐसा चरित्र है जिसमें सारे दुर्गुण भरे पड़े हैं। वह राज-विलास में डूबा पौरुष से हीन कापुरुष व्यक्ति है। ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त को समझाती है, गिड़गिड़ाती है, उसके पुरुषत्व को जगाने का भरसक प्रयास करती है, किन्तु जब वह सारी सीमाओं का अतिक्रमण कर जाता है तब ध्रुवस्वामिनी उससे मोक्ष (तलाक) के लिए प्रस्तुत हो जाती है।

'ध्रुवस्वामिनी' के संदर्भ में यह तथ्य ज्ञातव्य है कि प्रसाद ने धर्म के आधार पर ही ध्रुवस्वामिनी के मोक्ष की परिकल्पना को साकार किया। प्रसाद यह जानते थे कि यदि तथ्यों के आधार पर ध्रुवस्वामिनी का पुनर्लग्न नहीं करवाया गया तो धर्म के ठेकेदार आपत्ति करने से नहीं चूकेंगे। वह भी तीसरे दशक में जब समाज की अवस्था अत्यधिक सोचनीय थी। स्त्री अधिकारों से वंचित थी। वह केवल मात्र दासी या अनुचर थी, भोग्या थी, सजावट की वस्तु थी। उसके अधिकारों का हनन आम बात थी। प्रसाद

'ध्रुवस्वामिनी' की भूमिका में पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों की अवस्था को भी उजागर करते हैं कि वह किस अवस्था में पुनर्लग्न की अधिकारिणी हैं। वे शास्त्रों से उदाहरण देते हुए कहते हैं,

"वर्षाण्यष्टा वप्रजायमानामपुत्राम बंध्यां चाकांक्षेत दशविन्दु,
द्वादश कन्या प्रसविनीम। ततः पुत्रार्थी द्वितीयां विन्देत।"[11]

8 वर्ष तक बाँझ रहने, 10 वर्ष तक नश्यत्प्रसूति और 12 वर्ष तक कन्या होने पर पुत्र की प्राप्ति हेतु एक पुरुष दूसरी स्त्री ग्रहण कर सकता है। पुरुषों के लिए ही केवल कौटिल्य ने अधिकार नहीं बताए हैं, बल्कि एक स्त्री किन कारणों से पुरुषों से मोक्ष (तलाक) ले सकती है, इस ओर भी ध्यान दिलाया गया है। पितृसत्तात्मक समाज को यह उदाहरण न पचता हो, किन्तु इसमें सच्चाई है। शास्त्रों में स्त्री के अधिकारों का उल्लेख है जिसे प्रसाद ने गहन अध्ययन के माध्यम से जनमानस के समक्ष व्यक्त किया। क्या वर्तमान में धर्म के विरुद्ध (चाहे वह सत्य ही हो) कोई कुछ कह सकता है ? आज अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता संकटग्रस्त है। स्वतंत्र भारत में स्वतंत्र विचारों का हनन आम बात हो गई है। धर्म की बात तो छोड़ ही दीजिए ! कबीर का क्या हश्र हुआ ? हम सभी अवगत ही हैं। अतः प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक लिखते समय जो प्रमाण जुटाए और नाटक का सृजन किया वह हिंदी साहित्य ही नहीं विश्व साहित्य में अदभुत घटना है। पाश्चात्य नाटककारों ने बहुत पहले इस तरह के जोखिम अवश्य उठाए थे, किन्तु उन्होंने परिणाम की व्यंजना नहीं की थी। कारणस्वरूप उनके नाटकों में कोई दिशा निर्देश नहीं मिल पाता है और नाटक का उद्देश्य उद्देश्यहीन ही रहता है, जबकि प्रसाद ने ध्रुवस्वामिनी का आश्रय लेकर शास्त्रों के आधार पर ध्रुवस्वामिनी का पुनर्लग्न भी करवा दिया। प्रसाद ने पूरे विश्व-साहित्य को एक दिशा-दृष्टि प्रदान की। भटके हुए को मार्ग दिखाया और प्रेरणा स्वरूप यह आभास कराया कि इतिहास में वर्तमान छिपा रहता है। इतिहास को पुरातन कहकर नकार देना उचित नहीं है। प्रसाद स्वयं यह स्वीकार करते हैं कि "अतीत और वर्तमान को देखकर भविष्य का निर्माण होता है। इसलिए हमें साहित्य में एकांगी दृष्टि नहीं रखनी चाहिए।"[12] इस वक्तव्य से क्या यह आभास नहीं होता कि प्रसाद 'ध्रुवस्वामिनी' का आश्रय लेकर भविष्य निर्माण के प्रति दृढ़ संकल्पित थे। स्त्री के अधिकारों के प्रति तीसरे दशक में सजग थे, सचेष्ट थे। उनका यह प्रयास छठे दशक में फलीभूत हुआ। उस दशक में स्त्री को कुछ अधिकार दे दिए गए।

अंग्रेज विद्वान भारतीय इतिहास को कचरा से अधिक नहीं समझते थे। उन्होंने रामायण और महाभारत को मिथक कहा, कपोल-कल्पित कहा। यहाँ तक कि आर्यों को विदेशी कहने में कोई कसर नहीं छोड़ी। भारतीय इतिहास, भारतीय ग्रंथ को उन्होंने मनगढ़ंत कहा। उन्होंने अपनी संस्कृति, सभ्यता को श्रेष्ठ बताते हुए अपने इतिहास की सराहना की। अंग्रेज विद्वानों ने भारतीय इतिहास को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत किया। उनके इस प्रयास ने बहुत हद तक भारतीयों के मस्तिष्क को क्षति ही पहुँचाई। कई भारतीय विद्वान अंग्रेजों की झूठी विद्वता के समक्ष झुकते हुए भी नजर आए, किन्तु अति शीघ्र ही भारतीयों का भ्रम-जाल टूटा। उन्होंने पाश्चात्य की अंधी-आंधी को नकार दिया। भारतीयों ने इतिहास का गहन अध्ययन किया, अन्वेषण किया। प्रसाद के नाटक भी उसी गहन अध्ययन, अन्वेषण का परिणाम है। प्रसाद को यह स्वीकार नहीं था कि भारतीय इतिहास को कचरा समझकर उपेक्षित अवस्था में पड़े रहने दिया जाए। इसलिए उन्होंने अपने नाटकों की भूमिका में ऐतिहासिक तथ्य जुटाए और प्रमाण प्रस्तुत किए। प्रभाकर श्रोत्रिय कहते हैं, "प्रसाद ने न केवल प्राचीन ग्रंथों, बल्कि शिला-लेखों, ताम्र-पत्रों, मुद्राओं, यात्रा-वर्णनों और अनेक

इतिहास ग्रंथों के अन्वेषण और प्रमाण से इतिहास की सच्चाई उद्घाटित की। अंग्रेज और यूनानी इतिहासकार जिस वैज्ञानिक पद्धति पर इतिहास का अन्वेषण करने का दंभ भरते हैं उसी बल्कि उससे भी विकसित पद्धति से प्रसाद ने इतिहास को खोजा, और न सिर्फ खोजा उसे अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से देश-कालोत्तर अर्थ-व्यंजना भी दी।"[13] क्या इस कथन में जरा भी तुक नहीं है ? प्रसाद ने अपने प्रत्येक नाटक में इतिहास की लम्बी रूप-रेखा प्रस्तुत की और भूमिका बाँधी ! क्या उस पर ऐतिहासिकों का ध्यान नहीं गया ? क्या प्रसाद यूँ ही भूमिका बाँध रहे होते हैं और नाटकों का सृजन कर रहे होते हैं ? यह तथ्य विचारणीय है कि साहित्य के पाठक प्रसाद के नाटकों का अध्ययन करते समय इन भूमिकाओं को पढ़ना उचित नहीं समझते। वे भूमिकाओं को पढ़े बिना ही प्रसाद के नाटकों पर अपना मंतव्य उजागर कर देते हैं, जबकि सबसे पहले भूमिकाओं को ही पढ़ना चाहिए। क्योंकि भूमिका पढ़कर ही हम प्रसाद के मंतव्य को आत्मसात करने में सक्षम होंगे ! कई बार यह भी देखा गया है कि महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में प्रसाद के नाटकों की भूमिका के मंतव्यों को उजागर ही नहीं किया जाता है ? यह समझ में नहीं आता कि बिना भूमिका के मंतव्यों को आत्मसात किए हम प्रसाद को समझने का झूठा दंभ कैसे भरने लगते हैं ? जबकि प्रसाद के नाटकों की भूमिका में भारतीय इतिहास बोलता है। प्रसाद ने अंग्रेज विद्वानों को धत्ता बताया तथा भारतीय इतिहास की श्रेष्ठता को उजागर किया। प्रसाद ने नाटकों की जो भूमिका बाँधी वह भारतीय संस्कृति, भारत की महान परंपरा, सामाजिक उदारता, स्त्री के अधिकारों के प्रति उदारता आदि को तो प्रकट करती ही है, मनुष्यत्व की बात सबसे पहले स्वीकार करती है। मानव धर्म की बात करती है। 'ध्रुवस्वामिनी' इसका ज्वलंत प्रमाण है। ध्रुवस्वामिनी क्या स्त्री-अस्मिता को प्रस्तुत करने के साथ-साथ मानवीयता की हुँकार नहीं भरती? इसमें विचार और गहरे मंथन की आवश्यकता है। यही कारण है कि छायावाद में प्रसाद का अन्यतम स्थान है। उन्हें नवजागरण की मशाल जलाने वाला पुरोधा साहित्यकार कहा जाता है। "सर्जना के क्षेत्र में छायावाद ने यह काम किया जिसमें प्रसाद की भूमिका अग्रणी रही। वे अकेले रचनाकार थे जो किसी बाह्य प्रभाव से आक्रांत नहीं थे। पंत पर किसी हद तक पश्चिमी रोमांटिसिज्म का प्रभाव था, निराला पर 'बांग्ला रिनेसां' (जो भारत में पश्चिम प्रेरित नवजागरण था) का प्रभाव देखा जा सकता है। इस दृष्टि से प्रसाद ही छायावाद युग के ऐसे सर्जक थे जिन्हें संपूर्णतः नवजागरण की भारतीय अस्मिता का सर्जक कहा जा सकता है, सिर्फ इसलिए नहीं कि उनका स्रोत भारतीय था, बल्कि इसलिए भी कि वे सचेत रूप से कृत्रिम प्रभावों का प्रतिकार कर रहे थे।"[14] क्या किसी हिंदी साहित्य के नाटककार ने इतिहास की इतनी गहरी जाँच-पड़ताल की है? उत्तर हम सभी के पास है ! बहुत से नाटककार इतिहास से तथ्य यदि ढूँढ़ रहे भी होते हैं तो उनकी दृष्टि अधिक से अधिक प्राचीन ग्रंथों तक ही जाकर सिमट जाती है। उससे आगे बढ़कर वे कोई तथ्य ढूँढ़ने का कठिन प्रयास नहीं करते हैं, जबकि प्रसाद शिला-लेखों, ताम्र पत्रों, मुद्राओं और यहाँ तक कि यात्रा वर्णनों से भी तथ्य जुटाते हैं। इतिहासकार जो काम करते हैं, एक हिंदी साहित्य का अध्येता (प्रसाद) श्रमसाध्य और कठिन काम करते हुए इतिहास से तथ्य जुटाने में लगा रहता है। क्या हिंदी साहित्य के अध्येताओं का ध्यान इस ओर कभी नहीं गया ? नाटक का सृजन करते हुए इतिहास की जाँच-पड़ताल करना ताकि नाटक कल्पित न लगे यह प्रसाद की मुख्य विशेषता थी। एक इतिहासकार में पैनी दृष्टि और जिस तरह की पारखी नजर होती है वैसी ही दृष्टि प्रसाद नाटक लिखते समय रखते हैं। उनके कई नाटक इतिहासकारों को भी परास्त कर देते हैं, क्योंकि इन नाटकों में केवल भारतीय इतिहास नहीं, बल्कि राष्ट्र को आगे बढ़ते हुए देखने की भूख विद्यमान है। प्रसाद केवल नाटक के लिए नाटक नहीं लिख

रहे होते हैं, बल्कि एक इतिहास का निर्माण कर रहे होते हैं। यह आज हमारे समक्ष प्रत्यक्ष प्रकट है।

'ध्रुवस्वामिनी' की भूमिका का अध्ययन करने पर यह भली-भाँति दृष्टिगत होगा कि इसमें ऐतिहासिक ताम्रपत्रों, मुद्राओं (सिक्कों) का आश्रय लेकर इतिहास को कुरेदते हुए पुनर्लग्न और मोक्ष (तलाक) की विशद व्याख्या की गई है। भूमिका में इतिहास की गहरी पड़ताल के साथ स्त्रियों के अधिकार भी बताए गए हैं। किन कारणों से एक स्त्री का पुनर्लग्न हो सकता है, वह मोक्ष (तलाक) की अधिकारिणी है। इस और ध्यान देते हुए कहा गया है -

"नीचत्वम् परदेशम् वा प्रस्थितो राजकिल्विषी।
प्राणाभिहंता पतितस्त्याज्य: क्लीबोऽपि वा पति: ।।"[15]

पति यदि गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी क्लीव है तो पत्नी ऐसे पति का त्याग कर सकती है। 'ध्रुवस्वामिनी' में इस बात की पुष्टि हुई है। यही नहीं प्रसाद ने इसमें स्थापित किया है कि यदि राजा दुर्बल, क्लीव, अन्यायी, देश के गौरव की रक्षा में असमर्थ और अविवेकी है तो उसके स्थान पर सुयोग्य व्यक्ति, प्रजा के हितैषी को प्रतिष्ठित करने का अधिकार प्रजा और उसके प्रतिनिधियों के पास होना चाहिए। 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक नारी-मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करने के साथ-साथ सटीक शासन-व्यवस्था की भी बात करता है। भूमिका में पराशर के कथन को उजागर करते हुए कहा गया है -

"नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।
पंचस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ।।"[16]

पराशर कहते हैं पति के नष्ट होने, मरने, प्रव्रज्या ग्रहण करने, क्लीव एवं पतित होने की स्थिति में नारी दूसरे पति का वरण कर सकती है। दोनों ही उद्धरण नारी मुक्ति के प्रयास को और सशक्त करते हैं। नाटक के प्रथम वाक्य में प्रसाद ध्रुवस्वामिनी से कहलवा रहे हैं, "सीधा तना हुआ, अपने प्रभुत्व की साकार कठोरता, अभ्रभेदी उन्मुक्त शिखर ! और इन क्षुद्र कोमल निरीह लताओं और पौधों को इसके चरण में लोटना ही चाहिए न ।"[17] ध्रुवस्वामिनी का क्षोभ, ग्लानि यहाँ उजागर हो रहा है। वह रामगुप्त के माध्यम से पुरुषत्व के अहंकार को व्याख्यायित कर रही है। 'सीधा तना हुआ', 'प्रभुत्व की साकार कठोरता', 'अभ्रभेदी' पद पुरुषत्व के अहंकार को उजागर कर रहे हैं। ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त के मोटे कवच की बखिया उघेड़ रही है। यही नहीं ध्रुवस्वामिनी पुरुषत्व के अहं को उजागर करते हुए नारी की असहनीयता पर भी प्रकाश डाल रही है। निरीह लताओं के माध्यम से नारी के अस्तित्व की तुलना करते हुए वह कह रही है, 'इन निरीह लताओं की तरह ही नारी आजीवन पर-निर्भर रहती है।' प्रसाद ध्रुवस्वामिनी के इस प्रथम वाक्य से ही नारी के अस्तित्व की गहरी मंत्रणा प्रस्तुत कर रहे हैं। प्रसाद सदियों से चली आ रही दासत्व की दारुण पीड़ा को यहाँ उजागर कर रहे हैं। स्त्री हर जगह असहाय है, किन्तु विचारणीय है कि प्रसाद के नाटकों की स्त्रियाँ असहाय नहीं हैं। विशेष रूप से ध्रुवस्वामिनी असहाय नहीं है। वह अपने अस्तित्व को लेकर सशंकित अवश्य है। वह कहती भी है, "मैं तो अपने ही प्राणों का मूल्य नहीं समझ पाती। मुझ पर राजा का कितना अनुग्रह है, यह भी मैं आज तक न जान सकी।"[18] एक पति का अपनी पत्नी से उपेक्षित व्यवहार पत्नी की मन:स्थिति को कितना अशांत कर देता है ? इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति प्रस्तुत उद्धरण से व्यक्त हो रही है। रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी से उपेक्षापूर्ण व्यवहार स्त्री-मुक्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। रामगुप्त को भोग-विलास, मदिरा पान से अवकाश नहीं। वह कुबड़ों, बौनों, हिजड़ों,

गूँगों और बहरों से घिरा नाच-रंग में डूबा रहता है। उसे अपने आनंद से ही अवकाश नहीं। राजपाट में उसे कोई रुचि नहीं है। यही नहीं वह ध्रुवस्वामिनी के समक्ष अपने गुप्तचरों को लगाए रखता है ताकि उसके ह्रदय में चल रहे षड़्यंत्र को जाना जा सके। दूसरी ओर ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त पर अपना सर्वस्व लुटा चुकी है, किन्तु रामगुप्त का दुत्कार उसे हिला कर रख देता है। वह अपनी मनःस्थिति व्यक्त करते हुए कहती है, "मैंने तो कभी उनका मधुर सम्भाषण सुना ही नही।"[19] रामगुप्त पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उसके ह्रदय में ध्रुवस्वामिनी के प्रति उपेक्षा का भाव है। वह बलपूर्वक अपने झूठे पौरुष के दंभ पर ध्रुवस्वामिनी पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। वह उस पर आरोप लगाते हुए यह कहता है, "जो स्त्री दूसरे के शासन में रहकर और प्रेम किसी अन्य पुरुष से कर सकती है, उसमें एक गंभीर और व्यापक रस उद्वेलित रहता होगा। वही तो ....नहीं, जो चन्द्रगुप्त से प्रेम करेगी वह स्त्री न जाने कब चोट कर बैठे? भीतर-भीतर न जाने कितने कुचक्र घूमने लगेंगे। (खड़्गधारिणी से) सुना न, ध्रुवदेवी से कह देना चाहिए कि वह मुझे और मुझसे ही प्यार करे। केवल महादेवी बन जाना ठीक नहीं।"[20] रामगुप्त का क्षोभ और अभिमान एक कठोर निर्णय लेने के लिए उसे उन्मुक्त कर देता है। वह अपने शत्रु (शकराज) को ध्रुवस्वामिनी को उपहार में देने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। ध्रुवस्वामिनी इसका प्रतिकार करती है। ध्रुवस्वामिनी के ह्रदय में प्रतिकार का उठना संपूर्ण स्त्री जाति की अस्मिता से जुड़ा हुआ है। हिंदी नाटकों में यहीं से पुरुषों के अन्यायपूर्ण व्यवहार के प्रति स्त्रियों के प्रतिकार की ध्वनि की अनुगूँज की शुरुआत एक तरह से हो जाती है। हिंदी साहित्य के इतिहास में यह एक अमूल्य घटना थी, जहाँ एक स्त्री को प्रतिकार करते हुए दिखया गया था। वह भी स्वतंत्रता के बहुत पहले जब यह सोचना और कहना साहस का काम था।

जयशंकर प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी' में प्रतिकार की ध्वनि को जागृत किया। उन्होंने प्रकाश दिखाया कि स्त्रियाँ चुपचाप कोई भी निर्णय मानने को सहमत नहीं हो सकती हैं। वह अनुचित निर्णय का प्रतिकार भी कर सकती हैं। ध्रुवस्वामिनी का प्रतिकार इसी संदर्भ में है। वह रामगुप्त से कहती है, "मैं.....यह जानना चाहती हूँ कि गुप्त साम्राज्य क्या स्त्री-सम्प्रदाय से ही बढ़ा है।"[21] ध्रुवस्वामिनी का प्रश्न, प्रश्न नहीं है, बल्कि एक ललकार है। वह केवल अपनी बात न कहकर सम्पूर्ण स्त्री-संप्रदाय की बात कह रही है। स्त्रियों को अपने स्वार्थ के लिए जगह-जगह अपमान किए जाने का वह प्रतिकार करती है। ध्रुवस्वामिनी नारी अस्मिता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हुए क्षोभ से स्पष्ट कड़े शब्दों में कहती है, "मैं केवल यही कहना चाहती हूँ कि पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी पशु-संपत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नहीं चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नहीं कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव नहीं बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते हो।"[22] ध्रुवस्वामिनी का प्रतिकार वर्तमान में स्त्री-अस्मिता के प्रश्न पर जुझ रही स्त्रियों की मनोदशा की संतुलित अभिव्यक्ति करता है। ध्रुवस्वामिनी प्रतिकार के बाद थोड़ा संभलती है। वह रामगुप्त को पति-पत्नी के धर्म से अवगत कराना चाहती है। रामगुप्त को रिश्तों की गर्माहट की आँच से अवगत कराना चाहती है। वह रामगुप्त को समझाती हुई कहती है, "मेरे पिता ने उपहार स्वरूप कन्यादान दिया था। किन्तु गुप्त-सम्राट क्या अपनी पत्नी शत्रु को उपहार में देंगे? (घुटने के बल बैठकर) देखिए, मेरी ओर देखिए। मेरा स्त्रीत्व क्या इतने का भी अधि कारी नहीं कि अपने को स्वामी समझने वाला पुरुष उसके लिए प्राणों का पण लगा सके। ....राज्य और संपत्ति रहने पर राजा को - पुरुष को बहुत-सी रानियाँ और स्त्रियाँ मिलती हैं, किन्तु व्यक्ति का मान नष्ट होने पर फिर नहीं मिलता।"[23] ध्रुवस्वामिनी किस मान-सम्मान की बात कर रही है। दरअसल

ध्रुवस्वामिनी स्त्री-धर्म की बात कर रही है। एक स्त्री का मान-सम्मान ही उसकी पूंजी है। ध्रुवस्वामिनी रामगुप्त से इसी मान-सम्मान की आस में कातर दृष्टि से याचना करती है। कई विद्वानों का यह मत है कि ध्रुवस्वामिनी का प्रतिकार सटीक रूप से प्रकट नहीं हो पाया है। वह दबी, सहमी अपना प्रतिकार व्यक्त करती है और एक पुरुष (चन्द्रगुप्त) का आश्रय लेकर ही शकराज का विनाश करती है। ध्यातव्य है कि ध्रुवस्वामिनी का प्रतिकार प्रसाद समस्त भारतीय स्त्री-जाति को केंद्र में रख कर कर रहे हैं। प्रसाद धर्म का आश्रय लेकर शास्त्रों के माध्यम से ध्रुवस्वामिनी का प्रतिकार दिखलाते हैं जिसे मात्र कोरी कल्पना या भ्रम मान लेना अनुचित है। "प्रसाद का लक्ष्य ऐसी घटनाओं का चयन और दिग्दर्शन है जिससे हमारा वर्तमान निर्मित हुआ है। कहना न होगा कि अतीत के सर्जनात्मक, जीवंत, प्रेरक और गतिशील जीवन-मूल्य ही वर्तमान की सृष्टि करते हैं। गतिशील और सर्जनात्मक जीवन-मूल्यों का अनुसंधान ही प्रसाद की इतिहास-चेतना का केंद्रीय तत्व है।"[24] उन्होंने भारतीय गौरव-गाथा को उजागर कर वर्तमान को पुष्ट किया तथा भविष्य के लिए नए द्वार खोले। 'ध्रुवस्वामिनी' इतिहास के पन्नों के आधार पर वर्तमान की निर्माण भूमि एवं भविष्य की दिशा द्रष्टिका है। "इतिहास वहाँ मात्र आवरण या अतीत की सामग्री नहीं है, न वह वर्तमान से पलायन का मार्ग है, वह एक प्रेरक-स्रोत है, चेतन स्मृति है जो वर्तमान के प्रति पूर्ण सजगता पैदा करती है।"[25]

जयशंकर प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी' में यह दिखाया कि एक स्त्री अपने कुल-मर्यादा के रक्षार्थ, स्त्री-धर्म के रक्षार्थ रामगुप्त से याचना भरी गुहार करती है। "मेरी रक्षा करो। मेरे और अपने गौरव की रक्षा करो। राजा आज मैं शरण की प्रार्थिनी हूँ। मैं स्वीकार करती हूँ, कि आज तक मैं तुम्हारे विलास की सहचरी नहीं हुई, किन्तु वह मेरा अहंकार चूर्ण हो गया है।"[26] यह याचना किसलिए प्रसाद करवाते हैं ? दरअसल जयशंकर प्रसाद बता रहे हैं कि कुल की मर्यादा एक नारी से ही बढ़ती है। पुरुष का अहंकार एक नारी ही है ! जब उसका अपमान कर उसे शत्रु के सुपुर्द कर दिया जाएगा, तब कहाँ रह जाएगी कुल की मर्यादा ? स्त्री-धर्म की मर्यादा ? यहाँ ध्रुवस्वामिनी याचना नहीं, बल्कि रामगुप्त को उसके पुरुषत्व से अवगत करा रही होती है। यहीं प्रसाद रामगुप्त के पुरुषत्व के माध्यम से भारतीयों में पौरुष के ओज को भरने का प्रयास कर रहे होते हैं। यह वही भारतभूमि है जहाँ नित्य रक्त की लालिमा में स्त्रियों ने श्रृंगार किया है। यही नहीं समय आने पर स्त्रियों ने शत्रुओं से लोहा भी लिया है। बहुत से विद्वानों को लगता है कि जयशंकर प्रसाद ने याचना करवाकर ध्रुवस्वामिनी के चरित्र को दबा दिया है। वह प्रत्यक्ष विरोध कर सकती थी? याचना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, परंतु प्रसाद के दृष्टिकोण से यदि विचार करें तो सारी परिस्थितियाँ विपरीत ही नजर आती हैं। प्रसाद केवल और केवल नारी के चरित्र को ध्रुवस्वामिनी में नहीं दिखा रहे थे, बल्कि भारतीय संस्कृति में स्त्रियों की अजस्र मर्यादित परंपरा को भी उजागर कर रहे थे। आर्य संस्कृति के साथ-साथ भारतीय परंपरा जो सम्पूर्ण विश्व की दिशा-निर्देशिका रही है उस ओर भी ध्यान दिला रहे थे। आश्चर्य होता है कि हमारे पास इतनी लम्बी सांस्कृतिक परंपरा है, किन्तु हम उसका मूल्य नहीं समझते। "नाइजीरिया के कवि गेब्रियल ओकारा ने रमेश दवे से बातचीत करते हुए (अक्षरा-13) अत्यन्त पीड़ा से कहा था कि आपके पास जो सांस्कृतिक और लोक-परंपरा है, वह हमारे पास कहाँ? हमारे सहित्य में गहराई और विविधता कहाँ से आएगी।"[27] कितनी बड़ी बात नइजीरिया के कवि गेब्रियल ओकारा ने कही। दूसरी ओर हम हैं जिन्हें दोषारोपण करने से अवकाश नहीं ? हम नित्य गुण ढूँढ़ने की जगह दोष निकालते-निकालते मोहवश भटक जाते हैं। अपने सही दृष्टिकोण का उपयोग न कर व्यर्थ की बातों में समय नष्ट करते हैं। प्रसाद के नाटकों के साथ ऐसा

ही होता आया है। दोष–प्रत्यारोप इस पर लगते ही रहे हैं। यह आज भी नित्य प्रवहमान है, जिससे 'ध्रुवस्वामिनी' अछूती नहीं है।

रामगुप्त पर ध्रुवस्वामिनी की याचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वह कहता है, "तुम सुंदर हो, ओह, कितनी सुंदर; किन्तु सोने की कटार पर मुग्ध होकर उसे कोई अपने हृदय में डुबा नहीं सकता। ....अपने लिए मैं स्वयं कितना आवश्यक हूँ, कदाचित तुम यह नहीं जानती हो।"[28] रामगुप्त ध्रुवस्वामिनी को इस तरह दुत्कारते हुए आगे कहता है, "जाओ, तुमको जाना पड़ेगा। तुम उपहार की वस्तु हो। आज मैं तुम्हे किसी दूसरे को देना चाहता हूँ। इसमें तुम्हें क्यों आपत्ति हो।"[29] ध्रुवस्वामिनी यह सुनकर उत्तेजित हो जाती है। रोष में फूलकर वह कहती है, "निर्लज्ज ! मद्यप !! क्लीव !!! ओह, तो मेरा कोई रक्षक नहीं (ठहरकर) नहीं, मैं अपनी रक्षा स्वयं करूँगी। मैं उपहार में देने की वस्तु शीतलमणि नहीं हूँ। मुझमें रक्त की तरल लालिमा है। मेरा हृदय उष्ण है और उसमें आत्मसम्मान की ज्योति है। उसकी रक्षा मैं ही करूँगी।"[30] ध्रुवस्वामिनी अपनी रक्षा स्वयं करने के लिए कटिबद्ध हो जाती है। वह उपहार में देने की वस्तु शीतलमणि के सदृश्य अपने को न मानकर अपना निर्णय स्वयं लेने को प्रस्तुत हो जाती है। वह आत्मसम्मान के रक्षार्थ, स्त्री–जाति के रक्षार्थ चन्द्रगुप्त के साथ मिलकर शकराज के शिविर में पहुँच जाती है। चन्द्रगुप्त और शकराज के बीच युद्ध होता है। युद्ध में शकराज की मृत्यु हो जाती है। ध्रुवस्वामिनी अपने विजयी होने का उल्लास भी नहीं मना पाती है, क्योंकि उसके हृदय में नारी–टीस की घुटन भरी पीड़ा विद्यमान है। वह अपने जीवन के मूल्य को नहीं समझ पाती। तभी आनंद के क्षण में उत्साहित होकर मंदाकिनी उसे भाभी कहकर पुकारती है। यह सुनकर ध्रुवस्वामिनी की पीड़ा और बढ़ जाती है। वह कहती है, "मुझे तो संदेह का इंद्रजाल ही दिखाई पड़ रहा है। मैं न तो महादेवी हूँ और न तुम्हारी भाभी।"[31] नारी मन की व्यथा की अनुगूँज यहाँ मानो सारी सीमाओं का अतिक्रमण करती हुई जान पड़ती है। ध्रुवस्वामिनी धर्म के नियामक पुरोहित पर आक्षेप करती हुई कहती है, "पुरोहित जी ने उस दिन कुछ मंत्रों को पढ़ा था। उस दिन के बाद मुझे कभी राजा से सरल संभाषण करने का अवसर ही नहीं मिला।"[32] ध्रुवस्वामिनी विवाह बंधन के माधुर्य को स्वीकार करती है, किन्तु उसमें आ चुकी कड़वाहट से वह क्षुब्ध है। वह इस तरह के माधुर्यहीन विवाह के बंधन को अस्वीकार करती है। ध्रुवस्वामिनी पुरोहित की बघिया उघेड़ती हुई कहती है, "आप, आपका कर्मकांड और आपके शास्त्र क्या सत्य हैं, जो सदैव रक्षणीया स्त्री की यह दुर्दशा हो रही है ?"[33] जयशंकर प्रसाद ध्रुवस्वामिनी का आश्रय लेकर शास्त्रों को चुनौती देते हैं एवं अपना मंतव्य उजागर करते हैं। ऊपर विवेचना की जा चुकी है अतः विस्तार में न जाकर कहना होगा कि धर्म की पुरानी रूढ़ परंपराओं का ध्रुवस्वामिनी विरोध करती हुई कहती है कि कुछ मंत्रों को पढ़ देने मात्र से ही वैवाहिक जीवन सार्थक नहीं हो जाता है। इसके लिए सेवा, त्याग, आत्मबलिदान, विश्वास, प्रगाढ़ प्रेम की आवश्यकता होती है। ध्रुवस्वामिनी पुरोहित पर तीक्ष्ण प्रहार करती हुई कहती है, "इतना बड़ा उपहास– धर्म के नाम पर स्त्री आज्ञाकारिता की यह पैशाचिक परीक्षा, मुझसे बलपूर्वक ली गई है। पुरोहित ! तुमने जो मेरा राक्षस–विवाह कराया है, उसका उत्सव भी कितना सुंदर है ! यह जन संहार देखो, अभी उस प्रकोष्ठ में रक्त सनी हुई शकराज की लोथ पड़ी होगी। कितने ही सैनिक दम तोड़ते होंगे और इस रक्तधारा में तिरती हुई मैं राक्षसी–सी साँस ले रही हूँ। तुम्हारा स्वस्त्ययन मुझे शांति देगा।"[34] ध्रुवस्वामिनी धर्म के अनुयायियों के विरुद्ध हल्ला बोल देती है। वह यह प्रतिकार करती है कि स्त्री की आज्ञा के विपरीत उसका विवाह किसी से भी करवा देना, कहाँ का न्याय है ? तत्पश्चात 'स्त्री की इस विवाह में सहमति है' कहकर मुँह मोड़ लेना धर्म की सबसे बड़ी अधोगति है। ध्रुवस्वामिनी पौरुषविहीन

रामगुप्त के साथ परिणय को राक्षस-विवाह कहती है। इस राक्षस-विवाह में सारी परंपराएँ, मर्यादाएँ दम घोंटती सी नजर आती हैं। इसी राक्षस-विवाह के कारण पूरा राज-प्रासाद युद्ध के कलह में डूब जाता है।

'ध्रुवस्वामिनी' में प्रसाद ध्रुवस्वामिनी के माध्यम से स्त्री-घुटन की गाथा प्रस्तुत करते हैं। स्त्रियों की पराधीनता की पीड़ा आज की नहीं है, बल्कि यह पीड़ा सदियों पुरानी है। नारी को बचपन से ही कई गुर सिखाए जाते हैं। जन्म के साथ ही उसके लिए जिम्मेदारियाँ तय हो जाती हैं। समय बीतने के साथ-साथ यही बंधन, जिम्मेदारियाँ नारी की विवशता बन जाती है। ध्रुवस्वामिनी कहती है, "पराधीनता की एक परंपरा-सी उनकी नस-नस उनकी चेतना में न जाने किस युग में घुस गई है। उन्हें समझकर भी भूल करनी पड़ती है।"[35] प्रसाद नारी मन के अध्येता हैं। उन्होंने समाज से जो ग्रहण किया पुनः समाज को देने का भरसक प्रयास भी किया। ध्रुवस्वामिनी का यह कथन स्त्री-मन की त्रासदी की विघटनकारी परिस्थिति का उद्घाटन कर रहा है। वह चुप नहीं रहती, स्त्री हुंकार की ललकार भरते हुए कहती है, "कौन महादेवी ! राजा, क्या अब भी मैं महादेवी ही हूँ ? जो शकराज की शय्या के लिए क्रीतदासी की तरह भेजी गई हो, वह भी महादेवी ! आश्चर्य !"[36] ध्रुवस्वामिनी का रामगुप्त से कहे गए वाक्य कटाक्ष हैं। स्त्री की ललकार की ध्वनि है। बंधन मुक्ति की तीखी प्रतिक्रिया है। ध्रुवस्वामिनी और पुरोहित के बीच लम्बा तर्क-वितर्क चलता है। तत्पश्चात पुरोहित धर्म के आधार पर रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी का संबंध विच्छेद की बात करता हुए कहता है, "विवाह की विधि ने देवी ध्रुवस्वामिनी और रामगुप्त को एक भ्रांतिपूर्ण बंधन में बाँध दिया है। धर्म का उद्देश्य इस तरह पद दलित नहीं किया जा सकता। माता और पिता के प्रमाण के कारण से धर्म-विवाह केवल परस्पर द्वेष से टूट नहीं सकते; परंतु यह संबंध उन प्रमाणों से भी विहीन है। और भी (रामगुप्त को देखकर) यह रामगुप्त मृत और प्रव्रजित तो नहीं, पर गौरव से नष्ट, आचरण से पतित और कर्मों से राजकिल्विषी क्लीव है। ऐसी अवस्था में रामगुप्त का ध्रुवस्वामिनी पर कोई अधिकार नहीं।"[37] इस तरह प्रसाद ने 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में स्त्री-धर्म की पूर्ण मर्यादा रखते हुए शास्त्रों के आधार पर ध्रुवस्वामिनी का संबंध विच्छेद करवाया। कई बार यह प्रश्न उठता है कि प्रसाद रामगुप्त से ध्रुवस्वामिनी की मुक्ति दिखाकर चन्द्रगुप्त से संभावित प्रेम की प्राप्ति की सूचना क्यों दे रहे होते हैं ? क्या ध्रुवस्वामिनी की मुक्ति में चन्द्रगुप्त को लाना अनिवार्य था ? दरअसल प्रसाद प्रेम की पराकाष्ठा के महत्व को उजागर कर रहे हैं। वे नारी को प्रेम की देवी मानते हैं। नारी के हृदय में प्रेम का अपार सागर समाया हुआ है और दांपत्य जीवन इसी प्रेम की पराकाष्ठा के चरम पर पहुँचकर निवृत्ति पाता है। जहाँ प्रेम नहीं है वहाँ विनाश है, अहंकार है, द्वेष है, मानुष मन की छटपटाहट है। इसी संदर्भ में रविजिता गोसाई का यह कथन सार्थक लगता है, "कहा जाता है कि ध्रुवस्वामिनी नारी की समस्याओं का उत्तर प्रस्तुत करती है। नारी को मुक्ति दिलाना उत्तर हो सकता है किन्तु मुक्ति किसलिए? यदि उसमें प्रेम का सूत्र न हो तो वह व्यर्थ की कही जाएगी।"[38] समस्याओं के माध्यम से इसी प्रेम के सूत्र की तलाश प्रसाद का ध्येय है जिसकी सफल अभिव्यक्ति 'ध्रुवस्वामिनी' में हुई है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में मंदाकिनी के चरित्र ने स्त्री-चेतना के नए द्वार खोले हैं। स्त्रियों के प्रति अमानुषिकता की टीस मंदाकिनी में सहज उभरकर आए हैं। वह राज प्रासाद में चल रहे षड्यंत्र का मुखर विरोध करती है। वह सोचती है, "सच है, वीरता जब भागती है, तब उसके पैरों से राजनीतिक छलछंद की धूल उड़ती है।"[39] आत्मसम्मान से हीन एवं मानवीय संवेदना से शून्य रामगुप्त के आचरण से वह क्षुब्ध हो जाती है। राजनीतिक दाव-पेंच के समक्ष स्त्री की मर्यादा को होम होता देख उसका हृदय अशांत

हो जाता है। उस अशांति के क्षण में एक स्त्री के अस्तित्व को जीवित रखने हेतु वह यह गीत गाती है,

"यह कसक अरे आंसू सह जा।
बनकर विनम्र अभिमान मुझे
मेरा अस्तित्व बता, रह जा।
बन प्रेम छलक कोने-कोने
अपनी नीरव गाथा कह जा
करुणा बन दुखिया वसुधा पर
शीतलता फैलाता बह जा।"[4]

जयशंकर प्रसाद के गीत गंभीर अर्थ रखते हैं। उनके नाटकों में आए गीत भारतीय सांस्कृतिक परंपरा के उद्‌भावक हैं। उन्होंने जितने भी नाटक लिखे सभी नाटकों में गीतों की सुंदर नियोजना की। इन गीतों की महत्ता को व्यर्थ में टाल देना अनुचित होगा। प्रसाद हृदय के विषाद, घुमड़ रहे गहरे अवसाद को प्रकट करते समय गीतों के माध्यम से हृदय के उद्‌गार रख देते हैं। मंदाकिनी का यह गीत बाहर चल रहे षड़यत्रों के साथ-साथ, हृदय के विषाद, नारी अस्मिता की पहचान की सफल अभिव्यक्ति करा रहा है। इस गीत में नारी स्वयं अपने अस्तित्व का मूल्य जानने हेतु तड़प रही है। वह प्रेम के माध्यम से अपनी करुणा को इस पूरे सृष्टि में अर्पित कर देना चाहती है। प्रसाद के इस गीत में नारी मन की तलाश समाहित है। तड़प, कसक, व्यथा समाहित है। इसकी पहचान प्रसाद जैसे अध्येता ही कर सकते हैं। साधारण जन इस अवसाद से भरे मन की तलाश करने में असमर्थ हैं। अत: प्रसाद के नाटको में आए गीत हिंदी साहित्य की अमूल्य धरोहर हैं। इसे नकारा नहीं जा सकता।

मंदाकिनी 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में नारी मन की टीस को एक ललकार के साथ स्थान-स्थान पर व्यक्त करती है। वह स्त्री पर हो रहे अन्याय का प्रतिकार करती है। साथ ही स्वयं मुखर होकर इसका तीव्र विरोध भी करती है। ध्रुवस्वामिनी का पक्ष लेकर वह समग्र स्त्री-जाति के समक्ष खड़ी नजर आती है। यही नहीं धर्म की धज्जियाँ उड़ाते हुए पुरोहित से कहती है, "आर्य ! आप बोलते क्यों नहीं? आप धर्म के नियामक हैं। जिन स्त्रियों को धर्म-बंधन में बाँधकर, उनकी सम्मति के बिना आप उनका सब अधिकार छीन लेते हैं, तब क्या धर्म के पास कोई प्रतिकार-कोई संरक्षण नहीं रख छोड़ते, जिससे वे स्त्रियाँ अपनी आपत्ति में अवलंब माँग सके ? क्या भविष्य के सहयोग की कोरी कल्पना से उन्हें आप संतुष्ट रहने की आज्ञा देकर विश्राम ले लेते हैं ?"[41] मंदाकिनी पुरोहित से यह सवाल पूछती है कि कम से कम स्त्रियों के पास कुछ अधिकार सुरक्षित रख छोड़ने चाहिए ताकि विपरीत परिस्थितियों में इन अधिकारों के बल पर ही वे अपना अवलंब ढूँढ़ सकें। कोमा के शकराज का शव माँगने पर वह क्षुब्ध होकर स्त्री की असहनीयता पर अपना दु:ख प्रकट करते हुए कहती है, "स्त्रियों के इस बलिदान का भी कोई मूल्य नहीं। कितनी असहाय दशा है। अपने निर्बल और अवलंब खोजने वाले हाथों से यह पुरुषों के चरण को पकड़ती हैं और सदैव ही इनको तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उपकृत करता है। तब भी यह बावली मानती है।"[42] जयशंकर प्रसाद बदलाव के आकांक्षी हैं। उनका मानना है कि स्त्रियों की स्थिति में सुधार स्वयं उनकी ललकार के द्वारा ही संभव है। प्रसाद की दृष्टि एक नया आलाप बुनती है कि स्त्रियों को तिरस्कार, घृणा और दुर्दशा की भिक्षा से उबरना होगा। उसे अपना अवलंब स्वयं प्राप्त करना होगा। दूसरों की अंकशायिनी बने रहने के अतिरिक्त भी जीवन के कई उद्देश्य हैं। उन्हीं उद्देश्यों

की ओर मुखातिब होना होगा। मंदाकिनी चन्द्रगुप्त से अन्याय के विरुद्ध खड़े होने की हुंकार भरती हुई कहती है, "हृदय में नैतिक साहस, वास्तविक प्रेरणा और पौरुष की पुकार एकत्र करके सोचिए तो कुमार, कि अब आपको क्या करना चाहिए ?"[43] मंदाकिनी चन्द्रगुप्त ही नहीं एक तरह से पौरुषवान पुरुषों में स्त्री के समकक्ष खड़े होने की ज्वलंत ललकार भर रही है। वह चन्द्रगुप्त की सुप्त मनीषा को जगाती है। आर्यों के तेज, बल, पौरुष, उत्साह, स्वार्थहीन सेवा के प्रति जागरुकता उत्पन्न कर मंदाकिनी पुरुषों को स्त्रियों के समक्ष खड़ा करती है। दूसरी ओर रामगुप्त जैसे पौरुषहीन राजा के प्रति अपना क्षोभ एवं ग्लानि व्यक्त करते हुए कहती है, "महाराज, पुरुषार्थ का इतना बड़ा प्रहसन। अबला पर ऐसा अत्याचार!! यह गुप्त सम्राट के लिए शोभा नहीं देता।"[44] 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में मंदाकिनी की ललकार की ध्वनि कहीं-कहीं ध्रुवस्वामिनी से भी तीखी प्रतीत होती है। वह रामगुप्त की दस्युवृत्ति पर आक्षेप करती है। वह रामगुप्त को स्त्री की अवस्था न समझ पाने के कारण उसे कलंक कालिमा के कारागार में डालकर असहनीय अवस्था में पहुँचाने का जिम्मेवार मानती है। वह कहती है, "तुम लोगों को यदि कुछ भी बुद्धि होती तो इस अपनी कुल-मर्यादा, नारी को, शत्रु के दुर्ग में यों न भेजते। भगवान ने स्त्रियों को उत्पन्न करके ही अधिकारों से वंचित नहीं किया है। किन्तु तुम लोगों की दस्युवृत्ति ने उन्हें लूटा है।"[45] स्त्री उत्पन्न होने के साथ ही अधिकार से हीन नहीं है। मंदाकिनी का यह कथन कई शताब्दियों से चली आ रही प्रथा के प्रति तीव्र आक्रोश है। वह 'स्त्री पैदा नहीं होती, बना दी जाती है' के कथन को चरितार्थ कर रही है। मंदाकिनी पुरोहित से जानना चाहती है कि स्त्री के अधिकार क्या हैं ? धर्मशास्त्र क्या कहता है? क्योंकि धर्मशास्त्र के चुप रहने पर ही स्त्री की यह दुर्दशा हो गई है। "यह ध्रुवस्वामिनी ! जिसे कुछ दिनों तक तुम लोगों ने महादेवी कहकर संबोधित किया है, वह क्या है ? और उसका कैसा आस्तित्व है ? कहीं धर्मशास्त्र हो तो उसका मुँह खुलना चाहिए।"[46] धर्मशास्त्र के मुँह खुलने की बात क्यों आई? प्रसाद ने भूमिका में इस बात की पुष्टि की है, तथ्य जुटाए हैं। ध्रुवस्वामिनी के साथ-साथ मंदाकिनी भी धर्मशास्त्र का आश्रय लेकर प्रसाद के उद्देश्य को साकार करती है और स्त्री के अधिकारों के प्रति सचेष्ट होती है।

कोमा आचार्य मिहिरदेव की प्रतिपालिता कन्या है। उसके हृदय में प्रेम की अजस्र धारा कोकिला की तरह किल्लोल कर रही है। वह शकराज से प्रेम करती है। इस प्रेम का दान उसे मिलता है- उत्पीड़न, निराशा एवं अवहेलना। वह एक नारी है और दूसरी नारी की व्यथा से भलिभाँति अवगत है। इसी कारण शकराज के संधि पत्र से वह विचलित हो जाती है। वह शकराज को सचेत करते हुए कहती है, "आज तुम एक स्त्री को अपने पति से विच्छिन्न कराकर अपने गर्व की तृप्ति के लिए कैसा अनर्थ कर रहे हो?"[47] कोमा का यह कथन शकराज को उचित प्रतीत नहीं होता। वह कहता है कि यह मेरे राजनीति का प्रतिशोध है। कोमा इसका जवाब देती हुई कहती है, "राजनीति का प्रतिशोध क्या एक नारी को कुचले बिना पूरा नहीं हो सकता।"[48] कोमा की यह उदभावना स्त्री मन की टीस को उजागर करती है। वह स्वयं एक नारी है। अत: एक नारी के प्रति हो रहे अन्याय को कैसे देख सकती है ? कोमा को शकराज से प्रेम की बात अब कल्पना स्वरूप लगने लगती है। वह प्रेम में ठगी जाती है। यहाँ भी एक स्त्री-मन का अपहरण कर उसे छोड़ दिया जाता है। कोमा खिन्न हो जाती है। इस खिन्नता की अवस्था में वह मिहिरदेव से कहती है, "तोड़ डालूं पिता जी ! मैंने जिसे अपने आँसुओं से सींचा, वही दुलारभरी वल्लरी, मेरे आँख बंद कर चलने में मेरे ही पैरों से उलझ गई है। दे दूँ एक झटका- उसकी हरी-हरी पत्तियाँ कुचल जाएँ और वह छिन्न होकर धूल में लोटने लगे ?"[49] कोमा स्त्री-मन की व्यथा को प्रकट करने के साथ-साथ

एक ललकार भी भर रही है। वह और ठगे जाने के लिए प्रस्तुत नहीं है। वह स्त्री-मन को कठोर करना चाहती है। यही नहीं स्त्री के प्रति हो रहे अन्याय का प्रतिकार करते हुए प्रेम के बंधन को झटकने के लिए भी प्रस्तुत हो जाती है। वह शकराज से कहती है, "प्रेम का नाम न लो। वह एक पीड़ा थी जो छूट गई। उसकी कसक भी धीरे-धीरे दूर हो जायेगी। राजा, मैं तुम्हे प्यार नहीं करती। मैं तो दर्प से दीप्त तुम्हारी महत्वमयी पुरुष-मूर्ति की पुजारिन थी, जिसमें पृथ्वी पर अपने पैरों से खड़े रहने की दृढ़ता थी। इस स्वार्थ-मलिन कलुष से भरी मूर्ति से मेरा परिचय नहीं। .....तुम आशंका मात्र से दुर्बल-कंपित और भयभीत हो।"[50] कोमा शकराज के पौरुष की पुजारिन थी। वह एक तेजस्वी राजा से प्रेम करती थी, किन्तु ध्रुवस्वामिनी को भेंट में माँगकर उसने एक स्त्री के मान-सम्मान के साथ-साथ दूसरी स्त्री के मान को भी आहत किया था। कोमा का स्त्री-मन यह बरदाश्त नहीं कर सकता था। वह शकराज का प्रतिकार करती है। शकराज के न मानने पर उससे अलग हो जाती है, किन्तु शकराज की मृत्यु होने पर उसका स्त्रियोचित कोमल मन जागृत हो जाता है। वह ध्रुवस्वामिनी से शकराज का शव माँगकर ले जाती है। कोमा का चरित्र प्रसाद ने प्रेम की वेदी पर प्रतिष्ठित किया है। यह जयशंकर प्रसाद के साहित्य की कूंजी का काम करती है। उन्होंने 'ध्रुवस्वामिनी' में प्रेम की पराकाष्ठा और विजय दिखाकर पुनर्लग्न और मोक्ष को तो नियोजित किया ही है भारतीय संस्कृति की अजस्र-धारा को भी उद्भासित किया है।

'ध्रुवस्वामिनी' नाटक में तीनों ही पात्र स्त्रियों की दारुण पीड़ा को व्यक्त करने के साथ-साथ ललकार की ध्वनि भी उजागर करते हैं। तीनों ही पत्रों का चरित्र अलग-अलग होते हुए भी उनमें कहीं न कहीं संगति अवश्य है। 'ध्रुवस्वामिनी' में भारतीय संस्कृति की एक अक्षुण्ण परंपरा का निर्वहन करने के साथ-साथ यह दिखलाया गया है कि स्त्रियों के साथ अन्याय का प्रतिकार केवल मूक बने रहकर नहीं किया जा सकता, बल्कि उसके लिए एक सार्थक और सही दिशा-दृष्टि की आवश्यकता है। तभी यह अपने गन्तव्य पर सटीक ढंग से पहुँचकर जनमानस के कल्याण हेतु तत्पर हो पाएगा। 'ध्रुवस्वामिनी' की भूमिका में जयशंकर प्रसाद स्पष्ट संकेत भी करते हैं कि "मेरा ऐसा विश्वास है कि प्राचीन आर्यावर्त ने समाज की दीर्घकालव्यापिनी परम्परा में प्रायः प्रत्येक विधान का परीक्षात्मक प्रयोग किया है। तात्कालिक कल्याणकारी परिवर्तन भी हुए हैं। इसलिए डेढ़ हजार वर्ष पहले यह होना अस्वाभाविक नहीं था। क्या होना चाहिए और कैसा होगा, यह तो व्यवस्थापक विचार करें; किन्तु इतिहास के आधार पर जो कुछ हो चुका या जिस घटना के घटित होने की संभावना है, उसी को लेकर इस नाटक की कथावस्तु का विकास किया गया है।"[51] किस परिवर्तन की बात प्रसाद कर रहे थे। वर्तमान की परिस्थितियों को देखकर यह आभास हो ही जाता है। दरअसल जयशंकर प्रसाद इतिहास को देखकर एक नया इतिहास का निर्माण कर रहे थे।

साथ ही भविष्य को गतिशील बनाने हेतु नाटक के सृजन में नित्य सचेष्ट थे। वर्तमान में स्त्री-विमर्श की गूँज की ध्वनि नित्य तीव्रतर होती जा रही है। इस विमर्श की छाप प्रसाद ने बहुत पहले ही छोड़ दी थी। कहना होगा कि "भारतेन्दु और प्रसाद हिंदी के दो ऐसे नाटककार हैं जिसमें भारतीय लोक-परम्पराएँ, शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक परम्पराएँ ही नहीं बल्कि हमारा समूचा राष्ट्रीय संघर्ष, चरित्र और आधुनिक भारतीय द्वंद्वचेतना अन्तर्निहित है। विशेषकर प्रसाद के नाटकों में जो भारतीय क्लासिक तत्व है, जो भारतीयता और आधुनिकता की क्रिया-प्रतिक्रिया का संघर्षमूलक संतुलन है, वह अपनी विशिष्टता और मौलिकता में अभी भी अकेली है।"[52]

संदर्भ :

1. हिंदी नाटक का आत्मसंघर्ष, गिरीश रस्तोगी, 2017, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. सं. 06.
2. हिंदी नाटक, बच्चन सिंह, 1997, राधाकृषण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 50
3. विश्वभारती पत्रिका, अंक -1-2, खंड- 62, अप्रैल-2015-सितंबर-2015, पृ. सं. 86
4. हिंदी नाटक का आत्मसंघर्ष, गिरीश रस्तोगी, 2017, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 64
5. प्रसाद की नाट्यकला : संरचना और शैली तत्व, डॉ. सुजाता बिष्ठ, 1990, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ.18
6. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 9-10
7. जयशंकर प्रसाद, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक), अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999, पृ.13
8. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.10
9. वही, पृष्ठ. 11-12
10. वही, पृष्ठ. 11
11. वही, पृष्ठ. 6
12. जयशंकर प्रसाद, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक), 1999, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ. 9
13. वही, पृष्ठ. 15
14. वही, पृष्ठ. 18-19
15. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ. 7
16. वही, पृष्ठ. 5
17. वही, पृष्ठ. 9
18. वही, पृष्ठ. 11
19. वही, पृष्ठ. 11
20. वही, पृष्ठ. 13-14
21. वही, पृष्ठ. 20
22. वही, पृष्ठ. 22
23. वही, पृष्ठ. 23
24. जयशंकर प्रसाद, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक), 1999, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 150
25. रस्तोगी, गिरीश, हिंदी नाटक का आत्मसंघर्ष, गिरीश रस्तोगी, पृष्ठ. 63
26. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ.23
27. जयशंकर प्रसाद, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक), पृ. 25
28. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ. 23
29. वही, पृ. 23
30. वही, पृ. 23
31. वही, पृष्ठ. 45
32. वही, पृष्ठ. 45
33. वही, पृष्ठ. 46
34. वही, पृष्ठ. 46
35. वही, पृष्ठ. 48
36. वही. पृष्ठ. 51
37. वही, पृष्ठ. 55
38. प्रसाद के नाटक: सर्जनात्मक धरातल और भाषिक चेतना, गोविंद चातक, तक्षशिला प्रकाशन, 2002, नई दिल्ली, पृष्ठ. 24
39. ध्रुवस्वामिनी, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ.16
40. वही, पृष्ठ. 16

41. वही, पृष्ठ. 46
42. वही, पृष्ठ. 48
43. वही, पृष्ठ. 49
44. वही, पृष्ठ. 52
45. वही, पृष्ठ. 54
46. वही, पृष्ठ. 55
47. वही, पृष्ठ. 36
48. वही, पृष्ठ. 37
49. वही, पृष्ठ. 38
50. वही, पृष्ठ. 40
51. वही, पृष्ठ. 7-8
52. जयशंकर प्रसाद, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक), पृष्ठ. 168

❑❑❑

छायावाद की साहित्यिक पत्रिकाएँ

❍ किरण शर्मा

द्विवेदी युग के बाद हिन्दी साहित्य में जो काव्य धारा प्रवाहित हुई, वह छायावादी कविता के नाम से प्रसिद्ध हुई। पुनर्जागरण के दौर में इस युग का जन्म विशेष सामाजिक-साहित्यिक परिस्थितियों के बीच हुआ है। उन्हीं विशेष सामाजिक-साहित्यिक परिस्थितियों के कारण अवसान भी हो हुआ। इस विषय में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है, "सन् 1920 से 1930 ई. तक का समय पुराने संस्कारों के प्रति विद्रोह और नवीन संस्कारों के बीजारोपण का समय है।"[1] इसका नाम 'छायावाद' किसने रखा? यह विचारणीय है। मुकुटधर पाण्डेय ने इस नामकरण के सन्दर्भ में लिखा है, "झरना के साथ हिन्दी कविता में एक अन्तर्मुखी विचार-सरणि, अन्तर्गूढ़ भावना और अभिनव शैली का सूत्रपात हुआ।..... यह अभिनव शैली थी, जो ग्रन्थों में वर्णित ध्वन्यात्मक या व्यंग्यात्मक शैलियों से कुछ भिन्न प्रकार की थी, वह एक कुहासे से आच्छन्न थी। उस पर आवरण पड़ा हुआ था। इस शैली का नामकरण नहीं हुआ था। न बँगला में हुआ था, न हिन्दी में। ....मेरे सामने नयी शैली के गीत थे। इनके भावों में एक धुँधलापन था, मानो वे भाव नहीं, उनकी छाया हों, बस इसी बुनियाद पर मैंने 'छायावाद' नाम रखा। ..... बँगला में मैंने एक आलोचना पढ़ी थी, जिसमें नयी शैली के लक्षणों में छायावादिता भी गिनायी गयी थी। पर बँगला में नयी शैली को छायावाद नहीं कहा जाता था, न कहा जाता है। यह बात सही है कि मैंने 'छायावाद' का नामकरण किया।"[2]

'छायावाद' काल के कवि और लेखक पत्रकार और सम्पादक रहे हैं, जिन्होंने अपनी बौद्धिक प्रखरता और वैचारिक वैविध्य से इस काल को अग्रणी बनाया। सामाजिक व्यवस्था के लिए इनकी सम्पादित पत्रिकाएँ चौथे स्तम्भ का कार्य कर रही थीं और अपनी बात मनवाने तथा साफ-सुथरा वातावरण तैयार करने के लिए साहित्यिक पत्रिकाएँ अमोघ अस्त्र की तरह अन्याय, अमानवीयता, अत्याचार शोषण तथा ज्यादती का विरोध करने के लिए आवाज बुलन्द करने का माध्यम बनती हैं। हिन्दी के विविध आन्दोलन, साहित्यिक प्रवृत्तियाँ, सामाजिक गतिविधियों को सक्रिय करने में पत्रिकाएँ अग्रणी भूमिका निभाती हैं। ये पत्रिकाएँ दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, छमाही, वार्षिक थीं। 1900 में इलाहाबाद से 'सरस्वती' के प्रकाशन ने पत्रिकाओं की निरन्तरता बनाए रखी। इनमें से सरस्वती, श्रीशारदा, चाँद, मतवाला, समन्वय, सुधा, प्रभा, विशाल भारत, सरोज, माधुरी, हिन्दी नवजीवन, श्रीकृष्ण सन्देश, मौजी, सेनापति आदि का यहाँ संक्षेप में उल्लेख है।

सरस्वती - ऐतिहासिक दृष्टि से बीसवीं सदी के साथ ही अस्तित्व में आने वाली इस पत्रिका का विशेष साहित्यिक महत्व है। इस मासिक-पत्र का प्रकाशन 1900 ई. के जनवरी माह में इलाहाबाद से प्रारंभ हुआ था। बत्तीस पृष्ठों की क्राउन आकार की इस पत्रिका का मूल्य चार आने मात्र था। इसके

सम्पादक थे जगन्नाथ दास, श्यामसुन्दर दास, राधाकृष्ण दास, कार्तिक प्रसाद तथा किशोरी लाल। दूसरे वर्ष केवल श्यामसुन्दर दास ही इसके सम्पादक रहे। सन् 1903 में महावीर प्रसाद द्विवेदी इसके सम्पादक हुए तथा 1920 तक इसका निर्वहन करते रहे। पहले 'सरस्वती' झाँसी से निकलती थी किन्तु बाद में कानपुर से इसका प्रकाशन होने लगा। इसके सम्पादकों में पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, देवीदत्त शुक्ल, ठाकुर श्रीनाथ सिंह, देवीदयाल चतुर्वेदी और श्रीनारायण चतुर्वेदी थे। सन् 1905 में काशी नागरी प्रचारिणी सभा का नाम इसके मुखपृष्ठ से हट गया।

'सरस्वती' हिन्दी की पहली रूपगुण सम्पन्न पत्रिका थी। इसमें विशेष रूप से भाषा और व्याकरण सम्बन्धी टिप्पणियाँ छपती थीं। द्विवेदी जी ने इसे भाषा और व्याकरण की दृष्टि से परिमार्जित किया साथ ही गद्य और काव्य में इतिवृत्तात्मकता को प्रश्रय दिया। मैथिलीशरण गुप्त, काशी प्रसाद जायसवाल, ठाकुर गदाधर सिंह, ठाकुर गोपाल शरण सिंह, रामचन्द्र शुक्ल, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', रायकृष्णदास, सियारामशरण गुप्त, गणेश शंकर विद्यार्थी, प्रेमचन्द, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, वृन्दावन लाल वर्मा तथा सुमित्रानन्दन पन्त इसके प्रमुख लेखक एवं कवि थे।

'सरस्वती' में हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी 'दुलाई वाली' (बंग महिला) 1907 ई. में छपी थी (भाग 8 से 5) किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' संवत् 1957 में ही छप चुकी थी।"[3] द्विवेदी युग का लेखा-जोखा रखने वाली इस पत्रिका की एक और खासियत थी कि इसने विदेशी साहित्य का परिचय हिन्दी पट्टी वालों से कराया, इस 'सरस्वती' ने अकेले ही हिन्दी भाषा और साहित्य के लिए इतना कार्य किया है कि बाद की पत्रिकाओं द्वारा वैसा नहीं हो सका। द्विवेदी जी द्वारा संशोधित लेखों की पाण्डुलिपियाँ आज भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के 'भारत कला भवन' में सुरक्षित हैं। सरस्वती की हीरक जयन्ती 1962 ई. में मनायी गयी। 'छायावाद' को लेकर आलोचना-प्रत्यालोचना, वाद-विवाद की शुरुआत 'सरस्वती' से ही शुरू हो चुकी थी। इसके आवरण पृष्ठ पर लिखा रहता था- "सरस्वती त्रुटि महती न हीयताम्।"

श्री शारदा- 'छायावाद' युग को सर्वप्रथम मान्यता प्रदान करने का श्रेय 'श्री शारदा' पत्रिका को जाता है। यह हिन्दी का मासिक-पत्र था, जिसका प्रकाशन 'राष्ट्रीय हिन्दी मन्दिर' जबलपुर से 21 मार्च 1920 को हुआ था। इसके पहले सम्पादक नर्मदा प्रसाद मिश्र तथा अन्तिम श्री द्वारका प्रसाद मिश्र थे। इसमें साहित्य, इतिहास, दर्शन, कृषि, भाषा, राजनीति, आलोचना, आर्थिक विषयों पर आलेख और टिप्पणियाँ विभिन्न स्तम्भों में प्रकाशित होती थीं। जैसे- साहित्य संवाद, राजनीतिक प्रगति, सहयोगी साहित्य तथा समालोचना आदि। 'श्री शारदा' के मुखपृष्ठ पर सूक्ति छपा करती थी- 'गुरुतां नयन्ति हि गुणाः न संहति' भारवि। यहाँ इस पत्रिका के उल्लेख का विशेष कारण है मुकुटधर पाण्डेय की लेखमाला। जो सन् 1920 में जुलाई, सितम्बर, नवम्बर तथा दिसम्बर में 'हिन्दी में छायावाद' शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। इनका पहला निबन्ध था 'कवि स्वातंत्र्य' जिसमें रीतिग्रन्थों की परतन्त्रता से मुक्त होकर कविता में व्यक्तित्व, भाव, भाषा, छन्द प्रकाशन रीति की मौलिकता पर बल दिया गया है। दूसरा निबन्ध था- 'छायावाद क्या है?' यह सबसे महत्वपूर्ण है। वे कहते हैं- "अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भी जानकारी रखने वाले तो सुनते ही समझ जायेंगे कि यह शब्द 'मिस्टिसिज्म' के लिए आया है। 'छायावाद' एक ऐसी मायामय सूक्ष्म वस्तु है कि शब्दों द्वारा इसका ठीक-ठीक वर्णन करना असम्भव है, क्योंकि ऐसी रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को खोकर सांकेतिक चिह्न मात्र हुआ करते हैं।[4] शेष दो निबन्धों का शीर्षक एक ही था 'हिन्दी में छायावाद'। पाण्डेय

जी के ये लेख छायावाद पर गहराई से प्रकाश डालते हैं। छायावाद के आरोप पर वे स्पष्टीकरण देते हैं– "छायावाद की आवश्यकता हम इसलिए समझते हैं कि उसमें कवियों को भाव-प्रकाशन का एक नया मार्ग मिलेगा। इस प्रकार के अनेक मार्गों– अनेक रीतियों का होना ही उन्नत साहित्य का लक्षण है।"[5]

चाँद– (प्रयाग) इसका प्रकाशन प्रारम्भ में 1920 ई. में साप्ताहिक पत्र के रूप में हुआ था किन्तु 1923 ई. में रामरख सहगल और चण्डीप्रसाद 'हृदयेश' के सम्पादन में इसका प्रकाशन मासिक पत्रिका के रूप में हुआ।[6] इस पत्र में नारी विषयक समस्याओं तथा लेखिकाओं को प्राथमिकता मिलती थी। इसके कई अंक बड़े क्रान्तिकारी थे जिसके कारण ब्रिटिश हुकूमत द्वारा जब्त कर दिए गए थे। चतुरसेन शास्त्री के सम्पादन में चाँद का 'फाँसी अंक' (11 नवम्बर, 1928) अंग्रेजों ने जब्त कर लिया। अन्य अंकों में 'नारी आन्दोलन' अंक, अछूत अंक (मई 1927), सती अंक, 'मारवाड़ी अंक' अपने समय में खूब चर्चित रहे।

महादेवी वर्मा के सम्पादन में निकला 'विदुषी अंक' (नवम्बर, 1935) तथा प्रेमचन्द के सम्पादन में गल्पांक (दिसम्बर, 1926) उल्लेखनीय हैं। चाँद के सम्पादकीय पृष्ठ पर लम्बे अर्से से एक ब्लाक छपता था, जिसमें तीन अध्ययनरत महिलाएँ मेज कुर्सी पर बैठी दिखायी जाती थीं, महादेवी ने इसे बदल दिया और 'सम्पादकीय विचार' स्तम्भ के शीर्षक को बदलकर 'अपनी बात' कर दिया। 'रंगभूमि' स्तम्भ के नीचे पहले कोष्ठक में एक उपशीर्षक लिखा जाता था (सम्पादकीय) इससे स्पष्ट हो जाता था कि 'रंगभूमि' में छपी टिप्पणियाँ और दृष्टिकोण 'चाँद' की डेस्क की हैं। 'अपनी बात' पत्रिका का सम्पादकीय होता था जिसे महादेवी जी स्वयं लिखती थीं। पत्रिका का स्वरूप कुछ इस प्रकार था– "चाँद विधवाओं, अछूतों तथा रूढ़ि व्याधि ग्रसित समाज द्वारा उत्पीड़ित नर-नारियों का एक तुच्छ सहायक और सेवक है। ऐसे व्यक्तियों की यत्किंचित सेवा करना ही 'चाँद' के जीवन का उद्देश्य है। अत: अनाथों, विधवाओं और अछूतों की सहायता करने वाली संस्थाओं और सभाओं सहयोगियों का भी यह सहायक और सेवक है।"[7]

अपने व्यापक सामाजिक सरोकारों एवं स्पष्टवादिता के कारण 'चाँद' ने हिन्दी जगत में विशेष ख्याति अर्जित की, इसकी पन्द्रह हजार प्रतियाँ प्रकाशित होने लगी थीं। इसकी सराहना में 'माधुरी' ने लिखा कि 'चाँद' ने इसी उत्साह की बदौलत हिन्दी जगत में वह स्थान प्राप्त कर लिया है, जो हिन्दी भाषा ही के लिए नहीं किसी भी भारतीय भाषा के लिए गौरव की बात है।"[8] प्रखरता के कारण 'चाँद' को आर्थिक नुकसान भी उठाना पड़ा किन्तु धार में कमी नहीं आई। चतुरसेन शास्त्री के सम्पादकीय से इसे बखूबी समझा जा सकता है– "फाँसी अंक को दिवाली की अमावस्या समझिए, देखिए, इसमें बीसवीं शताब्दी के हुतात्मा के दिए कैसे टिमटिमा रहे हैं और देखिए स्थान-स्थान पर कैसी ज्वलंत अग्नि धाँय-धाँय कर जल रही है, और सबके बीच में जाग्रत-ज्योति-मृत्यु-सुन्दरी, कैसा श्रृंगार किए छम-छम कर नाच रही है।.... उदीयमान जातियाँ विशेष अवसरों पर विनोद नहीं करतीं, वेदना-स्थलों की जाँच किया करती हैं। भारत के विनोद और उल्लास के दिन नहीं भारत के दिन मृत्युवाद के अध्ययन करने के हैं। भारत को निकट भविष्य में उसकी परीक्षा में उत्तीर्ण होना है और बहिन और भाई को 'मृत्युंजय' की उपाधि प्राप्त करना हैं।"[9]

समय-समय पर 'चाँद' के सम्पादक बदलते रहे। मैनेजिंग डायरेक्टर निरंजन लाल भार्गव ने 1935 में मुंशी नवजादिक लाल को चाँद से मुक्त कर दिया। महादेवी वर्मा (1935-38) के बाद नन्दगोपाल

सिंह सहगल और सत्यभक्त ने भी इस पत्रिका का सम्पादन किया। नारी आन्दोलन के साथ सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक सुधारों को केन्द्र में रखने वाली यह पत्रिका 1940 के अन्त तक समाप्त हो गई। वैसे तो यह पत्रिका महिलाओं की सचित्र मासिक के रूप में प्रारम्भ हुई थी, किन्तु महादेवी वर्मा को छोड़कर सम्पादन प्रायः पुरुषों के हाथों में ही रहा।

मतवाला– 'मतवाला' शुद्ध रूप से राष्ट्रीय पत्र था, लेकिन उसकी प्रकृति पूर्णतया स्वतन्त्र और स्वच्छन्द थी। 23 अगस्त, 1923 को 'मतवाला' का प्रथम अंक निकला। इसके सम्पादक थे महादेव प्रसाद सेठ। छायावाद में 'मतवाला' पत्र का विशेष महत्व है क्यों? इस पर विचार करना समीचीन है। प्रश्न उठता है कि मतवाला का प्रकाशन क्यों किया गया? जबकि उस समय में कई पत्रिकाएँ निकल रही थीं। देखा जाये तो इस पत्र के प्रकाशन की प्रेरणा बंगला के साप्ताहिक पत्र 'अवतार' से मिली। 'अवतार' 'हास्य रस प्रधान' पत्र था। हिन्दी में इस तरह का कोई पत्र नहीं था, इस ओर कलकत्ता के तत्कालीन हिन्दी प्रेमियों का ध्यान गया, जिसमें प्रमुख थे मुंशी नवजादिक लाल, बाबू शिवपूजन सहाय तथा 'बालकृष्ण प्रेस' के मालिक महादेव प्रसाद सेठ। 'निराला' का 'मतवाला' में आना भी एक घटना है। इसके पूर्व निराला हताश निराश थे, क्योंकि उनकी रचनाओं को प्रकाशक नहीं मिल रहे थे। रचनाएँ वापस कर दी जा रही थीं। शायद उनकी भावधारा को समझने के लिए प्रकाशक तैयार ही नहीं थे। हिन्दी में निराला का प्रवेश 'मुक्तछन्द' के साथ होता है। जिसके चलते उन्हें विरोधों का सामना करना पड़ा था। ऐसी परिस्थिति में महादेव जी ने इस प्रतिभासम्पन्न कलाकार की परख की और उन्हें 'मतवाला' में बुला लिया।

शिवपूजन सहाय जी अपने संस्मरण में 'मतवाला' के प्रकाशन की ओर संकेत करते हैं– "सोचावट होने लगी–इसी ढंग का एक पत्र हिन्दी में निकाला जाय रोज हरघड़ी चर्चा ही छिड़ी रहती थी, कितने ही हवाई किले बने और कितने ही उड़ गए। बहुत मंथन के बाद विचारों में स्तम्भन आया। उसी दम बात तय हो गयी। बीजारोपण हो गया। 20 अगस्त 1923 ई. रविवार को सिर्फ बात पक्की हुई। ता. 21 सोमवार को मुंशी जी ने ही पत्र का नामकरण किया 'मतवाला'। मुंशी जी को दिन–रात इसी की धुन थी। नाम को सबने पसन्द किया। अब कमिटी बैठी। विचार होने लगा कौन क्या लिखेगा–पत्र में क्या रहेगा इत्यादि। निराला जी ने कविता और समालोचना का भार लिया। मुंशी जी ने व्यंग्य–विनोद लिखना स्वीकार किया। मैं चुप था। मुझमें आत्मविश्वास ही नहीं था। बैठा–बैठा सब सुन रहा था। सेठ जी भंग का गोला जमाए सटक गुड़गुड़ा रहे थे। मुझसे बार–बार पूछा गया। डरते–डरते मैंने कहा– मैं भी यथाशक्ति चेष्टा करूँगा। सेठ जी ने कहा– आप लीडर (अग्रलेख) लिखिएगा, प्रूफ देखिएगा जो कुछ घटेगा सो भरिएगा। .... स्तम्भों के शीर्षक चुने गए, डिजाइन, ब्लाक, कागज धड़ाधड़ प्रेस में आने लगे। चारु बाबू चित्रकार ने मुखपृष्ठ के लिए 'नटराज' का चित्र बनाया। देखकर सबकी तबियत भड़क उठी।..... श्रावणी संवत् 1980 शनिवार (23 अगस्त, 1923 ई.) को 'मतवाला' का पहला अंक निकल गया। पत्र था तो साप्ताहिक मगर मासिक पत्र की तरह शुद्ध और स्वच्छ निकला। बाजार में जाते ही पहले ही दिन धूम मच गयी।"[10]

'मतवाला' के मुख्यपृष्ठ पर 'निराला' की कविता छपती थी। नियम भी मुखपृष्ठ पर ही रहते थे। अगले अंक का पहला पृष्ठ अविकल रूप से उद्धृत किया जाता है ताकि इसके व्यवस्था स्वरूप का ज्ञान हो सके। इसकी टैग लाइन थी–

"अमिय गरल शशि-सीकर रविकर राग-विराग भरा प्याला
पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह मतवाला।"

– निराला

सम्पादकीय टिप्पणी के शीर्षक के ऊपर अकबर इलाहाबादी की दो पंक्तियाँ स्थायी रूप से रहती थीं-

"खींचों न कमानों को न तलवार निकालो
जब तोप मुकाबिल है तो अखबार निकालो।"

'मतवाला' का उद्देश्य शिवपूजन सहाय की सम्पादकीय टिप्पणी से स्पष्ट हो जाता है- "मैं अपनी यात्रा की रिर्पोट नियमित रूप से प्रकाशित करता रहूँगा। उसमें सच्ची और स्वाभाविक सूचना रहेगी। उसके द्वारा मैं यथेष्ट रीति से इस देश की आन्तरिक दशा बतलाऊँगा। लेकिन बतलाने का ढंग निराला होगा। जो मेरी ही तरह स्वतन्त्र 'मत' वाला होगा वही उस ढंग को समझने वाला होगा। राष्ट्र, जाति, सम्प्रदाय, भाषा, धर्म, समाज, शासन-प्रणाली, साहित्य और व्यापार आदि समस्त विषयों का निरीक्षण और संरक्षण ही मेरी योजना का अभिसंधान है। मैं उसे पूरा करने के लिए संकोच, भय, ग्लानि, चिन्ता और पक्षपात का उसी प्रकार त्याग कर दूँगा जिस प्रकार यहाँ के नेता निजी स्वार्थ का त्याग करते हैं।"[11]

हास्य व्यंग्य का पत्र होने के कारण एक बड़ी सहूलियत थी कि विनोदपूर्ण शैली में खरी-खरी बात कही जा सकती है; यथा, निराला द्वारा 'गरगज सिंह वर्मा' के नाम से 'सरस्वती' के अंकों की समालोचना से महावीर प्रसाद द्विवेदी इतने क्षुब्ध हुए कि 'मतवाला' के एक अंक को आदि से अन्त तक अच्छी तरह से संशोधित करके भेज दिया। 'मतवाला' ने अपनी प्रकृति के अनुसार कई स्तम्भ स्थायी रूप से प्रारम्भ किए थे। जैसे- मतवाले का चुकूड़, चण्डू खाने की गप्प, रंगरूटों की फौज आदि। नवजादिक लाल 'मतवाला की बहक' आदि में व्यंग्यात्मक टिप्पणियाँ लिखा करते थे; उदाहरण स्वरूप -

"देश सेवा की अपेक्षा विश्व-सेवा विशेष निरापद है क्योंकि देश सेवा का पुरस्कार है जेल और विश्व सेवा का पुरस्कार है 'नोबल प्राइज'। इसी से रवीन्द्र बाबू ने पहले को छोड़ पिछले को अपनाया है। अन्यान्य लीदरों को भी उनका अनुकरण करना चाहिए।" (वर्ष 1 अंक 3)

चलती चक्की- इसे शिवपूजन सहाय जी लिखते थे। वर्ष 01, अंक 2 द्रष्ट्व्य है- महाराज गायकवाड़ के पुत्र का देहान्त हो गया। खबर है कि महाराज बहादुर पेरिस में अन्त्येष्टि क्रिया करेंगे। किन्तु चिताभस्म भारतवर्ष भेज देंगे। महाराज की इस स्वदेश भक्ति पर कहीं सरकार की नजर न लग जाए।

हिन्दी में 'मतवाला' का साहित्यिक योगदान है 'निराला' के पूर्ववर्ती काव्य का प्रकाशन। निराला के अतिरिक्त 'मतवाला में हरिऔध, चतुरसेन शास्त्री, प्रेमचन्द, प्रसाद तथा उग्र की रचनाएँ छपती थीं। उग्र जी 'मतवाला मण्डल' के सदस्य थे। इनकी कहानियों को पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'घासलेटी साहित्य' कहा था। 'मतवाला' का तेवर उग्र था, इसलिए मर्माहत लोग आपत्तियाँ करते थे जिनका जवाब 'मतवाला' देता था। 'मतवाला' को युग की सही नब्ज का ज्ञान था। अंग्रेजों की गुलामी से छुटकारा न मिलने के पीछे एक बड़ा कारण ये व्यवसायी हैं जो शोषण में रत हैं। 10 नवम्बर, 1923 में 'हिन्दी केसरी' पर की गई टिप्पणी मतवाला की प्रकृति को स्पष्ट करती है- "अपने पाँचवीं नवम्बर के अंक में प्रकाशित 'नोंकझोंक' को पढ़कर देखो, उसमें क्या सार है। इस प्रकार के निस्सार लेखों से 'मतवाला' की जबान बन्द करने की चेष्टा में तुम्हें कभी सफलता नहीं प्राप्त हो सकती, क्योंकि ईट का जवाब पत्थर से देने

के लिए 'मतवाला' सदैव तैयार रहता है। हाँ, स्वयं छेड़खानी करके कीच फेंकना उसका उद्देश्य नहीं है। उसने अब तक 'गुलाल' का ही व्यवहार किया है और जब तक उसके ऊपर कीच न फेंकी जाएगी तब तक वह बराबर ऐसा ही करता रहेगा। अस्तु।"[12]

'समन्वय'- रामकृष्ण मिशन के तत्वावधान में स्वामी माधवानन्द जी के सम्पादकत्व में कलकत्ता से 1922 में इस पत्र का प्रकाशन हुआ था। यह मासिक पत्र था। इसमें धार्मिक, आध्यात्मिक और सामाजिक विषयों के साथ-साथ साहित्यिक सामग्री का भी प्रकाशन होता था। इस पत्र के सम्पादन में लम्बे अरसे तक 'निराला' जी रहे। उन्हीं के कारण मुंशी नवजादिक लाल और बाबू शिवपूजन सहाय जी जुड़े। इस पत्र में निराला को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भेजा था। पत्र में वैचारिक लेख प्रमुखता से छपते थे। 'समन्वय' पर समालोचक पद्म सिंह शर्मा की टिप्पणी उसके वैशिष्ट्य को प्रस्तुत करती है- "ऐसे पत्रों की आवश्यकता है। जैसे सुन्दर शास्त्रीय नाम है वैसे ही महत्वपूर्ण लेख हैं। रामकृष्ण आश्रम जो अनेक अच्छे कार्य कर रहा है, 'समन्वय' का प्रकाशन मेरी दृष्टि में उन सब में अच्छा है। भिन्न भाषा-भाषी होकर भी आप लोग हिन्दी में ऐसा उत्कृष्ट पत्र निकाल रहे हैं, यह एक गौरव की बात है। समन्वय में प्रकाशित 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत' और दूसरे वेदान्त विषयक निबन्ध पृथक पुस्तकाकार प्रकाशित होने चाहिए। ऐसा प्रशंसनीय साहित्य प्रचार पाने योग्य है। 'समन्वय' की पूरी फाइल मिल सके तो मैं उसे पढ़ना चाहता हूँ।"[13]

'मारवाड़ी सुधार' (मासिक पत्र, आरा) के सम्पादक बाबू शिवपूजन सहाय ने 'समन्वय' के विषय में अपने पत्र (वर्ष 2, अंक 08) में लिखा था- "संघ की एक शाखा कलकत्ता में अद्वैताश्रम नाम से प्रसिद्ध है। इसी आश्रम से 'समन्वय' नाम का मासिक पत्र निकलता है। हिन्दी में वह अपने ढंग का और विषय का एक ही उत्तम पत्र है। इसके सम्पादक हैं स्वामी माधवानन्द जी महाराज। आप बंगाली हैं। और अंग्रेजी के मर्मज्ञ विद्वान हैं। किन्तु, जिस योग्यता से आप 'समन्वय' का सम्पादन कर रहे हैं, वह हिन्दी वालों के लिए शुभ होने पर भी कुछ आश्चर्यजनक है, क्योंकि स्वामी जी ने एकाएक अपने पवित्र दर्शन से हिन्दी वालों को मुग्ध किया है। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि एकाएक 'समन्वय' को लेकर जिस सराहनीय सफलता के साथ कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं, वह हिन्दी के लिए सौभाग्यवर्द्धक और आपके लिए गौरवजनक है। ..... इसकी सबसे बड़ी विशेषता है कि सदा ठीक समय पर निकलता है और पाठकों के सामने गहन विषयों को भी बड़ी सरस और शुद्ध भाषा में सुगमतापूर्वक उपस्थित करता है। इसका कार्यालय नं. 28 कालेज स्ट्रीट मार्केट में है। इसकी उत्तम उपयोगिता और पवित्रता को देखते हुए तीन रुपया वार्षिक मूल्य कुछ भी नहीं है। अपने पूरे स्वरूप में यह हिन्दी का अप्रतिम पत्र था।

सरोज- इस पत्र का सर्वाधिकार श्री कनका प्रसाद चौधरी के पास था। यह सचित्र मासिक पत्र था, जिसका वार्षिक मूल्य चार रुपया था। एक प्रति का मूल्य छह आने और छमाही दो रुपया। सम्पादकों में मुंशी नवजादिक लाल (1928) तथा श्री रामप्रसाद पाण्डेय थे। 'सरोज' एक महत् उद्देश्य को लेकर चला था। संवत् 1985 में इसका पहला संस्करण निकला। इसकी सम्पादकीय टिप्पणी 'सरोज विकास' में लिखा था- "अपनी तुच्छ शक्ति के अनुसार मातृभाषा की सेवा करने का अधिकार प्रत्येक मनुष्य को है और होना चाहिए। हम 'सरोज' द्वारा उसी अपने जन्मसिद्ध अधिकार का उपयोग अपनी इच्छा और तुच्छ क्षमता के अनुसार करना चाहते हैं। ......'सरोज' का मार्ग स्वतन्त्र होगा। .....अपनी नन्ही सी जान को संकटापन्न होने से बचाता हुआ अधिकतर अच्छी-अच्छी कहानियाँ और कविताएँ लेकर ही प्रतिमास अपने प्रेमियों की सेवा में उपस्थित हुआ करेगा। ....'सरोज' के गौण विषयों में व्यंग्य चित्र, नये-पुराने,

जीवित-मृत, युवक-वृद्ध हिन्दी साहित्य सेवियों के चित्र और उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय आदि रहेगा, परन्तु तो भी यह भानमती की पिटारी न होगा और न 'गागर में सागर' भरने का व्यर्थ प्रयास करेगा। बस यही चन्द रसगन्ध-विहीन विशुष्क पंखुड़ियाँ 'सरोज' की सम्बल हैं।"[14]

'सरोज' के पहले अंक के प्रथम पृष्ठ पर उद्धृत है-
सचित्र मासिक पत्र
काव्य मीदी मधुपमय, सुरस-तरंगित-ओज
साहित्यामृत मरिस, यह सुरभित-सुरुचि सरोज'।[15]

इस पत्रिका के लेखक-कवियों की नाम सूची में- अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', उग्र, निराला, मोहनलाल महतो 'वियोगी', पुरुषोत्तम प्रसाद पाण्डेय, श्री बनारसी दास चतुर्वेदी, गोपालशरण सिंह, शान्तिप्रिय द्विवेदी तथा कमला प्रसाद मुख्तार आदि हैं। निराला की कविता 'सरोज के प्रति' सरोज में प्रकाशित हुई थी। उसकी कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं-

श्यामल कूलों में सुख-दुःख के
बहते सदा ही प्राण
उर्मि संघातोद्धत अप्रतिहत
उज्ज्वल अछोर, चिर-निर्मल सागर की ओर।"[16]

'सरोज' पत्रिका का 'नाटकांक' प्रकाशित हुआ था, किन्तु 'कवि अंक' के प्रकाशन की योजना फलीभूत नहीं हो सकी क्योंकि इसकी सूच', श्रीमुक्त की 'सपना' तथा चन्द्रगुप्त विद्यालंकार की 'पहिचान' कहानियाँ वर्ष- 02, अंक 01 में प्रकाशित हुई थीं।

प्रभा- इसका प्रकाशन 1913 में खण्डवा (मध्य प्रदेश) से हुआ था। इसके सम्पादक कालूराम गंगराडे जी थे। बाद में 1971 में कानपुर से प्रकाशित होने लगी। 1923 में इसके सम्पादक बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हुए। इसमें साहित्य की सभी विधाओं पर सामग्री प्रकाशित होती थी। नवीन जी के सम्पादन में इसका 'झण्डा अंक' प्रकाशित हुआ। 'प्रभा' में प्रकाशित 'भावों की भिड़न्त' नामक लेख ऐतिहासिक है। जिसमें यह सिद्ध किया गया था कि 'निराला' की बहुत सी कविताएँ रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविताओं की नकल हैं।"[17] इस लेख ने साहित्यिक खेमे में तहलका मचा दिया। इसके सम्पादकों में माखन लाल चतुर्वेदी, शिवनाराण मिश्र, श्रीकृष्ण दत्त पालीवाल तथ गणेश शंकर विद्यार्थी थे।

माधुरी- इसका प्रकाशन नवल किशोर प्रेस लखनऊ से 1922 में हुआ था। यह छायावाद की प्रमुख पत्रिका थी, छायावाद' को इसका भरपूर समर्थन था। इसके सम्पादक दुलारे लाल भार्गव तथा रूपनारायण पाण्डेय थे। अपनी अस्थिर नीतियों के कारण समय-समय पर इसे कई तरह के विरोधों का सामना भी करना पड़ा। इसके मुख्यपृष्ठ पर दोहा छपता था-

"सिता मधुर-मधु, सुधा, तिय-अधर माधुरी धन्य
पै नव रस साहित्य की, यह माधुरी अनन्य।"[18]

'स्तम्भ प्रणाली' इस पत्रिका की खास थी। इस पत्र का उद्देश्य हिन्दी में उच्चकोटि के साहित्य का प्रकाशन, लेखन शैली में सुधार तथा जनता का मनोरंजन करने के साथ हिन्दी में वृहद् पत्रिका के अभाव को दूर करना था। इसका प्रकाशन 1950 तक होता रहा।

सुधा– अपने प्रारम्भिक दौर में 'छायावाद' पर आक्रमण करने वाली पत्रिकाओं में लखनऊ से प्रकाशित होने वाली 'सुधा' सम्भवतः सबसे आगे थी। किन्तु जब इसके सम्पादकीय विभाग में 'निराला' का प्रवेश हुआ तब इसका साहित्यिक स्वरूप सर्वथा बदल गया। अगस्त् 1927 में गंगा पुस्तक माला लखनऊ से प्रकाशित होती रही। इसके सम्पादकों में दुलारे लाल भार्गव, रूपनारायण पाण्डेय तथा नन्द किशोर तिवारी थे। इसने तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थन, अंग्रेजी के स्थान पर भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा तथा हिन्दी के लिए कार्य किया। इसमें साहित्य की सभी विधाओं पर सामग्री प्रकाशित होती थी, कभी-कभार साहित्यकारों के फोटो भी छापे जाते थे। इस पत्रिका का मोटो था– 'कीन्हेहु सुलभ सुधा वसुधा हूँ।' इसमें अच्छी रचनाओं की प्रशंसा तथा खराब कृतियों का तिरस्कार किया जाता था। 'सुधा' की प्रसिद्धि का आलम था कि उसके प्रवेशांक (अगस्त 1927) की तीन हजार प्रतियाँ देखते-देखते ही बिक गयीं। बाद में चार हजार प्रतियाँ पुनः छापी गयीं। 1929 में सुधा ने 'कार्टून विशेषांक' निकाला। इसके पूर्व की पत्रिकाओं में इसका चलन नही था। 'प्रभा' का प्रकाशन बन्द होने के कारण राजनीतिक विचारों का समावेश करना 'सुधा' की जिम्मेदारी बन गयी थी क्योंकि इस अभाव की पूर्ति करने वाली हिन्दी में कोई दूसरी पत्रिका नहीं थी।

विशाल भारत – (1928 ई.) छायावाद काल की मासिक पत्रिकाओं में 'विशाल भारत' उल्लेखनीय है। इसके सम्पादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी थे। इस पत्रिका का उद्देश्य था कि हिन्दी जनता को शुद्ध सात्विक मानसिक भोजन इस पत्रिका से प्राप्त होता रहे। इसलिए आर्थिक हानि सहकर भी यह पत्र प्रकाशित होता रहा। इसके सम्पादन में कुछ समय के लिए 'अज्ञेय' जी का भी योगदान रहा। इसमें उच्च कोटि की साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। इसके 'कला अंक' को विशेष ख्याति मिली। 'विशाल भारत' अपने समय का तेजस्वी और जागरुक पत्र था। छायावाद और विशेषकर 'निराला' के सम्बन्ध में उसकी दृष्टि बहुत ही अनुदार थी। 'उग्र' के कथा साहित्य को 'घासलेटी' की संज्ञा देकर एक बड़ा साहित्यिक आन्दोलन खड़ा करने में इसकी बड़ी भूमिका थी। इसके कई विशेषांक निकले जिनमें पद्म सिंह शर्मा अंक, प्रवासी अंक, रवीन्द्र अंक प्रमुख थे। इसकी प्रकाशन यात्रा लगभग इकतीस वर्षों की रही।"[19]

इस काल के मासिक पत्रों में आदर्श, मौजी, 'साहित्य सन्देश' आदि पत्रों का भी प्रकाशन हुआ। 'आदर्श' और 'मौजी' शिवपूजन सहाय के सम्पादकत्व में निकले।[20] जिनमें हिन्दू-मुस्लिम एकता, नारी समस्या तथा राष्ट्रभाषा समस्या पर लेख, टिप्पणियाँ तथा निराला की कविताओं का प्रकाशन होता था। वहीं 'साहित्य संदेश' (आगरा) 1937 में गुलाबराय के सम्पादकत्व में निकला जो शुद्ध रूप से आलोचनात्मक पत्र था। इन मासिक पत्रों के साथ ही इस काल में 'साप्ताहिक' और 'पाक्षिक' पत्रों का भी प्रकाशन हुआ, जिनका साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें 'जागरण' (बनारस) शिवपूजन सहाय के सम्पादन में निकला साप्ताहिक पत्र था, यह 'छायावाद' का घोर पक्षघर था, अन्य रचनाओं के साथ छायावादी रचनाएँ अधिक मात्रा में प्रकाशित होती थीं। 1932 तक प्रेमचन्द का संरक्षण इसे प्राप्त रहा, किन्तु 1934 में इसका प्रकाशन बन्द हो गया। इसमें प्रेमचन्द द्वारा राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं पर लिखी टिप्पणियाँ महत्वपूर्ण होने के साथ-साथ बड़ी पैनी हैं। इसी कड़ी में अर्द्धसाप्ताहिक पत्र 'भारत' (इलाहाबाद) नन्ददुलारे वाजपेयी के सम्पादन में निकला इसमें 'छायावाद' के विरोधियों की खूब खबर ली गयी तथा प्रसाद, निराला और पन्त की कविताओं के समर्थन में अनेक टिप्पणियाँ प्रकाशित की गयी थीं।[21]

'हिन्दी नवजीवन' (अहमदाबाद), 1921, के सम्पादक महात्मा गाँधी थे। इसमें तत्कालीन राजनीतिक और सामाजिक चेतना को प्रमुखता दी गई। 'देश' (पटना), 1920, सम्पादक डॉ. राजेन्द्र प्रसाद। यह राजनीतिक पत्र था। 'कर्मवीर' (जबलपुर), सम्पादक माखन लाल चतुर्वेदी और माधवराव सप्रे के सम्पादन में निकला एक राजनीतिक-साहित्यिक पत्र था। 'श्रीकृष्ण सन्देश' (कलकत्ता), 1925, सम्पादक लक्ष्मण नारायण गर्दे के नेतृत्व में निकला 'छायावाद' का विशेष पत्र था, इसमें राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक तथा वैज्ञानिक विषयों पर टिप्पणियों तथा समाचारों का प्रकाशन होता था। 'सेनापति' (कलकत्ता) 1926 ई. में राम गोविन्द त्रिवेदी के सम्पादकत्व में निकला साप्ताहिक था। इसमें प्रकाशित रचनाएँ राष्ट्रीयता से प्रेरित रहती थीं। 'हिन्दू पंच' (1926 ई.) मुकुन्दलाल वर्मा के सम्पादन में निकला पत्र था किन्तु इसके प्रवर्तक थे बाबू रामलाल वर्मा। इसका 'बलिदान अंक' विशेष महत्व का था जो 01 जनवरी, 1930 ई. को प्रकाशित हुआ था। इसमें अछूतोद्धार, समाज सुधार, हिन्दी प्रचार पर लेख व टिप्पणियाँ प्रकाशित होती थीं। 'हिन्दू पंच' का आदर्श वाक्य था -

लज्जा रखने को हिन्दू की, हिन्दू नाम बचाने को।
आया हिन्दू पंच हिन्द में, हिन्दू जाति जगाने को।।[22]

कुछ दिनों के लिए सम्पादक के रूप में मुंशी नवजादिक लाल भी आए और इसे नया जीवन प्रदान किया- "उनके अक्लान्त मस्तिष्क के बल पर 'हिन्दू पंच' कुछ दिन चलता रहा, पर किसान के परिश्रम पर छूछे बादलों ने पानी फेर दिया।"[23]

छायावाद की साहित्यिक पत्रिकाओं पर विहंगम दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है कि इन पत्रों ने उस काल के साहित्य को नवीनता, प्रखरता, स्पष्टवादिता का तेवर तथा वैचारिक दृढ़ता प्रदान की। हिन्दी की समृद्धि, स्वतन्त्रता आन्दोलन को वैचारिक सम्बल तथा 'पुस्तक समीक्षा' का व्याकरण गढ़ने तथा विमर्शों को केन्द्र में लाने का कार्य 'मतवाला' ने किया। इसका अन्दाजे बयाँ जुदा था। इसी पत्र ने 'निराला' उपनाम सूर्यकान्त त्रिपाठी को दिया था। साहित्यिक योजनाओं को शीर्ष पर पहुँचाने में इन पत्रिकाओं की विशेष भूमिका रही है। खास कर भाषा को नया संस्कार देने तथा कोमलता-प्रांजलता लाने का श्रेय 'छायावाद' को ही है। नाना प्रकार के सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक दबाव के बाद भी इस काल की पत्रिकाओं ने भाषा और विषय की परिपक्वता के लिए निरन्तर प्रयास किया।

सन्दर्भ :

1. हिन्दी साहित्य की भूमिका, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. -46
2. हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास, डॉ. मोहन अवस्थी, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, संस्करण 1970 ई., पृ. 179.
3. हिन्दी साहित्य की बीसवीं शताब्दी (विज्ञप्ति), आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, पृ. 13
4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 02, सम्पादक- डॉ. धीरेन्द्र वर्मा एवं अन्य, संस्करण 2015, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, पृ. 620
5. छायावाद, नामवर सिंह, 1999, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 11
6. वही, पृ.12
7. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पादक- डॉ. नगेन्द्र, 1999, मयूर पेपर बैक, पृ. 603
8. लेखिकाओं की दृष्टि में महादेवी वर्मा, सम्पादक- चन्द्रा सदायत, 2011, नेशलन बुक ट्रस्ट इण्डिया, पृ. 169
9. प्रयाग पथ, वर्ष 01, अंक 02-3, संयुक्तांक, फरवरी-जुलाई 2015, पृ. 121
10. चाँद, फाँसी अंक, नवम्बर 1928, सम्पादक चतुरसेन शास्त्री का सम्पादकीय

11. आचार्य शिवपूजन सहाय, शिवपूजन रचनावली, चौथा खण्ड, पृ. 112-113
12. हिन्दी पत्रकारिता, कृष्ण बिहारी मिश्र, 2011, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, पृ. 350.
13. वही, पृ. 364
14. वही, पृ. 378
15. वही, पृ. 381
16. वही, पृ. 380
17. वही, पृ. 381-82
18. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पादक- डॉ. नगेन्द्र, पृ. 604
19. माधुरी, प्रथम अंक, 30 जुलाई, 1922 ई.
20. हिन्दी साहित्य का इतिहास, सम्पादक- डॉ. नगेन्द्र, पृ. 604
21. वही, पृ. 604
22. हिन्दी पत्रकारिता, कृष्ण बिहारी मिश्र, पृ. 373
23. आचार्य शिवपूजन सहाय, शिवपूजन रचनावली, खण्ड चार, पृ. 259

❑❑❑

मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की
(छायावादी काव्य-भाषा)

❍ नीलकंठ कुमार

हर युग का साहित्य किसी न किसी रूप में अपने युग और परम्परा को आत्मसात कर अभिव्यक्त करता है। आत्मसातीकरण की मात्रा तथा अभिव्यक्त करने की क्षमता के हिसाब से ही उसे साहित्यिक एवं जन स्वीकृति प्राप्त होती है। कई दफा साहित्यिक उपलब्धियों के बावजूद किसी खास युग के साहित्य को जनस्वीकृति की बजाय अभिजन स्वीकृति ही प्राप्त होती है। ऐसा तभी संभव है जब किसी खास समय के साहित्य में परंपरा एवं युग की व्यापकता के साथ अभिव्यक्ति न हुई हो या फिर तद्‌युगीन साहित्य, भावानुकूल शिल्प विधान विकसित न कर पाया हो। उदाहरण के लिए भक्तिकालीन साहित्य ने अपने युग एवं परंपरा को आत्मसात कर व्यापकता के साथ उसकी अभिव्यक्ति की है। लोक तक पहुँचने के लिए भक्तिकालीन कवियों ने गीत-संगीत का भी सहारा लिया है। यही कारण है कि भक्तिकालीन कवियों द्वारा लिखे गए पद आज भी सामान्य जन एवं शास्त्रीय गवैयों द्वारा एक साथ गाए जाते हैं। जिस दोहा-चौपाई पद्धति का उपयोग तुलसीदास ने उस काल में किया वह आज भी गाँव-गाँव की मानस-गोष्ठियों का कंठहार बनी हुई है। भक्तिकालीन कवियों ने पहले से चली आ रही संस्कृत, अवधी एवं ब्रज की साहित्यिकता में लोकतत्व को मिलाकर अपनी अभिव्यक्ति के अनुकूल भाषा गढ़ी। कबीर जैसे कवि ने सीधे-सीधे जन को सम्बोधित करते हुए भावानुकूल नई जनभाषा सधुक्कड़ी को इजाद किया। यही कारण है कि आज भी कबीर की 'वाणी' एवं उनके 'निर्गुण' पद जन में उतने ही प्रचलित हैं। यही नहीं साहित्यकारों को भी अपनी समृद्धशाली परंपरा में सर्वप्रथम भक्तिकालीन कवि ही याद आते हैं। छायावादी कवि निराला के भी प्रिय कवि तुलसीदास यूँ ही नहीं हैं। स्पष्ट है कि साहित्यिकता के साथ-साथ लोक पक्ष की अभिव्यक्ति से ही किसी युग के साहित्य में व्यापकता आती है और उसे जन स्वीकृति भी प्राप्त होती है। इसके विपरीत, साहित्यिकता के बावजूद लोकपक्ष के अभाव में कोई भी साहित्य सीमित होकर कूपजल बन जाता है तथा साहित्य एवं जनमानस दोनों की ही स्मृति में उसकी तस्वीर धीरे-धीरे धुँधली हो समाप्त हो जाती है। इसका सीधा-सीधा प्रमाण रीतिकालीन साहित्य है। रीतिकाल से पहले लिखा गया भक्तिकालीन साहित्य आज भी प्रासंगिक है जबकि रीतिकालीन साहित्य की प्रासांगिकता जग जाहिर है। साहित्यिक परंपरा में तो द्विवेदी युगीन एवं छायावादी कवियों ने ही रीतिकालीन सौन्दर्य बोध को नकार दिया था। छायावादी कवियों ने समझ लिया था कि वे जिस समय को अभिव्यक्त करने जा रहे हैं, उसमें रीतिकालीन तौर-तरीकों के लिए कोई स्थान नहीं है। ऐसे में छायावादी कवियों के समक्ष यह महत्त्वपूर्ण चुनौती थी कि वे युगानुकूल अभिव्यक्ति की पद्धति विकसित करें। एक तरफ उनके समक्ष द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मकता एवं अनुशासित पद्धति थी तो दूसरी तरफ स्वच्छन्दतावादी साहित्य की उन्मुक्तता एवं ग्राम-गीतों की सहज पद्धति थी। साथ ही बांग्ला एवं ब्रजभाषा

के लालित्य एवं माधुर्य का सवाल भी सामने था। कविताई की भाषा के रूप में ब्रजभाषा ने इतनी गहरी जड़ जमा रखी थी कि खड़ी बोली में लिखने के बावजूद द्विवेदी युग तक छिटपुट रूप में ही सही पर कवियों ने कविता की भाषा के रूप में ब्रज का दामन नहीं छोड़ा था। जयशंकर प्रसाद जैसे छायावादी कवि ने भी प्रारंभिक दौर में ब्रजभाषा का ही दामन थामा था। ऊपर से द्विवेदीयुगीन कविताओं की गद्यात्मकता एवं शुष्कता ने बांग्ला एवं ब्रज की सरसता के सवाल को और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया था। ऐसे में साहित्यिक जगत में अगर एक नई पद्धति की आकांक्षा पैदा हो रही थी तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। हालाँकि, आचार्य शुक्ल छायावाद को क्रमश: अपनी साहित्यिक परंपरा का विकास नहीं मानते फिर भी एक नवीन साहित्यिक पद्धति की आकांक्षा से वे भी इनकार नहीं करते। आचार्य शुक्ल लिखते हैं – "द्वितीय उत्थान की कविता में काव्य का स्वरूप खड़ा करने वाली दोनों बातों की कमी दिखाई पड़ती थी – कल्पना का रंग भी बहुत कम या फीका रहता था और हृदय का वेग भी खूब खुलकर नहीं व्यंजित होता था। इन बातों की कमी परंपरागत ब्रजभाषा काव्य का आनन्द लेने वालों को भी मालूम होती थी और बांग्ला या अंग्रेजी कविता का परिचय करने वालों को भी। अत: खड़ी बोली की कविता में पद लालित्य, कल्पना की उड़ान, भाव की वेगवती व्यंजना, वेदना की विवृत्ति, शब्द प्रयोग की विचित्रता इत्यादि अनेक बातें देखने की आकांक्षा बढ़ती गई।"[1]

आचार्य शुक्ल द्वारा प्रदत्त उपरोक्त तथ्यों का ही उपयोग किया जाए तो भी अपने नकार के बावजूद वे छायावाद की उत्पत्ति के साहित्यिक कारणों की व्याख्या कर जाते हैं। हालाँकि, विश्लेषण की सुविधा के लिए आचार्य शुक्ल ने इस आकांक्षा को परंपरागत ब्रजभाषा काव्य का आनन्द लेने वालों एवं बांग्ला या अंग्रेजी कविता का परिचय करने वालों तक ही सीमित कर दिया है। फ्रांसिस्का ओरेसिनी ने 'द हिन्दी पब्लिक स्फेयर' में विस्तार से उल्लेख किया है कि किस प्रकार उस समय नए-नए शिक्षित युवकों में भी छायावादी पद्धति पर कविताई करने का चलन बढ़ता चला जा रहा था। इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति से आहत सिर्फ आचार्य शुक्ल ही नहीं थे बल्कि उस समय बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष श्यामसुन्दरदास का आक्रोश भी छायावाद के प्रति आलोचकों एवं शास्त्रज्ञों के रुझान को स्पष्ट करता है – "आजकल जो हिन्दी कविता की भयंकर बाढ़ आ रही है, उसमें न जाने कहाँ-कहाँ का कूड़ा-करकट चला आ रहा है, अंग्रेजी और बांग्ला में जब मनमाने छन्दों में कविता ढाली जाती है, तब हिन्दी में क्यों न बेसुरी रागिनी छेड़ी जाए। ऊँची कविताएँ आजकल वही कही जाती हैं जिनकी वर्णन शैली बड़ी पेचीदा हो, साधारण सी बात कहने के लिए जिनमें ब्रह्मांड की छानबीन कर डाली गई हो, या जिनमें अलौकिक और अनिर्वचनीय भावों की दुहाई दी गई हो। छायावाद और समस्यापूर्ति हिन्दी कविता को बड़ी हानि पहुँचा रही है। छायावाद की ओर नवयुवकों का झुकाव है और ये जहाँ गुनगुनाने लगे कि चट दो चार पद जोड़कर कवि बनने का साहस कर बैठते हैं। इनकी कविता का अर्थ समझना कोई सरल काम नहीं। ...पूज्य रवीन्द्रनाथ का अनुकरण करके ही यह अत्याचार हिन्दी में हो रहा है।"[2] इतना तो स्पष्ट है कि छायावादी कवियों ने अभिव्यक्ति की जिस पद्धति का प्रारम्भ किया वह तद्‌युगीन साहित्यिक आकांक्षाओं के अनुकूल ही थी। इस आकांक्षा में उन्होंने नवजागरणकालीन 'मुक्ति' एवं 'स्व' के भाव को मिश्रित कर जिस छायावादी पद्धति का आविर्भाव किया वह हर स्तर पर नवीनता से आपूरित थी। प्राचीन रूढ़ियों एवं बन्धनों के बरक्स उसमें कल्पना की स्वच्छन्द उड़ान थी। छायावादी कवियों के यहाँ काव्य विषय के रूप में कोई आमूल-चूल बदलाव नहीं हुआ था, पर इन विषयों को देखने की दृष्टि बदल गई थी। बाह्य जगत का मन पर पड़ने वाले प्रभाव के सामंजस्य में अभिव्यक्ति की जिस पद्धति

का प्रारम्भ छायावादी कवियों ने किया, वह तदयुगीन आलोचकों के लिए भी अप्रत्याशित था। अधिकांशतः साहित्य जगत में इसका विरोध ही हुआ, किन्तु शुक्ल जी जैसे आलोचक ने काव्य-वस्तु के स्तर पर छायावाद को रहस्यवादी कहने के बावजूद, काव्यशैली के स्तर पर छायावाद के महत्त्व को स्वीकार करते हुए लिखा – "आभ्यान्तर प्रभाव साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति का प्रगल्भ और प्रचुर विकास छायावाद की काव्यशैली की असली विशेषता है।"[3]

दरअसल छायावादी काव्य अपने पूर्व की परंपरा का ही परिवर्तित एवं परिवर्द्धित रूप होते हुए भी अपने लिए अभिव्यक्ति के नए रास्ते तलाश रहा था। रीतिकालीन एवं द्विवेदीयुगीन अभिव्यक्ति के तौर-तरीके से असहमत होने वाले छायावादी कवि को अभी काव्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली हिन्दी की संभावनाओं और सामर्थ्य का अन्वेषण करना बाकी था। बहुत से लोगों और साहित्य प्रेमियों के मन में काव्य-भाषा के रूप में ब्रज भाषा का मान अभी भी कम न हुआ था। छायावादी कवियों में से जयशंकर प्रसाद ने तो काव्य लेखन का प्रारम्भ ब्रज भाषा से ही किया था। महादेवी वर्मा की भी छुटपन की रचनाएँ एवं तुकबन्दियाँ ब्रज भाषा में ही प्रारम्भ हुई थीं, जिसे अपनी तरफ से रुचि लेकर उन्होंने कभी छपवाने का प्रयास नहीं किया। इस प्रकार एक तरफ द्विवेदीयुगीन व ब्रजभाषा के काव्य संस्कार के बीच छायावादी कवियों का मन-मस्तिष्क निर्मित हो रहा था तो दूसरी तरफ आलोचकों ने छायावादी कवियों पर बांग्ला एवं अंग्रेजी के रोमांटिक साहित्य के प्रभाव की भी बात की है। हालाँकि, साहित्यिक संस्कार की स्मृति के रूप में अधिकतर छायावादी कवियों ने 'कालिदास', 'तुलसीदास' से लेकर आधुनिक काल के 'हरिऔध' एवं 'गुप्त जी' तक की चर्चा की है। 'परम्परा का मूल्यांकन' यों भी नवजागरण की महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों में से एक है। महादेवी वर्मा ने छायावादी काव्य को यथार्थ से दूर मानते हुए भी छायावादी कवियों की समृद्ध परंपरा एवं संस्कृति-ज्ञान का उल्लेख किया है – "छायावाद आज के यथार्थ से दूर जान पड़ने पर भी भारतीय काव्य की मूल प्रेरणाओं के निकट है। उसके प्रतिनिधि कवि, भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा प्राचीन साहित्य से विशेष परिचित रहे। पश्चिम और बांग्ला काव्य साहित्य से उनका परिचय हुआ अवश्य, परन्तु उसका अनुकरण मात्र काव्य को इतनी समृद्धि नहीं दे सकता था। विशेषतः बांग्ला से उन्हें जो मिला, वह तत्वतः भारतीय ही था, क्योंकि कवीन्द्र स्वयं भारतीय संस्कृति के सबसे समर्थ प्रहरी हैं। उन्होंने अपने देश की अध्यात्म-सुधा से पश्चिम का मृतिका-पात्र भर दिया, इसी से भारतीय कवियों ने उसके दान को अपना ही मानकर ग्रहण किया और पश्चिम ने कृतज्ञता के साथ।"[4]

इस प्रकार विविध प्रभावों के घात-प्रतिघात के मध्य, मुक्ति और स्वच्छन्दता की भावना के अनुकूल छायावादी कवियों को एक नवीन प्रकार की काव्य-भाषा की आवश्यकता थी। तद्युगीन रीतिकालीन एवं द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा को अपनाने की समस्या की ओर संकेत करते हुए महादेवी वर्मा लिखती हैं – "रीतिकालीन रूढ़िवाद से थके हुए कवियों ने, जब सामयिक परिस्थितियों से प्रेरित होकर तथा बोलचाल की भाषा में, अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता और प्रचार की सुविधा समझकर, ब्रज भाषा का जन्मजात अधिकार खड़ी बोली को सौंप दिया, तब साधारणतः लोग निराश ही हुए, भाषा लचीलेपन से मुक्त थी और उक्तियों में चमत्कार न मिलता था। इसके साथ-साथ रीतिकाल की प्रतिक्रिया भी कुछ कम वेगवती न थी। अतः इस युग की कविता की इतिवृत्तात्मकता इतनी स्पष्ट हो चली कि मनुष्य की सारी कोमल और सूक्ष्म भावनाएँ विद्रोह कर उठीं। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय की अधिकांश रचनाओं में भाषा लचीली न होने पर भी परिष्कृत, भाव सूक्ष्मता-रहित होने पर भी सात्विक, छन्द नवीनता शून्य होने पर भी भावानुरूप और विषय रहस्यमय न रहने पर भी लोक परिचित और संस्कृत मिलते हैं। पर स्थूल सौन्दर्य

की निर्जीव आवृत्तियों से थके हुए और कविता की परंपरागत नियम शृंखला से ऊबे हुए व्यक्तियों को, फिर उन्हीं रेखाओं में बँधे स्थूल का न तो यथार्थ चित्रण रुचिकर हुआ और न उसका रूढ़िगत आदर्श भाया। उन्हें नवीन रूप रेखाओं में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति की आवश्यकता थी, जो छायावाद में पूर्ण हुई।"[5] महादेवी वर्मा के अनुसार न सिर्फ छायावादी कवियों बल्कि उस समय के साहित्य प्रेमियों को भी जिस नवीनता एवं सूक्ष्मता की आकांक्षा थी वो छायावाद में ही जाकर पूरी हुई। द्विवेदीयुगीन कविता के बरक्स छायावादी नवीनता एवं विशिष्टता का उल्लेख करते हुए महादेवी वर्मा लिखती हैं – "छायावाद ने नए छन्दबन्धों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ी बोली की सात्त्विक कठोरता नहीं सह सकता था। अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तोल और काट-छाँट कर तथा कुछ नए गढ़ कर, अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतम कलेवर दिया। इस युग की प्रायः सब प्रतिनिधि रचनाओं में किसी न किसी अंश तक प्रकृति के सूक्ष्म सौन्दर्य में व्यक्त किसी परोक्ष सत्ता का आभास भी रहता है और प्रकृति के व्यष्टिगत सौन्दर्य पर चेतनता का आरोप भी, परन्तु अभिव्यक्ति की विशेष शैली के कारण, वे कहीं सौन्दर्यानुभूति की व्यापकता, कहीं संवेदन की गहराई, कहीं कल्पना के सूक्ष्म रंग और कहीं भावना की मर्मस्पर्शिता लेकर अनेक वादों को जन्म दे सकी हैं।"[6]

यहाँ छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा के विचार छायावादी काव्यभाषा के सन्दर्भ में इसलिए भी महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वे शुरू से लेकर अन्त तक छायावाद की मूल भावना के साथ ही चली हैं। न सिर्फ महादेवी वर्मा बल्कि पन्त, प्रसाद एवं निराला ने भी रीतिकालीन एवं द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा के प्रति असन्तोष जताते हुए छायावादी काव्य भाषा की नवीनता का उल्लेख किया है। सुमित्रानन्दन पन्त तो छायावादी काव्य भाषा की नवीनता के प्रति विशेष रूप से सजग थे। इसीलिए उन्होंने न सिर्फ अपनी काव्य-भाषा बल्कि अन्य छायावादी कवियों की काव्य-भाषा पर भी टिप्पणी की है। छायावादी काव्य-भाषा व मुक्त छन्द की अवधारणा के सन्दर्भ में निराला एवं पन्त का एक दूसरे पर मित्रतापूर्ण आरोप-प्रत्यारोप एवं आलोचकीय निष्पत्ति प्रसिद्ध हैं। इन्होंने छायावादी कविताओं की आलोचना तो की ही है, साथ ही साथ तद्‌युगीन परंपरावादी आलोचकों पर भी निशाना साधा है। सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं – "हिन्दी के जिन वयोवृद्ध आचार्यों को ब्रजभाषा ही में काव्योचित माधुर्य मिलता है, जो खड़ी बोली को काव्य की भाषा का स्थान देने में भी सशंकित रहते हैं, उसका मुख्य कारण उनके यही हृद्‌गत संस्कार हैं जिनसे उसकी रुचि का रक्त बन चुका जो उनके भाव-अनुभावों की स्थूल-सूक्ष्म नाड़ियों में प्रवाहित होकर, उनके आदर्श को अपने रंग में रंग चुके, अपने स्वर में गढ़ चुके हैं।"[7] इतना ही नहीं 'पल्लव की भूमिका' में सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं – 'हिन्दी में सत समालोचना का बड़ा अभाव है।'[8] उपरोक्त टिप्पणी बावजूद इसके की गई है जबकि उस समय के सबसे महत्त्वपूर्ण आलोचक आचार्य शुक्ल ने छायावादी कवियों में से किसी एक के प्रति थोड़ी सहृदयता दिखाई है, तो वह पन्त जी ही हैं। अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की तरह पन्त जी का मानना था कि 'कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।'[9] इसीलिए निराला के प्रिय कवि 'तुलसीदास' की तरह पन्त जी भी मानते हैं कि – "कविता में शब्द तथा अर्थ की स्वतंत्र सत्ता नहीं रहती, वे दोनों भाव की अभिव्यक्ति में डूब जाते हैं।"[10]

'गिरा अर्थ जल वीचि सम' की तर्ज पर ही सुमित्रानन्दन पन्त 'पल्लव' के विज्ञापन में लिखते हैं – "भाव और भाषा का सामंजस्य, उनका स्वरैक्य ही चित्र राग है। जैसे भाव ही भाषा में घनीभूत हो गए हों; निर्झरिणी की तरह उनकी गति और रव एक बन गए हों। छुड़ाए न जा सकते हों।"[11]

इसी सन्दर्भ में छायावादी काव्यभाषा की चित्रात्मकता का उल्लेख करते हुए पन्त जी लिखते हैं – "कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भावों को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र, चित्र में झंकार हों।"[12]

इस प्रकार सुमित्रानन्दन पन्त छायावादी काव्य-भाषा की दो महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियों की ओर संकेत करते हैं। एक तो भाव एवं भाषा की एकता व शब्द में अर्थ भरने की क्षमता तथा दूसरे भाषा की चित्रात्मकता। अन्य प्रवृत्तियों के साथ ये दो महत्त्वपूर्ण प्रवृत्तियाँ भी छायावाद को द्विवेदी युग एवं रीतिकालीन काव्य भाषा से अलग करती हैं। छायावादी काव्य भाषा की उपरोक्त प्रवृत्तियों के सामंजस्य में ही छायावादी कवि नवीन प्रतीक, बिम्ब, उपमाओं एवं विशेषणों का सहारा विशेष रूप से लेते हैं। रीतिकालीन अलंकारों में उनकी कोई रुचि न थी क्योंकि वे इन कवियों के लिए केवल बाहरी साज-सज्जा के आवरण मात्र हैं। छायावाद की अभिव्यक्ति क्षमता एवं चित्रात्मकता की पहचान शुक्ल जी ने भी की थी। तभी वस्तु या भाव के स्तर पर उसे रहस्यवादी मानते हुए भी आचार्य शुक्ल ने छायावादी शैली की सीमित प्रशंसा की थी। आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि 'अभिव्यंजना की पद्धति या काव्यशैली पर ही प्रधान लक्ष्य रहने से छायावाद के भीतर उसका बहुत ही रमणीय विकास हुआ है।'[13] आचार्य शुक्ल की अगर मानें तो छायावादी कवियों का प्रधान लक्ष्य इनकी काव्यशैली ही रही। अपनी बात की पुष्टि के लिए आचार्य शुक्ल ने छायावादी कवियों की शैली सम्बन्धी उन सभी विशेषताओं का उल्लेख किया है, जो उन्हें अपने पूर्ववर्ती साहित्य से बिलगाती है। वैसे भी आचार्य शुक्ल छायावाद को अपनी साहित्यिक परंपरा का क्रमशः स्वाभाविक विकास नहीं मानते हैं। छायावाद की एक व्याख्या रहस्यवाद के अर्थ में करने के बाद आचार्य शुक्ल लिखते हैं – "छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति विशेष के व्यापक अर्थ में है। ...छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है। छायावाद का केवल पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो हिन्दी काव्य क्षेत्र में चलने वाली श्री महादेवी वर्मा ही हैं। पन्त, प्रसाद, निराला इत्यादि और सब कवि प्रतीक पद्धति या चित्रभाषा शैली की दृष्टि से ही छायावादी कहलाए।"[14]

चित्र भाषा शैली की अनिवार्य परिणति अन्योक्ति पद्धति में निहित है। इसीलिए आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि – "चित्र भाषा शैली या प्रतीक पद्धति के अन्तर्गत जिस प्रकार वाचक पदों के स्थान पर लक्षक पदों का व्यवहार आता है उसी प्रकार प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाले अप्रस्तुत चित्रों का विधान भी। अतः अन्योक्ति पद्धति का अवलम्बन भी छायावाद का एक विशेष लक्षण हुआ।"[15]

आगे शुक्ल जी रीतिकाल एवं द्विवेदीयुगीन साहित्य में भी साम्य ग्रहण की प्रणाली का उल्लेख करते हैं तथा उसकी तुलना छायावादी साम्यग्रहण की प्रणाली से कुछ यों करते हैं- "छायावाद की रचनाओं के भीतर साम्य ग्रहण की उस प्रणाली का निरूपण आवश्यक है जिसके कारण उसे एक विशिष्ट रूप प्राप्त हुआ। हमारे यहाँ साम्य मुख्यतः तीन प्रकार का माना गया है। सादृश्य, (रुपया आकार या साम्य) साधर्म्य, (गुण या क्रिया का साम्य) और केवल शब्द साम्य (दो भिन्न वस्तुओं का एक ही नाम होना)। इनमें से अन्तिम तो श्लेष की शब्द क्रीड़ा दिखाने वालों के ही काम का है। रहे सादृश्य और साधर्म्य। विचार करने पर इन दोनों में प्रभाव साम्य छिपा मिलेगा।"[16]

इस प्रकार चित्रभाषा शैली, आभ्यन्तर प्रभाव साम्य के आधार पर लाक्षणिक और व्यंजनात्मक पद्धति तथा तदनुसार अन्योक्ति पद्धति को आचार्य शुक्ल ने छायावाद को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करने वाली प्रवृत्ति माना है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी छायावाद को मुख्य रूप से 'अन्योक्ति पद्धति' के रूप में ही विश्लेषित किया है। दरअसल किन्हीं दो वस्तुओं के मध्य नवीन प्रकार की साम्यता ढूंढना कवि की समर्थ कल्पना शक्ति का ही प्रमाण है। तभी आचार्य शुक्ल की प्रभाव साम्यता वाली बात का प्रशंसात्मक उल्लेख नामवर सिंह ने भी 'छायावाद' पुस्तक में किया है – "उपमाओं के क्षेत्र में छायावाद की एक विशेषता और है जिसकी ओर आचार्य शुक्ल का ध्यान सबसे पहले गया। वह विशेषता यह है कि छायावाद ने अपना ध्यान प्रभाव साम्य पर विशेष रूप से केन्द्रित किया; जबकि पुराने कवि आकार-साम्य की ओर अधिक दौड़ते थे। जैसे रीतिवादी कवि बादल के लिए आकार-साम्य पर 'हाथी' की उपमा देते थे; लेकिन जब पन्त ने उसे 'धीरे-धीरे उठ संशय-सा' कहा तो उनका ध्यान बादल के धीरे-धीरे उठने वाले धर्म की ओर गया। प्रेयसी को 'चन्द्रिका की झंकार', 'तारिकाओं की तान' वगैरह कहना इसी प्रभाव साम्य का परिणाम है। रत्नावली दूर चले जाने पर निराला के 'तुलसीदास' को और भी मधुर लगने लगी। इस पर निराला कहते हैं कि जिस तरह दूर की तान मीठी लगती है, उसी तरह प्रिया भी दूर जाकर मधुरतर प्रतीत होती है:

वह आज हो गई दूर तान।
इसलिए मधुर वह और गान।।

यहाँ उपमा की मार्मिकता इसी बात में है कि वह प्रभाव साम्य पर आधारित है।[17]

इस प्रकार आचार्य शुक्ल जिस अप्रस्तुत योजना की बात करते हैं वो अपने पूर्ववर्ती साहित्य से बिल्कुल भिन्न रूप में छायावाद में मौजूद है। तभी नामवर सिंह कहते हैं कि 'रूढ़ि मुक्त उपमानों की जगह छायावाद ने एकदम नए उपमानों की योजना की और इसी बात में उसकी नवीनता है।'[18]

इन सबसे अलग सुमित्रानन्दन पन्त ने छायावाद के सन्दर्भ में भाव और भाषा की अभिन्नता की भी बात की है। छायावादी कवियों ने न सिर्फ भावानुकूल भाषा गढ़ी बल्कि शब्दों में नवीन सौन्दर्य चेतना के अनुकूल अर्थ भी भर दिए। जैसे कोई चित्रकार कूची से अपने मन की भावनाओं को पृष्ठ पर उड़ेल देता है कुछ उसी प्रकार छायावादी कवियों ने भी मन के भावों का चित्र, शब्दों के माध्यम से गढ़ा है। वैसे भी शब्द तो खाली बर्तन के समान होते हैं, इन्हें अर्थ से परिपूरित कवि ही करता है। शब्दों की जगह बदल देने मात्र से अर्थ की प्रभाविता में अन्तर आ जाता है। उदाहरण के लिए 'राम की शक्ति-पूजा' कविता की पहली ही पंक्ति है – 'रवि हुआ अस्त'। यहाँ 'हुआ' की जगह बदल देने मात्र से रवि के अस्त होने के प्रभाव में अन्तर आ गया है। यों भी शब्दों एवं क्रियापदों के प्रयोग के मामले में छायावादी कवि काफी सजग रहे हैं। भाषा की चित्रात्मकता एवं श्रवण माधुर्य पर उनका ऐसा ध्यान रहा कि इसके लिए उन्होंने व्याकरण एवं काव्यशास्त्र के नियमों की भी परवाह नहीं की। अलंकार शास्त्र के परंपरित अलंकारों को छोड़कर उन्होंने 'मानवीकरण' जैसे नए अलंकारों का सहारा लिया। जिन प्राचीन अलंकारों का छायावादी कवियों ने उपयोग भी किया उनका स्वरूप प्रभाव साम्य के आधार पर परिवर्तित कर दिया। इसीलिए साहित्य के जिन प्रशंसकों को ब्रजभाषा का माधुर्य पसन्द था, उन्हें आगे चलकर छायावादी काव्यभाषा से भी कोई शिकायत न रही। द्विवेदीयुगीन अनुशासन बद्धता एवं यदा-कदा व्याकरण के नियमों से बाहर भी जाकर छायावादी कवियों ने एक समर्थ व भावानुकूल काव्यभाषा का निर्माण किया – इससे इनकार नहीं किया जा सकता। सुमित्रानन्दन पन्त ने तो हिन्दी में सर्वाधिक प्रयुक्त (खासकर द्विवेदी युग

में) 'है' और 'था' जैसे क्रिया पदों को छोड़ देने की बात तक कह डाली। भाव के समक्ष तो पन्त जी व्याकरण की लिंग सम्बन्धी मान्यताओं की भी परवाह नहीं करते। यह धारणा छायावादी मुक्ति और स्वच्छन्दता की भावना के अनुकूल ही है। पर सुमित्रानन्दन पन्त की इन धारणाओं को बहुत हद तक स्वीकार करने के बावजूद, निराला पन्त जी की धारणाओं का मित्रवत खंडन भी करते हैं। स्त्रीलिंग और पुल्लिंग सम्बन्धी पन्त जी की धारणाओं पर चुटकी लेते हुए निराला 'पन्त जी और पल्लव' लेख में लिखते हैं- "पहले 'कम्पन' और 'दंशन' स्त्रीलिंग में थे, फिर पुल्लिंग में हो गए। मुमकिन है परिवर्तन के समय पन्त जी में पुरुषत्व का जोश बढ़ गया हो, वह अपनी स्त्री-सुकुमारता भूल गए हों। मुझे तो पहला ही रूप अच्छा लगा है।"[19]

इसी प्रकार पन्त जी की 'है' को कविता से निकालने सम्बन्धी धारणा पर निराला कुछ यों विचार व्यक्त करते हैं - "पन्त जी 'है' को कविता से निकाल देने के लिए कहते हैं। कहते हैं, इसे मायामृग समझकर कविता की सीता के पास न आने देना चाहिए। परन्तु सब जगह यह बात नहीं। करुणा के स्थल पर, 'है' ही हृदय तक धँस कर उसे कमजोर करता और करुणा को उभारता है"[20] परन्तु इन आलोचनाओं के बावजूद निराला स्वीकार करते हैं कि 'यदि पन्त जी की मौलिकता एक शब्द में कही जाए, तो वह मधुरता है।' कुल मिलाकर कहने का मतलब यह है कि अधिकतर छायावादी कवि, ब्रजभाषा के माधुर्य की होड़ व द्विवेदीयुगीन अनुशासन तथा इतिवृत्त के विरुद्ध, एक नवीन एवं समर्थ छायावादी काव्यभाषा गढ़ने में हर स्तर पर तत्पर रहे। इनमें से भाषा के प्रति सजगता अगर किसी में सबसे कम रही तो वह जयशंकर प्रसाद ही हैं। तभी नन्द दुलारे वाजपेयी प्रसाद की काव्यभाषा की तुलना पन्त की काव्यभाषा से करते हुए लिखते हैं - "प्रसाद की काव्यभाषा में वर्जित शब्दों की उतनी बड़ी संख्या नहीं मिलती जितनी पन्त की भाषा में परिलक्षित होती है। दूसरे शब्दों में प्रसाद सूक्ष्म और रोमांटिक काव्यभाषा का वह प्रतिमान लेकर नहीं चले जिसे पन्त ने अपनाया है। प्रसाद की शब्द राशि हिन्दी की समग्र शब्दावली पर आधारित है। पन्त की काव्य भाषा में परिष्कार अधिक है, परन्तु शब्द राशि सीमित हो गई है।"[21]

दरअसल प्रसाद की काव्यभाषा को देखकर ऐसा लगता है, मानो वह भाषायी सजगता की बजाय शब्दों की शाहखर्ची में विश्वास रखते हों। तभी नलिन विलोचन शर्मा ने प्रसाद की काव्यभाषा को 'फिलपाँवी' कहा था। फिर भी छायावादी चित्रात्मकता, माधुर्य, संस्कृतनिष्ठता एवं समास बहुलता की प्रवृत्ति जयशंकर प्रसाद के काव्य का भी अहम् हिस्सा है। इस सन्दर्भ में छायावादी कवियों के शब्द-चयन के उद्देश्य का उल्लेख करते हुए उचित ही नामवर सिंह ने लिखा है कि - "इन सबसे यह प्रमाणित होता है कि छायावादी कवियों के शब्द-चयन का मुख्य सिद्धान्त श्रुति माधुर्य था। इसके अतिरिक्त वे एक और प्रयोजन से शब्द-चयन करते थे। यह प्रयोजन है - सुन्दर-सुन्दर स्मृति-चित्र (एसोसिएशंस) जगाना।"[22] आगे नामवर सिंह ने इसी आधार पर विभिन्न छायावादी कवियों के प्रिय शब्दों की एक सूची प्रस्तुत की है। वो कुछ इस प्रकार है - "कुल मिलाकर यदि छायावाद के समस्त शब्दों की सूची बनाकर विचार किया जाए तो पता चलेगा कि असीम, अनन्त, तंद्रिल, स्वप्निल, उर्मिल, नीरव, निःश्वास, उच्छवास, स्पन्दन, कम्पन, सिहरन, उन्मन, गुंजन, कलकल, टलमल, छल-छल आदि कुछ ऐसे शब्द हैं, जिनकी आवृत्तियाँ बहुत अधिक हुई हैं। ये शब्द छायावादियों के तकिया कलाम से हो गए थे। ... हर छायावादी कवि के अपने कुछ प्रिय शब्द हैं और उन शब्दों से उनकी पूरी प्रवृत्ति का पता चलता है। पन्त के शब्द अरूप और वायवीय अधिक हैं, क्योंकि वे कल्पना प्रधान थे। प्रसाद के शब्द मधु की तरह प्रगाढ़ अधिक हैं, क्योंकि वह गहन अनुभूतियों के कवि थे। निराला के शब्द अनेक प्रकार के हैं,

क्योंकि उनमें प्रवृत्ति-बहुलता है - कहीं उनकी पदावली विराटता का बोध कराती है, कहीं विद्रोह का और कहीं गाढ़ता का। महादेवी की पदावली से अतिशय अलंकृति का आभास मिलता है।"[23]

इन सब विशेषताओं से अलग छायावादी काव्यभाषा की एक और विशेषता है जो साहित्य का कोई भी पाठक पहली नजर में ही देख सकता है - वह है छायावादी काव्यभाषा का बोलचाल की भाषा से दूर हो जाना। इस विशेषता के कारणों की व्याख्या इसलिए भी अपेक्षित है क्योंकि छायावाद के दोनों छोरों (स्वच्छन्दतावाद, प्रगतिवाद तथा हालावाद के सन्दर्भ में) पर बोलचाल की भाषा से नजदीकी वाला साहित्य लिखा गया। एक तरफ 'भारत-भारती' जैसी रचना है जो बोलचाल के नजदीक एवं राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होने के कारण लोकप्रिय हुई तो दूसरी तरफ हरिवंशराय बच्चन, रामधारी सिंह दिनकर एवं प्रगतिवादी कवि हैं। प्रगतिवादी कवियों की तो काव्यभाषा ही नहीं बल्कि भाव भी किसान-मजदूरों की सौन्दर्य चेतना के करीब है। खुद छायावादी कवियों की भी सौन्दर्य चेतना जब परिवर्तित हुई तो भाषा भी सहज एवं बोलचाल के करीब हो गई। निराला तो 'सहज' शीर्षक से ही अपनी सहजता अभिव्यक्त करते हुए लिखते हैं-

"सहज-सहज पग धर आओ उतर;
देखें वे सभी तुम्हें पथ पर।

× × ×

वह जो सिर बोझ लिए आ रहा,
वह जो बछड़े को नहला रहा,
वह जो इस-उससे बतला रहा,
देखूँ, वे तुम्हें देख जाते भी है ठहर?"[24]

(रचनाकाल: 12 अगस्त, 1938)

छायावादी कविताओं से तुलना के लिए छायावाद से पहले एवं छायावाद के साथ-साथ लिखी गई, स्वच्छन्दतावादी कविताओं की सहजता भी रखी जा सकती है। जिस ग्राम को पन्त ने अपने परवर्ती साहित्य में अभिव्यक्त किया, वही ग्राम-जीवन एवं ग्राम-गीतों की परम्परा पहले ही स्वच्छन्दतावादी साहित्य में अभिव्यक्ति पा चुकी थी। रामधारी सिंह दिनकर ने यों ही महादेवी वर्मा के बारे में इच्छा अभिव्यक्त नहीं की थी कि, महादेवी जी सुभद्रा कुमारी चौहान की तरह कविताएँ क्यों नहीं लिखती। ध्यान देने की बात यह है कि मुक्तिबोध ने भी छायावादी साहित्य को मूल रूप से मानसिक और वायवीय ही कहा था। छायावाद के प्रति जो उपरोक्त धारणा बनी उसमें छायावादी काव्यभाषा की अहम भूमिका है। आचार्य शुक्ल ने तो छायावाद की इस नवीन काव्यशैली के कारण ही उसे चित्रभाषा काव्य तक कह डाला था। निश्चित रूप से नवीन काव्य पद्धति की चित्रात्मकता एवं सूक्ष्मता ने छायावादी काव्य-भाषा को आम बोलचाल की भाषा से दूर कर दिया। साथ ही खड़ी बोली हिन्दी को विशिष्ट शक्ति और सामर्थ्य से लैस करने के प्रयास में भी यह बोलचाल की भाषा से दूर हो गई। खड़ी बोली हिन्दी की अभिव्यक्ति-क्षमता का विस्तार करने के प्रयास में छायावादी कवियों ने, शब्द-चयन के मामले में, मुख्यतः संस्कृत के स्रोत पर ही विश्वास किया। नवजागरण कालीन विषयवस्तु एवं सौन्दर्य चेतना के अनुकूल भाषायी संस्कृत-निष्ठता छायावादी कवियों को उपयुक्त जान पड़ी। यह नवजागरणकालीन उसी अन्तर्विरोध की भाषायी अभिव्यक्ति थी, जिसे (हिन्दू-मुस्लिम) शिवकुमार मिश्र ने इस काल का सर्वप्रमुख अन्तर्विरोध माना है।[25] इस

अन्तर्विरोध की अभिव्यक्ति उस समय राजनीति एवं साहित्य दोनों क्षेत्रों में हो रही थी। सामाजिक क्षेत्र में यह अन्तर्विरोध यदा-कदा हिन्दू-मुस्लिम दंगों के रूप में अभिव्यक्त हो रहा था। इसका दूसरा पक्ष कतिपय लोगों द्वारा साझी संस्कृति की विरासत को सहेजने एवं समृद्ध करने के प्रयास के रूप में भी देखा जा सकता है। पर जो भी हो यह अन्तर्विरोध उस समय हमारे साहित्य, संस्कृति, समाज एवं राजनीति हर क्षेत्र में अपनी मौजूदगी का अहसास करा रहा था। भाषायी क्षेत्र में हिन्दी, उर्दू एवं हिन्दुस्तानी को लेकर जो विमर्श चल रहा था उसे चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, राहुल सांकृत्यायन, सर सैयद अहमद खान, महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, मदनमोहन मालवीय एवं इतिहासकार ताराचन्द जैसे लोग अपने-अपने तरीके से अभिव्यक्त कर रहे थे।[26]

यहाँ विस्तार से सभी विचारकों की अवधारणाओं को व्याख्यायित करना सम्भव नहीं है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कुछ लोग इस देश की प्रचलित भाषा (जिसे महात्मा गाँधी हिन्दुस्तानी कहा करते थे) में संस्कृत के शब्दों को ठूँसकर उसे हिन्दी बना देना चाहते थे तो कुछ लोग अरबी-फारसी के शब्दों की भरमार कर उसे उर्दू बना देना चाहते थे। हालाँकि, महात्मा गाँधी हिन्दुस्तानी के पक्षधर थे फिर भी उन पर मुस्लिमों का अविश्वास कम न था। इस आशय का उल्लेख गाँधी जी ने एक पत्र में कुछ यों किया है - "एक पत्र लेखक लिखते हैं कि उर्दू के प्रति मेरे रूख को लेकर उर्दू के समाचार पत्रों में मेरे खिलाफ काफी कुछ लिखा जा रहा है। ये पत्र यहाँ तक कहते हैं कि यद्यपि मैं हिन्दू-मुस्लिम एकता की बात करता हूँ फिर भी मैं सारे हिन्दुओं से ज्यादा साम्प्रदायिक विचार रखने वाला हिन्दू हूँ।"[27]

मुस्लिमों की यह आशंका निराधार भी न थी, क्योंकि गाँधी जी की जीवनशैली, रामराज्य की परिकल्पना एवं देवनागरी लिपि के आन्दोलन को समर्थन, इस आशंका को बढ़ावा देती थी। अविश्वास की स्थिति में सन्देह और भी प्रबल हो जाता है। नागरी लिपि के सन्दर्भ में गाँधी जी ने स्वीकार भी किया था कि - "देवनागरी लिपि का नि:सन्देह एक आन्दोलन चल रहा है जिसका कि साथ मैं हृदय से दे रहा हूँ।"[28] साहित्य के साथ-साथ बाकी क्षेत्रों में भी गाँधी जी के विचारों के अनुयायी कम न थे। गाँधी जी के विचार फिर भी कई अन्य लोगों की अपेक्षा प्रगतिशील थे। इनके प्रति मुस्लिम समुदाय का रवैया अगर सन्देह भरा था तो जो लोग हिन्दी को संस्कृतनिष्ठता की तरफ ले जाना चाहते थे उसके प्रति बाकी समुदायों की प्रतिक्रिया को सहज ही समझा जा सकता है। संस्कृतनिष्ठता के प्रति यह रूझान उस समय सिर्फ छायावादी कवियों की काव्यभाषा में ही नहीं है बल्कि द्विवेदीयुगीन रचनाओं में भी यह प्रवृत्ति थोड़े बहुत अन्तर के साथ मौजूद है। इस सन्दर्भ में नवजागरण की पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति एवं भाषायी संस्कृतनिष्ठता के अन्त:सम्बन्ध को व्याख्यायित करते हुए नामवर सिंह लिखते हैं कि - "पुनरुत्थान भावना के प्रभाव से संस्कृत के तत्सम शब्दों का पुनरुत्थान 19वीं सदी के उत्तरार्ध से ही हो गया था। और यह पुनरुत्थान हिन्दी के अतिरिक्त बंगला, मराठी, गुजराती आदि सभी भारतीय भाषाओं में हुआ। फलत: खड़ी बोली की कविता में मध्ययुगीन ब्रज भाषा तथा अवधी काव्य के तद्भव शब्दों का लोप हो गया। हिन्दी की अपनी परंपरा के असंख्य लोक-प्रचलित तथा साहित्य-रूढ़ शब्दों के स्थान पर संस्कृत शब्दों को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया गया। इस दिशा में बंगला हिन्दी की अग्रणी है। माइकल मधुसूदन दत्त और रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बंगला भाषा को संस्कृत के तत्सम शब्दों की सहायता से एकदम नया रूप दे दिया। हिन्दी में इस तरह का प्रयत्न आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय आदि ने भी किया। परन्तु छायावादी कवियों ने अपने आचार्यों की अपेक्षा बंगला के महाकवियों से प्रेरणा ली।"[29]

परन्तु भाषायी संस्कृतनिष्ठता का मूल अपनी परम्परा की बजाय बांग्ला में ढूँढ़ना उचित प्रतीत नहीं होता। अगर प्रेरणास्वरूप छायावादी कवि बांग्ला तक पहुँचे तो भी ग्रहण और त्याग का विवेक तो उनका अपना ही था। दरअसल उनकी सौन्दर्य चेतना संस्कृतनिष्ठता को अपनी काव्यानुभूति के अनुकूल पाती है। इसीलिए इसका दोष बांग्ला पर नहीं मढ़ा जा सकता। अगर छायावादियों की संस्कृतनिष्ठता से हम बांग्ला के तर्क के आधार पर निजात पा भी लें तो फिर नवजागरण के पुरोधा रामचन्द्र शुक्ल एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी का संस्कृत के प्रति रुझान को हम किस प्रकार व्याख्यायित करेंगे? इस सन्दर्भ में आचार्य शुक्ल की अवधारणा ध्यातव्य है। पहले वह हिन्दी को परिभाषित करते हुए इसके हजार वर्षों के इतिहास को अत्यन्त गौरवशाली साबित करते हैं। साथ ही यह भी कह डालते हैं कि जिसे इस पर गर्व नहीं वह भारतीय नहीं है। वैसे भी विरोधियों को विदेशी या अभारतीय साबित करना उनकी प्रचलित पद्धति रही है। खंडन-मंडन की यह पद्धति अब भी बदस्तूर जारी है। राष्ट्रवाद का आवरण परंपरा और इतिहास के दुरुपयोग को सुरक्षा कवच प्रदान करने का कार्य करता रहा है। विरोधियों को अभारतीय कहने के बाद चुटकी लेते हुए वे लिखते हैं- "हमारा गर्व यह सोचकर और भी बढ़ जाता है कि यह परंपरा इतनी प्रबल और शक्तिशालिनी सिद्ध हुई कि इधर सौ वर्ष से- अर्थात् अंग्रेजी राज्य के पूर्णतया प्रतिष्ठित हो जाने के पीछे इसे बन्द करने के तरह-तरह के प्रयत्न कुछ लोगों के द्वारा समय-समय पर होते आ रहे हैं, पर यह अपना मार्ग निकालती चली आ रही है। इस विरोध का मूल हमारे उन मुसलमान भाइयों की निर्मूल आशंका है जो अपनी भाषा और साहित्य को विदेशी साँचे में ढालकर अपने लिए अलग रखना चाहते हैं। यदि वे अपनी भाषा और अपने साहित्य की अलग परंपरा रखना चाहते हैं तो हमारे लिए यह प्रसन्नता की बात है। इधर अपनी भाषा की छटा, अपने साहित्य की विभूति हमारे सामने रहेगी, उधर उनके साहित्य के चमत्कार से भी हम अपना मनोरंजन करेंगे। यही मौका उन्हें भी रहेगा। मनोरंजन के क्षेत्र में एक से दो रहे तो और अच्छी बात है।"[30] यहाँ व्यंग्य की शैली के बहाव में शुक्ल जी ने साहित्य को 'मनोरंजन का क्षेत्र' तक कह डाला। शुक्ल जी के समग्र आलोचनात्मक विवेक के आधार पर हम जानते हैं कि यह उनकी मूल भावनाओं के अनुरूप नहीं है। पर उर्दू को उपेक्षित करने की प्रतिक्रिया स्वरूप वो ऐसी बात कह गए हैं। आगे अपना आक्रोश अभिव्यक्त करते हुए वो लिखते हैं - "यह देखना चाहिए कि हमारी भाषा और हमारे साहित्य में वह कौन-सी वस्तु है, जो अब हमारे मुसलमान भाइयों को नापसन्द है। इधर उनकी ओर से जो लेख आदि निकल रहे हैं उनसे पता चलता है कि भाषा में नापसन्द आने वाली वस्तु है संस्कृत के शब्द और साहित्य में भारतीय दृश्य, भारतीय रीति-नीति और भारतीय इतिहास-पुराणों के प्रसंग। इस सम्बन्ध में हमारा नम्र निवेदन यह है कि जिस देश का साहित्य होगा उस देश की परंपरागत भाषा, उस देश के प्राकृतिक स्वरूप, रीति-नीति, कथा-प्रसंग आदि से वह कैसे दूर रह सकता है?"[31] आचार्य शुक्ल की उपरोक्त धारणाओं को मिलाकर देखें तो ऐसा लगता है कि मानो भाषा के क्षेत्र में वो कोई विभाजन का सूत्र (फार्मूला) प्रस्तुत कर रहे हों। इतिहास इस बात का गवाह है कि हिन्दुस्तान, पाकिस्तान एवं बांग्लादेश के विभाजन में भाषा ने कैसी और कितनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। हिन्दी नवजागरण के अग्रदूत आचार्य शुक्ल की यह धारणा नवजागरण से आच्छादित उसी माहौल में बनी जिस माहौल में छायावादी कवियों की काव्यानुभूति भी निर्मित हो रही थी। इसलिए बात सिर्फ गुजराती, मराठी, बांग्ला एवं हिन्दी की नहीं है। बात उस माहौल की है जिसमें महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शुक्ल, छायावादी कवि, प्रेमचन्द, इकबाल, जिन्ना, बाल गंगाधर तिलक, मदनमोहन मालवीय एवं महात्मा गाँधी जैसे लोग भी जी रहे थे। सबने अपनी-अपनी सौन्दर्य चेतना एवं काव्यानुभूति के अनुसार ही पक्ष का चयन

किया। इसलिए संस्कृतनिष्ठता का स्रोत नवजागरण की व्यापक अवधारणा में ढूंढने के बजाय बांग्ला में ढूंढना उचित प्रतीत नहीं होता। कम से कम संस्कृतनिष्ठता के मामले में तो ऐसा कहा ही जा सकता है। अत: परंपरा की इस धारा में बहकर धारणा बनाने वाले आचार्य शुक्ल एवं कुछ हद तक नामवर सिंह की भी निष्पत्ति इस संदर्भ में अतार्किक प्रतीत होती है। हमें नहीं भूलना चाहिए कि नवजागरण के इन्हीं अन्तर्विरोधों के मध्य प्रेमचन्द एवं इकबाल जैसे साहित्यकार भी सक्रिय थे। प्रेमचन्द तो उस समय साहित्यकारों एवं इतिहासकारों द्वारा इतिहास के पुनरुत्थानवादी उपयोग पर अपना विरोध जता रहे थे। कर्बला की भूमिका में उन्होंने इस आशय का उल्लेख भी किया है। छायावादी कवियों के विपरीत उसी समय साहित्यिक जगत में सक्रिय प्रेमचन्द को राजनीति एवं नवजागरण का यह पुनरुत्थानवादी रवैया स्वीकार्य न था। उन्होंने नवजागरण एवं राजनीति की धार में बहने की बजाय, रचनात्मक सम्भावनाओं की ओर ध्यान दिया तथा राष्ट्र की साझी संस्कृति के पक्षधर बने। नवजागरण की हिन्दू-पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति के विपरीत प्रेमचन्द ने 'हजरत हुसैन' को नायक बनाकर नाटक लिखा। 'A History of Indian literature' में लिखा गया है कि "Prem Chand wrote this play at a time when he was deeply concerned with the growing communalication of Indian politics and the growth of enmity between the Hindus and Muslims. In the introduction of the play he experessed unhappiness over the Hindu ignorance of Muslim history, which he thought was one of the reason of Hindu-Muslim misunderstanding."[32] वैसे भी प्रेमचन्द, साहित्यकारों की प्रगतिशील भूमिका को ही पसन्द करते थे। प्रेमचन्द ने भाषा एवं हिन्दी-उर्दू सम्बन्ध पर भी अपने महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त किए हैं; जो छायावादी कवियों के विपरीत नवजागरण के अन्तर्विरोधों के एक अन्य पक्ष को भी अभिव्यक्त करते हैं। हिन्दी पट्टी में भाषा के विविध स्वरूपों की व्याख्या करते हुए वो लिखते हैं - "परन्तु इस समय उस भाषा के तीन स्वरूप हैं - उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी। और अभी तक यह बात राष्ट्रीय रूप से निश्चित नहीं की जा सकी है कि इनमें से कौन सा स्वरूप ऐसा है, जो देश में सबसे अधिक मान्य हो सकता है और जिसका प्रचार भी ज्यादा आसानी से हो सकता है। तीनों ही स्वरूपों के पक्षपाती और समर्थक मौजूद हैं, और उनमें खींचातानी हो रही है। यहाँ तक कि इस मतभेद को राजनीतिक स्वरूप दे दिया गया है, और हम इस प्रश्न पर शान्त चित्त और शान्त मस्तिष्क से विचार करने के अयोग्य हो गए हैं।"[33]

आगे राष्ट्रीय भाषा के सन्दर्भ में अपना मन्तव्य अभिव्यक्त करते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं - "वास्तविक बात तो यह है कि भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा न तो वह उर्दू ही हो सकती है, जो अरबी और फारसी के अप्रचलित रूप द्वारा अपरिचित शब्दों के भार से लदी रहती है, और न वह हिन्दी ही हो सकती है, जो संस्कृत के कठिन शब्दों से लदी हुई होती है। यदि इन दोनों भाषाओं के पक्षपाती और समर्थक आमने-सामने खड़े होकर अपनी साहित्यिक भाषाओं में बात करें, तो शायद एक-दूसरे का कुछ भी मतलब न समझ सकें। हमारी राष्ट्रीय भाषा तो वही हो सकती है, जिसका आधार सर्वसामान्य बोध गम्यता हो-जिसे सब लोग सहज में समझ सकें। ...यदि कोई शब्द या मुहावरा या पारिभाषिक शब्द जनसाधारण में प्रचलित है, तो फिर वह इस बात की परवाह नहीं करती कि वह कहाँ से निकला है और कहाँ से आया है। और वही हिन्दुस्तानी है। और जिस प्रकार अंग्रेजों की भाषा अंग्रेजी, जापान की जापानी, ईरान की ईरानी और चीन की चीनी है, उसी प्रकार हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय भाषा को इसी तौर पर हिन्दुस्तानी कहना केवल उचित ही नहीं, बल्कि आवश्यक भी है और अगर इस देश को हिन्दुस्तान

न कहकर केवल हिन्द कहें, तो इसकी भाषा को हिन्दी कह सकते हैं।"[34]

प्रेमचन्द की उपरोक्त अवधारणा बहुत हद तक महात्मा गाँधी के विचारों से मिलती-जुलती है। परन्तु उस समय साहित्य और समाज में जो स्थिति तैयार हो गई थी; वैसे में सभी पक्षों का आपसी वैमनस्य बढ़ता ही जा रहा था। इस स्थिति की चर्चा रामविलास शर्मा ने भी 'भाषा और समाज' में कुछ यों की है - "जितना ही हम पुराने जमाने के उर्दू लेखकों की रचनाएँ पढ़ते हैं, उतना ही साधारणतः अरबी-फारसी के शब्दों की खपत कम मिलती है और जितना ही बीसवीं सदी की ओर बढ़ते हैं, उतना ही यह खपत बढ़ती जाती है। अगर बारहवीं-तेरहवीं सदी में मेल-जोल के लिए पाँच फीसदी अरबी-फारसी शब्दों की जरूरत थी, तो 1947 के आस-पास यह जरूरत बढ़कर पचासी फीसदी तक पहुँच गई है। यानी ज्यों-ज्यों मेल-जोल बढ़ा, त्यों-त्यों हिन्दी-उर्दू का अलगाव बढ़ता गया। 'मर्ज बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की'...'।"[35] हिन्दी और उर्दू के बीच बढ़ते हुए विभेद एवं कड़वाहट को स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द ने भी लिखा है कि "परन्तु आज क्या परिस्थिति है? हमारे हिन्दी वाले इस बात पर तुले हुए हैं कि हम हिन्दी से भिन्न भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में किसी तरह घुसने न देंगे। उन्हें 'मनुष्य' से तो प्रेम है; परन्तु 'आदमी' से पूरी-पूरी घृणा है। यद्यपि 'दरख्वास्त' जनसाधारण में भली-भाँति प्रचलित है; परन्तु फिर भी उनके यहाँ इसका प्रयोग वर्जित है। इसके स्थान पर वे 'प्रार्थना-पत्र' ही लिखना चाहते हैं, यद्यपि जनसाधारण इसका मतलब बिल्कुल ही नहीं समझता। 'इस्तीफा' को वे किसी तरह मंजूर नहीं कर सकते और इसके स्थान पर वे 'त्यागपत्र' रखना चाहते हैं। 'हवाई जहाज' चाहे कितना ही सुबोध क्यों न हो परन्तु उन्हें 'वायुयान' की सैर ही पसन्द है। उर्दू वाले तो इस बात पर और भी अधिक लट्टू हैं। वे 'खुदा' को तो मानते हैं, परन्तु ईश्वर को नहीं मानते हैं, 'कुसूर' तो वे बहुत से कर सकते हैं, परन्तु 'अपराध' कभी भी नहीं कर सकते। 'खिदमत' तो उन्हें बहुत पसन्द है, 'सेवा' उन्हें एक आँख भी नहीं भाती। इसी तरह हम लोगों ने उर्दू और हिन्दी के दो अलग-अलग कैम्प बना लिए हैं, और मजाल नहीं कि एक कैम्प का आदमी दूसरे कैम्प में पैर भी रख सके।"[36]

दरअसल भाषा के क्षेत्र में उपरोक्त प्रवृत्ति नवजागरणकालीन राजनीतिक और सामाजिक अभिव्यक्ति का ही प्रतिफलन थी। पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति के कारण हिन्दी-उर्दू के मध्य जो दीवार खड़ी हुई उसे छायावादियों ने तोड़ने की बजाय और मजबूत ही किया। छायावादी काव्य-भाषा प्रारम्भ से लेकर अन्त तक संस्कृत के शब्दों से पटी हुई है। खोजने पर बमुश्किल उर्दू-फारसी के कुछ शब्द अवश्य मिल जाएँगे, पर वह भी अपवाद स्वरूप ही। जैसे-जैसे छायावादी सौन्दर्य चेतना का ह्रास होता है तो छायावाद की ही परवर्ती रचनाओं में बोलचाल की भाषा का प्रयोग बढ़ जाता है। बोलचाल की भाषा और हिन्दुस्तानी की झलक हमें प्रेमचन्द और इकबाल जैसे रचनाकारों के साहित्य में भी मिलती है। खासकर इकबाल की तो कुछ प्रारम्भिक रचनाएँ न सिर्फ हिन्दुस्तानी की बानगी प्रस्तुत करती है बल्कि हमारी साझी संस्कृति को भी प्रतिबिम्बित करती है। 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' लिखने वाले ने आगे भारत की साझी संस्कृति को अभिव्यक्त करते हुए 'नया शिवालय' में लिखा -

"सूनी पड़ी हुई है मुद्दत से दिल की बस्ती।
आ इक नया शिवालय इस देस में बना दें।।
दुनिया के तीरथों से ऊँचा हो अपना तीरथ।
दामाने-आस्मां से इसका कलश मिला दें।।
हर सुबह उठके गाएँ मन्तर वो मीठे-मीठे।

सारे पुजारियों को मय प्रीत की पिला दें।।
शक्ति भी शान्ति भी भक्ति के गीत में है।
धरती के बासियों की मुक्ति परीत में है।।"[37]

बोलचाल की भाषा के सन्दर्भ में 'परिन्दे की फरियाद' की कुछ पंक्तियों को भी उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है:

"आता है याद मुझको गुजरा हुआ जमाना।
वो बाग की बहारें वो सबका चहचहाना।।
आजादियाँ कहाँ वो अब अपने घोंसले की।
अपनी खुशी से आना अपनी खुशी से जाना।।
लगती है चोट दिल पर, आता है याद जिस दम।
शबनम के आँसुओं पर कलियों का मुस्कुराना।।
वो प्यारी-प्यारी सूरत वो कामनी-सी मूरत।
आबाद जिसके दम से था मेरा आशियाना।।"[38]

यह अलग बात है कि जैसे-जैसे दोनों कौमों का वैमनस्य बढ़ता गया वैसे-वैसे इकबाल जैसे रचनाकारों के सुर में भी बदलाव आने लग गया। दरअसल प्रेमचन्द और इकबाल जैसे रचनाकारों के पक्ष को हम हिन्दुस्तानी का कह सकते हैं, तो छायावाद का पक्ष निश्चित रूप से हिन्दी की संस्कृतनिष्ठता वाली प्रवृत्ति का ही पक्ष है। अपनी तमाम शिल्पगत एवं काव्य-भाषा सम्बन्धी उपलब्धियों के बावजूद, छायावाद ने कविता की भाषा को जनसामान्य की भाषा से दूर ले जाने का कार्य किया। यही कारण है कि छायावादी काव्यभाषा कभी कविता की भाषा का आदर्श न बन सकी। हालावादियों, प्रगतिवादियों से लेकर नई कविता तक के कवियों ने काव्यभाषा के लिए अलग ही रास्ता अख्तियार किया। हाँ, समय एवं भावों की जरूरत के हिसाब से यह छायावादी अभिव्यक्ति की सशक्तता का प्रमाण अवश्य है।

संदर्भ :

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 351
2. The Hindi Public Sphere, Francesca Orsini, Page No. 153-154
3. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 363
4. महादेवी साहित्य समग्र, भाग-3, सं.-निर्मला जैन, पृष्ठ 477
5. महादेवी साहित्य समग्र, भाग-3, पृष्ठ 470-71
6. महादेवी साहित्य समग्र, भाग-3, पृष्ठ 471
7. सुमित्रानन्दन पन्त ग्रंथावली, भाग-1, पृष्ठ 158
8. सुमित्रानन्दन पन्त ग्रंथावली, भाग-1, पृष्ठ 176
9. सुमित्रानन्दन पन्त ग्रंथावली, भाग-1, पृष्ठ 163
10. सुमित्रानन्दन पन्त ग्रंथावली, भाग-1, पृष्ठ 162
11. सुमित्रानन्दन पन्त ग्रंथावली, भाग-1, पृष्ठ 160
12. सुमित्रानन्दन पन्त ग्रंथावली, भाग-1, पृष्ठ 160
13. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 366
14. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 362

15. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 362
16. वही, पृष्ठ 362-363
17. छायावाद, नामवर सिंह, पृष्ठ 97
18. वही, पृष्ठ 96
19. पन्त सहचर, सं.-अशोक वाजपेयी एवं अपूर्वानन्द, पृष्ठ 71
20. वही, पृष्ठ 76
21. निराला, सं.-इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 129-30
22. छायावाद, नामवर सिंह, पृष्ठ 117
23. वही, पृष्ठ 117-118
24. निराला रचनावली, भाग-1, सं.-नन्दकिशोर नवल, पृष्ठ 366
25. निराला: एक पुनर्मूल्यांकन, संपादक: डॉ. ए. अरविंदाक्षन, पृष्ठ 14
26. Hindi Nationalism, Alok Rai, Page 12-16
27. राष्ट्रभाषा हिन्दी पर महात्मा गाँधी के विचार, संकलनकर्ता: कैलाश वाजपेयी, पृष्ठ 127
28. वही, पृष्ठ 94
29. छायावाद, नामवर सिंह, पृष्ठ 109
30. रामचन्द्र शुक्ल, प्रतिनिधि संकलन, सम्पादन - निर्मला जैन, प्रधान सं.-नामवर सिंह, पृष्ठ 108
31. वही, पृष्ठ 109
32. A History of Indian literature, Sisir Kumar Das, Page 117
33. कुछ विचार, प्रेमचन्द, पृष्ठ 73
34. वही, पृष्ठ 74
35. भाषा और समाज, रामविलास शर्मा, पृष्ठ 284
36. कुछ विचार, प्रेमचन्द, पृष्ठ 75
37. इकबाल और उनकी शायरी, सं.-प्रकाश पंडित, पृष्ठ 32
38. वही, पृष्ठ 69

❑❑❑

छायावादी साहित्य में मिथकीय चेतना

❍ नीलकंठ कुमार

मिथक का उपयोग काव्य के क्षेत्र में प्राचीन काल से होता आ रहा है। पुराणों, पुराकथाओं, लोककथाओं आदि का उपयोग तो साहित्य में निरंतर होता रहा है, परन्तु मिथक शब्द का वर्तमान संदर्भ में उपयोग सर्वप्रथम हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ही किया है। हिन्दी साहित्य एवं आलोचना में मिथक शब्द अंग्रेजी के 'मिथ'(myth) शब्द से आया हुआ माना जाता है। हिन्दी में इस शब्द के अलग-अलग समय पर अलग-अलग विद्वानों ने विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया है। इन शब्दों के मायने को अगर ध्यान से देखें तो काव्य के क्षेत्र में मिथक के महत्व एवं उसकी परंपरा का बोध हो जाता है। डॉ. रामअवध द्विवेदी के शोधात्मक ग्रंथ 'साहित्य-सिद्धांत' में 'पुरावृत्त', डॉ. नगेन्द्र और कवि बच्चन के अरस्तू का काव्य शास्त्र तथा 'दो चट्टानों' में मिथ के लिए 'दंतकथा', डॉ. सत्येन्द्र के शोध-ग्रंथ और 'हिन्दी साहित्य कोश' में 'धर्मगाथा', कवि कुंवर नारायण के 'आत्मजयी' काव्य में 'पुराकथा' तथा आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वानों ने 'मिथक' शब्द का प्रयोग किया है। कामिल बुल्के ने 'मिथ' का हिन्दी समानधर्मा शब्द 'मिथक' को ही मानते हुए अपने अंग्रेजी-हिन्दी शब्दकोश में इसे प्रयुक्त किया है। दरअसल छठे एवं सातवें दशक के कुछ दृष्टि संपन्न कवियों ने समकालीन परिस्थितियों की भयावहता, मूल्यविहीनता एवं मन:स्थितियों को प्रभावी ढ़ंग से अभिव्यक्ति करने के लिए पुरा-प्रसंगों एवं पुराण-कथाओं का सृजनात्मक उपयोग करना प्रारंभ किया। उनके इन सृजनात्मक नव-प्रयासों को ही कालांतर में मिथक के नाम से अभिहित किया गया। आधुनिक काल में प्रियप्रवास, साकेत, कामायनी, अंधायुग, कनुप्रिया, राम की शक्ति-पूजा, द्वापर, जयभारत, आत्मजयी, उर्वशी, संशय की एक रात आदि जितनी भी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं, उनका आधार किसी न किसी रूप में मिथक ही है। न सिर्फ काव्य बल्कि अपनी व्यापकता एवं प्रतीकधर्मा गुण के कारण कला, दर्शन, भाषा आदि क्षेत्रों में भी मिथक का हस्तक्षेप रहा है। मिथक चूँकि मानव जाति के सामूहिक स्वप्नों एवं अनुभवों का निर्मित रूप है, अत: कला का कोई भी माध्यम जो जन तक अपनी पहुँच बनाना चाहता है, मिथक का उपयोग अपने तरीके से कर सकता है। तभी वर्तमान संदर्भ में मिथक शब्द का सर्वप्रथम उपयोग करने वाले आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'मिथक' का महत्व स्पष्ट करते हुए लिखते हैं-"रूपगत सुंदरता को माधुर्य (मिठास) और लावण्य (नमकीन) कहना बिल्कुल झूठ है, क्योंकि रूप न तो मीठा होता है, न नमकीन, लेकिन फिर भी कहना पड़ता है क्योंकि अंतर के भावों को बाहिर्जगत् की भाषा में व्यक्त करने का यही एक मात्र उपाय है। सच पूछिए तो यही मिथक तत्व है।.... मिथक तत्व वास्तव में भाषा का पूरक है। सारी भाषा इसके बल पर खड़ी है। आदि मानव के चित्त में संचित अनेक अनुभूतियाँ मिथक के रूप में प्रकट होने के लिए व्याकुल रहती है। . ... मिथक वस्तुत: उस सामूहिक मानव की भाव-निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है जिसे कुछ मनोविज्ञानी

'आर्किटाइकल इमेज' (आद्यबिंब) कहकर संतोष कर लेते हैं।"[1] छायावादी कवियों ने भी साहित्य में मिथक का उपयोग किया है। 'कामायनी' में मिथक के उपयोग के सन्दर्भ में मिथक को परिभाषित करते हुए रमेश कुन्तल मेघ लिखते हैं – "कामायनी में तो माना ही गया है कि (किन्तु वैसे भी) मिथक मानव जाति का सामूहिक स्वप्न एवं सामूहिक अनुभव है; और स्वप्न एक व्यक्ति की सुप्त आकांक्षित वासना। मिथक प्रागैतिहासिक घटना या आस्था है, जबकि स्वप्न एक प्रतीकात्मक इच्छाभिव्यक्ति। प्रतीक दोनों में विद्यमान है, किन्तु पृथक-पृथक ढंग से।"[2]

आगे आधुनिक एवं ऐतिहासिक सन्दर्भ में मिथक की व्याख्या करते हुए रमेश कुन्तल मेघ लिखते हैं – "आधुनिक एवं ऐतिहासिक चेतना में मिथक का बारम्बार नवोन्मेष होता है, लेकिन आर्केटाइपल बिम्बों, चिरन्तन प्रतीकों एवं व्याख्याओं के रूप में जब भी सामाजिक जीवन में द्वन्द्व उपस्थित होता है तब मिथक का प्रतीकीकरण नए पक्ष को उद्घाटित कर देता है। इसलिए मिथक रचनाशास्त्र में कहा जाता है कि मिथक मानवीय चिति की यथार्थता में संस्कार रूप से सुरक्षित रहती है। भारत में जल-प्लावन घटना असीरियाई – बैबीलोनियन स्रोतों से भी चलकर आई है। जल-प्लावन की यह आदिम घटना मनु के मिथक से अनुस्यूत हो गई; और कवि प्रसाद ने इसे प्रजापति मनु, स्मृतिकार ऐतिहासिक मनु, शैवाद्वैतवादी साधक तथा मनोवैज्ञानिक मन से भी अनुस्यूत कर डाला। यह 'कामायनी' में मिथक की एकता वाला अखंडित रूपान्तर है।"[3]

इसी प्रकार अपने लेख 'कला, मिथक और यथार्थ' में मिथक को परिभाषित करते हुए निर्मल वर्मा लिखते हैं – "सच पूछें, तो मिथक और कुछ नहीं – प्रागैतिहासिक मनुष्य का एक सामूहिक स्वप्न है और व्यक्ति के स्वप्न के समान वह काफी अस्पष्ट, संगतिहीन और संश्लिष्ट भी है।"[4]

इस प्रकार सामूहिक चेतना एवं स्वप्न की बात निर्मल वर्मा भी करते हैं और रमेश कुन्तल मेघ भी। मनोवैज्ञानिक युंग एवं फ्रायड का उल्लेख करते हुए सामूहिकता की बात बच्चन सिंह भी स्वीकार करते हैं। 'आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द' में फ्रायड एवं युंग का हवाला देते हुए बच्चन सिंह लिखते हैं –"सामूहिक अवचेतन अत्यन्त गम्भीर और व्यापक होता है। इसे 'डीप स्ट्रक्चर' कहा जा सकता है। सामूहिक अवचेतन में देश का कालातीत संस्कार समाहित रहता है। इसे वह आदिम बिम्ब भी कहता है। वह कहीं न कहीं आज भी हमारे मन में दुबका हुआ है और कल भी नि:शेष नहीं होगा। प्रजातीय अवचेतन का आदिम बिम्ब मिथक है।"[5] प्रसिद्ध नृतत्व शास्त्र वेत्ता लेविस्त्रोस भी मिथक को विशुद्ध मानसिक रूपात्मक क्रिया कहते हैं पर वह भी सामूहिक अचेतन मन की अभिव्यक्ति को ही मिथक मानते हैं।[6]

अत: मिथक मानवीय सभ्यताओं के सामूहिक स्वप्नों एवं अनुभवों को संस्कार रूप में सुरक्षित रखता है। इसका उपयोग कला के विविध माध्यम अपनी-अपनी जरूरतों एवं सौन्दर्य चेतना के अनुसार करते रहते हैं। ऐसे में मिथक के काल बोध का सवाल भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। किसी खास ऐतिहासिक काल में जब कोई साहित्यकार मिथक का उपयोग अपनी चेतना के अनुसार करता है तो क्या, ऐतिहासिक समय का अन्तर सम्प्रेषण की समस्या पैदा नहीं करता? फिर इतिहास और मिथक के उपयोग में क्या अन्तर रह जाता है? इतिहास और मिथक के इस अन्तर को 'कामायनी' के सन्दर्भ में स्पष्ट करते हुए रमेश कुन्तल मेघ लिखते हैं – "मिथक-सत्य और इतिहास-सत्य में मौलिक अन्तर है। मिथक सत्य श्रद्धा पर आश्रित है, जबकि इतिहास-सत्य विज्ञान पर। मिथक सत्य कर्मकांड से गुँथा है और इतिहास सत्य तथ्यों से। तथ्यों को यथाधिक संकलित करने के उपरान्त उनकी व्याख्या करने पर ऐतिहासिक सत्य हासिल होता है। इसके असमान मिथक का जब विवेचन होता है, तब उसका प्रत्यक्ष तिरोहित हो जाता

है। हाँ, ऐतिहासिक प्रतीकों को मिथकीय सत्य से अवश्य जोड़ा जाता है, जिससे आर्केटाइपों का पुरान्वेषण सम्पन्न होता है।"[7]

दरअसल मिथक इतिहास के विपरीत देशकाल की सीमाओं से परे होता है, अपनी इसी विशेषता के कारण यह एक सतत् अवधारणा बन जाता है। अपनी निरन्तरता के कारण मिथक मनुष्य को ऐतिहासिक स्थिति भुलवा देता है। इस विस्मरण का तात्कालिक नतीजा यह होता है कि मिथकीय काल चिरंतन अथवा 'महाकाल' हो जाता है।"[8]

मिथक की एक और विशेषता उसका तर्क से परे होना है। इसका कारण मिथक के मूल में आस्था और विश्वास का होना है तभी रमेश कुन्तल मेघ लिखते हैं – "मिथक में आस्था, तथा इससे भी ज्यादा हठात विश्वास का आधार रहता है। इसी भूमि पर मिथकीय मानसिकता का हवामहल खड़ा रहता है। आस्था ही मिथक को यथार्थ तथा पुनीत बनाती है। इसी वजह से मिथक की धार्मिक चेतना सत्य भी हो जाती है।"[9] वस्तुत: आस्था, विश्वास और धर्म के साथ इतिहास का सम्मिश्रण ही मिथक को ऐतिहासिकता एवं तार्किकता के दायरे से बाहर जाने की क्षमता प्रदान करता है।

मिथक में भाषा से परे जाने की भी क्षमता होती है। भाषा की पहुँच की अपनी सीमा है, पर मिथक भाषा के भी पार जाकर कवि की मदद करता है। इसका मूल कारण है मिथक का अनुभूतिजन्य होना। चूँकि मिथक लोगों के संस्कार में पहले से ही बैठे होते हैं; अत: वे भाषायी क्षमता से परे पहले ही कई प्रकार के अर्थों एवं संभावनाओं से लैस होते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि मिथकों में जड़ता का गुण होता है। दरअसल बहुत हद तक अपने मूल रूप में सुरक्षित रहते हुए भी समय-समय पर इनमें भाव विस्तार एवं संकोच होता रहता है। तभी निर्मल वर्मा लिखते हैं कि – "ध्यान से देखें, तो मिथक मनुष्य की सर्जना उतनी नहीं, जितना वह मनुष्य की अज्ञात, अनाम, सामूहिक चेतना का अंग है जिसके द्वारा अर्थग्रहण किया जाता है, जो स्वयं अपने भीतर 'एक विशिष्ट आलोक का स्रोत' धारण किए रहता है। ...कैसिरर के शब्दों में मनुष्य का आदि अनुभव ही मिथक के बिम्ब चित्रों में अन्तर्निहित रहता है और चारों ओर उसके वातावरण से अनुप्राणित होता रहता है।"[10]

चूँकि यह अपने वातावरण से अनुप्राणित होता रहता है अत: इसमें पुनरुद्धार एवं नवीन सृजन की भी संभावना बनी रहती है। तभी निर्मल वर्मा को लगता है कि कला अपने सृजन के उदात्ततम क्षणों में मिथक होने का स्वप्न देख सकती है।[11] यही नहीं इतिहास में भी मिथक बन जाने की संभावना मौजूद रहती है। उदाहरण के लिए, तथ्यों एवं तर्कों को आधार मानने पर गौतमबुद्ध एक ऐतिहासिक सत्य हैं। परन्तु इतिहास से इतर जैसे-जैसे इनके साथ गाथाएँ जुड़ती गई यह ऐतिहासिक सत्य मिथक में परिवर्तित होता गया। थेर-गाथा, थेरी-गाथा, जातक कथाएँ एवं लोक प्रचलित धारणाओं ने उन्हें ऐतिहासिक काल एवं वातावरण से परे, भाषा से भी परे, मनुष्य की बजाय भगवान बुद्ध बना दिया। इतिहास में ऐसे सैकड़ों उदाहरण हैं जो समय के साथ मिथक में परिवर्तित हो आज भी हमारे संस्कार एवं विश्वास में जिन्दा हैं। पर कवि या साहित्यकार जब इन मिथकों का उपयोग करता है तो उसके अपने खतरे हैं। जनसंस्कार एवं आकांक्षाओं से सन्तुलन न बिठा पाने की स्थिति में वह न तो साहित्य रह जाता है न ही इतिहास। यहाँ तक कि वह कवि की भावनाओं की विपरीत दिशा में भी अर्थ विस्तार की संभावनाओं को सक्रिय कर सकता है। काव्य में मौजूद किस मिथकीय प्रकरण से सहृदय के मन-मस्तिष्क में मौजूद कौन से इन्द्रिय एवं भावनाएँ सक्रिय हो जाएगी – इसका विशेष खयाल रखने की जरूरत पड़ती है। मिथक के साहित्यिक उपयोग में सामूहिक चेतना एवं काव्य युक्ति के मध्य विशेष सन्तुलन रखने की आवश्यकता

पड़ती है। अत: सन्तुलन व सामंजस्य बिठाने की सिद्धहस्तता के कारण मिथक के काव्यात्मक उपयोग में अतिरिक्त रचनात्मकता एवं कल्पनाशीलता की आवश्यकता पड़ती है।

छायावादी कवियों में रचनात्मकता एवं कल्पनाशीलता की कोई कमी नहीं थी, पर साथ ही उनमें वैयक्तिकता का भाव भी प्रबल था। वैयक्तिकता का भाव प्रबल होने के कारण छायावादी कवियों के यहाँ विशेष मिथकीय रूझान नहीं दिखाई पड़ता है। केदारनाथ सिंह भी 'कल्पना और छायावाद' में लिखते हैं – "छायावादी काव्य को यहाँ से वहाँ तक देख जाने पर स्पष्ट दीखेगा कि इन कवियों ने 'मिथ' का उपयोग व्यापक पैमाने पर नहीं किया है। प्रसाद की 'कामायनी', 'जनमेजय का नागयज्ञ' निराला की 'राम की शक्तिपूजा' आदि कुछ थोड़ी सी कृतियों को छोड़कर मिथ के उदाहरण अधिक नहीं मिलेंगे। इसका कारण यह है कि इस काल के कवियों ने अपने काव्यात्मक प्रयोगों का विकास वैयक्तिक आधार पर अधिक किया, परंपरागत आधार पर कम।"[12]

फिर भी कतिपय कवियों ने मिथक का काव्यात्मक उपयोग कर अपनी प्रतिभा का परिचय अवश्य दिया है। छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद को अपेक्षाकृत परंपरा का बोध सर्वाधिक था, इसीलिए मिथकों का भी सर्वाधिक उपयोग जयशंकर प्रसाद ने ही किया है। यहाँ सवाल यह भी उठता है कि छायावादी कवियों को मिथक के उपयोग की आवश्यकता क्यों जान पड़ी? जब वो व्यक्तिगत सुख-दुख, प्रणय एवं अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए एक समर्थ भाषा एवं मार्ग का निर्माण कर ही चुके थे; फिर मिथकों का उपयोग क्यों? पहली बात तो यह है कि कोई भी साहित्यकार सामूहिक आकांक्षाओं को साहित्य में समाहित करने के उद्देश्य से मिथक का उपयोग कर सकता है। दूसरी बात मिथकों में भाषा से भी परे जाने की क्षमता है। चूँकि छायावादी कवियों में हर स्तर पर मुक्ति एवं स्वच्छन्दता का भाव प्रबल है, इसीलिए भाषा के क्षेत्र में भी वे नवीनता के आग्रही हैं। खड़ी बोली को साहित्यिक अभिव्यक्ति के उच्चतम स्तर तक पहुँचाने के एक प्रयास के रूप में भी उन्होंने मिथकों का छायावादी साहित्य में उपयोग किया है। ये तो हुई शिल्प पक्ष की बात। किन्तु कोई भी शिल्प संबंधी प्रयोग तब तक प्रभावी एवं सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह तद्युगीन भाव-बोध के सामंजस्य में न हो। दरअसल छायावादी युग एवं उसके आगे-पीछे सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में मिलते-जुलते मिथकों का उपयोग हो रहा था। साहित्य अकादमी द्वारा प्रकाशित भारतीय साहित्य के इतिहास में विस्तार से विभिन्न भाषाओं में तद्युगीन मिथकीय चरित्रों के उपयोग पर प्रकाश डाला गया है। इस पुस्तक में पौराणिक, ऐतिहासिक, महाकाव्यात्मक तथा विविध धर्मों के स्रोतों का हवाला देते हुए जिन मिथकीय प्रकरणों एवं चरित्रों का उल्लेख किया गया है वे हैं – सीता, सावित्री, द्रौपदी, अहिल्या, राम एवं रावण, अभिमन्यु, एकलव्य कर्ण, कृष्ण, दुर्योधन, भीष्म, अश्वत्थामा, मनु आदि।[13] यहाँ सिर्फ प्रमुख प्रकरणों एवं चरित्रों का ही उल्लेख किया गया है। इसी पुस्तक में ऐतिहासिक स्रोतों का उल्लेख करते हुए साहित्य के लिए जिन नायकों का उल्लेख किया गया है वे हैं – अशोक, चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य, शिवाजी, राणाप्रताप, दुर्गावती, हजरत हुसैन, झाँसी की रानी आदि।[14] इनमें से राजपूती शौर्य एवं शिवाजी, औरंगजेब संबंधी ऐतिहासिक चरित्रों को मिथकीय स्वरूप प्रदान करने में इतिहासकारों व साहित्यकारों का विशेष योगदान रहा। यह वही समय है जब कर्नल टॉड एवं कतिपय इतिहासकारों ने मिलकर राजपूती शौर्य का एक ऐसा मिथक गढ़ा, जिसने संपूर्ण भारतीय समाज में अपने अतीत को लेकर एक छद्म गर्व की भावना भरने का कार्य किया। इतिहास के ऐसे तमाम संदर्भों एवं अंतर्विरोधों को उभारने का प्रयास किया गया जिससे हिन्दू-मुस्लिम संबंधों की जटिलता की ओर ध्यान आकृष्ट हो। इतिहासकारों को लेकर एक ऐसी समझ

विकसित करने की कोशिश की जा रही थी, जो हिन्दुस्तान की पराधीनता एवं समस्या के मूल में अंग्रेजों को देखने के बजाए तत्कालीन मुस्लिम शासन को देखे। शिवाजी के व्यक्तित्व को अखिल भारतीय स्वरूप प्रदान करने के सन्दर्भ में 'A History of Indian Literature 1911-1956' में लिखा गया है –

"Shivaji, who had already emerged as a new Hindu hero in the ninteenth century became a Pan-indian literary figure by 1905 mostly through the enthuciasm of Tilak and Partly because of the historical researches that projected the Maharashtrian Statesman in a new light."[15]

बंगाल में तो इसका प्रभाव कुछ ज्यादा ही दिख रहा था। बंकिमचन्द्र चटर्जी जैसे बुद्धिजीवी भी साहित्य और इतिहास का दोहरा उपयोग कर रहे थे। इस सन्दर्भ में सुमित सरकार ने 'आधुनिक भारत' में उल्लेख किया है कि 1870 एवं उसके पश्चात बंकिमचन्द्र एवं ऐसे ही अन्यान्य बुद्धिजीवियों के प्रभाव में जो पुनरुत्थानवादी लहर चली, उसने सुधार आन्दोलनों से लेकर राजनीतिक आन्दोलनों तक को प्रभावित किया। अत: धार्मिक एवं सांस्कृतिक हस्तक्षेप के नाम पर सुधारवादी कदमों का भी विरोध होने लग गया। खुद तिलक ने भी बाल विवाह के मुद्दे पर अंग्रेजों से इस प्रकार का विरोध दर्ज कराया था। किन्तु इसके विपरीत वे गो-हत्या के विरुद्ध कानून बनाने की माँग अंग्रेजों से कर रहे थे। यह एक ही मुद्दे पर परस्पर विरोधी मानदंड था।[16] इस सन्दर्भ में सुमित सरकार ने उचित ही लिखा है कि – "बंगाल में विभिन्न प्रभावों के फलस्वरूप 1870 के दशक से ही बुद्धिजीवियों का रुख बदलने लगा था। हिन्दू परम्पराओं का पक्ष-पोषण अधिक सम्मानजनक हो गया था। क्योंकि मैक्समूलर जैसे विद्वान प्राचीन आर्यों के गौरव को पुनर्जीवित कर रहे थे।"[17] अतीत के प्रति गौरव की यह भावना एवं हिन्दू पुनरुत्थानवादी चेतना ने उस समय इतिहास को देखने की दृष्टि पर भी असर डाला। लगभग सम्पूर्ण मध्यकाल को 'अंधकार युग' की तरह देखा जाने लगा क्योंकि यह आर्यों की गौरवशाली परम्परा को खंडित करती थी। हिन्दू गौरव को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने की प्रवृत्ति के कारण ही उस समय राजपूती शौर्य का भी मिथक गढ़ा गया। इस सन्दर्भ में बंकिम चन्द्र चटर्जी का हवाला देते हुए सुमित सरकार लिखते हैं कि – "बंकिमचन्द्र का सरोकार मूलत: बंगाल के इतिहास से था। वे बारम्बार यही दोहराते रहे कि बंगाल ने अपनी स्वाधीनता बख्तियार खिलजी के कारण खोई थी, पलासी की लड़ाई में नहीं। उन्होंने मुगलों द्वारा आँचलिक जीवन के केन्द्रीकरण के हानिकारक परिणामों पर बल दिया और अपने बाद वाले ऐतिहासिक उपन्यासों में जी भर कर मुसलमानों की निन्दा की। टॉड ने मुसलमान आक्रमणकारियों के विरुद्ध राजपूती वीरता और शौर्य का जो रूमानी मिथक खड़ा किया था, उसे बड़े स्तर पर बांग्ला काव्य, नाटक और उपन्यास यहाँ कि कि बाल-साहित्य में भी समाविष्ट कर लिया।"[18] इतिहास के प्रति यह नजरिया छायावादी काव्य में भी दिखाई पड़ता है निश्चय ही ऐसी प्रवृत्तियों ने हमारी साझी संस्कृति को कमजोर कर मुस्लिम समुदाय में 'अन्य' की भावना को बढ़ावा दिया। इतिहास और साहित्य के इस आदान-प्रदान का उल्लेख करते हुए 'A History of Indian Literature 1911-1956' पुस्तक में ही लिखा गया है – "Among the historians who stirred the imagination of many Indian writers and supplied raw materials, the 'stffa' of literary works, most eminent was Sir Jadu-nath Sarkar. His 'History of Aurangzeb', (Vol. I-V, 1912-1924), The fall of Mughal Empire, (Vol. I-IV, 1932-50), Shivaji and His times (1919), House of Shivaji (1940) - he also wrote a fascinating narrative on Shivaji in Bengali - executed on a grand epic scale and narrated in a powerful dramatic style made great impression on writers and created a Sçable readerrhip

of historical prose outside the narrow confines of the cademia."[19]

इस प्रकार साहित्य में ऐतिहासिक सामग्री के उपयोग एवं प्रभाव की प्रवृत्ति बढ़ रही थी। यह नवजागरण की उस धारणा के अनुकूल ही थी, जिसमें प्राचीन के प्रति गौरवपूर्ण, अनुसंधानात्मक एवं पुनरुत्थानवादी प्रवृत्तियाँ एक साथ सक्रिय थी। नवजागरणकालीन उपरोक्त प्रवृत्तियाँ निराला एवं प्रसाद में तो साफ-साफ दिखाई पड़ती है। जयशंकर प्रसाद के 'मधुमय देश' के मूल में प्राचीन के गौरव का ही भाव है। वैसे उनके इस प्राचीन गौरव का मुख्य आधार हिन्दूवादी चेतना ही है। तभी वो अपने साहित्य में नवजागरण कालीन प्रतीक 'गौ' एवं 'ब्राह्मण' की चिन्ता एक साथ अभिव्यक्त करते हैं।[20] निराला भी जब अपनी कविताओं में राष्ट्रीय जागरण की बात करते हैं तो हवाला प्राचीन गौरव का ही देते हैं। 'जागो फिर एक बार' को उदाहरण स्वरूप देखा जा सकता है। किन्तु निराला में प्रसाद की अपेक्षा वर्तमान की चेतना अधिक सक्रिय है; अत: वे अपने आपको भुलावा देकर न तो इतिहास में लौटने की बात करते हैं और न ही प्राचीन के ध्वंस पर शोक अभिव्यक्त करते हैं। यह अनायास नहीं है कि प्राचीन के गौरव की बात जिन दो कवियों के यहाँ सर्वाधिक दिखाई पड़ती है, मिथकीय चेतना भी उन्हीं कवियों के साहित्य में मौजूद है। मिथकों के साथ सुविधा यह होती है कि वह समय से भी परे जाकर 'काल' को 'महाकाल' में तब्दील कर देता है। दरअसल छायावादी कवियों ने अतीत का उपयोग वर्तमान की शक्ति अथवा समाधान के रूप में किया है। खासकर सांस्कृतिक मुक्ति के मोर्चे पर यह उनके लिए प्रमुख हथियार है। छायावादी कवि जब राम-रावण, तुलसीदास, शिवाजी - औरंगजेब एवं राजपूती शौर्य आदि मिथकीय गाथाओं का उपयोग अपने साहित्य में करते हैं, तो उनका उद्देश्य सिर्फ अतीत अथवा पौराणिक गाथाओं का चित्रण मात्र नहीं होता है। दरअसल मिथकों के चयन में जो सौन्दर्य चेतना सक्रिय है, उसके मूल में कहीं न कहीं वर्तमान का भाव-बोध भी निहित है। केदारनाथ सिंह का भी मानना है कि - "मिथ काव्य का अखंड उपजीव्य है। प्रत्येक युग पुराने मिथ का नवीन काल्पनिक परिष्कार करके और इस प्रकार उसे नया अर्थ तथा नई व्याख्या देकर अपने जीवन-संघर्षों तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों को कलात्मक रूप देता है। छायावादी काव्य ने 'कामायनी' की नवीन कल्पना करके अपने युग का व्यापक रूप से प्रतिनिधित्व किया है। 'राम की शक्तिपूजा' आदि कृतियों का भी इस प्रतिनिधित्व में अन्यतम योग है।"[21] 'राम की शक्तिपूजा' में राम-रावण के जिस पौराणिक मिथक को आधार बनाया गया है, उसका उद्देश्य राम-रावण की पौराणिक कथा का वर्णन करना मात्र नहीं है। राम एवं रावण लोगों की सामूहिक चेतना में इस प्रकार समाहित हैं कि राम अपनी विविध छवियों के साथ सत् के प्रतीक बन गए हैं जबकि रावण असत् का। इस सामूहिक चेतना के भार को वर्तमान के सन्दर्भों में साधना निश्चित रूप से एक दु:साध्य कार्य है। निराला ने 'राम की शक्तिपूजा' में इस सन्तुलन को बखूबी साधा है। उन्होंने राम-रावण के संघर्ष के प्रचलित सन्दर्भों को सुरक्षित रखते हुए उसे व्यक्ति के अन्तर्मन के संघर्षों से लेकर स्वाधीनता आन्दोलन के संघर्ष तक विस्तार दिया है। वैसे भी निराला अपने प्रिय कवि तुलसीदास की तरह हर सौन्दर्य को सन्तुलन में ही देखना चाहते हैं। तभी अपनी पुत्री सरोज के दिव्य सौन्दर्य का वर्णन करते हुए भी कहते हैं - 'पर बंधा देह के दिव्य बाँध'। पर जिन मिथकों की सामूहिक चेतना में भी पहले से ही अन्तर्विरोध मौजूद हों वहाँ सन्तुलन साधना और भी जोखिम भरा हो जाता है। छायावादी कवि ऐसे मिथकों का भी जोखिम उठाने से नहीं चूके हैं। उदाहरण के लिए जब आप 'तुलसीदास', 'शिवाजी-औरंगजेब' एवं 'राजपूती शौर्य' जैसे मिथकीय प्रकरणों का उपयोग अपने काव्य में करते हैं तो वर्तमान के भाव-बोध के साथ-साथ साम्प्रदायिक चेतना के भी सक्रिय होने का खतरा पैदा हो जाता है।

वैसे भी हिन्दू-मुस्लिम संबंधों की जटिलता नवजागरण के मुख्य अंतर्विरोधों में से एक है। अलगाववादी प्रवृत्ति के प्रभाव में हिन्दू ही नहीं मुस्लिम बुद्धिजीवी भी उतनी ही शिद्दत से जुड़े हुए थे। यह अनायास नहीं है कि जिस इकबाल ने 'सारे जहाँ से अच्छा, हिन्दोस्तां हमारा' जैसा नज्म लिखा वही सबसे पहले पाकिस्तान की माँग करने वाला भी बना। इसीलिए शिवकुमार मिश्र ने हिन्दू-मुस्लिम संबन्धों को इस युग का सबसे प्रमुख अन्तर्विरोध माना है।[22] छायावादी कवि जब उपरोक्त परस्पर विरोधी एवं प्रतिक्रियावादी भावों से लैस मिथकों का उपयोग अपने साहित्य में करते हैं तो निश्चित रूप से वो काल की सीमा का अतिक्रमण कर भाव का तादात्म्य वर्तमान काल से भी बिठाना चाहते हैं। निश्चित रूप से द्वन्द्व की स्थिति में मिथक किसी एक पक्ष की समर्थ अभिव्यक्ति कर सकता है - भाषा एवं अभिव्यक्ति की सीमा से भी परे जाकर। कवि चाहे तो किसी एक पक्ष को प्रबल किए बिना काव्य-युक्तियों के सहारे इच्छित भाव को समर्थ अभिव्यक्ति प्रदान कर सकता है। परन्तु हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों की सामूहिक चेतना इतनी प्रबल है कि सन्तुलन बिगाड़ने के लिए कुछ शब्द भी पर्याप्त होते हैं। फिर मिथक तो अनिवार्य रूप से दोनों समुदायों के लिए संशय का विषय रहे हैं; यह समय-समय पर आए हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों के तनाव में भी ऐतिहासिक रूप से देखा जा सकता है। प्रेमचन्द ने 'कर्बला' की भूमिका में साहित्य में इतिहास के इस दुरुपयोग की ओर संकेत भी किया है। हिन्दी के रचनाकारों के द्वारा भी सम्पूर्ण मध्यकाल को अंधकार युग की तरह देखने की प्रवृत्ति के प्रति प्रेमचन्द ने गहरा क्षोभ व्यक्त किया है।[23]

दूधनाथ सिंह ने तो अपनी किताब 'निराला : आत्महन्ता आस्था' में विस्तार से विश्लेषण किया है कि 'मुसलमान' शब्द का उपयोग मात्र ही हमारी प्रतिक्रियावादी चेतना को अभिव्यक्त करने के लिए पर्याप्त है। खासकर साहित्य, जिसे प्रेमचन्द ने स्वभाव से ही प्रगतिशील बताया है, को इस मायने में वर्तमान एवं अतीत के साथ-साथ भविष्यकामी भी होना चाहिए। पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि पुनरुत्थानवादी भावना भारतीय एवं हिन्दी नवजागरण में भी मौजूद थी, अत: अधिकांश साहित्यकारों ने भी इसे अंगीकार कर लिया। राजनीति में भी इस पुनरुत्थानवादी चेतना का पर्याप्त उपयोग हो रहा था। तभी, साझी संस्कृति एवं भाषा की वकालत करने वाले महात्मा गाँधी के आचार व्यवहार को भी मुस्लिम समुदाय संशय की दृष्टि से देखते थे। अली-बन्धुओं ने तो कांग्रेस को साफ-साफ मुसलमानों को पराधीन बनाने वाली संस्था तक कह डाला था। ऐसे में उपरोक्त संवेदनशील मिथकों का उपयोग मात्र ही विरोधी सामूहिक चेतना को सक्रिय करने के लिए पर्याप्त है। इस मायने में छायावादी कवियों ने कोई प्रगतिशील मानदंड स्थापित नहीं किया। बल्कि मिथकों के माध्यम से हिन्दूवादी चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति कर, इस द्वन्द्व को हवा ही दी है।

इस प्रकार छायावादी मिथकों के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि उन्होंने जिन मिथकों का उपयोग किया वे मुख्य रूप से सांस्कृतिक मुक्ति के ही वाहक रहे हैं। हालाँकि, छायावादी कवियों ने मिथकों का नवीनीकरण कर उन्हें आधुनिक सन्दर्भ भी प्रदान किया है। तभी कामायनी में श्रद्धा एवं मनु की कथा की आधुनिकता के सन्दर्भ में केदारनाथ सिंह लिखते हैं - "प्रसाद ने अपनी दैवी कल्पना के स्पर्श से इस मिथ को नया आधुनिक रूप दे दिया है। उसमें अधिक से अधिक आधुनिकता लाने के लिए कवि ने बीच-बीच में आधुनिक मिथ का भी प्रयोग किया है, जैसे 'स्वप्न' और 'संघर्ष' सर्गों में।"[24]

पर इन्हीं सर्गों का उल्लेख करते हुए रमेश कुन्तल मेघ मिथकों की सामाजिक यथार्थता पर भी प्रश्नचिह्न खड़ा कर देते हैं। उन्हें लगता है कि कई दफा मिथक सामाजिक यथार्थ से पलायन का भी माध्यम बन सकते हैं। रमेशकुन्तल मेघ के अनुसार - "मिथक से स्वप्न में छलाँग लगाने में प्रसाद ने

सामाजिक यथार्थता का अतिक्रमण किया है।"[25] पर यहाँ भी, समस्त छायावादी कवियों में जनभावनाओं के सर्वाधिक करीब निराला के ही मिथक हैं। निराला एवं प्रसाद के अतिरिक्त महादेवी तथा पन्त तो मिथक की अपार काव्यात्मक शक्ति का उपयोग नहीं के बराबर करते हैं। जहाँ कहीं ऐसा प्रयास किया गया है, उसकी ओर संकेत करते हुए केदारनाथ सिंह लिखते हैं – "पन्त आदि की कविताओं में भी लोक–कथाओं, परियों की कहानियों तथा निजंधरी कथाओं का उपयोग कहीं–कहीं मिल जाता है – पर अधिकतर उपमा, उत्प्रेक्षा या रूपक के रूप में।[26]

ध्यान देने की बात यह है कि काव्य में मिथक की सार्थकता तभी है जब उसका सृजनात्मक उपयोग समकालीन संदर्भ में किया गया हो। छायावादी कवियों ने मिथक के माध्यम से जिन चिंताओं की काव्यात्मक अभिव्यक्ति की है, उसका संतुलन नवजागरण की हिन्दूवादी धारणाओं की ओर झुका हुआ है। संतुलन की पुरजोर वकालत करने वाले निराला भी इस मोर्चे पर 'राम' और 'तुलसी' के सहारे ही अपनी नैया पार लगाना चाहते हैं।

संदर्भ :

1. नयी कविता के मिथक–काव्य, रश्मि कुमार, पृष्ठ संख्या–12
2. कामायनी: मूल्यांकन और मूल्यांकन, सं.–इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 127
3. वही, पृष्ठ 127–128
4. कला का जोखिम, निर्मल वर्मा, पृष्ठ 15
5. आधुनिक हिन्दी आलोचना के बीज शब्द, बच्चन सिंह, पृष्ठ 89
6. वही, पृष्ठ 89
7. कामायनी: मूल्यांकन और मूल्यांकन, सं.–इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 131–32
8. वही, पृष्ठ 129
9. वही, पृष्ठ 21
10. कला का जोखिम, निर्मल वर्मा, पृष्ठ 21
11. वहीं, पृष्ठ 21
12. कल्पना और छायावाद, केदारनाथ सिंह, पृष्ठ 125
13. A History of Indian literature 1911-1956, Ed. Sisir Kumar Das, P. 123-149
14. Ibid, P. 112-118
15. Ibid, P. 114
16. आधुनिक भारत, सुमित सरकार, पृष्ठ 94–95
17. वही, पृष्ठ 95
18. वही, पृष्ठ 108
19. A History of Indian literature 1911-1956, Ed. Sisir Kumar Das, P. 97
20. स्कन्दगुप्त, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 106
21. कल्पना और छायावाद, केदारनाथ सिंह, पृष्ठ 126–127
22. निराला: एक पुनर्मूल्यांकन, संपादक: डॉ. ए. अरविंदाक्षन, पृष्ठ 14
23. A History of Indian literature 1911-1956, , P. 117
24. कल्पना और छायावाद, केदारनाथ सिंह, पृष्ठ 126
25. कामायनी: मूल्यांकन और मूल्यांकन, सं.–इन्द्रनाथ मदान, पृष्ठ 134
26. कल्पना और छायावाद, केदारनाथ सिंह, पृष्ठ 126

❑❑❑

महादेवी का प्रतीक-विधान

❍ मधु मंजरी

कविता में प्रतीकों का प्रयोग एक निश्चित प्रयोजन के अन्तर्गत होता है जिससे अर्थ-बोध में वैशिष्ट्य आता है। इस दृष्टि से छायावादी काव्य प्रतीक बहुल काव्य-धारा है। प्रतीक ऐसे शब्द हैं जो अपने अभिधार्थ के अतिरिक्त अर्थ व्यंजित करते हैं। जो सर्वथा अनिवर्चनीय है उसे केवल व्यंजित किया जा सकता है, इसलिए रहस्यवाद व्यंजना प्रधान अथवा प्रतीकवादी काव्य होता है। 'मोम सा तन घुल चुका अब दीप सा मन जल चुका' छायावादी कवयित्री महादेवी की इस पंक्ति में उनके भाव प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं। बिम्ब, प्रतीक संकेत अथवा इशारों में अपनी बात कहना छायावाद की अन्यतम प्रवृत्ति रही है, रहस्यवाद का मुख्य लक्षण है। महादेवी कहती हैं-

"अब कहो सन्देश है क्या
और ज्वाल विशेष है क्या
अग्निपथ के पार चन्दन चाँदनी का देश है क्या?
एक इंगित के लिए शत बार प्राण मचल चुका है।"

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है कि छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं। इस कथन का एक तात्पर्य यह भी है कि रहस्यवादी काव्य परम्परा के अनुरूप उनकी अनुभूति एक सुनिश्चित प्रतीक योजना के सहारे व्यक्त हुई है। रहस्यवादियों के प्रतीक न केवल उनके अन्त:प्रज्ञा जनित सूक्ष्म भावनात्मक स्थितियों को सम्प्रेषणीय बनाते हैं, बल्कि उनके आत्म-बोध को गंभीर और विशिष्ट बनाते हैं।

नामवर सिंह मानते हैं कि 'रहस्यभावना प्राचीन है, किंतु रहस्यवाद आधुनिक है और हिन्दी में छायावादी काव्यान्दोलन से सम्बद्ध है।'

रहस्यवादी कवि इस प्रत्यक्ष जगत के द्वारा जो सदैव परोक्ष की ओर संकेत करता रहता है, उसका अर्थ यह है कि वह जगत को उस परोक्ष सत्ता का उपलक्षण अथवा प्रतीक मानता है। रहस्यवादी कवि के लिए प्रकृति और मानव जगत की सार्थकता अपने आप नहीं बल्कि उस सत्य में है जिसकी ओर वे संकेत करते हैं। फलत: रहस्यवादी कवि अनिवार्यत: प्रतीकवादी होता है। उसके संसार की सभी वस्तुएँ प्रतीक हैं। इस धारणा को वह तर्क संगत परिणति तक ले जाकर इस प्रकार कहता है कि उस परम तत्त्व को प्रतीकों के ही माध्यम से व्यक्त किया जा सकता है।

छायावाद 'स्वानुभूति की विकृति' है। उसमें स्व के इस आग्रह के मूल में अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य की चेतना है। अत: उनके अपमानों तथा लाक्षणिक प्रतीकों के चयन में परम्परा के अनुगमन के स्थान

पर स्वच्छंदता की प्रवृत्ति स्वाभाविक है। रहस्यवाद के भीतर रहने के बावजूद महादेवी काव्य की प्रतीक योजना में यह स्वच्छंदता दिखाई देती है, जो अधिक काव्योपयोगी है।

डॉ. कुमार विमल के अनुसार प्रायः छायावादी कवियों द्वारा उनकी प्रारंभिक कविताओं में रचित बिम्ब बाद में एक ही अर्थ में निरन्तर प्रयुक्त हो कर प्रतीक के रूप में परिणत हो गए हैं। बहुधा प्रतीकात्मक उपमान भी छायावादी कवियों की विभिन्न कविताओं में निहित भावधारा की अन्तः संगति को व्यक्त करते हैं। रहस्यवाद की सीमा रेखा के अंतर्गत ही रहनेवाली महादेवी के गीतों में ऐसी सुसंगति स्वभावतः अधिक है। "इनकी प्रारंभिक कविताओं में प्रयुक्त दीप, फूल, झंझा, निर्झर, आकाश, कंटक, नीड़ इत्यादि अप्रस्तुत इनकी बाद की रचनाओं में बार-बार प्रयुक्त हो कर प्रतीकों की एकार्थ व्यंजकता पा गए हैं। वस्तुतः भाषा में प्रतीकों के निर्माण की एक प्रक्रिया यह भी है कि किसी समर्थ कवि द्वारा निरन्तर प्रयुक्त होने के बाद कोई बिम्ब प्रतीक का रूप धारण कर लेता है।

एक प्रतीक व्यवस्था के प्रति महादेवी जी का रूझान उनके काव्य संग्रहों के नाम से भी स्पष्ट हो जाता है। 'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा' और 'सांध्यगीत' दिन के यामों के विकास का संकेत करते हैं। इसीलिए इनके संकलन का यामा नाम दिया गया है। इसी क्रम में स्वाभाविक रूप में आती है 'दीपशिखा'। इसके पहले भी दीपक गीतों की रचना उन्होने की है और दीपशिखा तक उनकी भावधारा के विकास को संकेतित करने में दीपक का प्रतीक भलीभाँति सफल हुआ है।

जगदीश गुप्त के अनुसार "दीपक का प्रतीक महादेवी के काव्य का जीवन-व्यापी आधार बन जाता है। 'नीहार' में उसका अनेक रूपों में निरूपण हुआ है। महादेवी के लिए दीपक एक सजीव प्रतीक है जिसको सम्बोधित कर के वे अपने अकेलेपन को दूर करती हैं -

"मौन में सोता है संगीत, लजीले मेरे छोटे दीप।
सिखा दो ना नेही की रीति, अनोखे मेरे नेही दीप।"

महादेवी के काव्य में दीपक व्यक्ति की अंतस्साधना का प्रतीक बन गया है, यद्यपि आरंभ में प्रेमभाव की अभिव्यक्ति के लिए दीपक और शलभ के परम्परागत रूपक का उपयोग ही उन्होंने किया है- "शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ" या "शलभ मैं शापमय वर हूँ, किसी का दीप निष्ठुर हूँ" लेकिन इसी क्रम में वह दीपक की प्रतीकात्मक व्यंजकता की उपलब्धि भी करती हैं :- "रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ।" साधना के प्रतीक रूप में दीपक का प्रथमतः सार्थक उपयोग उनके इस गीत में व्यक्त हुआ है-

"मधुर मधुर मेरे दीपक जल,
युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर।
तू जल-जल जितना होता क्षय,
वह समीप आता छलनामय,

मधुर मिलन में मिट जाना तू,
उसकी उज्ज्वल स्मित में घुल खिल।
मदिर-मदिर मेरे दीपक जल।

इस अंतर्मुख साधना का आत्म-विस्तार करते हुए वह कहती है, "सब बुझे दीपक जला लूँ।" उसके लिए दीपक राग का इस रूप में काव्य रचना का लक्ष्य सब की आत्माओं में एक चैतन्य का जागरण है। यह संसार की विषम परिस्थितियों के अंधकार में करुणा की, मानवीय संवेदनशीलता की, अंतः शक्ति की उत्प्रेरणा है। उनका दीपक इतना सार्थक और महत्त्वपूर्ण है कि वह कवयित्री को अंधकार को जीत लेने का दृढ़ संकल्प प्रदान करता है। इसीलिए अन्य काव्य प्रतीकों में उनका दीपक जीवन व्यापी प्रेरणा का श्रोत बनकर 'यामा' के बाद दीपशिखा तक पहुँच जाता है।

महादेवी के दीपक गीतों की विशेषता यह है कि इस प्रतीक के माध्यम से वह केवल निर्लिप्त ऐकांतिक साधना की भावभूमि ही प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि जीवन संघर्ष में अविचलित रहने वाली प्राणशक्ति का उद्बोधन भी करती हैं-

"दीप मेरे जल अकम्पित
घुल अचंचल।
साथ अक्षय ज्वाल का तू ले चला अनमोल सम्बल।"

यह कबीर के निर्भय-निर्गुण गाने की सी भावदशा है जो आत्मदीप के लिए चुनौती भरे शब्दों में व्यक्त हुई है -

"मूक प्राणों में व्यथा की स्नेह उज्ज्वल भारती ले
मिल, अरे, बढ़, आ रहे यदि प्रलय झंझावत।
कौन भय की बात?
पूछता क्यों शेष कितनी रात?

यह साधना ऐकांतिक व्यक्ति साधना नहीं रह जाती, यह समष्टि के कल्याण को लक्षित करती है- यह स्निग्ध लौ की तूलिका में सबकी उज्ज्वल दाह आंकने की साधना बन जाती है। समष्टिगत प्रकाश के उदय तक जगत के विषम स्थितियों के तिमिर से संघर्ष ही व्यष्टि की साधना है-

"यह मंदिर का दीप, इसे नीरव जलने दो
झंझा है दिग्भ्रांत रात की मूर्च्छा गहरी
आज पुजारी बने ज्योति का यह लघु प्रहरी
जब तक लौटे दिन की हलचल
तब तक उयह जागेगा प्रतिपल
रेखाओं में भर आभाजल
दूत साँझ का इसे प्रभाती तक चलने दो।

दीपक का बुझना और निर्वाण पाना भी उन्हें नितांत मौन नहीं कर पाता। वे इस स्थिति में भी कुछ न कुछ कहती रहती हैं जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि दीपक उनके अंतर्संवाद का वाहक है और वह संवाद निरंतर होता रहता है-

"चिता है तेरी प्यारे मीत,
वियोगी मेरे बुझते दीप।"

कहीं कहीं वे दीपक के सन्दर्भ में सृष्टि के रचनाकार की निर्ममता को भी याद करने लगती हैं।

ऐसे स्थल विशेष महत्त्वपूर्ण हो उठते हैं।

"चिन्ता क्या है रे निर्मम बुझ जाए दीपक मेरा।
हो जाएगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा।"

इस प्रकार दीपक के प्रतीक के काव्यात्मक उपयोग में महादेवी जी ने मौलिक कल्पनाओं को सफलता पूर्वक भास्वर किया है।

ऐसे ही सफल प्रयोग 'पथ' और 'तरी' के प्रतीक विधान में दृष्टिगत होता है। पथ यात्रा द्योतक प्रतीक है, महादेवी काव्य में यह साधना रत जीवन यात्रा की अनवरत गतिशीलता का प्रतीक बन गया है। इस साधना में जब वह सबके क्रंदन-स्पंदन की पहचान कर लेती है तो पथ यानी साधना से अलग सिद्धि की अपेक्षा ही नहीं रह जाती- पथ ही निर्वाण बन जाता है। ऐसी स्थिति में संकल्प की दृढ़ता एवं निर्भयता एक वरेण्य जीवन-मूल्य बन जाती है-

"अन्य होंगे चरण हारे,
और हैं जो लौटते दे शूल को संकल्प सारे

दु:ख व्रती निर्माण उन्मद,
यह अमरता नापते पद,
बाँध देंगे अंक संसृति से तिमिर में स्वर्ण-बेला,
पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला।"

पथ के सदृश नदी या नौका के बिंब भी जीवन यात्रा से संबंधित हैं। उनके संघर्षात्मक संदर्भो के साथ तरी या नौका का सार्थक प्रतीकात्मक प्रयोग महादेवी काव्य की विशेषता है। उदाहरणार्थ :

"तरी को ले जाओ मँझधार,
डूब कर हो जाओगे पार,
विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुँचा देगा उस पार।"

माया दर्पण तो रहस्यवादियों का प्रसिद्ध प्रतीक रहा ही है इसकी काव्यात्मक छटा भी महादेवी की गीति-कविता में निखर आई है-

"रहे खेलते आँख मिचौली,
प्रिय जिसके परदे में 'मैं' तुम,
टूट गया वह दर्पण निर्मम।

विषम स्थितियों के लिए झंझा का प्रतीक दीपक और तरी दोनों के सन्दर्भ में सटीक है और जीवन संघर्ष के रूपक को साकार करता है। महादेवी के काव्य में, छायावादी प्रवृत्ति के अनुरूप प्रकृति गृहीत लाक्षणिक प्रतीकों की बहुलता है- तम, प्रकाश, रश्मि नीरद-माला, झंझा, संध्या, प्रभात, तुहिनकण, निर्झरिणी, नभ, समीर आदि की वस्तु सत्ता से वह आत्म स्थिति की व्यंजना करती हैं। इस प्रकार महादेवी का काव्य बिम्बधर्मी लाक्षणिक प्रतीकों के वैभव से सम्पन्न है।

महादेवी की प्रतीक योजना के चार स्रोत हैं- वेद और उपनिषद के प्राचीन प्रतीक, सन्त काव्य के प्रतीक, छायावादी काव्य के अपरिचित प्रतीक, और अप्रस्तुतों के आवर्तक प्रयोग से स्वनिर्मित प्रतीक।

प्रथम प्रकार के प्रतीकों में सूर्य, शतदल, दिवा, निशि, सम्पुट आदि प्रमुख हैं। द्वितीय प्रकार के प्रतीकों में पिंजर, पंछी, सेज, नदी, नाव, आदि उल्लेखनीय हैं। तीसरी कोटि के प्रतीकों में कली, पवन, भ्रमर, वीणा झंकार, मेघ, क्षितिज, यामिनी, अनन्त इत्यादि ध्यातव्य हैं। चौथी कोटि के प्रतीकों में धन, झंझा, दीपक, सांध्यगगन, इन्द्रधनुष, इत्यादि गिने जा सकते हैं।

रहस्यात्मकता की दृष्टि से डॉ. कुमार विमल ने महादेवी के काव्य में प्रयुक्त प्रतीकों को तीन वर्गों में रखा है–यात्रा द्योतक प्रतीक, प्रेमद्योतक प्रतीक और यतिभाव द्योतक प्रतीक। 'पथ' और 'तरी' प्रथम कोटि के प्रसिद्ध आद्य प्रतीक रहे हैं, जिनका सार्थक उपयोग महादेवी काव्य में हुआ है। वर्ती, लौ, स्नेह, सपना, अभिसार प्रेम द्योतक प्रतीक हैं। यति भाव द्योतक अर्थात् अन्तस्साधना मूर्त करने वाले प्रतीक हैं–मंदिर, पुजारी, नीराजन और दीपक। इनमें दीपक के प्रतीक जीवन संघर्ष में आत्म शक्ति की दृढ़ता, और संकल्प के परिचायक हैं, जो व्यष्टि और समष्टि के सामंजस्य औरे जीवन–मूल्यों की अभिव्यक्ति के सन्दर्भ में, उनके काव्यात्मक उपयोग में महादेवी जी को पूरी सफलता मिली है। महादेवी जी ने परम्परागत प्रतीकों में भी 'अपनी अनुभूति की रमणीय कल्पना' से नवीन अर्थ दीप्ति का संचार किया है और दीपशिखा मानों उनकी गीति कविता का प्रतीक बन गई है। अंग्रेजी के रोमांटिक कवि शेली की कविता के बारे में कहा गया है कि वह एक साथ 'क्लासिकल' और 'मॉडर्न' दोनों है। यह संतुलन कम ही कवियों में पाया जाता है। हिन्दी में महादेवी वर्मा इसका अन्यतम उदाहरण हैं।

प्रतीक का आधार सादृश्य या साधर्म्य न होकर सूक्ष्म एवं गम्भीर भाव जगाने की निहित शक्ति है। लेकिन छायावादी कवियों की विशेषत: महादेवी जी की विशेषता यह है कि उन्होनें प्रतीकों को बिम्बधर्मिता से सम्पन्न कर 'काव्योपयोगी' बनाया है। प्रतीक विधान उनकी काव्य शैली, 'चित्रभाषा शैली' की केन्द्रीयता तो नहीं, फिर भी एक प्रमुख विशेषता है जो अपनी पारभासकता से अधिक अभिव्यंजक और हृदयाग्राही हो गया है।

संदर्भ :

1. आधुनिक साहित्य की प्रवृतियाँ, डॉ. नामवर सिंह, 2008, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. छायावाद का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन, 2001, डॉ. कुमार विमल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. महादेवी वर्मा, जगदीश गुप्त, 2008, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
4. महादेवी, दूधनाथ सिंह, 2009, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
5. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, 2003, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली।
6. The English Critical Tradition, S.Ramaswami, V.S.Setraman, 1977, Macmillan Company of India.

❑❑❑

छायावादी काव्य में संगीत-तत्त्व

❍ अरविंद कुमार

छायावादी काव्य में संगीत तत्त्वों का विलक्षण प्रयोग भावाभिव्यंजना तथा बोधगम्यता में सहायक रहा है। जहाँ संगीत तत्त्व, वाद्ययन्त्र एवं नृत्य के उल्लेख छायावादी काव्य की संगीतात्मकता को पुष्ट करते हैं। वहाँ काव्यों से स्वत: अभिव्यंजित संगीत तत्त्व भी इनकी संगीतात्मकता के द्योतक हैं। गेयता, लयात्मकता, भावानुरूप शब्दावली, तुक योजना, मात्रिक और मुक्त छन्दों का प्रयोग तथा नाद, श्रुति, गान, आलाप, तान, राग, लय, ताल आदि सांगीतिक शब्दावली और गायन-शैलियों की योजना राग-ताल-निबद्धता आदि के वैशिष्ट्य के कारण छायावादी काव्य की संगीतात्मकता व्यक्त होती है। इस काल में अन्त: और बाह्य संगीत का सौन्दर्यात्मक संयोजन है। अत: संगीत छायावादी काव्य का अभिन्न अंग है।

छायावादी काव्य में गायन, वादन और नृत्य का त्रिवेणी संगम स्वानुभूति का अभिव्यंजक, रसानुभूति में सहायक, काव्योत्कर्षक, प्रभावोत्पादक एवं संगीत तत्वों की विशिष्ट योजना का द्योतक है। काव्य की स्निग्धता, प्रवाह, चित्रात्मकता तथा भावबोधगम्यता में संगीत तत्व मुखरित है। अत: प्रस्तुत आलेख में उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रखकर छायावादी काव्य में संगीत-तत्त्व के अनुशीलन का प्रयास किया गया है। इस आालेख का मुख्य उद्देश्य छायावादी काव्य में आए हुए संगीत तत्वों को उजागर करना है।

छायावाद भारतीय चेतना के विशिष्ट तत्वों से संबंधित एक ऐसा कलात्मक सृजन है, जिसमें मानव-मूल्यों को सर्वोपरि रखा गया है। इसमें अध्यात्मवाद, मानवतावाद, रहस्यवाद, दु:खवाद, व्यक्तिवाद इत्यादि एक साथ व्यापक और गंभीर रूप से उपस्थित हैं। इस धारा के काव्य का सहजात गुण एवं अन्तरंग तत्त्व 'संगीत' है। लय की प्रवाहमयता तो इसमें सर्वत्र व्याप्त है। इसमें संगीत का नैसर्गिक समावेश जहाँ एक ओर रसानुभूत होता है, वहाँ अलौकिक आनन्द की भी अनुभूति होती है। इसकी सजीवता, लोकप्रियता, भावाभिव्यंजकता, स्वानुभूति, विवृति-क्षमता, नादात्मक अनुरणनात्मकता, नवीनता आदि का आधार संगीत ही है।

संगीत की आत्मा से छायावादी मनीषी परिचित थे। इन्हें काव्य रस के साथ संगीत तत्त्वों का भी ज्ञान था। रस के अनुरूप स्वर और राग भावाव्यिक्ति के लिए संगीतिक शब्दावली, वाद्ययन्त्रों का प्रयोग तथा नृत्य भेदों का उल्लेख इनके संगीत ज्ञान का द्योतक है। इस काव्य में अन्त: और बाह्य संगीत की अनुपमेय छटा बरबस आकर्षित करती है। संगीतिक लय, संगीतात्मक प्रतीक ध्वन्यात्मक शब्द, सरस पदावली आदि की योजना में यह काव्य उत्कृष्ट है।

संगीत की दृष्टि से छायावादी काव्य विशिष्ट है। काव्य में जहाँ लालित्य, सरसता, माधुर्य, प्रवाह एवं लयात्मकता आदि संगीतोपयागी विशिषताएँ विद्यमान है, वहीं भाषा और शैली भी संगीतानुकूल है। इस काव्य में संगीत के लिए उपयुक्त शब्द चयन, वर्ण-संगीत एवं शब्द संगीत की अवतारणा भी दर्शनीय है। संगीत, नाद, श्रुति, स्वर, ग्राम, मूर्च्छना, आलाप, तान, सप्तक, आरोह-अवरोह, मीड़ आदि सांगीतिक

तत्वों का प्रयोग कहीं प्रतीक रूप से तो कहीं सांकेतिक अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए किया गया है। साथ-ही-साथ सांगीतिक वातावरण निर्माण हेतु भी प्रयुक्त किया गया है।

सांगीतिक शब्दावली - छायावादी काल में संगीतिक शब्दों का प्रयोग भावाभिव्यक्ति के लिए किया गया है जो संगीत-तत्त्वों का अभिव्यंजक है।

संगीत - छायावादी काल में 'संगीत' शब्द का उल्लेख करके गायन-वादन और नृत्य तीनों अंगों का संकेत हुआ है। यथा-

"मिलन मुखर उस सोने के संगीत राज्य में
मैं विहार करता था।"[1]

× × × ×

"गरज-गरज घन, अन्धकार में गा अपने संगीत"[2]
"सिखाने जीवन का संगीत
सभी तुम आये थे इस पार।"[3]
"जयति महासंगीत ! विश्व-वीणा जिसकी ध्वनि गाती है।"[4]

गान- इस शब्द के प्रयोग से सांगीतिक वातावरण की सृष्टि हुई है एवं संगीत तालों की अभिव्यंजना भी। यथा -

"एक ही आशा में सब प्राण
बाँध माँ, तन्त्री के-से गान।"[5]

× × × ×

"सरल तान, नवन गान
नव-नव स्वर के वितान।"[6]

× × × ×

"जहाँ के निर्झर नीरव गान"
"सुना करते अमरत्व प्रदान।"[7]

गायक - संगीत प्रस्तुत कर्त्ता के रूप में इस शब्द का प्रयोग हुआ है। यथा-

"इस जादूगरनी वीणा पर
गा लेने दो क्षण भर गायक"[8]

× × × ×

"तन्द्रिल निशीथ में ले आये
गायक तुम अपनी अगर बीन।
प्राणों में भरने स्वर नवीन।"[9]

नाद - नाद तत्त्व भी छायावादी काव्य में अभिव्यंजित होता है; यथा-

"करती सरस्वती मधुर नाद
बहती थी श्यामल घाटी में, निर्लिप्त भाव-सी अप्रमाद"[10]

× × × ×
"नाद ही जीवन का उन्मेष
नाद ही सृष्टि, नाद ही वेद।"[11]
× × × ×
"आरपार के बिना तार के
नाद अनाहत।"[12]

छायावादी काव्य में वर्ण-मैत्री के आधार पर नाद स्वतः ही ध्वनित हो जाता है; यथा-

"मानस सागर के तट पर
क्यों लोल लहर की घातें,
कल-कल ध्वनि से हैं कहती
कुछ विस्मृत बीती बातें।"[13]
× × × ×
"आज प्रौढ़ जीवन सन्ध्यातप
सागर की लहरों से छप् छप्।"[14]
"मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि,
अलिगुंजित पद्मों की किंकिणि
भर पद भक्ति में अलस तरंगिणि।"[15]
× × × ×
"गरज-गरज घन अन्धकार में गा अपने संगीत
बन्धु, वे बाधा-बन्ध-विहीन।"[16]

उपर्युक्त उद्धरण में 'कल-कल ध्वनि', 'छप्-छप्', नुपूर ध्वनि और 'गरज-गरज घन' से 'नाद' ध्वनित होता है।

श्रुति - 'श्रुति' का प्रयोग छायावादी काव्य में द्रष्टव्य है; यथा-

"फूट-फूट पड़ते आकुल स्वर
तीव्र मधुर श्रुतियों में झर-झर।"[17]

स्वर - छायावादी काव्य में 'स्वर' का प्रयोग प्रचुर मात्रा में हुआ है। यह शब्द कहीं उपमान रूप में तो कहीं शुद्ध सांगीतिक अर्थ में प्रयुक्त है; यथा-

"वही घटाएँ जहाँ कितनी किरणों को चूम,
कोमल निषाद भर
उठे वे कितने स्वर।"[18]

उपर्युक्त उद्धरण में स्वर नाम 'कोमल निषाद' भी आया है।

"जब मुरली का मृदु पंचम स्वर
कर जाता मन पुलकित अस्थिर
कम्पित हो उठता सुख से भर
नव लतिका सा गात।"[19]

× × × ×

"मौन आज क्यों वीणा के स्वर"[20]

× × × ×

"प्रेम वेणु की स्वर-लहरी में जीवन-गीत सुना जाओ।"[21]

'स्वर' छायावादी काव्य में कहीं-कहीं स्वत: ही आभासित होता है; यथा-

"कंकण क्वणित रणित नुपूर थे
हिलते थे छाती पर हार
मुखरित था कलरव, गीतों में
स्वर लय का होता अभिसार।"[22]

× × × ×

"झूम-झूम मृदु गरज-गरज घनघोर।
राग-अमर ! अम्बर में भर निज शेर।।"[23]

उपर्युक्त पद में 'क्वणित', 'रंजित', 'गरज-गरज' आदि में स्वर तत्त्व ध्वनित होता है।

ग्राम - इस शब्द का भी प्रयोग छायावादी काव्य में हुआ है। यह शब्द स्वर समूह का द्योतक है; यथा-

"हे आम्र विहग
तुम ताम्र सुभग
नव पर्णों में
छिपकर, उड़ेले कर्णों में
मंजरित मधुर
स्वर-ग्राम प्रचुर।"[24]

× × × ×

"सुमन में संकेत-लिपि"
चंचल विहग स्वर-ग्राम जिसके।"[25]

मूर्च्छना - इस शब्द का प्रयोग भावों की अभिव्यंजना में किया गया है; यथा -

"मेरी साँझ में आरोह
उर अवरोह का संचार
प्राणों में रही घिर घूमती चिर मूर्च्छना सुकुमारी।"[26]

× × × × ×

"उनकी प्रिय संगीत मुग्धकर स्वर लहरी में
कम्पित श्रुति-मूर्च्छना हृदय को करती तन्मय।"[27]

आरोह-अवरोह - भावों के उतार-चढ़ाव की अभिव्यक्ति में संगीत-तत्त्व आरोह-अवरोह का

प्रयोग किया गया है; यथा-

"स्वप्न क्यों अवरोह में, आरोह में दुख गान वंशी,
गूँजती क्यों प्राण वंशी ?[28]

× × × ×

पंख पर आरोह के चिर सत्य के उपहार घूमें
पुलिन या अवरोह के रस-रूप-रंग के ज्वार झूमे।"[29]

सप्तक - सप्तक का उल्लेख छायावादी काव्य में हुआ है; यथा-

"शिर में बहे रुधिर बन गीत
लोग श्रम सप्तक हो लय-बद्ध"[30]

मीड़ - छायावादी काव्य में 'मीड़' का प्रयोग हृदय की तड़पन और कसक की अभिव्यक्ति के लिए तथा काव्य में चमत्कार उत्पन्न करने के लिए किया गया है; यथा-

"आने दो मीठी मीड़ों से नूपुर की झनकार रही।"[31]

आलाप - जब राग के स्वरों का विस्तार धीमी गति में ठहरते हुए किया जाता है, तब उसे आलाप कहते हैं। छायावादी काव्य में सांगीतिक अर्थ में ही 'आलाप' का प्रयोग किया गया है; यथा-

"सूर्य-चन्द्र में वचन
मन्द-मन्द पवन तुम्हारा आलाप है।"[32]

× × × × ×

नहीं बहती उसके अर्थों में कोई वीणा
नहीं होता कोई अनुराग-राग-आलाप।"[33]

तान - छायावादी काव्य में 'तान' भावाभिव्यंजक एवं चमत्कारोत्पादक है। इस शब्द का प्रयोग सांगीतिक वातावरण की सृष्टि के लिए और कहीं उपमान और प्रतीक रूप में किया गया है; यथा-

"बह रही है सरस तान-तरंगिनी।
बज रही वीणा तुम्हारी संगिनी"[34]

× × × × ×

"जगत-उर की गत अभिलाषा
शिथिल तंत्री की सोई तान।"[35]

× × × ×

"वे आये चुपचाप सुनाने
तब मधुमय मुरली की तान।"[36]
बीन बन रोम-रोम के तार
हृदय में भरते स्वर्गिक तान"[37]

× × × ×

"तब पुलिनों पार बैठि मनुज मनमान
सुनत अनोखी तब तरंग की तान।"[38]

उपर्युक्त उदाहरणों में 'तान' शब्द का सार्थक प्रयोग हुआ है। यह भावोत्कर्ष का सार्थक अभिव्यजंक है।

राग-रागिनी - कवि ने राग-रागिनी का उल्लेख कहीं प्रतीक के रूप में और कही सांकेतिक अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए किया है। कवि ने आह्लाद विषादपरक स्वानुभूतियों को राग-रागिनियों के माध्यम से साकार किया है; यथा-

"कोकिला कलित कण्ठ प्रीति राग गाओ आओ
वेगी प्रानप्यारे नेक कण्ठ सो लगाओ तो"[39]

× × × ×

"इस करुणा कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती,
क्यों हाहाकार स्वरों में
वेदना असीम गरजती।"[40]

× × × ×

"राग-साधना करो मधुर
उर-उर के अखिल मिला सुर,
प्रतिध्वनित हो राग
हृदय से, रोओं के द्वारों से।"[41]

× × × ×

"रजनि न मेरी उर-कम्पन से
आज बजेगी विरह-रागिनी"[42]

× × × ×

"क्या गाऊँ ? माँ ! क्या गाऊँ ?
गूँज रही है जहाँ राग-रागिनियाँ,
गाती हैं किन्नरिया- कितनी परियाँ
कितनी पंचदशी कामिनियाँ
वहाँ एक यह लेकर वीणा दीन
तन्त्री क्षीण नहीं जिसमें कोई आकार नवीन
रुद्ध कण्ठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊँ ?
माँ क्या गाऊँ।"[43]

राग-रागिनियों का नामोल्लेख : छायावादी काव्य में राग-रगिनयों का नामोल्लेख सांगीतिक वातावरण की सृष्टि और भावाभिव्यक्ति में सहायक के रूप में हुआ है।

"काँपा कोमलता पर सस्वर

ज्यों मालकोश नव वीणा पर"[44]

× × × ×

पैंगे भर पवन कुशल
गाती मल्लार"[45]

× × × ×

किसलिए हर साँस तम में
सजल दीपक राग गाती है।"[46]

× × × ×

प्राणों के चल सुख से गुंजित
मद को पी गाते जन बिहाग"

× × × ×

"छायानट छवि-परदे में
सम्मोहन वेणु बजाता"[48]

छायावादी काव्य में मुख्य रूप से विहाग, छायानट, पहाड़ी, भैरवी, दीपक, मल्लार, मौरव, मालकोश, देना, गैरी, बहार, यमन आदि रागों का नाम स्पष्ट रूप से आया है, जो सांगीतिक तत्त्वों का द्योतक है, साथ-ही-साथ विविध भावों के अभिव्यक्ति में सहायक भी है।

लय – लय संगीत का प्रमुख तत्त्व है, जिसका उल्लेख भावों की सहज अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है; यथा-

"नव गति, नव लय, ताल छन्द नव,
नवल कण्ठ, नव जलद-मन्द्र रव"[49]

× × × ×

"लय में मेरा चिर करुण घने
कम्पन में सपनों का स्पन्दन।"[50]

लय की प्रवाहमयता छायावादी काव्य में आद्यंत बनी हुई है। इस काव्यधारा में लय के विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय के दर्शन पगे-पगे होता है। लयात्मकता के कारण ही यह काव्य जन-जन में लोकप्रिय हुआ।

ताल : 'ताल' लय को नापने का पैमाना है। इसका उपयोग छायावादी काव्य में प्रचुर मात्रा में लिया गया है। यथा-

"झूम-झूम नाचते मुग्ध तरु-लता ताल पर।"[51]

× × × × × ×

"गर्जन के द्रुत तानों पर

चपला का बेसुध नर्तन"[52]
"गुनगुनाए जा धुन सुनाए जा
कल जो है मरना, तू कलपाये जा
ताल से जो तुला, रहेगा स्वर सुधर।"[53]

छायावादी काव्य में 'ताल' का प्रयोग साभिप्राय हुआ है। कहीं प्रतीक विधान में तो कहीं सांगीतिक वातावरण की सर्जना के लिए। कहीं-कहीं तालों का नामोल्लेख भी हुआ है; यथा-

"नाचो रूद्रताल।"[54]

इस काव्य के छंदों का अवलोकन करने से ताल का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है; यथा -

"सखी बसन्त आया
झपताल- मात्रा - 10

मात्रा -	1 2	3 4 5	6 7	8 9 10
शब्द -	स खि	व स ऽ	त आ	ऽ या ऽ
तानचिन्ह -	X	2	0	3

मात्रा - छायावादी काव्य में 'मात्रा' का उल्लेख भी मिलता है; यथा-

"ताल-मात्राएँ दिखाती भंग, नवगति रंग भी
मूर्च्छित हुए से, मूर्च्छना करती उठाकर प्रेम-छल।"[55]

सम - ताल के प्रथम मात्रा को 'सम' कहते हैं। इसका भी उल्लेख छायावादी काव्य में आता है; यथा-

"मनोहर यह कैसा है नृत्य
कौन देता है **सम** पर ताल"[56]

सरगम - छायावादी काव्य में 'सरगम' जैसे सांगीतिक शब्द भी संगीत तत्त्व के अभिव्यंजक हैं; यथा-

"मेरु वंश की मुरली, सप्त कमलदल सरगम।"[57]

स्वरलिपि - गीत के शब्दों को कोमल तीव्रादि संकेतों की सहायता से स्वर-तालचिन्ह के साथ लिखना 'स्वरलिपि' कहलाता है। स्वरलिपि का प्रयोग छायावादी काल में मानव-मन के सुख-दुख के भावों की प्रस्तुत करने के लिए किया गया है; यथा-

"अभिनव स्वरलिपि रचो विश्व जीवन की
प्राण अनाहत पर रह स्वत: प्रतिष्ठित।"[58]

वाद्य-यन्त्रोल्लेख - छायावादी काव्य में चारों वर्ग के वाद्यों का उल्लेख प्रचुर मात्रा में आया है। तत वाद्य के अन्तर्गत वीणा, सितार, सारंगी, दिलरुबा, हसराज, सुरबहार, वायलिन आदि; सुषिर वाद्य के अन्तर्गत वंशी, शहनाई, मुरली, शंख, क्लेरीअनेट, आदि अवनद्ध वाद्य के अन्तर्गत मृदंग, ढोल, खंजरी तबला आदि तथा घन वाद्य के अन्तर्गत मजीरा, घड़ियाल, करताल, जलतरंग आदि वाद्यों का उल्लेख सांगीतिक वातावरण की सृष्टि के लिए कहीं प्रतीक रूप में और कहीं अन्त:भावों की अभिव्यंजना के लिए हुआ है; यथा-

"सुजर मधुर वीणा निजमात
एक गान कर मम अन्तर।"[59]

× × × ×

"तुम्हारी बीन ही में बज रहे हैं बेसुरे सब तार"[60]

"बजती है श्रुति पथ में वीणा
तारों की कोमल झंकार।"[61]

× × × ×

"फिर सँवार सितार लो।
बांधकर फिर ठाट अपने
अंक पर झनकार दो।"[62]

× × × ×

"वायलिन मुझ से बजा
बेन्जो मुझसे सजा।"[63]

× × × ×

"बांसुरी जो बजी
लाज कुल की तजी।"[64]

× × × ×

"शहनाई बजती थी, मंगल-पाठ हो रहा था घर में।"[65]

"दुंदभि, मृदंग, तूर्य शान्त स्तब्ध मौन हैं।"[66]

× × × × × ×

"मगर खंजड़ी न गई
मृदंग तबला हुआ
वीणा सुर-बहार हुई
आज पियानों के गीत सुनते हैं।"[67]

× × × ×

"घण्टा, घण्टी, ढोल, डफ, घड़ियाल
शंख, तुरही, मजीरे, करताल।"[68]

नृत्योल्लेख - छायावादी काल में नृत्य का उल्लेख सप्रसंग हुआ है। यह भी संगीत तत्त्वों की अभिव्यक्ति में सहायक है। काल में नृत्य के प्रकार ताण्डव और लास्य के उल्लेख से कवि की अनुभूति भी साकार हो उठी है।

"नृत्य करो, नृत्य करो,
शिशिर समीर
क्षुब्ध अधीर
ताण्डव गति नृत्य करो
भूतल कृतकृत्य करो।"[69]

× × × ×

“देखता हूँ चकित जैसे ललित लतिका-लास
अरुण घन की सजल छाया में दिनान्त निवास।”[70]

छायावादी काव्य में ‘नृत्य’ शब्द के उल्लेख से सांगीतिक वातावरण साकार हो उठा है; यथा-

“गाती यमुना नृत्य पर, गीत कल-कल स्वर।”[71]

छायावादी काव्य के शब्द संयोजन में भी नृत्य कला उपस्थित है; यथा-

“धनि के पैरों में घुंघरू कल,
नट की कटि में घण्टियाँ तरल,
वह फिरकी-सी फिरती चंचल
हाट की कटि खाली सौ-सौ बल।
लो छन छन, छन छन
छन छन, छन छन
ठुमुक गुजरिया, हरती मन।”[72]

गायन शैलियों का उल्लेख :

छायावादी काव्य में जगह-जगह गायन शैलियों का उल्लेख मिलता है, जो संगीत तत्त्वों का अभिव्यंजक है; यथा -

“फाग हो उठा रहे हैं
धुन धमार की
होली, चैती, तेज
गा रहे हैं संवार की।”[73]
× × × ×
“खेत निराती हैं बालाएँ
लिए खुरपियाँ
गातीं बारहमासी
सावन और कजलियाँ।”[74]

उपर्युक्त उद्धरणों में धमार, होली, चैती, लेज, बारहमासी, सावन और कजरी गायन शैलियों के नाम हैं, जिनसे राग, ताल, लय, स्वर आदि का संकेत मिलता है।

निष्कर्ष :

छायावादी काव्य में जहाँ सांगीतिक शब्दावली, राग-तालोल्लेख, वाद्ययन्त्रोल्लेख, नृत्य एवं गायन शैलियों आदि के माध्यम से संगीत तत्त्वों का उल्लेख आया है, वहाँ संगीत तत्त्वों का नामोल्लेख तथा उनकी अभिव्यंजना भी की गई है। काल में भावानुरूप शब्दावली, ध्वन्यात्मकता, प्रतीकात्मकता, शब्द-संयोजन, गेयता और ताल निबद्धता आदि संगीत तत्त्वों की अभिव्यक्ति में सहायक है। काव्य को मर्मस्पर्शी, सजीव एवं प्रभावोत्पाक बनाने में संगीत तत्त्वों की प्रमुख भूमिका होती है। गति-प्रवाह, छन्द-प्रवाह, वर्ण-विधान, नवीन कल्पना, अनुभूति की गहराई आदि में भी संगीतात्मकता का प्रकाशन होता है। अन्त: और बाह्य संगीत का सुन्दर संगम छायावादी काव्य की मूल भावना को हृदयगाही बना देता है।

संदर्भ :

1. अनामिका, निराला, पृ.–55
2. वही, पृ.–67
3. महादेवी ग्रन्थावली, भाग–3, नीहार, पृ.–35
4. प्रसाद ग्रन्थावली, खण्ड–1, चित्राधार, पृ.–22
5. गीतिका, निराला, पृ.–35
6. अर्चना, निराला, पृ.–41
7. महादेवी साहित्य, भाग–3, नीहार, पृ.–58
8. वही, नीरजा, पृ.–295
9. वही, सान्ध्यगीत, पृ.–347
10. प्रसाद ग्रन्थावली, खण्ड–1, कामायनी, इड़ा, पृ.–577
11. सुमित्रानन्दन पन्त ग्रन्थावली, खण्ड–5, लोकायतन, पृ.–166
12. नये पत्ते, निराला, पृ.–86
13. प्रसाद ग्रन्थावली, खण्ड–1, आँसू, पृ.–303
14. सुमित्रानन्दन पन्त ग्रन्थावली, खंड–2, स्वर्णकिरण, पृ.–195
15. महादेवी साहित्य, भाग–3, नीरजा, पृ.–197
16. निराला, अनामिका, पृ.–67
17. सुमित्रानन्दन पन्त, ग्रन्थावली, खण्ड–3, अतिमा, पृ.–397
18. अनामिका, निराला, पृ.–62
19. महादेवी साहित्य, भाग–3, रश्मि, पृ.–147
20. सुमित्रानंदन पंत ग्रन्थावली, खण्ड–3, उत्तरा, पृ.–34
21. प्रसाद ग्रन्थावली, खण्ड–1, लहर, पृ.–355
22. वही, कामायानी, चिन्ता, पृ.–421
23. परिमल, निराला, पृ.–160
24. सुमि. ग्रन्थावली, खण्ड–2, युगवाणी, पृ.–103
25. महादेवी साहित्य, भाग–3, दीपशिखा, पृ.–385
26. वही, पृ.–446
27. सुमि. ग्रं.– खण्ड–4, पतझर, पृ.–408
28. महादेवी साहित्य, दीपशिखा, पृ.–420
29. वही, कुछ स्फुट कविताएँ, पृ.–476
30. सुमि. ग्रंथावली, खण्ड–5, लोकायतन, पृ.–167
31. प्रसाद ग्रन्थावली, खंड–1, झरना, पृ.–247
32. अनामिका, निराला, पृ.–100
33. परिमल, निराला, पृ.–126
34. अनामिका, निराला, पृ.–34
35. परिमल, निराला, पृ.–105
36. महादेवी साहित्य, भाग–3, नीहार, पृ.–37
37. सुमित्रानन्दन पन्त ग्रन्थावली, खण्ड–7, समाविता, पृ.–165
38. प्रसाद ग्रन्थावली, खंड–1, लहर, पृ.–335
39. उपरिवत्, खंड–1, चित्राधार, पृ.–75
40. उपरिवत्, आँसू, पृ.–303
41. सुमित्रानंदन पंत, ग्रन्थावली, खंड–2, युगवाणी, पृ.–108

42. महादेवी साहित्य, भाग-3, नीरजा, पृ.-230
43. अनामिका, निराला, पृ.-40
44. वही, पृ.-130
45. वही, पृ.-10
46. महादेवी साहित्य, भाग-3, दीपशिखा, पृ.-398
47. सुमि. ग्रन्थावली, खंड-2, स्वर्ण किरण, पृ.-206
48. प्रसाद ग्रन्थावली, खंड-1, आंसू, पृ.-314
49. गीतिका, निराला, पृ.-3
50. महादेवी साहित्य, खंड-3, रश्मि, पृ.-125
51. सुमित्रानंदन पन्त ग्रन्थावली, खंड-4, पतझर, पृ.-387
52. महादेवी साहित्य, भाग-3, रश्मि, पृ.-139
53. वेला, निराला, पृ.-47
54. आराधना, निराला, पृ.-55
55. अनामिका, निराला, पृ.-33
56. प्रसाद ग्रन्थावली, खंड-1, झरना, पृ.-243
57. सुमित्रानंदन पन्त ग्रन्थावली, खंड-4, किरणवीणा, पृ.-17
58. उपरिवत्, खंड-5, लोकायतन, पृ.-12
59. वही, खंड-1, वीणा, पृ.-35
60. महादेवी साहित्य, दीपशिखा, पृ.-446
61. अनामिका, निराला, पृ.-109
62. वही, पृ.-80
63. कुकुरमुत्ता, निराला, पृ.-44
64. आराधना, निराला, पृ.-70
65. प्रसाद ग्रन्थावली, प्रेम पथिक, पृ.-94
66. उपरिवत्, लहर, पृ.-379
67. नये पत्ते, निराला, पृ.-36
68. कुकुरमुत्ता, निराला, पृ.-44
69. सुमित्रानंदन पंत ग्रन्थावली, खंड-2, युगवाणी, पृ.-125
70. प्रसाद ग्रन्थावली, कामायनी, वासना, पृ.-496
71. अर्चना, निराला, पृ.-118
72. सुमित्रानंदन पंत ग्रन्थावली, खंड-2, ग्राम्या, पृ.-139
73. नये पत्ते, निराला, पृ.-75
74. वही, पृ.-69

❑❑❑

जयशंकर प्रसाद का प्रारंभिक काव्य-विकास

❍ अंजय कुमार

हर महान कवि की कविता की तरह जयशंकर प्रसाद की कविता भी उनके दिल के दर्द के साथ-साथ युग की पीड़ा को भी अभिव्यक्त करती है। इस दृष्टि से प्रसाद का काव्य-विकास तत्कालीन युग के काव्य-संघर्ष एवं उसके विकास को रेखांकित करता है।

द्विवेदी-युग समग्र रूप से राष्ट्रीय जागरण का काल था; चूँकि, प्रसाद ने अपना साहित्यिक जीवन इसी समय शुरू किया था, इसलिए इस राष्ट्रीय जागरण का उनके साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारतेन्दु ने खड़ी बोली में कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया था किन्तु द्विवेदी युग तक ब्रजभाषा भी काव्य भाषा के रूप में प्रचलित रही। मैथिलीशरण गुप्त एवं अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' सरीखे प्रतिभाशाली कवियों ने खड़ी बोली का एक रूप विकसित किया, किन्तु वह काव्य की अभिव्यंजना शैली का समृद्ध रूप नहीं था। उनकी काव्य-भाषा अभिधात्मक थी एवं विषय इतिवृत्तात्मक। भावों की सूक्ष्म अनुभूति और कल्पना की उन्मुक्त उड़ान की वह लाक्षणिक अभिव्यक्ति न थी जो महान कविता के लिए अभीष्ट होती है।

ब्रजभाषा के प्रचलित रूप एवं खड़ी बोली के विकसित होते एक रूप के इस संक्रमण काल में दोनों से इतर एक नई भाषा के निर्माण का उद्योग जयशंकर प्रसाद ने किया और सफलता भी पाई। प्रसाद ने न सिर्फ काव्य को कल्पना की उदात्त भावभूमि पर प्रतिष्ठित किया वरन् लाक्षणिक अभिव्यंजना की ऐसी प्रणाली विकसित की जिसके माध्यम से हिन्दी भाषा के नए समृद्ध स्वरूप का निर्माण संभव हुआ। प्रसाद का प्रारम्भिक काव्य भावों और भाषा की अभिव्यक्ति का संघर्ष युग था जिसके माध्यम से उन्होंने छायावादी काव्य का मार्ग विकसित किया।

प्रसाद ने 12 वर्ष (1901 ई. से) की अवस्था में 'कलाधर' उपनाम से कविता लिखना शुरू कर दिया था। उस समय की प्रचलित परिपाटी के अनुरूप उनकी काव्यभाषा ब्रजभाषा थी और शैली रीतिकालीन। बाद की कविता की भाषा भी ब्रजभाषा रही लेकिन द्विवेदी-युगीन खड़ी बोली की कविता से प्रेरणा ग्रहण कर उन्होंने भी खड़ी बोली में कविता लिखना आरम्भ किया।

उनके ब्रजभाषा काव्य में 'प्रेम पथिक' एवं 'चित्राधार' की गणना होती है जबकि प्रारम्भिक खड़ी बोली काव्य में हम 'प्रेम पथिक', 'कानन कुसुम', 'करुणालय', 'महाराणा का महत्त्व', 'झरना', 'आँसू' एवं 'लहर' का नाम गिना सकते हैं।

प्रसाद का काव्य-व्यक्तित्व 'विद्रोही' नहीं 'संघर्षशील' रहा है, इसलिए जहाँ उन्होंने अपनी कविता ब्रजभाषा में लिखनी शुरू की वहीं उसमें आधुनिक भावबोध भी भरा। जब उन्होंने अपनी कसमसाती वेदना और छटपटाती संवेदना की अभिव्यक्ति के लिए ब्रजभाषा छोड़कर खड़ी बोली को अपनाया तो उसमें

नई ऊर्जा, नई स्फूर्ति का संचार भी किया तथा उसे और अधिक सरस, कोमल एवं ललित बनाया।

प्रसाद की काव्य-यात्रा आख्यान एवं स्फुट कविताओं से प्रारम्भ होती है क्योंकि 'चित्राधार'(1918 ई.) में तीन आख्यानक कविताएँ हैं जबकि 'पराग' एवं 'मकरन्द बिन्दु' में अन्य स्फुट कविताएँ। प्राचीन आख्यान कविताओं के माध्यम से कवि अपने युग को कोई न कोई संदेश देना चाहता है। राष्ट्रीय जागरण उनकी कविताओं का प्रस्थान बिन्दु है। एक समृद्ध सभ्यता के अंत का दुख और एक नई सभ्यता के निर्माण का उत्साह प्रसाद जी के काव्य में 'चित्राधार' (अयोध्या का उद्धार) से लेकर 'कामायनी' तक परिलक्षित होता है। उनके प्रारंभिक काव्य 'चित्राधार' में सुनहले अतीत का गौरव गान किया गया है जिसके द्वारा राष्ट्रीयता एवं आत्मगौरव की भावना को नए युग में विकसित करने की कवि की आकांक्षा प्रबल है।

'अयोध्या का उद्धार' एवं 'वन-मिलन' कालिदास के साहित्य से प्रेरित एवं प्रभावित है, लेकिन ये कविताएँ सिर्फ भाषिक अनुवाद नहीं हैं, इनमें पर्याप्त मौलिकता का समावेश है। 'वन-मिलन' में आधुनिक भावबोध प्रसाद की प्रतिभा की देन है। कालिदास के मृग एवं प्रसाद के मृग के स्वभाव में आधुनिक भावबोध के कारण ही अन्तर आया है। कालिदास का मृग प्यार में हठ करता है जबकि प्रसाद का मृग अधिक संवेदनशील एवं आत्मविश्वासी है इसलिए शकुन्तला के पाँव को चूमता है।

उस युग की प्रधान प्रवृत्ति राष्ट्रीयता दूसरे रूप में उनके 'प्रेम राज्य' में उपलब्ध है। अपने इतिहास के वीर पुरुषों के सद्‌गुणों का काव्य में वर्णन करना राष्ट्रीय भावना के उद्‌बोधन का ही कार्य है जो 'प्रेम राज्य' से लेकर 'महाराणा का महत्त्व', 'पेशोला की प्रतिध्वनि', 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' जैसी कविता में व्यक्त हुआ है। इन रचनाओं में देशभक्ति, अपने ऐतिहासिक वीर पुरुषों के प्रति श्रद्धा, स्वतंत्रता एंव आत्मगौरव जैसी भावना को विकसित करना कवि का मूल उद्देश्य रहा है।

'पराग' की प्रकृति सम्बन्धी कविता ब्रजभाषा के आधुनिक रूप में विद्यमान है। कई कविताओं में प्रकृति का स्वतंत्र रूप चित्रित है। प्रकृति के प्रति स्वतंत्रता का यह भाव बोध ठेठ नएपन का द्योतक है। 'प्रभात', 'रजनी', 'चन्द्र', रसाल' जैसी कविताएँ इसके प्रमाण हैं। ईश्वर एवं प्रेम पर भी कुछ कविताएँ लिखी गई हैं, भारतेन्दु पर भी एक कविता है। धार्मिक कट्टरता के खिलाफ पुरानी शैली में नए ढंग का एक पद महत्त्वपूर्ण है -

"छिपि के झगड़ा क्यों फैलायो?
मन्दिर मसजिद गिरजा सब में खोजत सब भरमायो।"[1]

प्रसाद के इन पदों पर भक्तिकाल एवं भारतेन्दुकालीन भक्ति एवं नव्य भावबोध का प्रभाव परिलक्षित होता है किन्तु मौलिकता का आलोक पद को आलोकित करता है।

'राष्ट्रीयता' और 'प्रकृति' के बाद उनके काव्य में 'प्रेम' का नया रूप देखने को मिलता है जो उनकी काव्य यात्रा के भावात्मक विकास को निरूपित करता है। प्रेम-तत्त्व प्रसाद की कविता के केन्द्र में है क्योंकि इन्होंने प्रेम पर जितनी कविताएँ लिखी हैं शायद ही उस युग का कोई कवि लिख पाया हो। शुरू में उनकी कविता में प्रेम की दबी-दबी सी अभिव्यंजना हुई क्योंकि नैतिकता का भारी बोझ कवि की मानसिकता पर धरा था लेकिन कई कविताओं में कवि का हृदय नैतिकता के तटबन्ध को पार कर गया है। कई प्रेम कविताओं में पर्याप्त मांसलता है। हृदय की स्वच्छंद भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए उस युग में सबसे अधिक संघर्ष प्रसाद जी को ही करना पड़ा।

'प्रेम-पथिक' पहले ब्रजभाषा में लिखा गया था जो बाद में तुकांतविहीन रूप में परिवर्तित, परिवर्द्धित

होकर खड़ीबोली में प्रकाशित हुआ। इसमें कवि का प्रेम भाव व्यक्तिगत दायरे से बढ़ता हुआ मानव-प्रेम की वृहत्त परिधि तक फैल गया। इसमें जगत-जीवन के बीच समन्वय का भाव भी है और दार्शनिक चिन्तन के साथ आन्तरिक अनुभूति का समावेश भी। इस कविता में उनकी भाषा में प्रवाह आया और उनकी दृष्टि व्यापक हुई -

"किन्तु न परिमित करो प्रेम, सौहार्द्र विश्वव्यापी कर दो।
क्षण भंगुर सौन्दर्य देखकर रीझो मत, देखो! देखो !!
उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र में छाई है-"

'करुणालय' शैली की दृष्टि से एक अभिनव प्रयोग था, क्योंकि उस समय हिन्दी में इस तरह के गीतिनाट्य नहीं लिखे जाते थे।

'करुणालय' के द्वारा 'करुणा' को जन मानस में उद्‌बुध करने का प्रयास किया है कवि ने जिसमें अहिंसा की स्थापना की गई है। अंग्रेजी एवं बंगला साहित्य की काव्य नाटक शैली एवं बौद्ध दर्शन, गाँधीवादी दर्शन का प्रभाव इस कृति पर देखा जा सकता है। प्रसाद जी के काव्य पर देशी-विदेशी साहित्य का कमोवेश प्रभाव रेखांकित किया जा सकता है तथा काव्य में दार्शनिक चिन्तन का समावेश भी इन रचनाओं में रेखांकित किया जा सकता है। 'प्रेम पथिक' में 'प्रेम तत्त्व' एवं 'करुणालय' में करुणा एवं अहिंसा को दर्शन के धरातल पर प्रस्तुत करना प्रसाद की शक्ति को निरुपित करता है तथा उनके काव्य विकास में काव्य एवं दर्शन के सर्जनात्मक सामंजस्य को रेखांकित किया जा सकता है। दर्शन का यह बीज 'कामायनी' में पुष्प रूप में उपलब्ध है।

'महाराणा का महत्त्व' से कवि जन सामान्य को स्वतंत्रता के लिए जुझारू संघर्ष की प्रेरणा देता है एवं नारी के सम्मान का भी पाठ पढ़ाता है। इस कथा-काव्य में अरिल्ल छन्द का प्रयोग महत्त्वपूर्ण है। आख्यान कविताओं में प्रसाद जी ने अतुकान्त रूप का ही अधिक प्रयोग किया। 'कानन कुसुम' में आख्यान कविताएँ भी हैं और प्रकृति, विनय, भक्ति की भी। भावना और कल्पना में मौलिकता तथा एक अभिनव स्वतंत्रता का संचार इन कविताओं के अन्दर परिलक्षित होता है। धीरे-धीरे प्रसाद आख्यान कविताओं से भावपूर्ण कविताओं की ओर मुड़ते हैं यहाँ तक प्रसाद की काव्य यात्रा का प्रारम्भिक चरण पूरा होता है जिसमें विविध विषयों की ओर कवि की दृष्टि का विस्तार हो रहा था, भाषा परिमार्जित हो रही थी एवं भावों में उन्मुक्तता का इन्द्रधनुषी रंग भर रहा था।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान 'झरना' काव्य संग्रह का प्रकाशित होना एक महत्त्वपूर्ण घटना है क्योंकि जब विश्व लालची साम्राज्यवादियों के कारण अपनी स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहा था तभी प्रसाद 'झरना' में व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए कविता में संघर्षरत थे। यहाँ से प्रसाद जी के काव्य में पंख लग गए और कविता विकास के नए रास्ते पर चल पड़ी जो अधिक सरस, अधिक ललित अधिक भावप्रवण थी। झरना में उनकी भाषा और मंजी हुई दिखाई पड़ती है। यह प्रसाद का पहला काव्य है जिसमें आख्यानक कविताएँ नहीं हैं सिर्फ भाव पर कविताएँ हैं। यहाँ प्रसाद जी विषय के लिए पौराणिक एवं ऐतिहासिक साहित्य का सहारा नहीं लेते अब वे मौलिक विषय चुनने लगे एवं मुक्त होकर भाव का चित्रण करने लगे। यहीं से उनके भाव कल्पना के पंख लगाकर काव्याकाश में स्वच्छंद अभिव्यक्ति को मचल उठे जिसकी सहज अभिव्यंजना 'झरना' में हुई। 'झरना' सिर्फ एक प्राकृतिक बिम्ब के रूप में ही नहीं आया वरन वह प्रेम की सरल स्वच्छंद अनुभूति की अभिव्यक्ति का, हृदय के निर्मल प्रवाह का और स्वतंत्रता की सहज अनुभूति का प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुआ है। प्रेम का मांसल एवं उद्दाम आवेग 'झरना'

में फूट कर अभिव्यक्त हुआ –

"डरो नहीं, जो तुमको मेरा उपालम्भ सुनना होगा।
केवल एक तुम्हारा चुम्बन इस मुख को चुप कर देगा।"[2]

'आशालता' नए शिल्प पर लिखी गई कविता है। मानसिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए कवि छोटी–छोटी स्वतंत्र कविताएँ लिखता है। आख्यान कविता में कथा होती है अतः उसके लिए लम्बी कविता लिखनी होती थी अब ऐसा नहीं रहा, कवि लघु कविताओं में अपनी बात कहने लगा। इससे भावपूर्ण कविताओं के विकास का द्वार खुला, प्रसाद जी का इस क्षेत्र में अलग ही महत्त्व है। इस संग्रह में 'प्रेम' पर प्रौढ़ कविताएँ हैं जबकि ईश्वर के प्रति कौतूहल, आस्था एवं भक्ति का भाव उनकी कविताओं में शुरू से अन्त तक रहा। 'आवेश' कविता कवि के मानसिक संघर्षो का आईना है। प्रसाद के काव्य में मानसिक द्वन्द्व एवं चिन्तन' तत्त्व का धीरे–धीरे इन्हीं कविताओं से विकास हुआ। 'झरना' में कई प्रयोगशील कविताएँ हैं, जो बीज रूप में हैं जिनका विकास बाद की कविताओं में हुआ।

'झरना' के बाद 'आँसू' प्रसाद काव्य का दूसरा मील स्तम्भ है। इसका पहला संस्करण 1925 ई. एवं दूसरा संस्करण 1933 ई. में निकला, पर्याप्त परिवर्तन के बाद। इसमें कवि ने प्रेमी की वेदनानुभूति एवं अतीत की स्मृति को अंकित करने का प्रयास किया है। इस विरह काव्य में विलाप ही अधिक है–

"रो–रोकर, सिसक सिसक कर/कहता मैं करुण कहानी।"[3]

एक ओर 'आँसू' मुझे 'दुख–काव्य' लगता है तो दूसरी ओर स्मृति–काव्य। हार्दिक वेदना का ऐसा विलापपूर्ण काव्य हिन्दी साहित्य में तो इसके पहले उपलब्ध नहीं था। इस दृष्टिकोण से यह मानव मुक्ति का प्रथम काव्य है क्योंकि इसमें कवि के हृदय का दर्द पिघलकर काव्य रूप में ढल गया है। 'आँसू' प्रसाद जी के प्रौढ़ होते बौद्धिक विकास एवं दार्शनिक चिंतन को भी रेखांकित करता है। अभिव्यक्ति में इतनी वेदना, इतना दर्द, भाषा में रुला देने वाली शक्ति इस काव्य की विशेषता है। यह सिर्फ कवि के हृदय की ही वेदना नहीं है उस युग की जनता के हृदय की गाथा भी है। कवि अनजाने में 'कालापनी'[4] जैसे उपमान का प्रयोग नहीं करता बल्कि भारतीयों की गुलाम मानसिकता में बैठे कालापानी के प्रतीक का भी प्रयोग करता है। अंग्रेजी शासन तंत्र में पिसते भारतीयों के हृदय की भी व्यथा 'आँसू' में व्यक्त हुई है तभी कवि ईश्वर से अंत में सबकी भलाई की प्रार्थना करता है। 'आँसू' उस समय महान काव्य हो जाता है जब वह न सिर्फ कवि की व्यथा को अभिव्यंजित करता है, वरन जगत की व्यथा को भी मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त करता है–

"फिर उन निराश नयनों की जिनके आँसू सूखे हैं
उस प्रलय दशा को देखो जो चिर वंचित भूखे हैं।"[5]

इस तरह राष्ट्रीयता, देशभक्ति, प्रकृति, भक्ति एवं प्रेम जैसे विषय पर लिखने के बाद प्रसाद का काव्य वेदना के महासागर में गोते लगाने लगा जिसमें व्यापक मानवता का विकास हुआ। भाव, भाषा एवं शैली की दृष्टि से आँसू समृद्ध काव्य है। इसमें नियतिवाद का भी स्वर है और आशावाद की ऊर्जा भी, भाववाद की लहरें भी हैं और यथार्थवाद का धरातल भी, दुख की छाया भी है और आदर्शवाद का प्रकाश भी। इसमे प्रेम, विरह, स्मृति, कौतूहल, ईश्वर के प्रति आस्था, प्रार्थना सब कुछ है। 'आँसू' प्रसाद काव्य के पूँजीभूत पुंज का लघु रूप है। 'आँसू' में नई उपमाओं की छटा देखते ही बनती है जो छायावाद की एक प्रमुख विशेषता के रूप में विकसित हो रही थी। प्रसाद काव्य के पूर्ववर्ती सभी काव्य की तुलना

में 'आँसू' नाद-सौंदर्य का सबसे समृद्ध और नया स्वरूप प्रस्तुत करता है इसलिए 'आँसू' का साहित्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह काव्य छायावादी कविता के विभिन्न तत्त्वों को विकसित रूप में प्रस्तुत करता है, जो यात्रा 'झरना' से शुरू हुई थी उसका पहला पड़ाव 'आँसू' काव्य ही है।

'लहर' प्रसाद के प्रारम्भिक काव्य में सबसे प्रौढ़ कृति है, प्रसाद काव्य का चरम विकास 'कामायनी' में ही दिखाई पड़ता है। 'लहर' छायावादी काव्य की विशेषताओं से भरी सुन्दर संगीतात्मक कविताओं का संग्रह हैं। इस काव्य में उनकी प्रतिभा का नया उन्मेष दिखाई देता है क्योंकि गीत बड़े सधे हुए हैं। इतनी सुन्दर भाषा में कुछ शब्दों के प्रयोग खटकने वाले हैं-'जावेगी', 'सजावेगी' आदि। 'अरी करुणा की शान्त कछार' में प्रसाद जी ने मध्यममार्गी जीवन की वकालत की है जो कामायनी में समरसता के सिद्धान्त में विकसित हुआ।

'छोड़कर जीवन के अतिवाद, मध्य पथ से लो 'सुमती' सुधार।

इस कविता की अन्तिम पंक्तियों में राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद किया गया है। 'ले चल मुझे वहाँ भुलावा देकर, मेरे नाविक धीरे-धीरे' जैसी कविता के आधार पर उन्हें 'पलायनवादी' कहा जाता है जबकि उस कविता में कोलाहल से दूर एकान्त में जाकर आराम करने की भावना ही व्यक्त हुई है। वह आराम भी सृजन एंव 'अमर जागरण' के लिए है। यही भाव पल्लवित होकर बड़े सशक्त रूप में कामायनी के 'कर्मवाद' के रूप में अभिव्यक्त हुआ है। प्रसाद की भाषा का सबसे परिष्कृत रूप 'लहर' में दिखाई पड़ता है, कहीं-कहीं कमजोरी भी है। छायावादी कविता संगीतात्मक है, 'लहर' में छायावादी गीतों के समृद्ध रूप को देखा जा सकता है। इस तरह जहाँ 'लहर' में उनके भाव और अधिक चिन्तन, बौद्धिकता, दार्शनिकता के कारण समृद्ध हुए वहीं भाषा सुघड़ एंव लयात्मक हो उठी है। सभी कविताएँ गीतात्मक शैली में हैं। प्रसाद की काव्य यात्रा में अतुकान्त से तुकान्तता, छन्द विहीनता से छन्दों की ओर गमन को भी देखा जा सकता है। कथा के शुष्क परिवेश से निकलकर उनकी कविता भावों के समुद्र में निरन्तर उतरती चली गई है, जिसमें 'कामायनी' चमकते प्रवाल का एक सुन्दर द्वीप है। प्रसाद जी के इस काव्य संघर्ष (भावबोध, भाषा एवं शिल्प) से ही छायावादी कविता का रूप निर्मित हुआ, रास्ता विकसित हुआ तथा उसका चरम विकास संभव हुआ।

इस तरह प्रसाद जी का प्रारम्भिक काव्य; ब्रजभाषा काव्य 'चित्राधार' से खड़ी बोली के समृद्ध काव्य (लहर) तक चन्द्रमा की तरह शनैः-शनैः विकसित होता रहा। जो यात्रा उन्होंने आख्यान कविताओं से शुरू की थी वह भावों के मनमोहक बाग से होती हुई 'कामायनी' में पूर्ण हुई। जो यात्रा उन्होंने राष्ट्रीय चेतना से शुरू की थी वह व्यक्तिगत वेदना की भावभूमि पर विकसित होती हुई व्यापक मानवीय संवेदना तक फैल गई और जीवन के आन्तरिक संघर्ष को रूपायित करती हुई सत्-चित्-आनन्द एंव मानव कल्याण के रूप में अभिव्यक्त हुई। प्रसाद की काव्य यात्रा परम्परा से आधुनिकता की ओर रही, जिसमें कौतूहल, राष्ट्रीयता, देशभक्ति, प्रेमतत्त्व, मानवता, व्यक्तिगत वेदना, दर्शन, कर्म, समरसता, आनन्द एवं भक्ति का समावेश होता गया। इनकी अभिव्यक्ति के लिए निरन्तर भाषा का संस्कार हुआ।

उनकी काव्य यात्रा वर्णनात्मकता से चित्रात्मकता की ओर एवं चित्रात्मकता से आन्तरिक संघर्षो की अभिव्यक्ति की ओर रही, जिसमें उनके प्रौढ़ होते चिन्तन को रेखांकित किया जा सकता है। छायावादी भावबोध, उसकी अभिव्यंजना शैली एवं सूक्ष्म भाषा को विकसित एवं स्थापित करने में प्रसाद जी का ऐतिहासिक (साहित्य के इतिहास में) महत्त्व है और उनका काव्य-विकास छायावादी काव्य के संघर्ष एवं उसकी विजय गाथा का साहित्यिक दस्तावेज भी।

संदर्भ :

1. प्रसाद ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या-81 (मकरन्द बिन्दु)
2. प्रसाद ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या-261 (कविता-निवेदन)
3. प्रसाद ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या-306 (काव्य-आँसू)
4. प्रसाद ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या-309 (पंक्ति-'कालापानी वेला सी है अंजन रेखा काली)
5. प्रसाद ग्रंथावली, पृष्ठ संख्या-332 (काव्य-आँसू)

❑❑❑

महाप्राण निराला : मूड, गूढ़ और बेसुध के कवि

❍ यशस्विनी पांडेय

किसी के व्यक्तित्व का समूचा विश्लेषण करना और उसके गुण दोषों को बताना बहुत दुष्कर कार्य है। वह भी ऐसे व्यक्ति का जिसको देखा नहीं, जाना नहीं, मिले नहीं। दूसरी बात यह कि निराला जैसे व्यक्तित्व का विवेचन करना एक चींटी द्वारा हाथी को ललकारने जैसी बात है। छायावाद के सभी कवियों में निराला की रचनाएँ बराबर और सर्वाधिक प्रभावित करती रहीं हैं। निराला और 'निराला के निरालापन' के प्रति प्रारम्भ से ही एक कौतूहल और आकर्षण रहा है। जब तक किसी के जीवन वृत्त, उसके संघर्ष, विचार, बचपन, वैवाहिक जीवन, आर्थिक-पारिवारिक पक्ष न जाना समझा जाये तब तक सही अर्थों में न उसके काव्य के साथ न्याय किया जा सकता है, न उसके व्यक्तित्व के साथ। या यूँ कहें कि काव्य के साथ शुद्ध रूप से साधारणीकरण नहीं किया जा सकता। कभी-कभी किसी की कोई रचना अंदर तक छू ही नहीं जाती घंटों, दिनों और लम्बे समय तक उद्वेलित करती रहती है। निराला भी उन्हीं रचनाकारों में हैं। न ही कोई रचनाकार महान या महामानव होता है ना ही केवल आलोचना का पात्र। ये बात मात्र किसी रचनाकार के लिए नहीं बल्कि हर कलाकार और मानव के संदर्भ में लागू होती है। एक पक्ष ये भी है कि अगर हमारे भाव, संवेदना और विचारों के अनुकूल रचनाकार की रचना हमारे अंतस को छू लेती है या झकझोर पाती है तो वो हमारे लिए महान या महामानव बन ही जाता है। वैयक्तिक अभिरुचि के आधार पर कहीं न कहीं हम आलोचना, समीक्षा या निष्कर्ष निकालते हैं और उसी चश्मे से देखते हैं। निराला के व्यक्तित्व के आधार पर जो आलोचनात्मक किताबें हैं या उनकी जो कृतियाँ हैं उनसे उनको जाना और एक सही सटीक और तटस्थ दृष्टि का निर्माण किया जा सकता है। ये कितना सही हो सकता है या कितना गलत, कितना पूर्ण है या कितना अपूर्ण, इस संदर्भ में कोई दावा नहीं किया जा सकता है। हर रचना, हर व्यक्ति व उसके व्यक्तित्व के प्रति सबकी अपनी-अपनी धारणाएँ, कुछ निष्कर्ष और विश्लेषण होते हैं, जिसको उचित या अनुचित नहीं ठहराया जा सकता।

निराला के व्यक्तित्व के विश्लेषण के लिए उनका समूचा जीवन, जीवन से जुड़े हर पक्ष बाल्यकाल, यौवन काल, पारिवारिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, सामाजिक स्थिति, वैयक्तिक रुचि-अरुचि आदि तमाम पक्ष को जानना और उठाना आवश्यक है पर उन तमाम पक्षों को एक लेख मात्र में नहीं समेटा जा सकता। उनकी कृतियों में उनका व्यक्तित्व इस प्रकार घुलामिला है कि उन्हें समझने के लिए निराला का सम्यक ज्ञान आवश्यक है। इस लेख में निराला के व्यक्तित्व के कुछ बिन्दुओं को ही उठाया गया है, बहुत सी बातें नहीं भी उठाई जा सकीं, शब्द सीमा के अभाव में।

निराला के सम्पूर्ण जीवन यात्रा के बारे में पढ़कर ऐसा लगता है जैसे निराला का जन्म आपदाओं को झेलकर निखरने के लिए ही हुआ था। निराला के पूर्वज उत्तर प्रदेश में बैसवाड़ा क्षेत्र के निवासी थे।

परन्तु उनके पिताजी प्रवासी होकर बंगाल के महिषादल में राजा के यहाँ मुलाजिम हो गए थे। वहीं निराला का जन्म बसंत-पंचमी के आसपास हुआ। अर्थात् वह जन्मजात सरस्वती-पुत्र ही थे। पिता का राजसी ऐश्वर्य निराला के अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व को न बाँध पाया, न अपने अनुकूल ढाल पाया। एक ऐसे युग में उत्पन्न होकर जो बाह्य शिष्टाचार और दिखावटी व्यवहार को सब कुछ मानता था उन्होंने विशिष्टता के नए प्रतिमान उत्पन्न किए। उनके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता शिष्टाचार के कृत्रिम स्वरूप को खंडित कर सत्याचार की प्रतिष्ठा करने में थी। जो लोग बड़े घर में जन्म लेते हैं वे बड़कपन की रक्षा में ही सारी शक्ति, श्रम और समय लगा देते हैं और उसे बनाए रखने व दिखाने में उनका पूरा दिमाग रहता है। निराला में इस तरह का दबाव नहीं था।

निराला ने अपने स्वभाव का वर्णन करते हुए कहा है- "मैं बचपन से ही आजादी पसंद था। दबाव नहीं सह सकता था, खास तौर पर वह दबाव, जिसकी वजह न मिलती हो।" जन्म के कुछ समय बाद ही निराला के ऊपर से माँ के वात्सल्य का साया उठ गया। फलस्वरूप पिता के ऊपर निराला की समस्त जिम्मेदारी आ गई। पिता के अनुशासन में जकड़े रहने के कारण निराला में विद्रोह की भावना का जन्म हुआ। दूसरा ये भी था कि प्रारम्भ से ही निराला के पास अपनी तर्क शक्ति थी जिसके कारण बचपन से ही वो विरोध करने लगे और प्रश्न उठाने लगे। निराला का जन्म कान्यकुब्ज ब्राह्मणों की एक निम्न जाति में हुआ था जिसे हीन दृष्टि से देखा जाता था। जातिगत हीनता की भावना भी उनकी विद्रोह-वृत्ति को जाग्रत करने में सहायक हुई। इसी विद्रोह-वृत्ति के फलस्वरूप निराला ने समाज की रूढ़ियों व परम्पराओं का विच्छेद किया। यहाँ तक कि अपनी पुत्री सरोज का विवाह भी उन्होंने जातिगत वैवाहिक पद्धति से भिन्न ढंग से किया। विवाह में न तो दहेज दिया, न बारात को बुलाया तथा स्वयं निराला ने वैवाहिक मंत्रोच्चारण किया। निराला को अफसरी बू, सरकारी दिखावा या पथ-प्रदर्शन बिल्कुल प्रिय न था। वे अपने को मजदूर कहते और इसलिए श्रमजीवी साहित्यकारों के प्रति उनकी निष्ठा थी। अफसरी लिबास में आए हुए बड़े से बड़े पदवाले व्यक्ति को दुत्कारने में वे चूकते न थे। निराला की जो विद्रोही प्रवृत्ति है वह भाषा, छंद, साहित्य, समाज, जीवन सभी में बंधन, बाधा, शोषण और अत्याचार के विरुद्ध लड़ने को उन्हें प्रस्तुत करती रही।

निराला के काव्य-विकास को जैसे कई चरणों में बाँटा जा सकता है, वैसे ही उनके जीवन को विभिन्न स्थानों, विभिन्न कार्यस्थलों में उनकी भूमिका को लेकर बाँटा जा सकता है। कभी बैसवाड़ा, कभी प्रयाग, कभी काशी, कभी महिषादल विभिन्न स्थानों पर वे जीवन के अनुभवों को एकत्र करते रहे और इन स्थलों को भी अपनी सकारात्मक रचनाओं से समृद्ध करते रहे। निराला अपनी मनोवृत्ति और प्रवृत्ति के लायक ही कोई कार्य करते थे, शेष में उनका मन नहीं रम पाता था। बेलूर मठ में प्रति वर्ष परमहंस जी और विवेकानंद जी की जयंतियों तथा पुण्यतिथियों पर वहाँ गरीबों को विधिवत भोजन कराया जाता था। मिशन की शाखा विवेकानंद सोसाइटी के विद्वान संन्यासियों के साथ 'समन्वय' संपादक निराला जी भी आया करते थे। उस विराट आयोजन के कार्यक्रमों में निराला केवल दरिद्रनारायण को भोज्य पदार्थ वितरित करने का ही काम अपने ऊपर लेते थे। 'मतवाला' मंडल में भिखमंगी की समस्या पर और अखबारों में छपे इस विषय के समाचारों या लेखों पर जब बातचीत होती थी, यदि निराला वहाँ उपस्थित होते थे तो बड़े आवेश में वे अपने युक्तियुक्त तर्क उपस्थिति करते थे। वे देश में फैली हुई आर्थिक विषमता पर बात करते समय उग्रतम साम्यवादी प्रतीत होते थे। यद्यपि हृष्टपुष्ट भिक्षुकों के प्रति उनकी सहानुभूति नहीं थी फिर भी असमर्थ या अपाहिज भिखारियों की दयनीय दशा के लिए वे शासन और

समाज की ही तीव्र आलोचना किया करते थे। लंगड़े, लूले, अंधे, कोढ़ी और निकम्मे दीन-दुखियों पर ही उनकी दृष्टि अटकती थी। इस चक्कर में कई बार वे अपनी वास्तविक पारिवारिक या आर्थिक स्थिति भूल जाते थे। बीड़ी, मूढ़ी, भूजा, चना, मूंगफली आदि खरीदकर वितरण करने वाला कोलकाता जैसे धनकुबेरों और तथाकथित कलाकारों की महानगरी में निराला के सिवाय शायद ही ऐसा कोई था। यह विशेषता निराला में ही देखी गई कि अपनी आवश्यकताओं को भुलाकर दूसरों की आवश्यकताओं को दूर करने के लिए परेशानियाँ और कठिनाइयाँ झेलने के लिए अधीर हो उठते थे। उनकी दरियादिली से सभी परिचित थे।

14 साल की उम्र में निराला का विवाह मनोहरा देवी से कर दिया गया। 'कुल्लीभाट' में निराला ने अपने मधुरतम जीवन प्रसंग का उल्लेख किया है। दो वर्ष बाद सोलहवें साल में निराला का गौना हुआ। मनोहरा देवी तेरह वर्ष की थीं। 'गीतिका' का समर्पण अपनी स्वर्गीय पत्नी मनोहरा को जिस श्रद्धा और आत्मीयता से किया है, वह दुर्लभ है। विवाह के पूर्व निराला को बंगाली, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं का अच्छा ज्ञान था, पर विवाहोपरांत विदुषी पत्नी के हिंदी ज्ञान के समक्ष अपने को तिरस्कृत समझ कर सरस्वती की प्रतियों को लेकर उन्होंने हिंदी भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। बच्चन सिंह ने क्रांतिकारी कवि निराला नामक अपनी पुस्तक में इस बारे में उल्लेख किया है कि "श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला को निराला बनाने में उनकी पत्नी का उतना ही हाथ है जितना कालिदास को कालिदास बनाने में विद्योतमा का, और तुलसीदास को तुलसीदास बनाने में रत्नावली का।"

निराला जी की मित्रमंडली बड़ी विचित्र और निराली थी। उनका कोई विशेष वर्ग, आयु, बौद्धिक स्तर, सामाजिक स्तर नहीं था। यह जाति-पाँति, ऊँच-नीच का कोई विचार करके नहीं चुना गया था, जो भी व्यक्ति उनकी विभिन्न रुचियों के अनुकूल मिला वे उसके हो गए, उनकी कोई कटेगरी नहीं थी। उनका द्वार सबके लिए समान रूप से हमेशा खुला रहता था। निराला सबसे प्रसन्नतापूर्वक ही मिलते थे अन्यथा वे स्पष्ट रूप से कह देते थे कि मैं मिलने के मूड में नहीं हूँ फिर आयें। जीवन की तमाम प्रकार की कटुताओं की सामाजिक रूपरेखा के कारण उनके व्यवहार में असामान्य प्रवृत्तियाँ रहीं। उनकी असामान्य प्रवृत्तियों को कहाँ तक किन्हीं बहिरंग संसर्गों ने जन्म दिया और कहाँ तक उनकी निजी धारणाओं ने यह कहना कठिन है। कहा जाता है कि उनके आसपास बैठने-उठने वाले कुछ विशेष मनचले स्वार्थी साथियों ने उनके जीवन को असंतुलित बना दिया। निराला जिस फौलादी व्यक्तित्व के थे उन्हें प्रभावित कर लेना साधारण जीवट का काम नहीं था। एक ही स्वभाव में व्यापार-वैचित्र्य के अनेक उदाहरण उनके जीवन और काव्य में बिखरे पड़े हैं।

निराला कभी-कभी आवश्यकता से भी कम बोला करते थे और कभी-कभी अपनी किसी कविता का अर्थ समझाने के लिए घंटों लम्बी व्याख्या करते थे। यह बात सबको सदैव खटका करती थी। चाहे उनके अतिथि हों या पास बैठने वाले, सबको एक निश्चित समय के बाद ऊब होने लगती थी। दूसरा ये कि वे कभी नहीं चाहते थे कि कोई उनकी बात काटे, जो भी वे कहें स्वीकार्य हो। इससे निराला को संतोष होता था। वे अपना सम्मान समझते थे। कहीं न कहीं ये वैचारिक दबंगई वाली प्रवृत्ति और सेल्फ ओब्सेशन का अतिरेक निराला में रहा। ये उनके व्यवहार का असंतुलित पक्ष रहा कि अपनी ही बात करते रहना और सामने वाले को कोई महत्व न देना। जब मन करे तो घंटों बातें करना, जब मन न करे तो किसी से औपचारिक रूप में भी न मिलना। निराला जी के जिस मूड को लेकर साहित्यिक जगत में बड़ी चर्चा रही है उससे उनके विषय में भ्रम भी खूब फैला है। 'समन्वय' के सम्पादन काल

में वेदान्त साहित्य के अध्ययन एवं स्वामी शारदानंद जी महाराज के प्रभाव से वे अपनी सुध-बुध खो चुके थे। सांसारिकता से परे, गूढ़ चिन्तन के समय तो वे पूर्ण स्वस्थ रहते थे, परन्तु जैसे ही पारिवारिक या सांसारिक प्रसंग ध्यान में आता, उनके विचार अन्तर्मुखी न रहकर उबल पड़ते थे, जो उनके स्वगत भाषण का कारण बन जाते। यह क्रम उनके जीवन के अंतिम क्षणों तक चलता रहा। उन्होंने इस बात की कभी चिंता नहीं की कि सुनने वाला उनके विषय में क्या धारणा बनाएगा। स्पष्ट है कि निराला अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों से भागना चाहते थे। हर इंसान अपने को अधिक से अधिक समय देना चाहता है, अपनी अतृप्त इच्छाओं और अपूर्णताओं को पूरा करना चाहता है पर इसके साथ ही जो आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक जिम्मेदारी है उसका भी वहन अपने 'स्व' को लेकर ही करना होता है। निराला में इस प्रकार का वैचारिक और व्यावहारिक असंतुलन था। वो स्वयं को ही सर्वाधिक महत्व देते थे। निराला का ये असंतुलन उनके हर पक्ष में था। उनके जीवन का लगभग समस्त कार्य व्यापार उनके असंतुलित व्यक्तित्व और व्यवहार का परिचायक है।

निराला स्वयं कविताएँ लिखने में कोई सक्रिय कदम नहीं उठाते थे। यह आश्चर्य ही है कि उन्होंने कैसे इतनी रचनाएँ कर डालीं। पत्र पत्रिकाओं की ओर से आग्रहपूर्ण पत्र और अनुरोध पर ही कोई गीत लिखा करते थे। फिर बहुत दिनों तक लेखनी को विश्राम दिए रहते। अर्थात् जब मूड बनता तो एक बैठक में पाँच-दस गीत या कविताएँ लिख डालते थे। अन्यथा कई दिनों तक उनकी लेखनी विश्राम करती थी।

निराला स्वभावत: शौकीन व्यक्ति थे। सबकी तरह उनके भी कुछ शौक थे जिन्हें उन्होंने पूरा किया। भले ही उस शौक की कीमत उधार लेकर ही क्यों न चुकानी पड़े। निराला जी का सर्वाधिक ध्यान नाना प्रकार के पकवानों को बनाने तथा विविध प्रकार के वस्त्रों, जूतों को खरीदकर पहनने-पहनाने की ओर जाता था। उनका अधिकांश समय नित्य प्रति बनने वाले भोजन की रूपरेखा बनाने एवं उसे पकाने में बीतता। निराला के मन में कपड़ों के प्रति भी खूब आकर्षण रहा। जाड़े के दिनों में प्रतिवर्ष वे कई सुंदर कम्बल खरीदते और फिर कहीं दान कर देते। गर्मियों के दिनों में सूती चादरें अथवा लुंगियाँ खरीदकर उसी प्रकार का व्यवहार करते। इसके अलावा निराला को मांस, मदिरा, चरस, भाँग आदि का भी खूब शौक था जिसकी खूब आलोचना भी हुई। हालाँकि, ये उनकी अपनी रुचि व जीवन शैली थी। इससे उनके व्यक्तित्व को अनियंत्रित या असंतुलित नहीं कहा जा सकता।

निराला का जीवन विषमताओं, प्रकोपों, त्याग, तपस्या, दरियादिली, शौक, पौरुष, आत्मसम्मान की कहानी से भरा-पूरा रहा। अल्प आयु में ही उन्होंने माँ को खो दिया, विवाह के 5 वर्ष बाद पत्नी का अवसान, एकमात्र पुत्री का असमय निधन और जन्म भर आर्थिक संकट। इन सब में उनकी रचनात्मकता न केवल जीवित रही बल्कि अनुभवों और संघर्षों के साथ और प्रौढ़, प्रखर और परिष्कृत होते गयी। निराला को दैवीय प्रकोप के कारण अपने परिवार का लम्बे समय तक साथ नहीं मिल पाया। सबके असामयिक निधन का दंश उन्हें जीवन भर रहा। पिता, पत्नी, भाई-भाभी की मृत्यु पर संयम न खोया किन्तु उनका धैर्य पुत्री की मृत्यु पर नहीं रह सका। कालिदास के बारे में कहा गया कि - कालिदास की सुन्दरतम पंक्तियाँ शकुन्तला की विदा के समय पर कही गयीं हैं। इसी तरह निराला की मार्मिकतम पंक्तियाँ 'सरोज-स्मृति' में कही गई हैं। भारतवर्ष की दो श्रेष्ठ रचनाओं में, इस प्रकार एक बेटी की विदा पर है तो दूसरी उसकी मृत्यु पर। सरोज की मृत्यु और 'सरोज स्मृति' रचना निराला के जीवन में सहनशक्ति और रचनाशक्ति का चरम था। कवि के रूप में सफल व्यक्ति पिता के रूप में अपनी असफलता एवं निरर्थकता पर प्रलाप करता है (धन्ये मैं पिता निरर्थक था /कुछ भी तेरे हित कर न सका)। निराला ने

सरोज के लिए *तनये, गीते, मेरी जीवित कविते, परी, चपल, पुतली, कनक, विमल प्रेम, गिरिजे, शकुंतले* आदि शब्दों का प्रयोग किया है। पुत्री के शृंगार का चित्रण करने वाले इस कवि ने कितने पवित्र एवं गरिमायुक्त उपमानों का प्रयोग किया है। निराला की संवेदना जितनी विस्तृत और समावेशी है, उनकी भाषिक चेतना भी उतनी ही समावेशी है। वे अपने कवित्व को हिंदी के पूरे शरीर में या यूँ भी कहें कि समूचे ऐतिहासिक प्रसार में स्पन्दित देखना चाहते हैं। इस रचना में स्नेहशील एवं कोमल हृदय पिता का रूप तो सामने आता ही है, साथ ही निराला का विद्रोही व्यक्तित्व भी प्रस्फुटित हुआ है।

निराला जीवन की चतुर्दिक भावनाओं के कवि हैं। उन्होंने आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, प्रेम, दर्शन, रहस्य, समाज, व्यंग्य आदि सभी विषयों पर भावुकता की सम्पूर्णता के साथ कविता की है। उनके व्यक्तित्व के बहुरंगी होने के कारण उनके काव्य-विषय और कविताओं के शीर्षक इतनी भिन्नता रखते हैं। यह सत्य है कि निराला के जीवन का आचार-पक्ष असंतुलित और विचार पक्ष अनियंत्रित रहा है और यह स्वीकारने में किसी को संकोच नहीं होना चाहिए कि उनकी अपनी अनेक अपूर्णताएँ, दुर्बलताएँ और विवशताएँ भी थीं जो अपने आप में असाधारण थीं और इससे भी अधिक असाधारण तथ्य यह है कि उन्होंने कभी भी उनको ढँकने या छुपाने का प्रयास नहीं किया; बल्कि, उसे खुलकर उद्घाटित करते रहे।

'जुही की कली' से प्रारम्भ होने वाला काव्य 'तुलसीदास', 'राम की शक्तिपूजा' तक आकर अपनी चरम विकासावस्था तक पहुँच गया। किन्तु इनके बाद निराला पूर्णतः विद्रोही कलाकार बन गये। समाजवाद के अध्ययन ने नवीन साहित्यिक समझ दी। यद्यपि कवि में अद्वैतवादी ज्ञान और भावविभोरता का स्तर भी यथावत रहा। *कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते* में विद्रोह का यह रूप खुलकर सामने आया। रस के स्थान पर व्यंग्य दिखने लगा। इसके अलावा अपनी कहानियों और *अलका* तथा *निरुपमा* जैसे उपन्यासों में उन्होंने समाज को कठोर यथार्थवादी दृष्टि से देखा। निराला का यथार्थवादी गद्य साहित्य उनकी कविता की तरह ही संघर्षों के बीच उनके अपराजेय व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब है। *कुल्लीभाट, चतुरी-चमार, बिल्लेसुर बकरिहा* अपने नाम से लेकर चरित तक में वास्तविक हैं और उनके साथ निराला का सम्पर्क भी वास्तविक है। निराला अपनी सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक चेतना में राष्ट्रीय आन्दोलन से जुड़े नेताओं से आगे थे। इसलिए राजनीतिक नेताओं से मुठभेड़ होने पर निराला में हीनता के स्थान पर दर्प के भाव जगते थे। निराला वर्तमान अर्थ-व्यवस्था से अत्यधिक असंतुष्ट थे। वे चाहते थे कि अर्थ का समान रूप से वितरण हो, सारी सम्पत्ति देश की हो। यद्यपि उन्होंने मार्क्सवाद का स्पष्ट रूप से समर्थन कहीं नही किया है लेकिन उनकी रचनाओं से स्पष्ट है कि वे साम्यवाद के समर्थक थे।

निराला जी की प्रतिभा बहुमुखी थी, जैसे कि उनका पक्ष बहुपक्षीय था। अनेक भाषाओं का ज्ञान, दार्शनिक-चिन्तन का पांडित्य, उच्चवर्गीय संस्कृति का आवरण, संकटों का निर्मम प्रहार, स्वभाव का फक्कड़पन और संतों का-सा निर्द्वन्द, निस्पृह जीवन इन सबने उन्हें 'निराला' ही रूप दिया था। निराला ने जीवन व काव्य के हर क्षेत्र में लीक से हटकर काम किया। उनकी इसी प्रवृत्ति के कारण कविता में मुक्त छंद का उदय हुआ। निराला ने रचना-कर्म में किसी व्यावहारिक सुविधा के लिए मुक्त छंद नहीं रचा, वरन उसे अपने काव्य-प्रवाह में गति लाने के लिए एक आवश्यक अवरोध के तौर पर देखा। निराला ने मुक्त छंद पर विचार करते हुए परिमल की भूमिका में लिखा है, "मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधन से छुटकारा पाना है। कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है।" निराला का मानना था कि हिंदी में समझ वाला युग अभी नहीं आया

है इसीलिए नये साहित्य का विरोध होता है। रूढ़ियों से अभी जन-मस्तिष्क पूर्ववत् जकड़ा हुआ है। रूढ़ियों पर बार-बार प्रहार द्वारा इसकी श्रृंखला तोड़ देनी चाहिए।

निराला ने समाज से संपृक्त रहकर ही काव्य-रचना की है। उनका कवि समाज की अवहेलना नहीं कर पाया है। निराला का काव्य समकालीन समाज का चित्र प्रस्तुत करता है किन्तु उसमें समाज के रंगीन नहीं यथार्थ और कटु चित्र हैं। निराला के समय में समाज तीन तरह की विद्रूपताओं से पीड़ित था। एक आर्थिक वैषम्य, राजनीतिक और धार्मिक जो कि अभी भी ये समस्याएँ और असमानताएँ बनी हुई ही हैं। इस विषमता की अनुभूति निराला ने बहुत ही निकटता से की है। हिंदी प्रगतिवादी काव्य उन्हें अपना प्रस्थान बिन्दु स्वीकार करता है और नया हिंदी काव्य उनमें अपना पूर्वाभास देखता है।

निराला के व्यक्तित्व और कृतित्व का इतना प्रभाव था कि बड़े-बड़े आलोचकों में से किसी ने उनकी तुलना कबीर से की, किसी ने टैगोर से, किसी ने विवेकानंद से तो किसी ने महावीर प्रसाद द्विवेदी से। आइये कुछ झलकियों पर गौर फरमाते हैं-

डॉ. भगीरथ मिश्र ने निराला को कबीर के तुल्य कहते हुए कहा, "अपनी उग्र स्वच्छन्दता और फक्कड़पन में निराला कबीर से तुलनीय हैं। वैसे ही मस्तमौला, वैसी ही ललकार, वैसा ही फक्कड़पन, वैसा ही क्रन्तिकारी स्वर और वैसी ही प्रगाढ़ तन्मयता दोनों की ओज भरी वाणी, रूढ़ियो का विरोध बराबर रहा। दोनों में लोगों को प्रसन्न करने की प्रवृत्ति नहीं थी। स्वाभिमान भी दोनों में उच्च श्रेणी का था, अंतर केवल इतना ही था कि एक संत पहले कवि बाद में और दूसरा कवि पहले संत बाद में।"[1]

डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला की साहित्य साधना में लिखा है कि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला और महावीर प्रसाद द्विवेदी में बहुत सी बातें सामान्य थीं। सूर्यकान्त के समान द्विवेदीजी के संस्कार मूलतः बैसवाड़ी किसान के थे। दोनों ने अपनी सारी शक्ति हिंदी की सेवा में लगा दी। द्विवेदी ने सूर्यकान्त को अपनाया है। परिश्रम से जमकर हिंदी की सेवा करने को कहा है। सूर्यकान्त ने जैसी कल्पना की थी अपने गुरु को उससे भी भव्य पाया।" डॉ. शर्मा ने निराला का तटस्थ मूल्यांकन किया है, "जिनके लिए निराला देवता और संत न थे उनके लिए वह ऐसे कवि थे जिनमें जरूरत से ज्यादा अहंकार था, जो शराब और गोश्त के शौकीन थे और जो बाद में पागल हो गए। निराला इतने बड़े हैं कि उन्हें देवता और संत कहकर और बड़ा नहीं बनाया जा सकता। उन्हें शराबी कबाबी और पागल कहकर उनके बड़प्पन को खत्म भी नहीं किया जा सकता।"[2]

डॉ. धनंजय वर्मा को निराला और स्वामी विवेकानंद में साम्य दिखा। अन्यत्र वे उन्हें परमहंस रामकृष्ण और रवीन्दनाथ टैगोर के समान दीखते हैं, "विद्रोही, तेजस्वी स्वामी विवेकानंद के चरित्र में निराला का व्यक्तित्व समर्थन प्राप्त हुआ। तेजस्विता और दूसरों को दुखी देखकर विकल होना और विपत्ति में धैर्य न छोड़ते हुए भी निर्विकार चित्त से कर्तव्य करते जाने की निराला की साधना को स्वामी विवेकानन्द के चरित्र में भी वही तत्व मिले। विवेकानंद क्रिकेट के उत्कृष्ट खिलाड़ी थे। निराला ने भी हजारी पहलवान के अखाड़े में कुश्ती की शिक्षा ली थी। संगीत में दोनों दक्ष थे। स्वामी जी एक योद्धा संन्यासी कहे गए हैं और कौन निराला को निर्लिप्त निर्विकार गृहस्थ नहीं कहेगा। उदारता के विषय में दोनों में कोई अंतर प्रतीत नहीं होता।"[3]

विजयेन्द्र स्नातक ने निराला की प्रगतिशीलता पर बिल्कुल सही बात कही है। उनका कहना है कि "प्रगति और प्रयोग की दृष्टि से निराला का काव्य अन्य कवियों से सदैव दस वर्ष आगे रहा है। जिसे आज के युग में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद कहकर व्यवहृत किया जाता है वह निराला की कविता में अपने

आगमन से दस वर्ष पहले झाँकने लगा था। निराला की कविताओं के लगभग हर विषय प्रगतिशील विचारधारा के हैं और प्रक्रिया की शैली प्रयोगवादी कही जा सकती है।"[4]

कुछ आलोचकों का कहना है कि निराला का जीवन और व्यक्तित्व एक खुली किताब की तरह था। कोई भी कभी भी उनके पास आ सकता था। किसी को उनसे मिलने के लिए उनसे अपोइंटमेंट लेने की जरूरत नहीं थी। पर सच तो ये था कि निराला का जीवन व व्यक्तित्व जितना एक खुली किताब की तरह था उतना ही बंद लिफाफे के जैसा भी था, जिसे सिर्फ निराला खोल सकते थे। हम बस उतना ही पढ़ और समझ सकते हैं जितना निराला लिख गए; शेष लिफाफे के अंदर लिखा उनका समूचा व्यक्तित्व निराला अपने साथ ले गए और हमारे लिए छोड़ गए अनवरत चिंतन मनन और मंथन। इस बात को निराला ने भी जान लिया था। इसीलिए उन्होंने लिखा था 'अभी न होगा मेरा अंत/ अभी अभी ही तो आया है/ मेरे वन में मृदुल वसंत'।

संदर्भ :

1. निराला साहित्य सन्दर्भ, डॉ. भागीरथ मिश्र, पृ. 22
2. निराला की साहित्य साधना, खंड-1, डॉ. रामविलास शर्मा, पृ. 47-49
3. निराला : काव्य और व्यक्तित्व, डॉ. धनंजय वर्मा, पृ. 50
4. निराला की काव्य कला, विजयेन्द्र स्नातक, पृ. 67

❑❑❑

हिंदी आलोचना के द्वारा महादेवी वर्मा का मूल्यांकन

❍ श्रीधरम

हिंदी आलोचना की शुरुआत भारतेंदु युग से हुई और वह छायावाद तक आते-आते प्रौढ़ हो गई। आधुनिक काल में 'छायावाद' को सबसे अधिक 'आलोचना' जगत का विरोध झेलना पड़ा। इसीलिए इस वाद पर सर्वाधिक चर्चा हुई फिर भी छायावाद के चार स्तंभों में प्रसाद, पंत, निराला के मुकाबले महादेवी पर बहुत कम लिखा गया। कुछ आलोचकों ने तो महादेवी की कविता का जमकर मजाक उड़ाया। सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि हिंदी की मर्दवादी आलोचना, महादेवी की स्त्री-संवेदना को समझने में विफल रही? और इसीलिए वह उनकी कविताओं पर बिफरती रही। इस संदर्भ में भी महादेवी के साहित्य पर विचार किया जाना आवश्यक है। जब एक स्त्री अपने लिए साहित्य में पुरुषों से 'विस्तृत नभ का एक कोना' मांगती है तो उसे पुरुषवादी हिन्दी आलोचना से किस तरह की गलीज प्रतिक्रिया मिलती है वह यहाँ देखा जा सकता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्लक ने छायावाद का जिन कारणों से विरोध किया वह 'रहस्यात्माकता, अभिव्यंजना के लाक्षणिक वैचित्र्य, वस्तुविन्यास की विशृंखलता, चित्रमयी भाषा और मधुमयी कल्पना' है। आचार्य शुक्ल छायावाद पर यूरोपीय और रवींद्रनाथ ठाकुर का प्रभाव घोषित करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि -

"*छायावाद* शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यरवाद के अर्थ में, जहाँ उसका संबंध काव्यवस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनंत और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यंत चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। रहस्यवाद के अंतर्भूत रचनाएँ पहुँचे हुए पुराने संतों या साधकों की उसी वाणी के अनुकरण पर होती हैं जो तुरीयावस्था या समाधिदशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थीं। इस रूपात्मक आभास को यूरोप में 'छाया' (फैंटसमाटा) कहते थे। इसी से बंगाल में ब्रह्मसमाज के बीच उत्तर वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्य क्षेत्र में आया और फिर रवींद्र बाबू की धूम मचने पर हिंदी के साहित्य क्षेत्र में भी प्रकट हुआ।

"*छायावाद* शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य-शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में है। सन् 1885 में फ्रांस में रहस्यावादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवादी (सिंबालिस्ट्स) कहलाया। वे अपनी रचनाओं में प्रस्तुत प्रतीकों के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चलते थे। इसी से उनकी शैली की ओर लक्ष्य करके 'प्रतीकवाद' शब्द का व्यवहार होने लगा। आध्यात्मिक या ईश्वर प्रेम संबंधी कविताओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की कविताओं के लिए भी प्रतीक शैली की ओर वहाँ

प्रवृत्ति रही। हिंदी में 'छायावाद' शब्द का जो व्यापक अर्थ में – रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओं के संबंध में भी – ग्रहण हुआ वह इसी प्रतीक शैली के अर्थ में। छायावाद का सामान्य अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 456)

वे आगे लिखते हैं, 'छायावाद' का केवल पहला अर्थात् मूल अर्थ लेकर तो हिंदी काव्यक्षेत्र में चलने वाली श्री महादेवी वर्मा ही हैं। पंत, प्रसाद, निराला इत्यादि और सब कवि प्रतीक पद्धति या चित्रभाषा शैली की दृष्टि से ही छायावादी कहलाए।

स्पष्ट है कि आचार्य शुक्ल ने महादेवी की कविता को अन्य छायावादी कवियों प्रसाद, पंत, निराला, से अलग नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देने वाली 'रहस्यववाद' के अंतर्गत रखा जिसे यूरोप में 'छाया' (फैंटसमाटा) कहा जाता है। आचार्य शुक्ल यूरोप–बंगाल, वेद–उपनिषद हर जगह भ्रमण कर आए, लेकिन भारतीय समाज के हाशिए पर बैठी स्त्री–जीवन की विद्रूपता की ओर वह नहीं झाँक सके। 'नीर भरी दुख की बदली' में भारतीय स्त्री के आँसू कितने घनीभूत हैं, यह उनकी पारखी नजर से ओझल रह गया। यही कारण है कि महादेवी वर्मा की कविता को 'रहस्यवाद' के घेरे में बाँधकर उन्होंने आगे के आलोचकों के लिए भी एक प्रकार से दरवाजा बंद कर दिया। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने छायावाद को 'कलावाद' की कलाकारी साबित करते हुए लिखा है – "छायावाद की कविता की पहली दौड़ तो बंगभाषा की रहस्यात्मक कविताओं के सजीले और कोमल मार्ग पर हुई। पर उन कविताओं की बहुत कुछ गतिविधि अंग्रेजी वाक्यखंडों के अनुवाद द्वारा संघटित देख, अंग्रेजी काव्यों से परिचित हिंदी कवि सीधे अंग्रेजी से तरह–तरह के लाक्षणिक प्रयोग लेकर उनके ज्यों के त्यों अनुवाद जगह–जगह अपनी रचनाओं में जड़ने लगे। 'कनक प्रभात', 'विचारों में बच्चों की सांस', 'स्वर्ण समय', 'प्रथम मधुबाल', 'तारिकाओं की तान', 'स्वप्निल कांति' ऐसे प्रयोग अजायबघर के जानवरों की तरह उनकी रचनाओं के भीतर इधर–उधर मिलने लगे। निरालाजी की शैली कुछ अलग रही। उसमें लाक्षणिक वैचित्र्य का उतना आग्रह नहीं पाया जाता जितना पदावली की तड़क–भड़क और पूरे वाक्य के वैलक्षण्य का। केवल भाषा के प्रयोग वैचित्र्य तक ही बात न रही। ऊपर जिन अनेक यूरोपीय वादों और प्रवादों का उल्लेख हुआ है उन सबका प्रभाव भी छायावाद कही जाने वाली कविताओं के स्वरूप पर कुछ न कुछ पड़ता रहा।"

"कलावाद और अभिव्यंजनावाद का पहला प्रभाव यह दिखाई पड़ा कि काव्य में भावानुभूति के स्थान पर कल्पना का विधान ही प्रधान समझा जाने लगा और कल्पना अधिकतर अप्रस्तुतों की योजना करने तथा लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और विचित्रता लाने में ही प्रवृत्त हुई। प्रकृति के नाना रूपों और व्यापार इसी प्रस्तुत योजना के काम में लाए गए। सीधे उनके मर्म की ओर हृदय प्रवृत्त न दिखाई पड़ा। पंत जी अलबत प्रकृति के कमनीय रूपों की ओर कुछ रूककर हृदय रमाते पाए गए।" (वही, पृ. 446)

आचार्य शुक्ल ने छायावाद को खारिज करने के लिए विस्तार से उस पर विचार किया है। इस क्रम में सबसे ज्यादा उन्होंने 'पंत' की तारीफ की है। निराला और प्रसाद की भी यथा स्थान चर्चा की है लेकिन छायावाद के संदर्भ में महादेवी को चर्चा के लायक उन्होंने समझा ही नहीं! जैसे 'रहस्यवाद' का विशेषण प्राप्त करते ही महादेवी की कविता सिर्फ 'भजनानंदियों' के लिए रह गई हो।

अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आचार्य शुक्ल ने सुमित्रानंदन 'पंत' पर विचार करते हुए

लगभग चौदह पृष्ठ खर्च किए थे। 'प्रसाद' पर ग्यारह, 'निराला' पर साढ़े तीन और महादेवी पर सिर्फ आधा पृष्ठ। क्या सच में महादेवी सिर्फ आधे पन्ने में सिमटने लायक कवयित्री हैं या आचार्य शुक्ल के समय में थीं? वैसे निराला के साथ भी शुक्ल जी ने न्याय नहीं किया है। एक महान आलोचक भी अपने पूर्वग्रह (वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक) के कारण अपने विचारों में किस प्रकार प्रतिगामी हो सकता है, उपरोक्त आँकड़े इसके प्रमाण हैं। ध्यातव्य है कि इस समय तक महादेवी के संग्रह – नीहार, रश्मि, नीरजा और सांध्य गीत प्रकाशित हो चुके थे।

महादेवी वर्मा की कविताओं पर विचार करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है, "छायावादी कहे जाने वाले कवियों में महादेवी जी ही रहस्यवाद के भीतर रही हैं। उस अज्ञात प्रियतम के लिए वेदना ही इनके हृदय का भाव-केंद्र है जिससे अनेक प्रकार की भावनाएँ छूट-छूट कर झलक मारती हैं।" (वही, पृ. 489) यह 'कहे जाने वाले कवियों' और 'छूट-छूट कर झलक मारती हैं।' में निहित व्यंग्य को समझा जा सकता है। महादेवी के काव्य में निहित वेदना पर आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "वेदना से इन्होंने अपना स्वाभाविक प्रेम व्यक्त किया है, उसी के साथ वे रहना चाहती हैं। उसके आगे मिलन सुख को भी वे कुछ नहीं गिनतीं। वे कहती हैं कि 'मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ।' इस वेदना को लेकर इन्होंने हृदय की ऐसी अनुभूतियाँ सामने रखी हैं जो लोकोत्तर हैं। कहाँ तक वे वास्तविक अनुभूतियाँ हैं और कहाँ तक अनुभूतियों की रमणीय कल्पना है, यह नहीं कहा जा सकता।" (वही, पृ. 490)

आचार्य शुक्ल जी की उपरोक्त पंक्तियों में अभिव्यक्त व्यंग्य – "उसी के साथ रहना चाहती हैं। मिलन सुख को भी वे कुछ नहीं गिनतीं।' महादेवी की काव्य संवेदना की प्रशंसा है या निंदा यह सहज ही समझा जा सकता है। आगे वे महादेवी की कविता में अभिव्यक्त 'पीड़ा' के साथ 'चसका' शब्द का प्रयोग करते हैं जो उनकी पुरुषवादी आलोचकीय मानसिकता की 'सीमा' को दर्शाता है –

पीड़ा का चसका इतना है कि –
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा।
तुममें ढूँढूगी पीड़ा" (वही, पृ. 490)

हजारों साल से शोषित-उत्पीड़ित भारतीय स्त्रियों की 'पीड़ा' जब अभिव्यक्ति का रूप ग्रहण करती है तो उसे आचार्य शुक्ल 'चसका' की संज्ञा देते हैं। स्पष्ट है कि महादेवी की स्त्री-संवेदना को समझने में आचार्य शुक्ल से भारी चूक हो गई। वैसे महादेवी के गीत की उन्होंने प्रशंसा की है, "गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भावभंगी। जगह-जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।" इस प्रकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने महादेवी की कविता को 'आध्यात्मिक रहस्यवाद' के घेरे में बाँध दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि आगे के आलोचकों ने भी उनकी कविता से मुँह फेर लिया।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, वैसे तो द्विवेदी जी आचार्य शुक्ल के विपरीत छायावाद की प्रशंसा करते हैं, लेकिन महादेवी की कविता के संदर्भ में उन्होंने भी शुक्ल जी से अलग हटकर विचार करने की कोशिश नहीं की। द्विवेदी जी छायावादी कविता का प्राणतत्त्व मानवतावादी दृष्टिकोण को मानते हैं। उन्हीं के शब्दों में "मानवीय दृष्टि के कवि की कल्पना, अनुभूति और चिंतन के भीतर से निकली हुई, वैयक्तिक अनुभूतियों के आवेग की स्वत: समुचित अभिव्यक्ति – बिना किसी आयाम के और बिना किसी

प्रयत्न के, स्वयं निकल पड़ा हुआ भावस्रोत – ही छायावादी कविता का प्राण है। सन् 1920 ई. में जो देशव्यापी चेतना की लहर देश के इस किनारे से उस किनारे तक फैल गई थी, उसने कवि और सहृदय दोनों को अधिक आत्मविश्वासी और अधिक भावग्राही बनाया। संयोग से इसी काल में अनेक प्राणवंत कवियों का आविर्भाव हुआ।" (हिंदी साहित्य : उदभव और विकास, पृ. 243)

द्विवेदी जी महादेवी की कविता को वैयक्तिक और रहस्यववादी की संज्ञा देते हैं लेकिन आचार्य शुक्ल से थोड़ा अलग हटकर वैयक्तिकता की व्याख्या करते हैं – "महादेवी की यह रहस्यावादी भावना संपूर्ण रूप से वैयक्तिक है। यह फिर भी स्पष्ट कर देना उचित है कि काव्य में 'वैयक्तिक' से तात्पर्य यह नहीं है कि कवि के व्यक्तिगत दुख-सुख का समाचार हमें मिलता है, बल्कि वैयक्तिकता का तात्पर्य यह है कि कवि ने जिन भावों को सर्वसाधारण भाव बना दिया है, वे शुरू-शुरू में उसके अपने राग-विरागों और मनन-निदिध्यासन द्वारा अनुरंजित चित्त में उत्थित हुए थे। काव्य में प्रकट होने के बाद कवि के नहीं, सहृदय मात्र के अपने भाव बन जाते हैं। व्यक्तिगत अनुभूतियों की तीव्रता और मर्मस्पर्शिता में महादेवी की रचनाएँ अपूर्व हैं। वे पाठक के चित्त में वेदना की अनुभूति भरती हैं और खोई हुई वस्तु के मिल जाने की आशा से उत्पन्न होने वाले उल्लास का वातावरण उत्पन्न करती हैं। (वही, पृ. 242)

देखा जाए तो हजारी प्रसाद द्विवेदी की दृष्टि से भी महादेवी की वैयक्तिकता में भारतीय स्त्री जीवन की निजता और त्रासद यथार्थ अलक्ष्य रह गया। यही कारण है कि प्रसाद के रूपक-बंध से महादेवी के रूपक की तुलना करते समय भी उन्होंने स्त्री-जीवन को ध्यान में नहीं रखा। "लाक्षणिक वक्रता और मनोवृत्तियों की मूर्त योजना में ये प्रसाद के समान ही हैं, फिर भी प्रसाद की वक्रता में जितनी स्पष्टता है उतनी भी इनकी आरंभिक रचनाओं में नहीं है। दोनों के मानसिक गठन और वक्तव्य के प्रति पहुँच में भेद है। प्रसाद जी आरंभ से ही कुछ बुद्धि-वृत्तिक हैं, वे रूपक को दूर तक घसीट और संभालकर ले जाने की क्षमता रखते हैं। महादेवी शुरू से ही अत्यंत संवेदनशील हैं, उनमें अनुभूति की तीव्रता 'प्रसाद' से अधिक है। इसीलिए वे 'प्रसाद' के समान लंबे रूपकों का निर्वाह नहीं कर पातीं। वे पूर्ण रूप से गीति काव्यात्मक प्रकृति की हैं।" (वही, पृ. 249)

स्पष्ट है कि महादेवी की संवेदनशीलता और अनुभूति की तीव्रता की प्रशंसा करते हुए भी द्विवेदी जी महादेवी की काव्य-प्रतिभा को प्रसाद के मुकाबले कमतर आंकते हैं।

नंददुलारे वाजपेयी : छायावाद के पक्ष में दृढतापूर्वक खड़े होने वाले आलोचक आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने प्रसाद, निराला और पंत को वृहत्रयी में रखते हुए उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है, जो उचित भी है। लेकिन महादेवी वर्मा को उन्होंने इन वृहत्रयी से इतर रखकर काव्य-प्रतिभा में कमतर माना है। वाजपेयी जी का मानना है कि "हिंदी में महादेवी जी का प्रवेश छायावाद के पूर्ण ऐश्वर्य काल में हुआ था, किंतु आरंभ से ही उनकी रचनाएँ छायावाद की मुख्य विशेषताओं से प्राय: एकदम रिक्त थीं।" इस क्रम में वाजपेयी जी छायावाद की एक परिभाषा तय करते हैं, "मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किंतु व्यक्ति सौंदर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से छायावाद की एक सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।"

दरअसल महादेवी की कविता किसी पूर्व निर्धारित प्रतिमानों के खांचे में फिट नहीं बैठती। यही कारण है कि उनकी कविता को आलोचकों ने वैयक्तिता, रहस्यवाद, कलाविहीन आदि कमजोरियों को गिनाकर अपनी दृष्टि की कमजोरी को छुपाने का प्रयास किया या फिर दूसरे छायावादी कवियों को सामने खड़ा कर अच्छा-बुरा की शैली में महादेवी की कविता का विवेचन करने का प्रयास किया गया। वाजपेयी

जी लिखते हैं, "प्राकृतिक सौंदर्य के प्रति 'पल्लव' वाले पंत जी का-सा विमोहक आकर्षण उनमें नहीं, इसके बदले वे प्रकृति के एक-एक रूप या उसकी एक-एक वृत्ति को साकार व्यक्तित्व देकर उनके व्यापारों की कल्पना करती हैं, जिनकी समृद्धि कल्पनाशीलता में प्रकट हुई है। ...किंतु वे कल्पनाएँ सब जगह सीधी और चोट करने वाली नहीं, उनका प्रत्यक्ष रूप सहज आँखों के सामने नहीं आता।" वाजपेयी जी 'कल्पना-बाहुल्य को छायावाद की विशेषता बताते हुए 'पंत' के समक्ष महादेवी के प्रतीकों को 'कल्पित-व्यापार' कहते हैं, जिसे वे 'सौंदर्य-संस्कारों के प्रतिकूल' मानते हैं। वाजपेयी जी महादेवी पर काल्पनिकता का आरोप लगाने वाले आलोचकों को उत्तर देते हुए लिखते हैं कि "महादेवी के काव्य का आधार उसी अर्थ में काल्पनिक कहा जा सकता है, जिस अर्थ में कबीर और मीरा का काव्याधार काल्पनिक है; जिस अर्थ में 'गीतांजलि' और 'आँसू' काल्पनिक हैं।"

महादेवी वर्मा की कविता का मूल्यांकन करते हुए अंततः नंददुलारे वाजपेयी इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि "स्त्रियोचित सात्विकता ही महादेवी के काव्य की सार्वत्रिक विशेषता है। इससे उनके काव्य को एक सुंदर कांति मिली है, यद्यपि कहीं-कहीं अति सरलता, सौंदर्य-स्पर्श से वंचित भी रह गई है। ... महादेवी जी की वेदना पहले व्यक्तिगत भावुकता अथवा दृढ़ भक्तिभावना के रूप में रही है जो क्रमशः निखरती गई है।" (नंददुलारे रचनावली-2, पृ. 428) फिर भी वाजपेयी जी मीरा और महादेवी की कविता में कोई स्त्रियोचित पीड़ा का साम्य नहीं ढूँढ़ पाते। वे सिर्फ कलावादी दृष्टि से दोनों की कविता की तुलना करते हैं, "विशुद्ध काव्य-दृष्टि से महादेवी मीरा की ऊँचाई पर कम ही पहुँचती हैं। काव्यकला से सज्जित होने पर भी उनकी कविता में तीव्र नैसर्गिक उन्मेष नहीं, साथ ही, उनमें एकांगिकता भी है। उक्त भावना-शिशु के लिए मुक्ति आकाश में पक्षी की भांति उड़कर चराचर जगत की जो सौंदर्य-सामग्री, जो सहज आस्वाद फल, कविगण प्रस्तुत किया करते हैं, महादेवी जी में उसकी कमी है। भावना-शिशु का प्यार उन्हें अपना नीड़ छोड़ने नहीं देता।" 'शास्त्रोचित सात्विकता' और 'नैसर्गिकता' की दृष्टि से महादेवी वर्मा की कविता को परखने के प्रयास के कारण यहाँ वाजपेयी जी अपने ही तर्कजाल में उलझते नजर आते हैं। असल में महादेवी वर्मा की अंतर्मुखता में व्याप्त भारतीय स्त्री जीवन के त्रासद सामाजिक-यथार्थ को समझने में तत्कालीन सभी आलोचक की तरह नन्ददुलारे वाजपेयी भी असफल रहे।

डॉ. नगेंद्र को छायावाद का सहृदय आलोचक कहा गया है। लेकिन उन्होंने फ्रायडवादी काम सिद्धांत को महादेवी की कविता का प्रेरणास्रोत मानकर दूर की कौड़ी खोजने की कोशिश की। डॉ. नगेंद्र के शब्दों में, "छायावाद की अंतर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम, जो बाह्य तृप्ति न पाकर अमांसल की सृष्टि करता है, मानव और प्रकृति के चेतन संस्पर्श रहस्य चिंतन (अनुभूति नहीं) तितली के पंखों और फूलों को पंखुरियों से चुराई हुई कला, और इन सबके ऊपर स्वप्न-सा पुरा हुआ एक वायवीय वातावरण सभी तत्त्व जिनमें घुले-मिले रहते हैं।" (विचार और अनुभूति, पृ. 130) यहाँ डॉ. नगेंद्र ने महादेवी की रहस्यभावना को अतृप्त काम-भावना से जोड़कर महादेवी की कविता को संदर्भ से काटकर देखने का प्रयास किया है।

'छायावाद का पतन' लिखकर चर्चा अर्जित करने वाले आलोचक डॉ. देवराज का पुरुषवादी पूर्वाग्रह उनकी टिप्पणी से झलकता है, "महादेवी ने अपनी कविता में कहीं भी युग-जीवन अथवा स्वयं जीवन के संबंध में विचार करने की चेष्टा नहीं की है, उनके आलोचक के लिए यह बड़े संतोष की

बात है।" (साहित्य चिंता, पृ. 202) दरअसल महादेवी की कविता में अभिव्यक्त, विरह-वेदना तक पहुँचने के लिए जिस स्त्री-संवेदना की जरूरत थी, वह पुरुषवादी आलोचना के वश की नहीं थी। अज्ञेय ने ठीक ही लिखा है कि "उन्हें तो वैयक्तिक अनुभूतियों को अभिव्यक्ति भी देनी थी। और सामाजिक शिष्टाचार तथा रूढ़ बंधनों की मर्यादा भी निभानी थी। यही भाव उन्होंने प्रतीकों का आश्रय लेने को बाध्य करता है।" अमृत राय ने महादेवी की काव्य-संवेदना को 'मैं नीर भरी दुख की बदली।' के संदर्भ में परखने की सलाह देते हुए लिखा है कि "महादेवी ने स्वयं अपनी कविता का सबसे अच्छा" परिचय दिया है, "*मैं नीर भरी दुख की बदली*, उनकी इसी पंक्ति को मन में रखे हुए आप उनके संपूर्ण काव्य का अवलोकन कर डालिए।" (नया साहित्य, भाग-4) स्पष्ट है कि अमृतराय ने भी महादेवी की कविता को वैयक्ति रूप में लिया है न कि सामाजिक यथार्थ के रूप में।

डॉ. रामविलास शर्मा ने महादेवी की कविता पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। वे दूसरे आलोचकों की तरह 'रहस्यवाद' के शिकार नहीं हुए। उनकी दृष्टि में "महादेवी वर्मा अपने गीतों में देवी के रूप में नहीं, एक मानवी के रूप में दर्शन देती हैं। वे अपने भाव व्यंजना में इस धरती पर काम करने वाली मनुष्य नामक प्राणी ही नहीं है वरन् उसका एक भेद नारी भी हैं। उनका नारीत्व सामाजिक सीमाओं के अंदर विकास के लिए पंख फड़फड़ाता है। उनकी यह व्याकुलता अनेक सांकेतिक रूपों में उनकी कविता में प्रकट होती है", नि:संदेह रामविलास शर्मा ने पहली बार महादेवी की कविता को स्त्री के सामाजिक यथार्थ से जोड़ने का प्रयास किया। वह स्पष्ट रूप से रेखांकित करते हैं कि निराला के अलावा और किसी कवि में इतनी जिजिविषा नहीं है। "महादेवी जी और उनकी कविता का परिचय केवल 'नीर भरी दुख की बदली' या 'एकाकिनी बरसात' कहकर नहीं दिया जा सकता। उन्हीं के शब्दों में उनका परिचय देना हो तो मैं यह पंक्ति उद्धृत करूंगा, 'रात के उर में दिवस की चाह का शर हूँ।' निराला को छोड़कर किसी भी छायावादी कवि में जीवन की इतनी चाह नहीं है, जितनी महादेवी में। निराशावाद की अंधेरी रात में जीवन प्रभात की यह चाह महादेवी की रचनाओं में बार-बार दीप्त हो उठती है। और जितना ही यह अंधेरा घना होता है - उतनी ही यह चाह और भी तीव्र हो जाती है। महादेवी ने अलंकृत शब्दावली और मनोहर रूपकों में जीवन और सौंदर्य की इस आकांक्षा को बार-बार व्यक्त किया है, 'कंटकों को सेज जिसकी आंसुओं का ताज। सुभग! हंस उठ, उस प्रफुल्ल गुलाब ही सा आज। बीती रजनी प्यारे जाग।' क्या जीवन से विमुख कोई भी व्यक्ति ऐसी सुंदर पंक्तियाँ लिख सकता है? क्या स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहने से उस ठोस जीवन आकांक्षा, मानवीय प्रेम, मानवीय सौंदर्य की आकांक्षा की व्याख्या हो जाती है - जो इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है?" (परंपरा का मूल्यांकन, पृ. 182)

विजयदेव नारायण साही ने महादेवी की कविता को दूसरे दशक की छायावादी मनोभूमि से भिन्न मानते हुए लिखा है कि "रहस्यहवादी शब्दावली उसमें जितनी भी हो; न केवल कविता के प्रधान फार्म में, बल्कि अनुभूति की बनावट में भी महादेवी की कविता क्रमश: बच्चन आदि में परिवर्तित होते हुए उदाहृत करती है। इसीलिए जब निराला की डाल खिलना चाहती है तो उसमें एक संकल्प का स्वर है और महादेवी के जितने फूल हैं - वे एक तरल और मधुर मार्दव के साथ सहज ही खिलते हैं, झरते हैं।" (छठवां दशक, पृ. 303)

डॉ. नामवर सिंह ने महादेवी की कविता में अभिव्यक्त सामाजिक असंतोष को रेखांकित करते हुए लिखा है, "निजी आँसुओं के 'नीहार' में बंदिनी रहने वाली महादेवी ने 'रश्मि' के आलोक में जीवन

की व्याप्ति का दर्शन किया और प्रखर ताप को झेलते हुए सांध्य क्षणों तक जाते-जाते समान व्यापी दुख की अनुभूति करने लगी। उनकी 'नीर भरी दुख की बदली' का दुख केवल प्रणय व्यथा ही नहीं है, उसमें अनेक प्रकार के सामाजिक असंतोष घुले-मिले हैं।" प्रकृति के आलंबन के संदर्भ में प्रसाद से तुलना करते हुए डॉ. नामवर सिंह ने लिखा है कि "कुछ कवियों ने 'विश्व' सुंदरी प्रकृति पर चेतना का आरोप करके उसे विश्वप्रिया शक्ति का रूप दे दिया और कुछ ने 'प्रकृति की अनेकरूपता में, परिवर्तनशील विभिन्नता में तारतम्य खोजने' के फलस्वरूप उसके 'कारण पर मधुरतम व्यक्तित्व का आरोपण' करके अपनी प्रिया बना लिया। पहली प्रवृत्ति प्रसाद की है और दूसरी महादेवी की।" (छायावाद, पृ. 41) नामवर सिंह अगर 'शृंखला की कड़ियाँ' के आलोक में महादेवी की कविता पर विचार करते तो पाठक को व्यापक परिप्रेक्ष्य मिल पाता।

रामस्वरूप चतुर्वेदी की दृष्टि में महादेवी वर्मा की कविता एकांगी है, जिसकी कमी उनका गद्य पूरा करता है, "गीतों में भावात्मिक सघनता और शिल्पगत कसाव एक-दूसरे को तीव्र बनाते हैं, जबकि उनमें रेखाचित्र और संस्मरण उनके सामाजिक कार्यक्रमों तथा व्यावहारिक जीवन की विषमताओं में से विकसित होकर एक गहरी करुणा की सृष्टि करते हैं। पर महादेवी के साहित्यि में कहीं निष्क्रिय दया नहीं, वरन रचनात्मक करुणा का ही भाव वर्तमान है।" (हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, पृ. 133)

मैनेजर पांडेय महादेवी के गद्य और पद्य को एक साथ रखकर उनकी मूल संवेदना को रेखांकित करते हैं। उनका मानना है कि, "महादेवी वर्मा भारतीय स्त्री के जीवन के अनुभवों और आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति करने वाली कलाकार हैं, उसके जागरण का अभियान चलाने वाली कार्यकर्ता और उसकी पराधीनता के जटिल रूपों का विश्लेषण तथा स्वाधीनता की संभावनाओं की तलाश करने वाली दार्शनिक भी हैं। उनके गीतों, चित्रों और रेखाचित्रों में उनका कलाकार रूप मिलता है तो उनकी शिक्षा, संस्कृति और साहित्यिक पत्रकारिता संबंधी गतिविधियों में उनका कार्यकर्ता रूप। 'शृंखला की कड़ियाँ' के माध्यम से वे एक स्त्रीवादी दार्शनिक के रूप में हमारे समाने आती हैं।" (मैनेजर पांडेय : संकलित निबंध, पृ. 228)

महादेवी वर्मा के साहित्य पर हिंदी के अधिकांश आलोचकों ने जिस प्रकार पूर्वाग्रह ग्रस्त होकर विचार किया है उसे समझने के लिए मैनेजर पांडेय के इस कथन का सहारा लिया जा सकता है जो असल में महादेवी के आलोचकों के यथार्थ को सामने लाता है :

"महादेवी वर्मा की कविता के साथ आरंभ से ही एक प्रकार के आलोचनात्मक पूर्वग्रह की स्थिति दिखाई देती है। यह ठीक है कि उनकी कविता में दुख है, वेदना है, निराशा है, आँसू हैं, अंतर्मुखता है और अभिव्यक्ति शैली के परोक्ष की प्रधानता भी है, पर साथ ही वहाँ असंतोष है, आक्रोश है और संघर्ष की चेतना भी। आलोचकों ने उनके आँसुओं पर ध्यान दिया है, लेकिन उनके आक्रोश पर नहीं। प्रायः आलोचकों ने यह भी देखने-समझने की कोशिश नहीं की है कि महादेवी वर्मा की कविता में जो दुख, वेदना, निराशा और अंतर्मुखता है, वह सब उनके समय की और आज की भी भारतीय स्त्री के जीवन की वास्तविकताएँ हैं और संभावनाएँ भी। कुछ आलोचकों ने अपनी प्रतिभा का कमाल दिखाते हुए महादेवी वर्मा की कविता में दुख के अनुभव की अभिव्यक्ति को दुखवाद बना दिया है तो कुछ दूसरों ने उन्हें 'एकाकिनी बरसात' या 'नीर भरी दुख की बदली' घोषित कर दिया है। ऐसी घोषणाएँ कविता

को अखबार की तरह पढ़ने का परिणाम है। जो आलोचक कविता को इतिहास के संदर्भ और सामाजिक जीवन के अनुभवों से स्वतंत्र मानते हैं, वे महादेवी की कविता में तरह-तरह के रहस्यवाद खोजते हैं। इस प्रक्रिया में कविता और कवि दोनों का मिथकीकरण हुआ है, कविता अध्यात्म-साधन की अभिव्यक्ति बन गई है और महादेवी वर्मा मीरा बना दी गई हैं; वह भी अपनी स्वाधीनता के लिए राणाशाही के आतंक, सामंती समाज की रूढ़ियों और कुलकानि के बंधनों के विरुद्ध विद्रोह करने वाली मीरा नहीं, निरीह भाव से भगवान का भजन करने वाली मीरा।" (वही, पृ. 225)

इस प्रकार देखा जा सकता है कि महादेवी वर्मा के साहित्य पर विचार करने वाले आलोचकों में कुछ अपवाद को छोड़कर अधिकतर ने उनकी कविता को पुरुषवादी नजरिए से देखने का प्रयास किया है। इन आलोचकों ने उनकी कविता को उनके गद्य से बिलगाकर परखने का प्रयास किया जिसके कारण या तो वे अपने अंतर्विरोधों का शिकार हुए या फिर फतवेबाजी पर उतर आए। डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल ने ठीक ही लिखा है कि "हिंदी-आलोचना का कैसा दुर्भाग्य रहा है कि ज्यादातर मर्दवादी आलोचक महादेवी के काव्य-कर्म को पलायनवादी, वेदनावादी कहकर 'मति अति रंक' का परिचय बनते रहे। प्रश्न उठता है कि क्या यह सृजन लोक-विरोधी समाज-विरोधी है? इसमें 'शिवेतरक्षतये' की मंगल-ध्वनि नहीं है? गद्य में महादेवी की करुणा का विस्तार और पद्य में महादेवी का सुख-दुख भाव-क्या एक-दूसरे का विरोधी है? यदि विरोधी न होकर पूरक है तो महादेवी को अखंडता में देखिए। अखंडता में देखने पर आप महादेवी के रचना-कर्म की अंतर्वस्तु को पलायनवादी नहीं पाएंगे।" (नवजागरण और महादेवी वर्मा का रचनाकर्म : स्त्री विमर्श के स्वर, पृ. 337)

स्पष्ट है कि आलोचकों का एक वर्ग सामने आ गया है जो आधुनिक दृष्टि से संपृक्त है और स्त्री -स्वाधीनता के प्रश्नों को केंद्र में रखकर महादेवी की कविता से नए अर्थ-छवियों को निकाल रहा है। इसे स्त्रीवादी लेखन के दवाब में भी देखा जा सकता है। सही अर्थों में महादेवी की रचनाओं के मूल्यांकन की ये शुरुआत भर है।

लेखिकाओं की दृष्टि में महादेवी वर्मा : विभिन्न लेखिकाओं ने महादेवी वर्मा के साहित्य पर विचार किया है। चंद्रा सदायत के संपादन में उपरोक्त शीर्षक से नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया से एक किताब प्रकाशित हुई है जिसमें 18 महिला रचनाकारों के लेख, संस्मरण और आलोचना को संकलित किया गया है जिसे नजरअंदाज करके महादेवी वर्मा का मूल्यांकन करना असंभव है। निस्संदेह इन लेखिकाओं ने स्त्री होने के नाते महादेवी वर्मा के साहित्य की मूल संवेदना, संघर्ष, विद्रोह और यथार्थ को समग्रता में रेखांकित करने का प्रयास किया है। शचीरानी गुर्टू के अनुसार, "महादेवी के काव्य में एक स्वप्निल मानसिक वातावरण और व्यथा का सम्मोहन है। प्रणयोन्माद और अंत:सौंदर्य की अभिव्यक्ति में उनके भाव जितने ही अंतरगूढ़ होते हैं, उनकी भावाभिव्यंजना की कला भी उतनी ही सघन और दार्शनिक रहस्यात्मिकता से आच्छन्न होती है। कौतुहल के बाद जिज्ञासा आई, फिर रंजित कल्पना और अंतत: कोमलतम सूक्ष्म सौंदर्य-भावना। उनके अंतरतम में सहेजे उदात्त सपने धुंधली-सी, मीठी-मीठी, मादक उदासी में भरकर कविता में उभरे। माधुर्य की गूढ़ अनुभूति में सौंदर्य का उनका आकर्षण उत्तरोत्तर अंतर्मुखी होता गया और वास्तविक अनुभूतियों के गूढ़तम स्तरों में छिपी आंतरिक उथल-पुथल को उन्होंने विविध रंगों, ध्वनियों और असाधारण लयमयता में झंकृत किया।" (पृ. 40)

निर्मला जैन ने महादेवी वर्मा रचनावली का संपादन किया है। वह महादेवी के संदर्भ में लिखती

हैं कि "उनके आरंभिक गीतों में भावना का जो सहज उच्छवास, हार्दिकता और मार्मिकता मिलती है, वह समय के साथ क्षीण होती गई। 'नीहार' से 'दीपशिखा' तक पहुँचते आवेग की ऊष्मा का क्रमशः क्षरण होने के कारण उनकी गीत-सृष्टि विषय-निरपेक्ष, चिंतन प्रधान और आध्यात्मिक संस्पर्शों से युक्त हो जाती है।"(पृ. 50) अनामिका के शब्दों में महादेवी ने पुरुष की छायावाली रूढ़ छवि को तोड़ने का प्रयास किया। सुधा सिंह का मानना है कि "महादेवी की कविता में से स्त्री को निकालकर किसी भी किस्म का विमर्श तैयार नहीं किया जा सकता। स्त्री को विश्व के समस्त कार्य-व्यापार में आधार बनाने का प्रधान कारण यह है कि स्त्री समस्त संस्कृति की सर्जक है। वह सिर्फ एक लिंग मात्र ही नहीं है। वह संसार को चलाने वाली गाड़ी के दो पहियों में से एक पहिया नहीं है। मानव सभ्यता के विकास की सभी संस्कृतियों में स्त्री सक्रिय रही है।" चंद्रकला त्रिपाठी महादेवी वर्मा को साहसिक सचेतन दृष्टि संपन्न लेखिका मानती हैं। और रोहिणी अग्रवाल महादेवी वर्मा की रचना 'श्रृंखला की कड़ियाँ' को पुरुषवादी तंत्र के भीतर धंस कर स्त्री-स्वतंत्रता की फरियाद करने वाली रचना बताती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 20वीं शतब्दी में बहुत कम आलोचकों ने ही महादेवी वर्मा के साहित्य को सही परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयास किया। वर्तमान शताब्दी में उनके साहित्य को परखने की शुरुआत हो चुकी है। निस्संदेह वह भारतीय स्त्री की मुक्ति की आकांक्षा का प्रमुख स्वर बनकर हिंदी साहित्य में एक अलग आंदोलन की शुरुआत करती हैं।

सन्दर्भ :

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
2. नामवर सिंह, छायावाद, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
3. विजयबहादुर सिंह (संपादक), नंददुलारे वाजपेयी रचनावली, खंड-2, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा. लि.), दिल्ली।
4. मैनेजर पांडेय, संकलित निबंध, नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली।
5. कृष्णदत्त पालीवाल, 'नवजागरण और महादेवी वर्मा का रचनाकर्म : स्त्री-विमर्श के स्वर', किताबघर प्रकाशन, दिल्ली ।
6. रामविलास शर्मा, परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन।
7. गंगा प्रसाद पांडेय, महीयसी महादेवी।
8. जगदीश गुप्त, महादेवी, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
9. आजकल, मार्च 2007
10. गगनांचल (महादेवी स्मृति अंक)
11. प्रतिभा इंडिया, महादेवी 'स्मृति अंक' (अंग्रेजी)
12. चंद्रा सदायत (सं.), लेखिकाओं की दृष्टि में महादेवी वर्मा, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली।

Websites:

1. www.wikipedia.org
2. www.kavatakash.org
3. www.pravasidunia.com
4. www.hindisamay.com

❑❑❑

बीत गयी पर बात नहीं गयी

(‘अतीत के चलचित्र’ और महादेवी वर्मा)

❍ आशा सिंह

रेखाचित्र गद्य लेखन की एक आधुनिक विधा है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में असंख्य ऐसी घटनाएँ या लोग होते हैं जिनकी स्मृतियाँ हमेशा उसके साथ रहती हैं। इन स्मृतियों में कुछ ऐसी होती हैं जैसे कि वे अभी-अभी ही घटित हुई हों। उनका तीखापन, उनकी मिठास बिलकुल ताजा होती है। जब भी उन्हें देखो, बिलकुल साफ-शफ्फाक दिखाई देंगी। आदमी इनसे पीछा नहीं छुड़ा सकता, छुड़ाना चाहे भी तो। कई बार तो वे ऐसी होतीं हैं कि मनुष्य उन्हीं के सहारे अपने वर्तमान को अतीत करता है। हालाँकि, कई स्मृतियाँ ऐसी भी होती हैं जिन्हें मिटाने का हर उपक्रम मनुष्य करता है लेकिन आज तक ऐसा कोई ‘ईरेजर’ बना नहीं। एक ही उपाय है, स्मृति-लोप, और ऐसा कोई चाहेगा नहीं। कहने का मतलब यह है कि हम जितना अपने वर्तमान में जीते हैं, उसमें बहुत बड़ा योगदान हमारी स्मृतियों का, हमारे अतीत का होता है। जो कुछ भूल-बिसर गई हैं या ठीक-ठीक याद हैं, उन्हें संस्मरणात्मक गद्य में लिखा जाता है लेकिन जो स्मृतियाँ या चेहरे अपने पैनेपन के साथ मौजूद रहते हैं, उन्हें तो रेखाचित्र ही अभिव्यक्त करता है। यह ऐसे होता है जैसे कि ये पलकें झपक जाएंगी एकाएक, होंठ बोल पड़ेगें और वह आदमी जो हमारी स्मृतियों में हैं एकाएक चलता हुआ हमारे कमरे की राईटींग डेस्क तक आ जाएगा और रेखाचित्र बनकर दोबारा जन्म ले लेगा।

महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों के पात्र जब हमसे मिलते हैं तो ऐसा लगता है कि वे यहीं कहीं हैं, हमारे बहुत ही निकट, हमारी आत्मा के पास। चाहे वह रामा हो, लछमा हो या घीसा; हर एक पात्र हमारी आँखों में उतर आता है। उन्होंने पात्रों का जिस तरीके से चित्रण किया है, उनके रंग-रूप, हाव-भाव तथा उनके व्यवहार का, उससे हम न सिर्फ उसका ठीक-ठीक अनुमान लगा पाते हैं बल्कि वे सभी पात्र हमारी आँखों के समक्ष जीवंत हो उठते हैं। उदाहरण के लिए, सबिया का चित्र अंकित करती हुई लेखिका कहती हैं, “एक दिन मास भर के नामधारी मांसपिण्ड को चिकट से कपड़े में लपेट और अपनी नग्नता को मलिनता से ढाँकने वाली पाँच वर्ष की बचिया को उँगली से सहारा दिए, सबिया मेरे सामने आ उपस्थित हुई। उसका मुख चिकनी काली मिट्टी से गढ़ा जान पड़ता था; परन्तु प्रत्येक रेखा में साँचे की वैसी ही सुडौलता थी जैसी प्राय: पेरिस प्लास्टर की मूर्तियों में देखी जाती है। आँखों की गढ़न लम्बी न होकर गोल-गोल होने के कारण उनमें मेले में खोये बच्चे जैसी सभ्य चकित दृष्टि थी। हाथ-पैर में मोटे-मोटे चमकहीन गिलट के कड़े उसे कैदी की स्थिति में डाल देते थे। कुछ कम चौड़े ललाट पर जुड़ी भौंहो के ऊपर लगी पीली काँच की टिकुली में जो शृंगार था, वह भटकटैया के फूल से घूरे के शृंगार का स्मरण दिलाता था। कभी लाल, पर अब पुराने घड़े के रंग वाली धोती में लिपटी सबिया ऐसी

लगी, मानो किसी अपटु शिल्पी की सयत्न गढ़ी मिट्टी की मूर्ति हो, जिसके सब कच्चे रंग धुल गए हैं और जहाँ-तहाँ से केवल सुडौल रेखाओं में बँधी मिट्टी झाँकने लगी हैं।"[1] लेखिका की स्मृतियों में अंकित सबिया का यह चित्र शब्दों का आकार पाकर पाठकों की नजरों के सामने उपस्थित हो जाता है। इसके बाद उसके साथ बीती हर घटना को हम अपनी आँखों के सामने घटित होता पाते हैं। सिर्फ सबिया ही क्यों, अतीत के चलचित्र के प्रत्येक रेखाचित्र के पात्र उनके मार्मिक शब्दों को पाकर स्वत: जी उठते हैं। अलोपदीन हो या घीसा, लक्ष्मा, बदलू और उसकी पत्नी, भाभी आदि, सभी के सभी पात्रों की अपनी-अपनी जीवन कथा है। सबसे आवश्यक बात यह है कि रेखाचित्र किसी व्यक्ति पर केन्द्रित होता है। लेकिन इन रेखाचित्रों के माध्यम से लेखिका का जीवन चित्र भी पाठकों के समक्ष आया है। महादेवी जी का परिवार कैसा था, उनका बचपन कैसा बीता, इसकी जानकारी भी इन रेखाचित्रों से मिलती है। उन्होंने स्वयं इस बात को स्वीकारा है। वे कहती हैं, "इन स्मृति-चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है। यह स्वाभाविक भी था।"[2]

उन्होंने इस पुस्तक में जितने लोगों की जीवन-कथा प्रस्तुत की है वे सभी निम्नवर्गीय लोग हैं जिन्हें सदियों तक चले अन्याय चक्र के परिणामस्वरूप आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से 'पिछड़ा' बनाया गया है। महादेवी के वर्ग से ताल्लुक रखने वाले मनुष्य शायद ही ऐसे लोगों के करीब भी जाते होंगे या उनको तवज्जों देते होंगे। गरीब-बेसहारा, अभावों का जीवन व्यतीत करने वालों के निकट कोई भी सक्षम व्यक्ति अपना मार्मिक हृदय लेकर शायद ही जाते होंगे या जाना चाहेंगे। महादेवी वर्मा के जीवन का संयोग ही कुछ ऐसा था कि बचपन से ही उनके आस-पास ऐसे लोग रहते थे। गजब यह है कि ऐसे लोगों से दूरी बनाने की जगह समय बीतते बीतते वे उनके और करीब आती चली गईं। रामा, न जाने कब से उनके घर काम कर रहा था। लेखिका बताती हैं कि उन्होंने रामा को बचपन से ही उस घर में देखा है। अपनी स्वामिभक्ति तथा अपने कर्त्तव्यों के प्रति निष्ठावान रामा इस तरह परिवार का हिस्सा हो गया कि उसके बिना बालिका महादेवी तथा उनके अनुजों का एक दिन भी बिताना मुश्किल हो जाता। लेखिका रामा से जुड़ी बचपन की बात बताती हैं कि- "रामा के बिना भी संसार का काम चल सकता है, यह हम नहीं मान सकते थे। माँ जब दस-पन्द्रह दिन के लिए नानी को देखने जातीं तब रामा को घर और बाबूजी की देख-भाल के लिए रहना पड़ता था। बिना रामा के हम जाने के लिए किसी प्रकार भी प्रस्तुत नहीं होते, अत: वे हमें भी छोड़ जाती।"[3]

दरअसल महादेवी और उनका परिवार, खासकर उनकी माँ, अति-उदार, दयालु और सहृदय महिला थीं। किसी का दु:ख सुन कर उनका मन रो पड़ता था। किसी जरूरतमंद को कोई मदद चाहिए होती तो वे जरूर उसकी मदद करतीं। शायद यही गुण महादेवी को उनकी माँ से मिला था। इस बात को वे स्वयं स्वीकारती हुई बताती हैं- "बचपन से बड़े होने तक माँ न जाने कितनी व्याख्या-उपव्याख्याओं के साथ इस व्यवहार-सूत्र को समझाती रही हैं कि हमारी शिष्टता की परीक्षा तब नहीं हो सकती, जब कोई बड़ा अतिथि हमें अपनी कृपा का दान देने घर में आता है, वरन् उस समय होती है, जब कोई भूला-भटका भिखारी द्वार पर खड़ा होकर हमारी दया के कण के लिए हाथ फैला देता है।"[4] दया, ममता तथा संवेदनाओं से भरे उनके व्यक्तित्व का ही परिचय देती है उनकी यह कृति अतीत का चलचित्र। क्योंकि उन्होंने इस कृति में समाज के उपेक्षित वर्ग के लोगों के जीवन का चित्रण किया है। यह तब ही संभव है जब कोई उनसे इतनी आत्मीयता से जुड़ता है।

महादेवी की कविताओं में जिस व्यक्तिगत वेदना और पीड़ा का चित्रण है, रेखाचित्रों में वही पीड़ा

और वेदना समाजगत नजर आती है। समाज में विभिन्न वर्गों के लोग रहते हैं। कुछ लोग अभावों से युक्त जीवन जीते हैं। यहाँ अभाव का मतलब केवल आर्थिक नहीं है बल्कि भावनात्मक रूप से भी लोग एक तरह के अकेलेपन से जूझते हैं। स्वयं लेखिका की कविताओं में इस अकेलेपन की झलक मिलती है। गद्य के क्षेत्र में उन्होंने रेखाचित्रों के माध्यम से इस अकेलेपन की काल-कोठरी में कैद कुछ लोगों के जीवन का चित्र उकेरा है। 'भाभी', 'बिन्दा', 'बालिका माँ', 'अभागी स्त्री', 'बिट्टो' ऐसे ही पात्र हैं, जिन्हें समाज की कुरीतियों ने अकेला कर दिया है और वे इस दण्ड को जीवन भर सहते रहते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि ये सभी लोग लेखिका के जीवन में कहीं न कहीं साथी रहे हैं और उनके बारे में वे बताती हैं।

'भाभी', 19 वर्षीय विधवा; अपने जीवन के सुनहरे दिनों में ही उन्हें दु:खों के सागर ने इस तरह से घेर लिया, जहाँ से कभी निकल पाना उनके लिए मुमकिन ही न हुआ। उस अभागिन का जीवन एक ऐसे घर में कैद हो गया था जहाँ न एक झरोखा था और न रोशनदान, न कोई अतिथि और न कोई पशु-पक्षी ही रहता था। लेखिका उसकी जीवन व्यथा सुनाती है कि "उस समाधि-जैसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे फूल के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी संगी-साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद के, मानो निरन्तर वृद्ध होने की साधना में लीन थी।"[5] उसके जीवन में जैसे अब कुछ बचा ही नहीं था। उसे अपना पूरा जीवन एकांगी और अकेलेपन के साथ ही काटना था। शायद वह ऐसी जिन्दगी नहीं चाहती थी लेकिन, समाज की कुरीतियों ने उसे ऐसे ही जीने की कठोर सजा सुनाई थी। भाभी के भी कुछ सपने रहे होंगे जिसे वह पूरा करना चाहती होगी। और बात सिर्फ सपनों की नहीं है, वह लोगों से मिलना चाहती होगी, बतियाना चाहती होगी, अपना सुख-दु:ख बाँटना चाहती रही होगी लेकिन समाज और घर वालों ने उसपर इतने प्रतिबंध लगा रखे थे कि वह घर की चहारदीवारी से बाहर निकल ही नहीं सकती थी। कुछ दिनों के लिए बालिका महादेवी, भाभी के जीवन में कुछ उमंग लेकर आयी थी परन्तु ज्यादा दिनों तक वह भी साथ न रह सकी।

वहीं बिन्दा के जीवन में एक अलग तरह का सूनापन था। घर में माँ-बाप, भाई, सब साथ थे लेकिन अपना कोई न था। विमाता का आतंक इस कदर घर में मौजूद था कि बिन्दा कभी ठीक से मुस्कुरा भी नहीं पाती थी। बस उसकी एक ही साथी थी, महादेवी जिससे वह बोलती-बतियाती थी। लेकिन उनका साथ भी बहुत कम दिनों तक का ही था। एक छोटी घटना ने दोनों के बीच की मित्रता को बाधित कर दिया। दरअसल यह घटना लेखिका के लिए इतनी बड़ी नहीं थी परन्तु बिन्दा की विमाता के लिए एक अपराध था। अपराध यह था कि बिन्दा ने खौलते दूध के पतीले को अपने नन्हें-नन्हें हाथों से जब उतारा तो उसकी उँगलियों से पतीली छूट गयी और गरम दूध उसके पैरों पर गिर पड़ा। उसे अपने जले पैरों की चिंता जितनी नहीं थी उससे अधिक इस बात का डर था कि माँ उसे कठोर सजा देंगी। लेखिका ने अपनी मासूमियत में उसे अपने घर में छिपा लिया मगर बात तो सामने आनी ही थी। उस घटना के बाद बिन्दा से लेखिका जब मिली थी तो उसे चेचक हुआ था। वह दयनीय स्थिति में घर के एक कोने में अकेली पड़ी थी और उनका अबोध मन चकित होकर लेखिका को देख रहा था। उसके बाद फिर कभी वे बिन्दा से नहीं मिल पायीं।

बिन्दा, रामा, भाभी, इन सभी से लेखिका का बचपन का साथ था। सबिया, घीसा, अलोपी, लछमा से तो वे बाद के दिनों में मिली थीं जब नौकरी करती थी और अकेले रहती थी। अलोपदीन, स्वाभिमानी और संघर्ष की प्रतिमूर्ति है। उसे देखकर कोई भी चकित रह जाएगा। नेत्रहीन होने के बावजूद अपनी बूढ़ी

माँ को और कष्ट न देने हेतु वह खुद सब्जी और तरकारियाँ लेकर बेचता और अपना और अपनी माँ का पेट भरता। वैसी ही संघर्षरत थी लछमा। दु:खों का पहाड़ टूट पड़ा था उसपर लेकिन उसने जिन्दगी से कभी हार नहीं मानी। बहुत ही बहादुर और अपने कर्त्तव्यों के लिए ढृढ़ है लछमा। घर की स्थिति ऐसी कि उसके बिना एक पल बीतना मुश्किल था। "बाप की आँखें खराब हैं, माँ का हाथ टूट गया है और भतीजी-भतीजे की माता परलोकवासिनी और पिता विरक्त हो चुका है।"[6] उसपर स्वयं लछमा की व्यथा अलग। इसके बाद भी जब भी वह लेखिका से मिलती तो न चेहरे में कोई शिकन और न मदद की कोई गुहार। लेखिका कहती भी हैं कि "साधारणत: असंख्य असुविधाएँ और विविध अभाव पहाड़ी जीवन में स्वार्थ भावना को बहुत स्थूल और स्पष्ट रूप दे देते हैं! पर लछमा के जीवन को मैंने इसका अपवाद ही पाया।"[7] उसके जीवन को देख महादेवी जी कहती हैं, "मुझे उसकी स्वाभाविक हँसी में छिपे आँसुओं को खोजना पड़ता है और उन आँसुओं के नीचे छिपे कारणों का पता लगाना पड़ता है। फिर अन्त में, 'हम तो ऐसे ही जंगली हैं, हमें क्या चाहिए', आदि के द्वारा लछमा मेरा सारा परिश्रम निष्फल किये बिना नहीं रहती।"[8]

जीवन, जिसे इस समूची पृथ्वी की सबसे कीमती चीज माना जाता है वही जीवन किसी के लिए अभिशाप बन जाता है। लोग कितने जतन से मानव जीवन को जीते हैं। लेकिन संसार में करोड़ों लोग ऐसे हैं जिन के लिए जीवन अभागा है। बिन्दा, सबिया, बिट्टो, बदलू ऐसा ही जीवन जीने वाले लोग हैं। महादेवी जी ने 'अतीत के चलचित्र' में ऐसे ही अभागे जीवन जीने वालो को केन्द्र में रखा है और बड़ी मार्मिकता के साथ उनके जीवन का चित्रण किया है। इस पुस्तक में कुल ग्यारह रेखाचित्र संग्रहित हैं जिसमें से सात स्त्रियों पर केन्द्रित है और अन्य पुरुषों पर। इन सभी रेखाचित्रों में एक चीज समान है कि ये उन लोगों के बारे में हैं जो शोषित-पीड़ित वर्ग से सम्बन्ध रखते हैं। महादेवी सम्पन्न वर्ग से थीं इसके बाद भी उन्होंने अपनी वर्गीय सीमाओं को पार करके इनसे आत्मीय रिश्ता स्थापित कर लिया था। यह सभी महादेवी जी से प्यार करने वाले लोग थे, उनका सम्मान करते थे। लेखिका की स्मृतियों में वे इस तरह से बस गए कि उन्होंने इन रेखाचित्रों में उन्हें पुनर्जीवित कर दिया।

संदर्भ :

1. अतीत के चलचित्र, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ 37
2. वही, पृ. 9
3. वही, पृ. 19
4. वही, पृ. 73
5. वही, पृ. 27
6. वही, पृ. 90
7. वही, पृ. 93
8. वही, पृ. 93

❑❑❑

छायावादी काव्य-कोश

❍ कमलेश वर्मा
❍ सुचिता वर्मा

'छायावादी काव्य-कोश' में छायावाद के चार प्रमुख कवियों की कविताओं से प्रविष्टियाँ ली गयी हैं। जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पन्त और महादेवी वर्मा की 1918 से 1936 के बीच की कविताओं को आधार बनाकर इस कोश का निर्माण किया गया है। इसमें कुल मिलाकर लगभग 12500 प्रविष्टियाँ हैं। शब्द, काव्य-पंक्ति, अर्थ, ग्रन्थावली का खंड/पृ.सं., स्रोत/सन्दर्भ - इन पाँच कॉलम में यह कोश निर्मित है।

प्रविष्टियों का क्रम इन चार छायावादी कवियों की वरिष्ठता के क्रम में रखा गया है। यदि एक ही शब्द इन चारों कवियों की कविताओं में आया है तो पहले जयशंकर प्रसाद की कविताओं से प्रविष्टि ली गयी है, फिर क्रमशः निराला, पन्त और महादेवी से। जयशंकर प्रसाद की कविताएँ 1909 से प्रकाशित होने लगी थीं। निराला की आधी कविताएँ छायावाद के बाद रची गयी हैं। पन्त के काव्य-संसार का बहुत बड़ा हिस्सा छायावाद के बाद रचा गया है। महादेवी वर्मा की 'दीपशिखा' का प्रकाशन 1942 में हुआ था, मगर इसकी कविताएँ छायावादी प्रवृत्ति की हैं और इस संग्रह को परंपरा से छायावाद के अंतर्गत ही माना जाता रहा है। इस तरह इन कवियों की कविताओं का जो हिस्सा छायावाद के अंतर्गत माना जाता है, उन्हें इस कोश का आध ार बनाया गया है।

कोशिश की गयी है कि छायावादी कविताओं में रुचि रखनेवाले को शब्द के अर्थ की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़े। अर्थ को आवश्यकतानुसार विस्तार या संकोच दिया गया है। छायावादी कविताओं को सुलझे हुए रूप में समझने का एक विनम्र प्रयास इस कोश का लक्ष्य है।

यहाँ केवल 'अ' वर्ण की प्रविष्टियाँ नमूने के तौर पर रखी जा रही हैं। इनकी संख्या लगभग सवा बारह सौ है।

- ***कमलेश वर्मा***
A-20, सन्धिनी, त्रिदेव कॉलोनी, चाँदपुर, वाराणसी-221106
मो-09415256226

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अंक-	*'मृत्यु, अरी चिर-निद्रे ! तेरा/अंक हिमानी-सा शीतल,'*	: गोद	**प्र.ग्रं.-2**/63	चिंता/कामायनी
♦	*'मुट्ठी-भर मुसलमान/पले आतंक से हैं/भारत के अंक पर'*	: गोद	**नि.र.-1**/165	महाराज शिवाजी का पत्र
♦	*'सुलाती उन्हें अंक पर अपने'*	: गोद	**नि.र.-1/78**	सन्ध्या-सुन्दरी
♦	*'दीनता के अंक पर शीर्ण था पड़ा हुआ'*	: गोद	**नि.र.-1**/180	रेखा 'ग'
♦	*'अमिट मसि के अंक से/सूने कभी थे छिद्र तेरे'*	: निशान, धब्बे	**म.सा.-1**/377	गूँजती क्यों प्राण -वंशी?/दीप-शिखा
अंकभर-	*'अंकभर घनसार सा/उड़ जाएगा अस्तित्व मेरा!'*	: गोद या आलिंगन से भरा हुआ	**म.सा.-1**/271	सो रहा है विश्व, पर... /सांध्य गीत
अँकवाऊँ-	*'झुलसे पंखों को चुन लाऊँ उन पर दीपशिखा अँकवाऊँ'*	:'दीपशिखा' को अपना प्रेमी मानकर अपने झुलसे पंखों पर इस शब्द को अंकित करवा लूँ	**म.सा.-1**/205	क्यों जग कहता मतवाली/नीरजा
अंक-संसृति-	*'कर रही रंगीन प्रिय के द्रुत पदों की अंक-संसृति'*	: पद चिह्नों या संकेतों से बना यदों का संसार	**म.सा.-1**/253	रागभीनी तू सजनि निश्वास भी.../सांध्य गीत
♦	*'बाँध देंग अंक-संसृति/से तिमिर में स्वर्ण बेला!'*	: चिह्नों या निशानियों से बनी हुई सृष्टि	**म.सा.-1**/313	बाँध देंग अंक-संसृति/दीप-शिखा
अंग-गंध-	*'मन्द मलय भर अंग-गन्ध मृदु'*	: देह की सुगंध	**नि.र.-1**/221	कौन तुम शुभ्र-किरण-वसना?
अँगड़ाई-	*'करुणा की नव अँगड़ाई-सी'*	: नया आकर्षक रूप	**प्र.ग्रं.-1**/290	उठ उठ री लघु.../लहर
अंगना-अंग-	*'अंगना-अंग से लिपटे भी'*	: स्त्री का शरीर	**नि.र.-1**/136	बादल-राग
♦	*'अंगना-अंग पर गगनांगन से गिरकर'*	: स्त्री (अंगना) के अंगों पर	**नि.र.-1**/76	कविता
♦	*'अंगना-अंग पर गगनांगण से गिरकर'*	: स्त्री-शरीर	**नि.र.-1**/88	शृंगारमयी
अंगनाओं-	*'लीन हो गया है रव/शाही अंगनाओं का'*	: स्त्रियाँ, औरतें	**नि.र.-1**/101	दिल्ली
अंग भंगि-	*'अंग भंगि में व्योम मरोर'*	: नर्तन, नाचते समय अंगों का लोच खाना, लहरों के उठने-गिरने से उत्पन्न लोच	**पं.ग्रं.-1**/190	वीचि विलास/पल्लव
अंग भंगियों-	*'वह अनंग पीड़ा अनुभव-सा अंग भंगियों का नर्त्तन,'*	: नृत्य के समय अंगों के मुड़ने और संचालित होने से उत्पन्न सौन्दर्य	**प्र.ग्रं.-2**/57	चिंता/कामायनी
अँगराई-	*'यह आलस की अंगराई है'*	: अँगड़ाई	**प्र.ग्रं.-1/304**	आँखों से अलख जगाने को/लहर
अंगराग-	*सुरभि सुमन्द में हो जैसे अंगराग-गन्ध*	: चंदन, सुगंधित लेप, उबटन	**नि.र.-1**/171	रेखा 'क'
♦	*'अंगराग सी है अंगों में/सीमाहीन उसी की छाया!'*	: शरीर पर लगाया जानेवाला आलेप, उबटन आदि	**म.सा.-1**/375	मैं पलकों में पाल रही हूँ/दीप-शिखा
अंगराग घनसार बनी रज-	*'अंगराग घनसार बनी रज, आतप सौरभ-आलेपन-सा'*	: कपूर के आलेप की तरह हो गयी है धूल	**म.सा.-1**/387	पथ मेरा निर्वाण बन गया!/दीप-शिखा
अंगराग पुलकों का-	*'किसमें देख सँवारूँ कुंतल अंगराग पुलकों का मल मल'*	: सिहरन मानो उबटन की तरह है	**म.सा.-1**/210	टूट गया वह दर्पण निर्मम/नीरजा
अंगराग-गन्ध-	*सुरभि सुमन्द में हो जैसे अंगराग-गन्ध*	: चंदन (उबटन) की गंध	**नि.र.-1**/171	रेखा 'क'
अंगलता-	*'स्वस्थ-व्यथा की लहरों-सी जो अंगलता थी फैली'*	: लता के समान लचीला शरीर	**प्र.ग्रं.-2**/146	कर्म/कामायनी

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अंगलतिका-	*'हुई एकत्र इस मेरी अंगलतिका में'*	: अंग-रूपी लताएँ	**प्र.ग्रं.**-1/340	प्रलय की छाया/लहर
अंगारक-तरी-	*'अंतहीन विभावरी है,/पास अंगारक-तरी है'*	: अंगारों से बनी नौका की तरह है सूरज	**म.सा.-1/355**	मोम-सा तन घुल चुका/दीप-शिखा
अंगार-खिलौनों-	*'अंगार-खिलौनों का था मन अनुरागी'*	: दु:ख देनेवाली आकर्षक चीजों को खिलौना समझकर खेला	**म.सा.-1/339**	तू धूल-भरा ही आया! /दीप-शिखा
अंगार-तरी-	*'उसने अंगार-तरी तेरी/अलबेली लहरों से बाँधी!'*	: अंगारों से बनी नौका की तरह है सूरज	**म.सा.**-1/383	तेरी छाया में अमिट रंग/दीप-शिखा
अंगार-शय्या -	*'है तुझे अंगार-शय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना!'*	: अग्नि-सेज, कठिनाइयों से भरा मार्ग	**म.सा.**-1/281	चिर सजग आँखें उनींदी.../सांध्य गीत
अंगार-संघात-	*'लिया साध ने तोल अंगार-संघात!'*	: अंगारों का साहचर्य अर्थात् दिन में सूरज साथी-संघाती है	**म.सा.**-1/401	घिरती रहे रात! /दीप-शिखा
अंगुलि-घात-	*'अंगुलि-घात गुँजा मृदु गुञ्जन'*	: अंगुली के आघात से वीणा बजाना	**नि.र.**-1/238	सकल गुणों की खान, प्राण तुम
अंचल-	*'अंचल लटकाती निशीथिनी अपनी ज्योत्स्ना-शाली'*	: आँचल, रात का आँचल चाँदनी से बना है	**प्र.ग्रं.-2**/140	कर्म/कामायनी
♦	*'जिसके नव गैरिक अंचल की प्राची में भरी ललाई थी'*	: आँचल	**प्र.ग्रं.**-1/296	जगती की मंगलमयी उषा बन/लहर
अंचल छोर-	*'नील व्योम के अंचल छोर'*	: (आकाश-रूपी) आँचल का अंतिम सिरा, क्षितिज तक	**पं.ग्रं.**-1/201	विश्व वेणु/पल्लव
अंजन-	*'कुहुकिनि अपलक दृग के अंजन ! हँसती तुझमें सुन्दर छलना'*	: काजल	**प्र.ग्रं.-2**/173	इड़ा/कामायनी
♦	*'अंधकार दिन की चोटों पर/अञ्जन बरसाने आते'*	: रात का अँधेरा मानो दु:ख को ढँक रहा है	**म.सा.**-1/30	रजत करों की मृदुल तूलिका/नीहार
♦	*'तुम ने इन पर अंजन से/बुन बुन कर चादर तानी'*	: काजल की तरह अँधेरा	**म.सा.**-1/76	जिस दिन नीरव तारों से/नीहार
अंजन-रंजन-भ्रम-	*'अञ्जन-रञ्जन-भ्रम, सन्देह'*	: अपराधी होने का भ्रम, अंजन से रँगे होने का भ्रम	**नि.र.**-1/122	यमुना के प्रति
अंजन-वदना-	*'अंजन-वदना चकित दिशाओं ने चित्रित अवगुंठन डाले'*	:(बादलों के कारण दिशाओं के) चेहरे काजल की तरह काले हैं	**म.सा.**-1/387	पथ मेरा निर्वाण बन गया!/दीप-शिखा
अंजन सार-	*'अपरिचित हो जाता है मीत तुम्हीं हो ऐसा अञ्जन सार!'*	: काजल के घनीभूत मूलरूप की तरह अंधकार है	**म.सा.**-1/78	जहाँ है निद्रामग्न वसंत/नीहार
अंजना-रूप-	*'सहसा नभ में अञ्जना-रूप का हुआ उदय'*	: हनुमान की माँ अंजना	**नि.र.**-1/332	राम की शक्ति-पूजा
अंजलि-	*'इन चरणों में कर्म-कुसुम की अंजलि वे दे सकते'*	: अँजुरी में भरकर अर्पित करना	**प्र.ग्रं.-2**/144	कर्म/कामायनी
अंजलि-कल-	*'अञ्जलि-कल विनत-नवल/पदतल-उपहार'*	: सुंदर अँजुरी	**नि.र.**-1/277	देकर अन्तिम कर
अंत:पुर-	*'अन्त:पुर की निज शय्या पर'*	: घर का वह हिस्सा जहाँ स्त्रियाँ रहती थीं	**नि.र.**-1/116	यमुना के प्रति
♦	*'छाया में दुख के अन्त:पुर का उद्घाटित द्वार'*	: हृदय जो अंत:पुर (स्त्री-निवास) की तरह गुप्त है	**नि.र.**-1/130	बादल राग

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
♦	*'अन्तःपुर के कोमल द्वार'*	: महल का वह हिस्सा जहाँ स्त्रियाँ रहती थीं, कलियों के भीतरी स्थान को अन्तःपुर की तरह कवि ने बताया है	**पं.ग्रं.-1**/199	स्वप्न/पल्लव
अंतःसलिला-	*'क्या हो सूने मरु-अंचल में अन्तःसलिला की धारा-सी'*	: जमीन के नीचे से बहनेवाली जलधारा	**प्र.ग्रं.-2**/100	काम/कामायनी
अंतक-	*'अंतक शरभ के'*	: नष्ट करनेवाले	**प्र.ग्रं.-1**/354	प्रलय की छाया/लहर
अंत के तम-	*'अंत के तम में बुझें क्यों आदि के अरमान मेरे!'*	: मृत्यु का अंधकार	**म.सा.-1**/278	फिर विकल हैं प्राण मेरे!/सांध्य गीत
अंतरंग छल-	*'चुभनेवाला अंतरंग छल अति दारुण निर्ममता'*	: आत्मीय लोगों से मिलनेवाला धोखा	**प्र.ग्रं.-2**/142	कर्म/कामायनी
अंतर-	*'अम्बर असीम अन्तर में,/चंचल चपला से आकर'*	: हृदय, मन	**प्र.ग्रं.-2**/18	आँसू
♦	*'ओ मेरे जीवन की स्मृति – ओ अन्तर के आतुर अनुराग'*	: अन्तर्मन, हृदय	**प्र.ग्रं.-4**/283	चतुर्थ अंक/चन्द्रगुप्त
♦	*'अग-जग का विरह-विधुर अन्तर'*	: मन, हृदय	**पं.ग्रं.-1**/297	दो/ज्योत्स्ना
अंतर की-	*'वह कौंध कि जिसमें अंतर की शीतलता ठंडक पाती हो'*	: हृदय की	**प्र.ग्रं.-2**/126	लज्जा/कामायनी
अंतर के तार खिंचे-	*'अन्तर के तार खिंचे थे तीखी थी तान हमारी'*	: हृदय का कोना-कोना भावनाओं से उत्तेजित था	**प्र.ग्रं.-2/7**	आँसू
अंतरतम-	*'अंतरतम की छाया समेट/मैं तुझमें मिट जाऊँ उदार'*	: हृदय की गहराइयों से	**म.सा.-1/64**	मैं कंपन हूँ तू करुण राग/नीहार
♦	*'किस पर रीझूँ किस से रूठूँ भर लूँ किस छवि से अंतरतम'*	: हृदय का भावलोक	**म.सा.-1**/210	टूट गया वह दर्पण निर्मम/नीरजा
अंतराल -	*'अम्बर का अन्तराल'*	: खालीपन, खाली जगह	**नि.र.-1**/100	दिल्ली
अंतर्दाह-	*'अंतर्दाह स्नेह का तब भी होता था उस मन में'*	: प्रेम और कामभावना की जलन	**प्र.ग्रं.-2**/141	कर्म/कामायनी
♦	*'फैल रही है घनी नीलिमा अंतर्दाह परम से'*	: मन की पीड़ा या जलन	**प्र.ग्रं.-2**/142	कर्म/कामायनी
अंतर्धान-	*'मेरा जग हो अन्तर्धान'*	: अदृश्य होकर घुलमिल जाना	**नि.र.-1**/182	हताश
♦	*'हो जाते हो अंतर्धान'*	: लुप्त हो जाना, अदृश्य हो जाना	**पं.ग्रं.-1**/95	अब न अगोचर रहो सुजान!/वीणा
♦	*'हो जावें द्रुत अन्तर्धान'*	: लीन हो जाना	**पं.ग्रं.-1**/206	छाया/पल्लव
♦	*'कोकिला होती अंतर्धान/चला जाता प्यारा ऋतुराज'*	: अचानक लुप्त हो जाना	**म.सा.-1**/72	स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास/नीहार
♦	*'काल की लहरों में अविराम/बुलबुले होते अंतर्धान'*	: अचानक गायब हो जाना	**म.सा.-1/80**	झूमते से सौरभ के साथ/नीहार
♦	*'धूलि में क्यों खिलकर नादान/उसी में होता अंतर्धान?'*	: समाहित होकर अदृश्य हो जाना	**म.सा.-1**/115	तुहिन के पुलिनों पर छबिमान/रश्मि
♦	*'वीणा होगी मूक बजाने-/वाला होगा अंतर्धान'*	: अदृश्य हो जाना	**म.सा.-1**/33	मैं अनंत पथ में लिखती जो/नीहार

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
♦ *'भूल अधूरा खेल तुम्हीं में/होती अंतर्धान'*	: किसी में समाकर गायब हो जाना	**म.सा.-1**/135	तुम हो विधु के बिम्ब और मैं/रश्मि
अंतर्नयन प्रकाश- *'जरा का अन्तर्नयन प्रकाश'*	: अंतर्मन की दृष्टि, आत्मबोध	**पं.ग्रं.-1**/180	उच्छ्वास/पल्लव
अंतर्नाद- *'व्यथा मीठी ले प्यारी प्यास सो गया बेसुध अंतर्नाद'*	: हृदय की मार्मिक आवाज, अंतस्तल की नीरव वाणी,	**म.सा.-1**/36	ढुलकते आँसू सा सुकुमार/नीहार
♦ *'छिपाए रोता अंतर्नाद कहाँ सीखी यह अद्‌भुत प्रीति?'*	: आंतरिक पीड़ा का स्वर	**म.सा.-1**/83	मूक करके मानस का ताप/नीहार
अंतर्निनाद ध्वनि- *'अंतर्निनाद ध्वनि से पूरित, थी शून्य-भेदिनी सत्ता चित्'*	: समाधि की अवस्था में आत्मा से निरंतर उत्पन्न शब्द की स्वर-लहरी	**प्र.ग्रं.-2**/246	दर्शन/कामायनी
अंतर्निहित- *'उधर पराजित कालरात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई'*	: समा जाना, डूब जाना	**प्र.ग्रं.-2**/67	आशा/कामायनी
अंतर्यामिनि- *'किसने तुझको अन्तर्यामिनि ! बतलाया उसका आना'*	: मन की बात को जाननेवाली (चिड़ियाँ), अप्रत्यक्ष बातों को जाननेवाली	**पं.ग्रं.-1**/113	प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!/वीणा
अंतर्यामी- *'सहज बनाया, तुम अब जिसके अन्तर्यामी'*	: आंतरिक और बाह्य बातों का जानकार या नियंता	**प्र.ग्रं.-2**/204	संघर्ष/कामायनी
अंतर्हित- *'श्रम, ताप और पथ-पीड़ा क्षण भर में थे अन्तर्हित'*	: लुप्त हो जाना, विलीन हो जाना	**प्र.ग्रं.-2**/271	आनन्द/कामायनी
♦ *'हो गयीं कहाँ अंतर्हित/सपने लेकर वे रातें?'*	: गायब हो जाना, कहीं समाकर लुप्त हो जाना	**म.सा.-1**/53	इन हीरक से तारों को/नीहार
अंतस्तल- *'उठती अंतस्तल से सदैव दुर्ललित लालसा जो कि कांत'*	: हृदय, आंतरिक भाव	**प्र.ग्रं.-2**/157	ईर्ष्या/कामायनी
♦ *'दीपक सा जलता अंतस्तल/संचित कर आँसू के बादल'*	: मेरा हृदय	**म.सा.-1**/184	बताता जा रे अभिमानी!/नीरजा
♦ *'नभ-सागर के अंतस्तल में जैसे छिप जाता महा मीन'*	: खूब अन्दर, गहराई में	**प्र.ग्रं.-2**/178	इड़ा/कामायनी
♦ *'केवल अन्तस्तल में मेरे सुख की स्मृति की अनुपम धारा एक बहेगी'*	: हृदय, मन	**नि.र.-1**/103	प्रगल्भ प्रेम
♦ *'विश्व के अन्तस्तल में चाह'*	: हृदय	**नि.र.-1**/143	स्मृति
♦ *'विश्व खोजता अन्तस्तल में'*	: अपने हृदय में	**पं.ग्रं.-1**/368	द्वितीय दृश्य/परी
अंतस्थल - *'जग के अन्तस्थल में उमड़'*	: हृदय	**नि.र.-1**/134	बादल-राग
♦ *'चुराया अंतस्थल में भेद/नहीं तुमको वाणी की चाह'*	: हृदय की गहराई को भेदते हुए	**म.सा.-1**/83	मूक करके मानस का ताप/नीहार
अंतहीन- *'कौन हमें पहुँचाता तुझ बिन/अंतहीन के पार?'*	: अनंत, इस ससीमता से परे	**म.सा.-1**/153	विश्व-जीवन के उपसंहार!/रश्मि
अंतिम आशा- *'अन्तिम आशा के कानों में स्पन्दित हम-सबके प्राणों में'*	: जीवन की समाप्तप्राय संभावना, मृत्युशय्या पर जीवन की संभावना देखना, जिसके बाद कोई आशा न बचे	**नि.र.-1**/136	दीन
अंतिम किरणें- *'अन्तिम किरणें बिखरा कर*	: चन्द्र की अंतिम किरण	**प्र.ग्रं.-2/21**	आँसू

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
	हिमकर भी छिप जाएगा'	अर्थात् रात का अन्त		
अंतिम पाहुन-	*'प्राणों के अंतिम पाहुन'*	: मृत्यु मानो प्राणों का अंतिम अतिथि है	**म.सा.-1**/154	प्राणों के अंतिम पाहुन!/रश्मि
अंतिम विलास -	*'मेरे इस अन्तिम विलास में,'*	: संध्या में प्रकाश (आशा) और अंधकार (पराजय) का मिश्रित सौन्दर्य	**पं.ग्रं.-1**/112	मेरे इस अन्तिम विलास में/वीणा
अंत्य-	*'जगमग जीवन का अन्त्य भाष-'*	: अंतिम	**नि.र.-1**/306	तुलसीदास
अंध अंतर-	*'अन्ध अन्तर में वह प्रथम प्रभात आया'*	: हृदय के अँधेरे में	**नि.र.-1**/179	रेखा 'ग'
अंध-उर-	*'काट अन्ध-उर के बन्धन-स्तर'*	: जिसके हृदय की आँखें फूटी हैं वह, अंतर्दृष्टि से विहीन	**नि.र.-1**/224	वर दे वीणावादिनि वरदे!
अंधकार-मिश्रित प्रकाश-	*'अंधकार-मिश्रित प्रकाश का एक वितान तना था'*	: रात में अंधकार और चाँदनी का मिश्रण	**प्र.ग्रं.-2**/146	कर्म/कामायनी
अंध गर्भ -	*'निकल सृष्टि के अन्ध गर्भ से'*	: रात के अंधकार का घना रूप	**पं.ग्रं.-1**/113	प्रथम रश्मि का आना रंगिणि!/वीणा
अंध-तम-	*'जीवन की गति कुटिल अन्ध-तम जाल'*	: ऐसा अँधेरा जो अंधा कर दे, घना अँधेरा	**नि.र.-1**/188	विस्मृत भोर
अंध-तम-कूप -	*'अखिल जग एक अन्ध-तम-कूप'*	: अंधा (जलहीन) और अँधेरा कुआँ	**नि.र.-1**/215	पास ही रे, हीरे की खान
अंध-तमस-	*'अंध-तमस है किन्तु प्रकृति का आकर्षण है खींच रहा'*	: घोर निराशा, घना अँधेरा	**प्र.ग्रं.-2**/228	निर्वेद/कामायनी
अंध-प्रगति-बन्ध-	*'अन्ध-प्रगति-बन्ध किया सिन्धु को प्रयाण'*	: प्रगति के प्रति आँख मूँदकर प्रतिबद्धता	**नि.र.-1**/313	मित्र के प्रति
अंध प्रेरणा-	*'अंध प्रेरणा से परिचालित कर्त्ता में करते निज गिनती'*	: विवेक-रहित नियोजक शक्ति	**प्र.ग्रं.-2**/259	रहस्य/कामायनी
अंध भक्ति -	*'छूटे भय संशय, अन्ध भक्ति'*	: विवेकहीन भक्ति का भाव	**पं.ग्रं.-2**/14	जग जीवन में जो चिर महान/युगपथ
अंध-वारिद-उर -	*'अन्ध-वारिद-उर में तुम आप'*	: अँधेरे (घने) बादलों के हृदय में	**नि.र.-1**/143	स्मृति
अंध-विश्व-जन्म-बन्ध-	*'अन्ध-विश्व-जन्म-बन्ध मरण हरो-- मरण हरो'*	: अंधा (अज्ञानी) विश्व आवागमन के बंधन से बँधा है	**नि.र.-1**/241	शरत् के प्रति
अंधाकार-	*'चल चपला के दीप जलाकर किसे ढूँढ़ता अंधाकार?'*	: अँधेरे से बना आकार, अँधेरा	**म.सा.-1**/42	घायल मन लेकर सो जाती/नीहार
♦	*'जहाँ बनती आलोक समाधि तुम्हीं हो ऐसा अंधाकार'*	: अंध+आकार, अँधेरे से निर्मित आकार	**म.सा.-1**/77	जहाँ है निद्रामग्न वसंत/नीहार
अंधानुरक्ति-	*'बोली "तुमसे कैसी विरक्ति, तुम जीवन की अन्धानुरक्ति'*	: बिना सोचे-समझे किया गया प्रेम (इड़ा के लिए प्रयुक्त), उद्दाम आकर्षण	**प्र.ग्रं.-2**/236	दर्शन/कामायनी
अंब-	*'चौंक गिरेंगे पीले पल्लव अंब चलेंगे मौर'*	: आम के पेड़	**म.सा.-1**/189	मेरी निश्वासों से द्रुततर/नीरजा

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अंबर-	*'बाहु, उरोज, अधर, अम्बर?'*	: वस्त्र	**नि.र.-1**/124	यमुना के प्रति
अंबर अकूल-	*'जब गूँजी यह वाणी तीखी कम्पित करती अम्बर अकूल'*	: अनन्त आकाश	**प्र.ग्रं.-2**/174	इड़ा/कामायनी
अंबर असीम अंतर-	'अम्बर असीम अन्तर में, चंचल चपला से आकर'	: आकाश की तरह अनन्त हृदय	**प्र.ग्रं.-2**/18	आँसू
अंबर-पट-	*'श्रम-सीकर सदृश नखत से*	: आकाश रूपी वस्त्र	**प्र.ग्रं.-2**/14	आँसू
अंबर पनघट-	*'अम्बर पनघट में डुबो रही -'*	: आकाश-रूपी पनघट (नदी या तालाब का किनारा)	**प्र.ग्रं.-1**/303	बीती विभावरी जाग री/लहर
अंबर-शैवाल-	*'सोह रहा है हरा क्षीण कटि में, अम्बर शैवाल'*	: काई रूपी कपड़े	**नि.र.-1**/106	तरंगों के प्रति
अँबियों-	*'उकसे थे अँबियों-से उरोज'*	: छोटा आम, आम का टिकोला या टिकोरा	**पं.ग्रं.-2**/17	मंजरित आम्र-वन-छाया में/युगपथ
अंबुधि-	*'बढ़ते हैं अम्बुधि की ओर'*	: समुद्र	**नि.र.-1**/125	यमुना के प्रति
♦	*'अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;'*	: समुद्र	**नि.र.-1**/330	राम की शक्ति-पूजा
♦	*'कम्प अम्बुधि की एक महान'*	: समुद्र	**पं.ग्रं.-1**/207	शिशु/पल्लव
अंशु-	*'सुधाधर की कला में अंशु यदि बनकर रहूँ'*	: किरण	**नि.र.-1**/54	पंचवटी प्रसंग:2
अंशुक-जाल-	*'वही पतझर की किंशुक-डाल*	: किरणों के रेशमी वस्त्र	**नि.र.-1**/270	विश्व की ही वाणी प्राचीन
अंस अवलंबित-	*'घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस अवलंबित मुख के पास;'*	: कन्धों तक लटके हुए (श्रद्धा के बाल)	**प्र.ग्रं.-2**/84	श्रद्धा/कामायनी
अकड़े अणु-	*'हिंसा गर्वोन्नत हारों में ये अकड़े अणु टहल रहे हैं'*	: अभिमानी प्राणी (मनुष्य)	**प्र.ग्रं.-2**/258	रहस्य/कामायनी
अकथ-	*'बनता है इतिहास मिलन का प्यास भरे अभिसार अकथ में!'*	: प्रेम की कहानी जो पूरी-पूरी कही नहीं जा सकती है	**म.सा.-1**/375	मैं पलकों में पाल रही हूँ/दीप-शिखा
अकथ कथा-	*'संध्या अब ले जाती मुझसे ताराओं की अकथ कथा'*	: जिन भावनाओं को कहकर व्यक्त नहीं किया जा सके	**प्र.ग्रं.-2**/226	निर्वेद/कामायनी
अकथ युग-युग की कहानी-	*'एक स्पंदन कह रहा है अकथ युग-युग की कहानी'*	: युगों-युगों से चली आती प्रेम की अकथ (जिसे कह पाना सम्भव न हो) कहानी	**म.सा.-1**/263	विरह की घड़ियाँ हुई अलि.../सांध्य गीत
अकरुण आघात-	*'क्या हिम का अकरुण आघात'*	: निष्ठुर चोट	**पं.ग्रं.-1**/93	निज अंचल में धर सादर/वीणा
अकरुण वसुधा-	*'अकरुण वसुधा से एक झलक'*	: निष्ठुर सांसारिक जीवन	**प्र.ग्रं.-1**/318	मुझको न मिला रे कभी प्यार/लहर
अकर्ण अहि-	*'जो अकर्ण अहि को भी सहसा'*	: बिना कान के होते हैं साँप	**पं.ग्रं.-1**/222	याचना/पल्लव
अकलंक-	*'कौन हो तुम अकलंक, अकाम'*	: निष्कलुष, कलंकविहीन	**पं.ग्रं.-1**/207	शिशु/पल्लव
अकल-	*'गह कर अकल तूलि, रँग-रँगकर बहु जीवनोपाय, भर दो घर'*	: अनगढ़, अकलात्मक	**नि.र.-1**/256	जागो, जीवन-धनिके!
♦	*'खुला जीवन में प्रणय-सुहाग, कलाप्रिय-अकल-ध्यान में लीन'*	: अकृत्रिम कलात्मक	**नि.र.-1**/271	विश्व की ही वाणी प्राचीन

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अकल-कला- *'यह अकल-कला, गृह सकल छिन्न, जोड़ेगी'*	: नवीन कला	**नि.र.-1**/305	तुलसीदास
अकाम- *'कौन हो तुम अकलंक, अकाम'*	: कामनाओं से रहित, निष्काम	**पं.ग्रं.-1**/207	शिशु/पल्लव
अकार्य- *'क्या है अकार्य यहाँ'*	: न करने योग्य, अकर्तव्य	**नि.र.-1**/59	पंचवटी प्रसंग:4
अकिंचन- *'आ पहुँचा था एक अकिंचन'*	: बेचारा, दुर्बल और अभावग्रस्त	**प्र.ग्रं.-1**/301	उस दिन जब जीवन के पथ में/लहर
♦ *'वह कौन अकिंचन अति आतुर'*	: मामूली व्यक्ति, दरिद्र, बेचारा	**प्र.ग्रं.-1**/318	मुझको न मिला रे कभी प्यार/लहर
♦ *'तू बढ़ जाता अरे अकिंचन, छोड़ करुण स्वर अपना,'*	: बेचारा, असहाय, क्षुद्र, अभागा	**प्र.ग्रं.-1**/328	अंतरिक्ष में अभी सो रही/लहर
♦ *'अपने विश्लेषण में रो उठे अकिंचन जो'*	: असहाय	**प्र.ग्रं.-1**/347	प्रलय की छाया/लहर
♦ *'जिस दिन सुना अकिंचन परिवारी ने'*	: मामूली व्यक्ति	**प्र.ग्रं.-1**/353	प्रलय की छाया/लहर
♦ *'वह एक अबोध अकिंचन/बेसुध चैतन्य हमारा'*	: बेचारा, दरिद्र	**प्र.ग्रं.-2**/5	आँसू
♦ *'मैं इठला उठा अकिंचन/देखे ज्यों स्वप्न सबेरे'*	: गरीब, नगण्य, बेचारा प्रेमी	**प्र.ग्रं.-2**/8	आँसू
♦ *'उसे अकिंचन कर देता है अलगाता 'हम तुम' से'*	: बेचारा, असहाय	**प्र.ग्रं.-2**/153	कर्म/कामायनी
♦ *'वंचित जीवन बना समर्पण यह अभिमान अकिंचन का'*	: अभाव में पड़ा व्यक्ति, परम दारिद्रय की स्थिति	**प्र.ग्रं.-2**/187	स्वप्न/कामायनी
♦ *'तू अकिंचन भिक्षुक है मधु का अलि तृप्ति कहाँ जब प्रीति नहीं'*	: गरीब, बेचारा, निस्सहाय	**म.सा.-1**/129	इन आँखों ने देखी न राह कहीं/रश्मि
अकिंचन जगत- *'देख अकिंचन जगत लूटता तेरी छवि भोली-भाली'*	: रूप-लोभी दरिद्र संसार	**प्र.ग्रं.-2**/79	आशा/कामायनी
अकिंचनता- *'अकिंचनता में निज तत्काल'*	: अभाव, बेचारगी, बेबसी	**पं.ग्रं.-1**/223	परिवर्तन/पल्लव
अकुलाई- *'मधु सरिता उफनी अकुलाई,'*	: व्याकुल हुई	**प्र.ग्रं.-1**/301	उस दिन जब जीवन के पथ में/लहर
अकूल- *'आकुल अकूल बनने आती -'*	: समुद्र, सीमाहीन	**प्र.ग्रं.-1**/300	हे सागर संगम अरुण नील/लहर
♦ *'जब गूँजी यह वाणी तीखी कम्पित करती अम्बर अकूल'*	: अनन्त, सीमाहीन	**प्र.ग्रं.-2**/174	इड़ा/कामायनी
♦ *प्राण है वह, त्राण सिन्धु अकूल में'*	: अनंत, किनारा विहीन	**नि.र.-1**/40	जन्मभूमि
♦ *'साथी मैं हो गया अकूल का'*	: अनन्त, तटरहित, जिसे किनारा न मिले	**नि.र.-1**/171	रेखा 'क'
♦ *'ओ अकूल की उज्ज्वल हास'*	: सीमाहीन, आकाश	**पं.ग्रं.-1**/190	वीचि विलास/पल्लव
♦ *'अतल से उमड़ अकूल, अपार'*	: तटहीन, बन्धनहीन	**पं.ग्रं.-1**/231	परिवर्तन/पल्लव
♦ *'उमह-बह, फैल अकूल अपार'*	: तटविहीन, सीमाहीन	**पं.ग्रं.-1**/277	चीटियों की-सी काली पाँति/गुंजन
♦ *'तुम अतल गर्त, अविगत, अकूल'*	: जिसके किनारों का पता न हो	**पं.ग्रं.-2**/19	छाया/युगपथ
अकृश- *'यौवन की पहली कान्ति अकृश'*	: जो दुबला न हो	**प्र.ग्रं.-1**/230	वसन्त/झरना
अक्लम- *'लाज का आज भूषण, अक्लम, नारी का;*	: न थकने वाला	**नि.र.-1**/301	तुलसीदास
अक्लेद- *'अक्लेद, अल्पभेद,/प्रस्फुट गुलाब-सा'*	: गीलापन का अभाव,	**नि.र.-1**/185	जागरण

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
	सूखापन के साथ स्वच्छ		
अक्षत पुलकित रोम- *'अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चंदन रे!'*	: मेरी पुलकित रोमावलियाँ मानो उनके स्वागत के अक्षत हैं	**म.सा.-1**/234	क्या पूजन क्या अर्चन रे?/नीरजा
अक्षत सित- *'झरे सुमन बिखरे अक्षत सित'*	: पूजा के सफेद चावल	**म.सा.-1**/335	यह मंदिर का दीप... /दीप-शिखा
अक्षय- 'अपरिचित-पुण्य अक्षय क्षोभन धन कोई;'	: जिसका क्षय न हो, जो समाप्त न हो	**नि.र.-1**/295	तुलसीदास
अक्षय निधि- *'मेरी अक्षय निधि ! तुम क्या हो, पहचान सकूँगा क्या न तुम्हें?'*	: जिस कोष का धन कभी समाप्त न हो (श्रद्धा के लिए विशेषण)	**प्र.ग्रं.-2**/100	काम/कामायनी
अक्षय श्रृंगार- *'दिवा रात्रि या – मित्र वरुण की बाला का अक्षय श्रृंगार;'*	: प्रकृति का सौन्दर्य हमेशा के लिए समाप्त नहीं होता है	**प्र.ग्रं.-2**/76	आशा/कामायनी
अक्षय संदेश- *'नहीं जो अब आएगा लौट यही उसका अक्षय संदेश'*	: स्थायी और अंतिम सूचना	**म.सा.-1**/67	यहीं है यह विस्मृत संगीत/नीहार
अक्षर- *'अक्षर, क्षर होता हुआ, ब्याज'*	: जिसका क्षरण न हो	**नि.र.-1**/250	वह कितना सुख
♦ 'अक्षर, निर्जर, दुर्धर्ष, अमर, जगतारण'	: अमर	**नि.र.-1**/282	तुलसीदास
अखंड- *'मिटते असत्य-से ज्ञान-लेश, समरस, अखंड, आनन्द-वेश !'*	: सर्वथा पूर्ण (शिव)	**प्र.ग्रं.-2**/247	दर्शन/कामायनी
अखंड सुहागिनी- *'दूर तुमसे हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ'*	: अपने प्रिय के प्रेम को सदा-सदा पाते रहने का सौभाग्य	**म.सा.-1**/177	बीन भी हूँ मैं तुम्हारी/नीरजा
अखिल- *'भरे अखिल सर'*	: सभी, संपूर्ण	**नि.र.-1**/99	प्रिया से
♦ *'तुम हो अखिल विश्व में या यह अखिल विश्व है तुममें अथवा अखिल विश्व तुम एक'*	: पूरा, संपूर्ण	**नि.र.-1**/113	कण
♦ *'अखिल विस्मयाकार! अकथ, अलौकिक, अमर अगोचर'*	: पूर्णत:	**पं.ग्रं.-1**/270	अप्सरा/गुंजन
♦ *'आह्लाद अखिल, सौन्दर्य अखिल'*	: संपूर्ण, व्यापक	**पं.ग्रं.-2**/22	मानव/युगपथ
अखिल आकुल- *'अखिल आकुल, उत्कलित, अधीर'*	: मानो सर्वत्र व्याकुलता दिखाई पड़ रही हो	**पं.ग्रं.-1**/258	मधुवन/गुंजन
अखिल-उर-रंजन- *'अखिल-उर-रञ्जन निरञ्जन एक अनिल उदार'*	: सबके हृदय को प्रसन्न करनेवाला	**नि.र.-1**/226	जग का एक देखा तार
अखिल की लघुता- *'अखिल की लघुता आई बन -'*	: सम्पूर्णता का लघु रूप	**प्र.ग्रं.-1**/306	आह रे, वह अधीर यौवन/लहर
अखिल-ज्योतिर्गठित- *'अखिल-ज्योतिर्गठित छवि, कच पवन-तम विस्तार'*	: संपूर्ण ज्योति से तैयार (छवि)	**नि.र.-1**/228	खोलो दृगों के द्वय द्वार
अखिल-पल के स्रोत- *'अखिल-पल के स्रोत, जल-जग'*	: पूर्ण काल-स्वरूप के पल के प्रवाह	**नि.र.-1**/255	कौन तम के पार
अखिल मानव- *'चेतना का सुन्दर इतिहास*	: समस्त मनुष्य जाति	**प्र.ग्रं.-2**/92	श्रद्धा/कामायनी

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अखिल मानव भावों का सत्य;'			
अखिल मानव भावों का सत्य- *'चेतना का सुन्दर इतिहास अखिल मानव भावों का सत्य;'*	: समस्त मनुष्य जाति के मानवीय भाव	**प्र.ग्रं.-2**/92	श्रद्धा/कामायनी
अखिल-लोक-रञ्जन- *'अखिल-लोक-रञ्जन कर नर्तन समीर में यति की भ्रू-भंग-लास'*	: संपूर्ण लोक को प्रसन्न करना	**नि.र.-1**/206	कवि
अखिल वसंत- *'एक कलिका में अखिल वसंत'*	: अनंतता, असीम, वसंत का समस्त वैभव	**पं.ग्रं.-1**/188	आँसू/पल्लव
अखिल संसृति- *'व्योम-तम पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक'*	: संपूर्ण सृष्टि	**प्र.ग्रं.-4**/138	पंचम अंक/स्कन्दगुप्त
अखिल स्पन्दनों- *'महानृत्य का विषम सम, अरी अखिल स्पन्दनों की तू माप,'*	: समस्त चेतना या गति	**प्र.ग्रं.-2**/63	चिंता/कामायनी
अग-जग- *'दुखिया है सारा अग-जग,'*	: अचर और चर, जड़ और चेतन	**प्र.ग्रं.-1**/332	अशोक की चिंता/लहर
♦ *'जो चूम चला जाता अग-जग प्रति जग में कम्पन की तरंग'*	: जड़-चेतन, अचर-चर	**प्र.ग्रं.-2**/171	इड़ा/कामायनी
♦ *'मिला रही निज उर अग-जग-दुख'*	: चर-अचर से निर्मित संसार	**नि.र.-1**/238	सकल गुणों की खान, प्राण तुम
♦ *'अग-जग तत्त्वों में बिहरे - /मन सिहरे बारम्बार!'*	: चल-अचल	**नि.र.-1**/265	छिपा मन
♦ *'छू लेती अग-जग का मन'*	: चर और अचर, गतिशील और गतिहीन	**पं.ग्रं.-1**/269	चाँदनी/गुंजन
♦ *'बन्धु ! छूने अग-जग के छोर'*	: चर और अचर	**पं.ग्रं.-1**/277	चींटियों की-सी काली पाँति/गुंजन
♦ *'अग-जग का विरह-विधुर अन्तर'*	: चर-अचर से युक्त संसार	**पं.ग्रं.-1**/297	दो/ज्योत्स्ना
♦ *'पुलकित अग-जग, अणु-अणु, तृण-तृण छबिधारी'*	: चर-अचर, जड़-चेतन	**पं.ग्रं.-1**/298	दो/ज्योत्स्ना
♦ 'अग-जग प्रकाशमय है निश्चय'	: चर-अचर	**पं.ग्रं.-1**/314	तीन/ज्योत्स्ना
♦ *'अविराम प्रेम-परिणय अग-जग'*	: चर-अचर	**पं.ग्रं.-1**/314	तीन/ज्योत्स्ना
♦ *'अग-जग चिर उज्ज्वल हो'*	: जड़-चेतन संसार	**पं.ग्रं.-1**/329	तीन/ज्योत्स्ना
♦ *'अग-जग के अवदात'*	: चर-अचर संसार	**पं.ग्रं.-1**/336	चार/ज्योत्स्ना
♦ *'लिए डोर अग-जग की निज कर'*	: जड़-चेतनमय संसार	**पं.ग्रं.-1**/361	प्रथम दृश्य/परी
♦ *'अज्ञेय, गुह्य, अग जग छायी'*	: चर-अचर	**पं.ग्रं.-2**/19	छाया/युगपथ
♦ *'अग जग उनका कण कण उनका पल भर वे निर्मम मेरे हों!'*	: जड़-चेतनमय संसार	**म.सा.-1**/223	झरते नित लोचन मेरे हों!/नीरजा
♦ *'केवल जीवन का क्षण मेरे फिर क्यों प्रिय मुझको अग जग का'*	: चर-अचर से बना संसार	**म.सा.-1**/242	जागो बेसुध रात नहीं यह!/नीरजा
♦ *'तम पोंछ रहा मेरा अग जग छिप आज चला वह चित्रित मग'*	: जड़-चेतनमय सृष्टि	**म.सा.-1**/249	प्रिय! सांध्य गगन, मेरा जीवन!/सांध्यगीत

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
♦	*'छा भले लें आज अग-जग वेदना की घन-घटाएँ!'*	: जड़-चेतन संसार	**म.सा.-1**/347	मैं न यह पथ जानती री! /दीप-शिखा
अगणित दीपक-	*'गोधूलि, नभ के आँगन में देती अगणित दीपक बार'*	: असंख्य तारे	**म.सा.-1**/34	निश्वासों का नीड़, निशा का/नीहार
अगण्य-	*'गूँजे गगनाङ्गण में वे अगण्य गान'*	: असंख्य	**नि.र.-1**/275	वर्ण-चमत्कार
अगतिमय-	*'अरे पुरातन अमृत ! अगतिमय मोहमुग्ध जर्जर अवसाद!'*	: चेष्टा-विहीन	**प्र.ग्रं.-2**/63	चिंता/कामायनी
अगन-से-	*'अगन-से मेरे पुलकित प्राण'*	: अग्नि के समान	**पं.ग्रं.-1**/184	आँसू/पल्लव
अगम-	*'ऐ निर्बन्ध!/अन्ध-तम-अगम-अनर्गल-बादल!'*	: जहाँ जाना मुमकिन न हो, बादलों तक जाना मुश्किल है	**नि.र.-1**/129	बादल राग
♦	*'जटिल, अगम, विस्तृत पथ पर विकराल'*	: दुर्गम	**नि.र.-1**/130	स्वागत
♦	*'पथ घन तम, अगम अकूल'*	: दुर्गम	**नि.र.-1**/130	स्वागत
♦	*'अगम गहन अलंघ्य पथ'*	: जहाँ जाना असंभव हो	**नि.र.-1**/175	रेखा 'क'
अगम आकाश-	*'अचल रोमों में समाई मुग्ध हो गति आज सारी!'*	: जिस आकाश में गमन करना मुश्किल हो	**म.सा.-1**/258	शून्य मंदिर में बनूँगी... /सांध्य गीत
अगम निशि-	*'अगम निशि है यह अकेला तुहिन-पतझर-वात-बेला'*	: रात अगम्य है अर्थात् कठिनाइयों से भरा है	**म.सा.-1**/251	क्या न तुमने दीप बाला?/सांध्य गीत
अगम समय सागर-	*'पार, कहीं होता तो यह दृग अगम समय सागर तर जाते?'*	: समय का अगम समुद्र	**म.सा.-1**/266	हे मेरे चिर सुंदर अपने!/सांध्य गीत
अगरु-	*'आती है शैलेय अगरु की धूम-गंध आमोद भरी'*	: अगर नामक वृक्ष की लकड़ी या चूर्ण या बत्ती	**प्र.ग्रं.-2**/191	स्वप्न/कामायनी
अगरु-गंध-	*'अगरु-गंध बयार ला ला विकच अलकों को बसातीं!'*	: अगरु (एक सुगंधित लकड़ी) की सुगंध	**म.सा.-1**/284	ओ अरुण वसना! /सांध्य गीत
अगाध-	*'तुम्हें पाया अगाध गम्भीर'*	: अनन्त, जिसे पार पाना आसान न हो	**प्र.ग्रं.-1**/219	समर्पण/झरना
अगाध विश्वास-	*'दया, माया, ममता लो आज, मधुरिमा लो, अगाध विश्वास;'*	: पूरा भरोसा, सम्पूर्ण विश्वास	**प्र.ग्रं.-2**/91	श्रद्धा/कामायनी
अगीत-	*'एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत'*	: अबोध गीत, नादान स्वर	**पं.ग्रं.-1**/177	पल्लव/पल्लव
अगुरु-धूम-	*'अगुरु-धूम की श्याम लहरियाँ उलझी हों इन अलकों से'*	: सुवासित धुएँ की सामग्री, हवन-सामग्री, अगरबत्ती और धूप	**प्र.ग्रं.-4**/133	पंचम अंक/स्कन्दगुप्त
अगोचर-	*'अमर, अगोचर, औ' अविकार'*	: इन्द्रियातीत, जिसे इन्दियों के द्वारा न समझा जा सके	**पं.ग्रं.-1**/202	विश्व वेणु/पल्लव
अग्नि अर्चियाँ-	*'शुष्क डालियों से वृक्षों की अग्नि अर्चियाँ हुई समिद्ध;'*	: आग की लपटें	**प्र.ग्रं.-2**/74	आशा/कामायनी
अग्निपंथी-	*'अग्निपंथी मैं तुझे दूँ/कौन-सा प्रतिदान?'*	: दीपशिखा अग्नि-पथ पर चलती है	**म.सा.-1**/381	शेषयामा यामिनी मेरा/दीप-शिखा
अग्नि-पथ-	*'अग्नि-पथ के पार चंदन-चाँदनी का देश है क्या?'*	: सूरज का रास्ता मानो अग्नि-पथ है	**म.सा.-1**/355	मोम-सा तन घुल चुका /दीप-शिखा

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अग्निशाला-	*'देखते थे अग्निशाला से कुतूहल-युक्त'*	: आग को सुरक्षित रखने की जगह, यज्ञ-कुण्ड	**प्र.ग्रं.-2**/112	वासना/कामायनी
अग्नि-शिखा बुझ गई-	*'अग्नि-शिखा बुझ गई, जागने पर जैसे सुख सपने'*	: आग की लौ बुझ गई (मनु-श्रद्धा की कामाग्नि शांत हो गयी)	**प्र.ग्रं.-2**/154	कर्म/कामायनी
अग्नि शस्य-	*'अग्नि शस्य, रवि के चिह्नित पग'*	: आग की फसल (उगाता चलता है सूरज)	**पं.ग्रं.-1**/211	नक्षत्र/पल्लव
अग्नि-समाधि-	*'प्राण में कैसे बसाऊँ कठिन अग्नि-समाधि होगी'*	: जलती अग्नि में बैठकर मृत्यु को प्राप्त कर जाना	**म.सा.-1**/264	शलभ मैं शापमय वर हूँ!/सांध्य गीत
अग्निहोत्र-	*'जलने लगा निरंतर उनका अग्निहोत्र सागर के तीर;'*	: अग्नि देवता के लिए किया जानेवाला यज्ञ जिसकी आग सदा जलती हुई रखी जाती है	**प्र.ग्रं.-2**/73	आशा/कामायनी
अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न-	*'अग्निहोत्र अवशिष्ट अन्न कुछ/कहीं दूर रख आते थे;'*	: अग्निहोत्र यज्ञ करने के बाद बचा हुआ अनाज (धान)	**प्र.ग्रं.-2**/74	आशा/कामायनी
अघ-	*'सुन कर यह दिव्य तपोवन, जिसमें सब अघ छुट जाये'*	: पाप, कष्ट	**प्र.ग्रं.-2**/274	आनन्द/कामायनी
अचंचल चित्त-	*'अचञ्चल चित्त हुआ उस घड़ी'*	: शांत मन, तृप्त मन	**प्र.ग्रं.-1**/249	प्यास/झरना
अचपल-	*'अचपल ध्वनि की चमकी चपला'*	: अचंचल	**नि.र.-1**/302	तुलसीदास
अचल-	*'अचल के चंचल क्षुद्र प्रपात !'*	: पर्वत, जड़ पर्वत	**नि.र.-1**/108	प्रपात के प्रति
♦	*'अचल, रेखांकित कभी थी कर रही'*	: अडिग, स्थिर रूप से	**पं.ग्रं.-1**/124	ग्रन्थि
♦	*'नींद थी मेरी अचल निस्पंद कण कण में'*	: स्थिर	**म.सा.-1**/177	बीन भी हूँ मैं तुम्हारी/नीरजा
अचल-अधरों-	*'द्रव-नीहार अचल-अधरों से'*	: (मानो) पर्वत के मुख से (होंठों से)	**नि.र.-1**/125	यमुना के प्रति
अचलता-	*'अचलता में सुस्पन्दित प्राण'*	: अचल (जड़) होने का भाव	**नि.र.-1**/143	स्मृति
अचल दृढ़ता-	*'उस दुर्भेद्य अचल दृढ़ता का करता चारण सदृश प्रचार'*	: पर्वत की कठोरता	**प्र.ग्रं.-2**/72	आशा/कामायनी
अचल धरा को-	*'वह अचल धरा को भेंट रहा शत-शत निर्झर में हो चंचल'*	: पर्वत धरती को (झरने भेंट करता है)	**म.सा.-1**/363	सब आँखों के आँसू उजले/दीप-शिखा
अचल पलकों-	*'अचल पलकों में जड़ी सी तारकाएँ दीन'*	: किसी की खोज में खुली और स्थिर पलकें	**म.सा.-1**/123	स्मित तुम्हारी से छलक.../रश्मि
अचल रोमों-	*'अचल रोमों में समाई मुग्ध हो गति आज सारी'*	: रोएँ सिहरन-विहीन होकर स्थिर हैं	**म.सा.-1**/258	शून्य मंदिर में बनूँगी... /सांध्य गीत
अचल-शरीर-	*'क्षत-विक्षत हत अचल-शरीर'*	: पर्वत का शरीर	**नि.र.-1**/135	बादल-राग
अचल समाधि-	*'एक अचल समाधि में थक, सो गई पलकें सलिल की'*	: स्थायी रूप से स्थिर हो जाना	**म.सा.-1**/274	आज मेरे नयन के तारक.../सांध्य गीत
अचल हिमगिरि के हृदय-	*'अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कंप हो ले'*	: पर्वतराज हिमालय के चिर स्थिर मन में	**म.सा.-1**/280	चिर सजग आँखें उनींदी.../सांध्य गीत
अचल हिमानी-	*'जो अचल हिमानी से रंजित,*	: स्थिर बर्फ-राशि	**प्र.ग्रं.-2**/171	इड़ा/कामायनी

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
	उन्मुक्त, उपेक्षा भरे तुंग'			
♦	*'ऊर्ध्व देश उस नील तमस में स्तब्ध हो रही अचल हिमानी'*	: जमी हुई बर्फ-राशि	**प्र.ग्रं.-2**/251	रहस्य/कामायनी
अचल हिमालय-	*'अचल हिमालय का शोभनतम लता कलित शुचि सानु शरीर,'*	: हिमालय पर्वत	**प्र.ग्रं.-2**/71	आशा/कामायनी
अचला-	*'और डूबती सी अचला का अवलम्बन मणि रत्न निधान'*	: धरती	**प्र.ग्रं.-2**/71	आशा/कामायनी
अचला जगती-	*'ये प्राणी जो बचे हुए हैं इस अचला जगती के'*	: धरती, संसार, सृष्टि	**प्र.ग्रं.-2**/149	कर्म/कामायनी
अचिन्त्य-	*'जैसे अचिन्त्य का सदा ही निज जीवन हो'*	: चिंतामुक्त	**नि.र.-1**/206	कवि
अचिर-	*'वायु में अचिर आलाप था बह रहा'*	: सदा से	**नि.र.-1**/177	रेखा 'ख'
♦	*'अचिर लालसा-सी निर्बल वह'*	: तात्कालिक	**पं.ग्रं.-1**/111	सखी ! सूखी बिन्दाल /वीणा
अचिर आलाप-	'वायु में अचिर आलाप था बह रहा'	: सदा से गूँजता हुआ राग	**नि.र.-1**/177	रेखा 'ख'
अचिर प्रकाश-	*'अन्त कर चुका अचिर प्रकाश'*	: नश्वर जीवन (आम के मंजर के लिए आए भ्रमर आदि के जीवन का अंत मकड़ी के जाले में हुआ)	**पं.ग्रं.-1**/94,	मकड़ी का मृदु मायाजाल/वीणा
अचिर-प्रकृति-	*'चिर-समाधि में अचिर-प्रकृति जब'*	: प्रकृति का नयापन	**नि.र.-1**/225	प्रेम के प्रति
अचीर-	*'चीरता हरे! अचीर शरीर'*	: वस्त्रविहीन, नग्न	**पं.ग्रं.-1**/227	परिवर्तन/पल्लव
अचेतन गति-	*'सब में एक अचेतन गति थी, जिससे पिछड़ा रहे समीर'*	: अप्रत्यक्ष गतिशीलता	**प्र.ग्रं.-2**/57	चिंता/कामायनी
अचेतनता-	*'एक अचेतनता लाती-सी सविनय श्रद्धा बोली'*	: बेसुधपना, अलसाया-सा	**प्र.ग्रं.-2**/150	कर्म/कामायनी
अचेतन रोम-	*'क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन?'*	: रोएँ जो अपनी प्रकृति में निर्जीव हैं	**म.सा.-1**/341	जो न प्रिय पहिचान पाती!/दीप-शिखा
अच्युत-	*'जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत'*	: दृढ़, अटल, स्थिर	**नि.र.-1**/331	राम की शक्ति-पूजा
अछिद्र वेणु-	*'वह अछिद्र वेणु'*	: बिना छेद की बाँसुरी	**नि.र.-1**/244	निशि-दिन तन
अछूत-	*'यहाँ अछूत रहा जीवन रस छूओ मत संचित होने दो'*	: जो छुआ न जा सका हो, जिसका उपयोग न हुआ हो	**प्र.ग्रं.-2**/262	रहस्य/कामायनी
♦	*'जग पीड़ित छूतों से प्रभूत, छू अमृत स्पर्श से, हे अछूत!'*	: जिसकी महानता को कोई छू भी न पाए ऐसे महात्मा गाँधी	**पं.ग्रं.-2**/24	बापू के प्रति/युगपथ
अछूत अधरों-	*'उनके अछूत अधरों का कितना चुंबन भर लाया'*	: जिन होंठों को चूमा न गया हो, अनुपभुक्त होंठ	**प्र.ग्रं.-2**/277	आनन्द/कामायनी
अछूता-	'नए पल्लव का घूँघट डाल अछूता ले अपना मकरंद,'	: एकदम निर्मल, जिसे किसी ने छूकर मलिन न किया हो	**म.सा.-1**/92	मधुरिमा के, मधु के अवतार/नीहार
अछूते-	*'मिले दो हृदय, अमल अछूते, दो शरीर इक प्रान'*	: निर्मल, अस्पृष्ट	**प्र.ग्रं.-3**/200	द्वितीय अंक/विशाख
अछोर-	*'स्वप्न-स्मृति, दूर, अतीत, अछोर!'*	: अनन्त, असीम	**नि.र.-1**/140	स्मृति
अज-	*'जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव-विष्णु अज'*	: ब्रह्मा	**नि.र.-1**/54	पंचवटी प्रसंग:2
अजगव-	*'नहीं, इसी से चढ़ी शिंजिनी*	: शिव का धनुष, पिनाक	**प्र.ग्रं.-2**/192	स्वप्न/कामायनी

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अजगव पर प्रतिरोध भरी'			
अजपा- *'जपते सभक्ति अजपा विभक्त हो राम-नाम'*	: जाप की वह चरम स्थिति जब मन में निरंतर जाप चलता रहे	**नि.र.-1**/331	राम की शक्ति-पूजा
अजया- *'धृत-विश्व-वर-करा/अजया, गया ज्ञान'*	: न जीती जाने योग्य	**नि.र.-1**/244	सार्थक करो प्राण
अजर- *'जो ज्ञानदीप्ति, वह दूर, अजर'*	: नया, युवा	**नि.र.-1**/295	तुलसीदास
♦ *'कण का चल इतिहास इन्हीं से लिख लिख अजर बनाना!'*	: जो सदा युवा रहे, कभी बूढ़ा न होनेवाला	**म.सा.-1**/333	जब यह दीप थके तब आना/दीप-शिखा
♦ *'मरण का उत्सव अजर है,/गीत जीवन का अमर है'*	: जो कभी वृद्ध होकर मरणोन्मुख न हो, मृत्यु चिर युवा है	**म.सा.-1**/343	आँसुओं के देश में/दीप-शिखा
♦ *'बरसे, बढ़ चले चौंके कणों से अजर मधु का ज्वार!'*	: जो कभी पुराना या बूढ़ा न हो	**म.सा.-1**/395	तुम्हारी बीन ही में बज... /दीप-शिखा
अजर गायक उर- *'गगन का तू अमर किन्नर धरा का अजर गायक उर'*	: हृदय मानो सदैव युवा रहनेवाले गायक की तरह है	**म.सा.-1**/331	विहंगम-मधुर स्वर तेरे/दीप-शिखा
अजर सा- *'शाप मुझे बन जाता वर सा पतझर मधु का मास अजर सा'*	: जो सदा युवा बना रहे	**म.सा.-1**/170	तुम्हें बाँध पाती सपने में!/नीरजा
अजरामर- *'मार अनात्म भाव अजरामर परमात्मा से नाता जोड़'*	: (अजर+अमर), शाश्वत, अनश्वर, जीर्णता और मृत्यु से मुक्त	**नि.र.-1**/44	नहीं डरेंगे
अजस्र- *'आहुतियाँ विश्व की अजस्र ले लुटाता रहा -'*	: निरंतर, सतत	**प्र.ग्रं.-1**/337	पेशोला की प्रतिध्वनि /लहर
♦ *'उद्यम अजस्र, विघ्नों पर जय'*	: अविच्छिन्न, अनवरत	**पं.ग्रं.-2**/22	मानव/युगपथ
अजस्र आँसू-जल- *'तुझ में अम्लान हँसी है इसमें अजस्र आँसू-जल'*	: निरंतर बहते आँसू	**म.सा.-1**/134	कह दे माँ क्या अब देखूँ!/रश्मि
अजस्र वर्षा सुहाग- *'तुम अजस्र वर्षा सुहाग की और स्नेह की मधु रजनी'*	: सौभाग्य की अनवरत वर्षा	**प्र.ग्रं.-2**/227	निर्वेद/कामायनी
अजात- *'खींच रही थी अपनी ओर,-- अजात'*	: जिसका जन्म नहीं हुआ हो, जो नहीं है, काल्पनिक	**नि.र.-1**/109	प्रथम प्रभात
♦ *'मन्द भरती अजात आनन्द'*	: न पैदा हुआ	**नि.र.-1**/272	छन्द की बाढ़
♦ *'अदृश्य अस्पृश्य, अजात'*	: अजन्मा, सूक्ष्म	**पं.ग्रं.-1**/265	प्राण! तुम लघु-लघु गात/गुंजन
अजान- *'उसे दिखाती जगती का सुख, हँसी और उल्लास अजान,'*	: अनजान, अनभिज्ञ	**प्र.ग्रं.-2**/72	आशा/कामायनी
♦ *''कुछ मेरा हो' यह राग-भाव संकुचित पूर्णता है अजान'*	: अज्ञान, ज्ञान के सच्चे रूप का अभाव	**प्र.ग्रं.-2**/175	इड़ा/कामायनी
♦ *'मैं ढूँढ़ रही हूँ उस अजान का छोर'*	: अनजाना, आकाश, अज्ञात	**नि.र.-1**/70	उसकी स्मृति
♦ *'उस अजान की ओर तुम्हारा छोर असीम अनन्त'*	: अनजाना	**नि.र.-1**/78	पथ
♦ *'बस अजान की ओर इशारा करके चल देते हो',*	: ईश्वर, आकाश	**नि.र.-1**/109	प्रपात के प्रति
♦ *'अन्धकार में छिपी अजान!'*	: अज्ञानी, अनजाना	**नि.र.-1**/119	यमुना के प्रति

शब्द- *'काव्य-पंक्ति'*	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
♦ *'किस अजान में छिपा आज वह'*	: अज्ञात	**नि.र.-1**/119	यमुना के प्रति
♦ *'बहता अब वह स्रोत अजान'*	: अज्ञात	**नि.र.-1**/124	यमुना के प्रति
♦ *'देख रहा हूँ अजान दूर ज्योति-यान-द्वार'*	: अनजाना	**नि.र.-1**/150	पारस
♦ *'रहते प्राण? रे अजान! '*	: अज्ञानी	**नि.र.-1**/153	जागो फिर एक बार
♦ *'एक बार भी यदि अजान के'*	: अज्ञात	**नि.र.-1**/202	प्रिया के प्रति
♦ *'सहज ही नयन सहस्र अजान'*	: अनजाना	**नि.र.-1**/204	भ्रमर-गीत
♦ *'तड़ित पथ की-सी चकित अजान'*	: अज्ञात भाव से, अनायास	**नि.र.-1**/216	'कहाँ उन नयनों की मुसकान'
♦ *'बह गयी हूँ अजान की ओर, तभी यह बह जाता संसार'*	: अनन्त	**नि.र.-1**/217	प्यार करती हूँ अलि
♦ *'पग उठे उसी मग को अजान'*	: अनजाने तरीके से	**नि.र.-1**/300	तुलसीदास
♦ *'उस अजान का वह बलिदान'*	: अनजान (ओस की बूँद जो आँसू बन गयी थी)	**पं.ग्रं.-1**/108	छोटे ही की क्या पहचान?/वीणा
♦ 'समझ निपट नादान, अजान'	: नासमझ	**पं.ग्रं.-1**/118	मिला-मिलाकर सुन्दर स्वर/वीणा
♦ *'कान से मिले अजान नयन'*	: मासूम, निर्दोष, निश्छल	**पं.ग्रं.-1**/178	उच्छ्वास/पल्लव
♦ *'विश्व स्वप्न-से खिले अजान'*	: अज्ञात भाव से, अनायास	**पं.ग्रं.-1**/192	अनंग/पल्लव
♦ *'गुँथ गये अजान तिमिर प्रकाश'*	: अनजाने में	**पं.ग्रं.-2**/15	खो गयी स्वर्ण की स्वर्ग किरण/युगपथ
♦ *'जिन झंकारों के मधुर गान/ले गया छीन कोई अजान'*	: अज्ञात	**म.सा.-1**/63	मैं कंपन हूँ तू करुण राग/नीहार
♦ *'आँसुओं में सहमे अभिराम/तारकों से हे मूक अजान'*	: अबोध, निर्दोष	**म.सा.-1**/92	मधुरिमा के, मधु के अवतार/नीहार
♦ *'मर्मर का मधुसंगीत छेड़/देते हैं हिल पल्लव अजान'*	: अनजाने ही, अनायास, सहज भाव से	**म.सा.-1**/103	चुभते ही तेरा अरुण बान!/रश्मि
♦ *'बिंध गया अजान आज किसका मृदु-कठिन तीर?'*	: अनजाने में	**म.सा.-1**/351	मिट चली घटा अधीर! /दीप-शिखा
अजान वह छोर- *'खोजना है अजान वह छोर'*	: अज्ञात लक्ष्य, अनंत भावलोक में बसा प्रिय मानो लक्ष्य है	**पं.ग्रं.-1**/179,	उच्छ्वास/पल्लव
अजानी- *'जगह अजानी आये, मानों धारे इसीलिये है मौन'*	: अनजानी, नयी जगह	**नि.र.-1**/45	बाबा और नाती
अजित- *'हो सार्वजनिकता जयी, अजित! तुमने निजत्व निज दिया हार'*	: जिसे जीता न जा सके, अजेय	**पं.ग्रं.-2**/25,	बापू के प्रति/युगपथ
अजिर- *'किसके अंत:करण अजिर में'*	: आँगन(-रूपी हृदय)	**प्र.ग्रं.-1**/234	विषाद/झरना
♦ *'अजिर के उर में भरा कुलेल'*	: आँगन	**प्र.ग्रं.-1**/307	तुम्हारी आँखों का बचपन/लहर
♦ *'प्लावित करती मन अजिर रही, था तुच्छ विश्व वैभव सारा'*	: आँगन	**प्र.ग्रं.-2**/98	काम/कामायनी
♦ *'पुत्री भी, पिता-गेह में स्थिर,/छोड़ने के प्रथम जीर्ण अजिर'*	: आँगन	**नि.र.-1**/317	सरोज स्मृति

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अजिर का शून्य-	*'इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो!'*	: (मंदिर के) आँगन में रात का सूनापन	**म.सा.-1**/335	यह मंदिर का दीप... /दीप-शिखा
अजिर के उर में -	*'अजिर के उर में भरा कुलेल'*	: मानो आँगन के हृदय में वह स्मृति बसी है। भाव यह है कि आँगन को देखकर स्मृति हो आती है।	**प्र.ग्रं.-1**/307	तुम्हारी आँखों का बचपन/लहर
अजिर गीला-	*'मेघरूँधा अजिर गीला- टूटता सा इंदु-कंदुक'*	: (आकाश-रूपी) आँगन मानो नम या गीला है	**म.सा.-1**/271	सो रहा है विश्व, पर... /सांध्य गीत
अजीत -	*'गति स्वच्छन्द, अजीत अभीत?'*	: जिसे जीता न जा सके, अपराजित	**नि.र.-1**/119	यमुना के प्रति
♦	*'आयीं करने को बातचीत जो कल होने वाली, अजीत'*	: जिसे जीता न जा सका हो	**नि.र.-1**/319	सरोज स्मृति
अजीत-इङ्गित-मुखरित-	*'वह अजीत-इङ्गित-मुखरित मुख'*	: जिसके चेहरे पर अविजित होने के संकेत प्रकट हो रहे हों	**नि.र.-1**/122	यमुना के प्रति
अज्ञ-	*'कौन अज्ञ दरिद्रता से अधिकतर'*	: अनजान	**पं.ग्रं.-1**/138	ग्रन्थि
अज्ञात-	*'दुःख के डर से तुम अज्ञात जटिलताओं का कर अनुमान,'*	: अनजाना	**प्र.ग्रं.-2**/88	श्रद्धा/कामायनी
♦	*'नींद में सपना बन अज्ञात!/गुदगुदा जाते हो जब प्राण'*	: वह अज्ञात असीम प्रियतम	**म.सा.-1**/156	नींद में सपना बन अज्ञात/रश्मि
अज्ञातदेशी-	*'आज स्पंदन भी हुई उर के लिए अज्ञातदेशी!'*	: अपरिचित, अनजाना	**म.सा.-1**/355	मोम-सा तन घुल चुका/दीप-शिखा
♦	*'तिमिर में अज्ञातदेशी क्यों तुझे तू खोज पाया!'*	: जिसका परिचय पूरा पता न हो, अनजान परदेशी	**म.सा.-1**/381	शेषयामा यामिनी मेरा/दीप-शिखा
अज्ञात पुलिन-	*'अज्ञात पुलिन से, उज्ज्वलतर किरणें प्रवाल-तरिणी में भर'*	: अज्ञात क्षितिज मानो तट की तरह हैं	**म.सा.-1**/199	कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती! /नीरजा
अज्ञात प्रभात-	*'जब मैं थी अज्ञात प्रभात'*	: जो सुबह अभी हुई नहीं हो	**पं.ग्रं.-1**/88	जब मैं थी अज्ञात प्रभात/वीणा
अज्ञाता-	*'अज्ञाता की केश राशि में'*	: प्रिय मानो भावलोक की कल्पना है, प्रेम अभी अमूर्त है	**पं.ग्रं.-1**/82	नव वसंत ऋतु में आओ/वीणा
♦	*'किस अज्ञाता के जीवन को'*	: कल्पना और भावलोक की प्रेमिका	**पं.ग्रं.-1**/99	इस पीपल के तरु के नीचे/वीणा
♦	*'अज्ञाता के विस्मय-सी'*	: अज्ञातयौवना, मुग्धा नायिका, जिसे यौवनागम का पता न हो	**पं.ग्रं.-1**/204	छाया/पल्लव
अज्ञेय -	*'अज्ञेय सत्य तू जड़चेतन'*	: जिसे जाना न जा सके	**पं.ग्रं.-2**/15	ए मिट्टी के ढेले/युगपथ
♦	*'अज्ञेय, गुह्य, अग जग छायी'*	: जिसे जान पाना संभव न हो	**पं.ग्रं.-2/19**	छाया/युगपथ
अटकातुहिन-	*'अंक में अटकातुहिन-जल अनिल की'*	: ओस की बूँदों का लुढ़कते हुए रुक जाना	**पं.ग्रं.-1**/133	ग्रन्थि
अटवी-	*'पर्यटक एक अटवी का अज्ञात'*	: जंगल	**नि.र.-1**/174	रेखा 'क'

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अठखेलियाँ- *'कर रहा अठखेलियाँ/इतरा सदा उद्यान में!'*	: अनेक प्रकार के क्रीड़ा-कौतुक करना	**म.सा.-1**/59	था कली के रूप शैशव /नीहार
अड़-अड़- *'उमड़ चलती फिर-फिर अड़-अड़'*	: रुक-रुक कर	**नि.र.-1**/141	स्मृति
अणु- *'अस्ति-नास्ति का भेद, निरंकुश करते ये अणु तर्क-युक्ति से'*	: प्राणी	**प्र.ग्रं.-2**/260	रहस्य/कामायनी
अणवप्युचितम्- *'अणवप्युचितम्' विशाल हृदय, मुक्त द्वार खुला था'*	: (अणु+अपि+उचितम्), अणु की तरह छोटा	**नि.र.-1**/186	जागरण
अतंद्र- *'रूप अतन्द्र, चन्द्र मुख, श्रम रुचि'*	: जगा हुआ	**नि.र.-1**/260	देख दिव्य छवि लोचन हार
♦ *'प्रकृति बैठी पालने, अतन्द्र/जगत के पलकों पर आसीन'*	: जागृत	**नि.र.-1**/270	विश्व की ही वाणी प्राचीन
अतनु- *'बहती निराधारा/पृथ्वी गगन में, अतनु में सुतनु-हार'*	: बिना देहवाले में, निराकार में	**नि.र.-1**/266	बहती निराधार
अतल- *'अतल हृदय से उठ'*	: जिसका तल न जाना जा सके, गहरा (हृदय की गहराई)	**नि.र.-1**/100	दिल्ली
♦ *'क्या दृष्टि! अतल की सिक्त-धार/ज्यों भोगावती उठी अपार'*	: अथाह (मन की गहराई)	**नि.र.-1**/320	सरोज स्मृति
♦ *'अरी अतल की पुलकित श्वास'*	: गहराई	**पं.ग्रं.-1**/190	वीचि विलास/पल्लव
♦ *'अतल से उमड़ अकूल, अपार'*	: अथाह, बहुत गहराई से	**पं.ग्रं.-1**/231	परिवर्तन/पल्लव
♦ *'अविचल, अतल, अकूल, अमल जल'*	: खूब गहरा	**पं.ग्रं.-1**/352	चार/ज्योत्स्ना
अतल गर्त- *'तुम अतल गर्त, अविगत, अकूल'*	: जिस गहराई के निचले तल तक न जाया जा सके	**पं.ग्रं.-2**/19	छाया/युगपथ
अतल सिंधु- *'अतल सिंधु में लगा-लगाकर जीवन की बेड़ी बाजी'*	: अत्यधिक गहरा समुद्र	**प्र.ग्रं.-1**/252	पाईबाग/झरना
अतलांत- *'अतलांत महा गंभीर जलधि -'*	: जिसके तल का अंत न हो, बहुत गहरा	**प्र.ग्रं.-1**/299	हे सागर संगम अरुण नील/लहर
अति-अपनाव-मृदु- *'स्मितनयन, चञ्चल, चयनशील, अति- अपनाव-मृदु भाव खोले हुए!'*	: अत्यधिक कोमल अपनापन	**नि.र.-1**/174	रेखा 'क'
अति आतुर- *'वह कौन अकिंचन अति आतुर'*	: बहुत बेचैन या परेशान	**प्र.ग्रं.-1**/318	मुझको न मिला रे कभी प्यार/लहर
अति-चकित-चित्त-क्षुब्ध- *'कहता अति-चकित-चित्त-क्षुब्ध'*	: अत्यधिक चकित और क्षुब्ध मनवाला	**नि.र.-1**/151	बदला
अतिचार- *'मेरा अतिचार न बंद हुआ उन्मत्त रहा सब को घेरे'*	: स्वेच्छाचार	**प्र.ग्रं.-2**/103	काम/कामायनी
अतिचारी- *'वह अतिचारी, दुर्बल नारी परित्राण-पथ नाप उठी!'*	: अत्याचार करनेवाला (मनु)	**प्र.ग्रं.-2**/192	स्वप्न/कामायनी
अतिथि विगत-विकार- *'एक गृहपति, दूसरा था अतिथि विगत-विकार'*	: विकारों से मुक्त अतिथि के रूप में श्रद्धा	**प्र.ग्रं.-2**/111	वासना/कामायनी
अतिरंजित- *'देखा मनु ने वह अतिरंजित विजन विश्व का नव एकांत'*	: अत्यधिक रंगों से भरा हुआ, प्रलय ने प्रकृति को बेरंग कर दिया था। अब पुन: रंगों से सज रही है।	**प्र.ग्रं.-2**/68	आशा/कामायनी
अतिवात- *'बना सैकत के तट अतिवात'*	: हवा की प्रबलता	**पं.ग्रं.-1**/229	परिवर्तन/पल्लव
अतिवाद- *'छोड़कर जीवन के अतिवाद,*	: एकतरफा रास्ता अपनाना	**प्र.ग्रं.-1**/295	अरी वरुणा की शांत

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
	मध्य पथ से लो सुगति सुधार'			कछार/लहर
अतिशयता-	*'बढ़ती ही जाती है/अतिशयता/पारावार अपार'*	: जरूरत से अधिक, नकारात्मक अधिकता	**नि.र.-1**/201	खेवा
अतींद्रिय-	*'एक अतीन्द्रिय स्वप्न लोक का मधुर रहस्य उलझता था;'*	: लोकोत्तर, इन्द्रियों के अनुभव से परे	**प्र.ग्रं.-2**/76	आशा/कामायनी
अतीत की उतराई-	*'नाविक अतीत की उतराई !'*	: अपने अतीत में उतरने का	**प्र.ग्रं.-1**/326	ओ री मानस की गहराई /लहर
अतीत के नूतन गान-	*'अरी अप्सरे! उस अतीत के नूतन गान सुनाओ'*	: बीते हुए सुखद दिनों को नये गीत में गाओ	**प्र.ग्रं.-2**/147	कर्म/कामायनी
अतीत-विस्मृति-	*'उठ-उठकर अतीत-विस्मृति से'*	: भूला हुआ अतीत	**नि.र.-1**/117	यमुना के प्रति
अतुल-	*'झुकतीं सौरभ रस लिये अतुल'*	: अनुपम, तुलना से परे	**प्र.ग्रं.-1**/319	मुझको न मिला रे कभी प्यार/लहर
♦	*'खुलते स्तबकों की लज्जाकुल नतवदना मधुमाधवी अतुल;*	: अनुपम	**नि.र.-1**/308	दान
अतुल-बल-	*'लख शंकाकुल हो गये अतुल-बल शेष-शयन'*	: जिसके (राम के) बल की तुलना किसी से न की जा सके	**नि.र.-1**/331	राम की शक्ति-पूजा
अतृप्त-आग्रह-	'वह अतृप्त-आग्रह से सिञ्चित'	: असंतुष्ट निवेदन	**नि.र.-1**/121	यमुना के प्रति
अतृप्ति-	*'यह अतृप्ति अधीर मन की क्षोभयुत उन्माद'*	: असंतोष (प्रेम और कामभावना का)	**प्र.ग्रं.-2**/117	वासना/कामायनी
अतृप्ति की आग-	*'सुधा का मधु हाला का राग व्यथा के घन अतृप्ति की आग'*	: अधूरेपन की जलन	**म.सा.-1**/115	तुहिन के पुलिनों पर छबिमान/रश्मि
अतृप्ति जलधि-	*'तिर रही अतृप्ति जलधि में नीलम की नाव निराली'*	: आँखों में अतृप्ति का भाव समुद्र की तरह लहरा है	**प्र.ग्रं.-2/11**	आँसू
अतृप्ति-सी संचित-	*'बन आवर्जना-मूर्ति दीना अपनी अतृप्ति-सी संचित हो'*	: तृप्ति से वंचित, अतृप्ति का संचित रूप	**प्र.ग्रं.-2**/127	लज्जा/कामायनी
अत्याचार प्रकृति-कृत-	*'अत्याचार प्रकृति-कृत हम सब जो सहते हैं'*	: प्रकृति के द्वारा किया गया अत्याचार - बाढ़, सूखा, भूकंप आदि	**प्र.ग्रं.-2**/206	संघर्ष/कामायनी
अथक पथिक-	*'तब भी गिरि-पथ का अथक पथिक, ऊपर ऊँचे सब झेल चले'*	: बिना थके चलनेवाला यात्री	**प्र.ग्रं.-4**/341	प्रथम अंक/ध्रुवस्वामिनी
अथच-	*'जनता का जन-ताका ज्ञान वह, सच्चा कल्याण वह अथच है- /यह सच है!'*	: और भी	**नि.र.-1**/314	सच है
अथवा-	*'उसका एक स्वप्न अथवा है'*	: शेष, बचा हुआ	**नि.र.-1**/72	विधवा
अदमनीय-	*'संसृति के शक्तिमान दस्युओं का अदमनीय'*	: जिनका दमन न हो सके, प्रबल, अदम्य, जिन्हें दबाया न जा सके	**नि.र.-1**/99	दिल्ली
अदृष्ट-	*'देखने को अदृष्ट नर्त्तन'*	: अदृश्य, जो दिखाई न दे	**प्र.ग्रं.-1**/306	आह रे, वह अधीर यौवन/लहर
♦	*'लिखता अदृष्ट था विधाता वाम कर से'*	: भाग्य, प्रारब्ध	**प्र.ग्रं.-1**/334	शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण/लहर

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अदेह-	*'है अदेह सन्देह, नहीं है इसका कुछ संस्कार'*	: अमूर्त, छद्म	**पं.ग्रं.-1**/181	उच्छ्वास/पल्लव
अद्रि शिखर-	*'दुर्दम, उदग्र शिर अद्रि शिखर'*	: पर्वत की चोटी	**पं.ग्रं.-2**/10	वे डूब गये/युगपथ
अध-	*'शोभा को लिये ऊर्ध्व औ' अध घर बाहर'*	: नीचे	**नि.र.-1**/293	तुलसीदास
अधखुला अंग-	*'नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;'*	: वस्त्र की ऐसी बनावट थी कि वक्षस्थल आंशिक रूप से अनावृत हो सुन्दर लग रहे थे	**प्र.ग्रं.-2**/84	श्रद्धा/कामायनी
अधम-पात्र मय सा-	*'आह सर्ग के प्रथम अंक का अधम-पात्र मय सा विष्कंभ'*	: नाटक के कुछ पात्रों को निम्न कोटि का माना जाता था	**प्र.ग्रं.-2**/62	चिंता/कामायनी
अधर-उपकूल-	*'पलक पुलिनों पर, अधर-उपकूल पर दोनों खिले हैं'*	: होंठों के किनारों पर मुस्कान खिलती है	**म.सा.-1**/323	आज तार मिला चुकी हूँ/दीप-शिखा
अधर-दशन-	*'एक-वसन रह गयी मन्द हँस अधर-दशन अनबोली*	: दाँत से अधरों को काटा	**नि.र.-1**/226	नयनों के डोरे लाल गुलाल-भरे
अधर प्रवाल-	*'हिलाते अधर प्रवाल'*	: नये पत्ते मानो होंठों की तरह हैं	**पं.ग्रं.-1**/177	पल्लव/पल्लव
अधर-विचुंबित-	*'तेरा अधर-विचुंबित प्याला तेरी ही स्मित-मिश्रित हाला'*	: होंठों से चूमा हुआ (प्याला)	**म.सा.-1**/183	तुम मुझ में प्रिय! फिर परिचय क्या!/नीरजा
अधर विद्रुम द्वार-	*'अधर विद्रुम द्वार'*	: सीपी की तरह सुन्दर होंठों की दोनों परतें	**पं.ग्रं.-1**/126	ग्रन्थि
अधर सस्मित-	*'अधर सस्मित पलकें गीली!'*	: मुस्कुराते हुए होंठ	**म.सा.-1**/289	वह संध्या फूली सजीली!/सांध्य गीत
अधरामृत-	*'अधरामृत से इन निर्जीवित'*	: अपने होंठों का स्पर्श मेरे शब्दों को दो, होंठों में मानो अमृत भरा है	**पं.ग्रं.-1**/82	नव वसंत ऋतु में आओ /वीणा
♦	*'ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहला दूँ जीवन?'*	: होंठों में बसा प्रेम का अमृत-रस	**पं.ग्रं.-1**/195	मोह/पल्लव
अधरासव-	*'मौन पान करती अधरासव/कण्ठ लगी उरगी'*	: होंठों की शराब	**नि.र.-1**/220	स्पर्श से लाज लगी
अधरों की प्यास-	*'अधर में वह अधरों की प्यास'*	: होंठों को चूमने की इच्छा	**प्र.ग्रं.-1**/305	आह रे, वह अधीर यौवन/लहर
अधरों के प्रान्त-	*'अधरों के प्रान्तों पर खेलती रेखाएँ'*	: होठों के किनारे	**नि.र.-1**/93	यहीं
अधरों पर ऊँगली-	*'वैसी ही माया में लिपटी अधरों पर ऊँगली धरे हुए'*	: रुकने या चुप रहने का इशारा	**प्र.ग्रं.-2**/123	लज्जा/कामायनी
अधरों में राग-	*'अधरों में राग अमंद पिये'*	: होंठों पर लाली (लिप्स्टिक) से श्रृंगार है	**प्र.ग्रं.-1**/303	बीती विभावरी जाग री/लहर
अध-विकच कली-	*'पुष्पलावियाँ चुनती हैं वन-कुसुमों की अध-विकच कली'*	: अधखिले फूल	**प्र.ग्रं.-2**/190	स्वप्न/कामायनी
अधार-	*'मैं मदिरा तू उसका खुमार मैं छाया तू उसका अधार'*	: आधार, बिम्ब	**म.सा.-1**/63	मैं कंपन हूँ तू करुण राग/नीहार
अधिक अलसाई हो-	*'अरुण की एक किरण अम्लान*	: सौन्दर्य-बोध को बढ़ाने	**प्र.ग्रं.-2**/85	श्रद्धा/कामायनी

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
	अधिक अलसाई हो अभिराम'	वाला आलस्य, नजाकत		
अधिकार और अधिकारी-	*'समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की'*	: शासित और शासक, अधिकारी का अधिकार, पुरुष का स्त्री पर अधिकार	**प्र.ग्रं.-2**/174	इड़ा/कामायनी
अधिकार-क्षुब्ध-	*'जिस दिन अधिकार-क्षुब्ध उस दास ने,'*	: अधिकार पाने के लिये क्षोभ से भरा हुआ	**प्र.ग्रं.-1**/352	प्रलय की छाया/लहर
अधिपति-	*'उसका अधिपति ! होगा कोई, जिस तक दुख की न पुकार गयी'*	: अधिष्ठाता, नियामक, नियंत्रक, स्वामी	**प्र.ग्रं.-2**/180	इड़ा/कामायनी
अधिवास-	*'मेरा अधिवास कहाँ'*	:(आध्यात्मिक अर्थ में) निवास	**नि.र.-1**/47	अधिवास
♦	*'छूटता है यद्यपि अधिवास'*	: आध्यात्मिक निवास	**नि.र.-1**/48	अधिवास
अधिवासी-	*'हम मन:स्वर्ग के अधिवासी'*	: निवासी	**पं.ग्रं.-1**/313	तीन/ज्योत्स्ना
अधीर-	*'तुम समीप, अधीर इतने आज क्यों हैं प्राण?'*	: बेचैन	**प्र.ग्रं.-2**/116	वासना/कामायनी
अधीर-तम-	*'अट्टहास कर उठा रिक्त का वह अधीर-तम,सूना राज'*	: अत्यधिक बेचैन	**प्र.ग्रं.-2**/77	आशा/कामायनी
अधीर मिलिंद-	*'चेतना बने अधीर मिलिन्द, आह वह आवे विमल वसंत'*	: व्याकुल भौंरा	**प्र.ग्रं.-1**/229	वसन्त की प्रतीक्षा/झरना
अधीर यौवन-	*'आह रे, वह अधीर यौवन !'*	: बेचैन यौवन-भाव, व्यग्र युवावस्था	**प्र.ग्रं.-1**/305	आह रे, वह अधीर यौवन/लहर
अधीर श्रांत-	*'रुक जा, सुन ले ओ निर्मोही !' वह कहती रही अधीर श्रांत !'*	: बेचैन और थकी हुई	**प्र.ग्रं.-2**/168	ईर्ष्या/कामायनी
अधुना-	*'साधना जगी केवल अधुना प्राणों की'*	: इस समय, वर्तमान में	**नि.र.-1**/306	तुलसीदास
अध्ययन-अधीर-	*'सव्यसाची-से तुम अध्ययन-अधीर'*	: अध्ययन के प्रति गंभीर या उत्सुक	**नि.र.-1**/129	बादल राग
अनंग-	*'वे अमर रहे न विनोद रहा, चेतनता रही, अनंग हुआ;'*	: अंगविहीन होकर कामदेव अस्तित्ववान रहा, वह चेतना रूप में सृष्टि में मौजूद रहा	**प्र.ग्रं.-2**/106	काम/कामायनी
♦	*'पुन: अनंग! बनो साकार!'*	: कामदेव, कामचेतना, अमूर्त रूप में मौजूद कामचेतना	**पं.ग्रं.-1**/191	अनंग/पल्लव
अनंग अनुराग-	*'इस अनन्त जलनिधि के नाविक, हे मेरे अनंग अनुराग'*	: प्रेम का सूक्ष्म अशरीरी रूप	**प्र.ग्रं.-4**/284	चतुर्थ अंक/चन्द्रगुप्त
अनंग का आसव-	*'पीकर अनंग का आसव'*	: कामनाओं की मदिरा	**प्र.ग्रं.-1**/330	अशोक की चिंता/लहर
अनंग के धनु-	*'थी किस अनंग के धनु की वह शिथिल शिंजिनी दुहरी'*	: कामदेव का धनुष	**प्र.ग्रं.-2**/12	आँसू
अनंग पीड़ा-	*'वह अनंग पीड़ा अनुभव-सा अंग भंगियों का नर्त्तन,'*	: कामभावना की अतृप्ति की पीड़ा	**प्र.ग्रं.-2**/57	चिंता/कामायनी
अनंग बालिकाएँ-	*'हँसती अनंग बालिकाएँ अंतरिक्ष में'*	: कामदेव की पुत्रियाँ (लालसा से भरा वातावरण)	**प्र.ग्रं.-1**/339	प्रलय की छाया/लहर
अनंत-	*'काल धीवर अनन्त में,'*	: अनिश्चित दिशा, अनन्त समुद्र	**प्र.ग्रं.-1**/338	पेशोला की प्रतिध्वनि/लहर
♦	*'लहरें टकरातीं अनन्त की - पाकर जहाँ किनारा'*	: समुद्र (की लहरें)	**प्र.ग्रं.-4**/215	द्वितीय अंक/चन्द्रगुप्त

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
◆	*'था मिला उसे क्या उसका वही अनन्त?*	: अनजाना, अज्ञात	**नि.र.-1**/70	उसकी स्मृति
◆	*'उस अजान की ओर तुम्हारा छोर असीम अनन्त'*	: जिसका अंत पता न हो	**नि.र.-1**/78	पथ
◆	*'और नहीं सीधे पहुँचे तुम उस अनन्त के घर में'*	: ईश्वर	**नि.र.-1**/78	पथ
◆	*'और हाल अपने अनन्त का बतलाते हो'*	: अंतहीनता	**नि.र.-1**/78	पथ
◆	*'तेरे मुख-विकसित-सरोज का प्रेमी एक अनन्त'*	: आकाश	**नि.र.-1**/80	शरत्पूर्णिमा की बिदाई
◆	*'है वही प्रेम उसका अनन्त'*	: चिरकालिक	**नि.र.-1**/97	बहू
◆	*'किस अनन्त का नीला अंचल हिला-हिलाकर'*	: आकाश, ईश्वर	**नि.र.-1**/105	तरंगों के प्रति
◆	*'वह अनन्त का ध्वंस सान्त, वह'*	: आकाश	**नि.र.-1**/123	यमुना के प्रति
◆	*'वह अनन्त नयनों का नीर'*	: असंख्य	**नि.र.-1**/123	यमुना के प्रति
◆	*हैं मेरे वे जहाँ अनन्त'*	: ईश्वर	**नि.र.-1**/127	ध्वनि
◆	*'ऐ अनन्त के चञ्चल शिशु सुकुमार!'*	: आकाश	**नि.र.-1**/133	बादल-राग
◆	*'प्रिय, अन्त और अनन्त के/तम-गहन-जीवन घेर'*	: अज्ञात	**नि.र.-1**/170	मौन
◆	*'उस अनन्त का पथ अज्ञात'*	: समुद्र	**पं.ग्रं.-1**/96	स्नेह चाहिए सत्य, सरल/वीणा
◆	*'वह रे अनन्त का मुक्त मीन, अपने असंग सुख में विलीन'*	: समुद्र, आकाश, अंतरिक्ष	**पं.ग्रं.-1**/268	एक तारा/गुंजन
अनंत अनुराग-	*'प्रिय के अनंत अनुराग भरी!'*	: (उस अनंत प्रियतम का) असीमित प्यार मिला है मुझे	**म.सा.-1**/304	सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी!/सांध्य गीत
अनंत अभिलाषा-	*'श्रद्धा ! पुण्य-प्राप्य है मेरी वह अनंत अभिलाषा'*	: असीम कामना का मूर्त रूप	**प्र.ग्रं.-2**/136	कर्म/कामायनी
अनंत अभिलाषा के सपने-	*'जिसमें अनंत अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं'*	: असंख्य कामनाओं से जुड़ी कल्पनाएँ	**प्र.ग्रं.-2**/127	लज्जा/कामायनी
अनंत अवकाश-	*'यह अनंत अवकाश नीड़-सा जिसका व्यथित बसेरा'*	: असीम आकाश	**प्र.ग्रं.-2**/141	कर्म/कामायनी
अनंत आँखें-	*'तारों में प्रतिबिंबित हो मुस्काएँगी अनंत आँखें'*	: असंख्य तारों में मानो मेरी प्रेममय आँखें मुस्कुराती नजर आएँगी	**म.सा.-1**/33	मैं अनंत पथ में लिखती जो/नीहार
अनंत ऋतुराज-	*'वह अनंत ऋतुराज नहीं जिसने देखी जाने की राह'*	: उस लोक में मानो सदा वसंत ऋतु रहती है	**म.सा.-1**/35	वे मुस्कुराते फूल, नहीं - /नीहार
अनंत करुणा-	*'उनमें अनंत करुणा है इसमें असीम सूनापन!'*	: उस अज्ञात असीम प्रियतम के पास अनन्त करुणा है	**म.सा.-1**/45	छाया की आँखमिचौनी /नीहार
अनंत कल्लोल भरा-	*'जिसमें अनंत कल्लोल भरा लहरों में मस्त विचरता-सा'*	: खुशियों की अनन्त तरंगें	**प्र.ग्रं.-2**/101	काम/कामायनी
अनंत काले शासन-	*'इस अनंत काले शासन का वह जब उच्छृंखल इतिहास;'*	: प्रलय की रात का असह्य शासन एक आततायी सत्ता की तरह कालिमा से युक्त था	**प्र.ग्रं.-2**/78	आशा/कामायनी
अनंत की ओर-	*'लिए कैसे पीड़ा का भार देव आऊँ अनंत की ओर?'*	: उस अज्ञात प्रियतम के लोक की ओर	**म.सा.-1**/79	गरजता सागर तम है घोर/नीहार
अनंत की गणना-	*'हे अनन्त की गणना ! देते*	: सितारे आकाश के संख्यात्मक	**प्र.ग्रं.-2**/78	आशा/कामायनी

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
	तुम कितना मधुमय संदेश!'	मान की तरह हैं। अनन्त आकाश को मानो इस संख्या के माध्यम से गिना जा सकता है, यह अलग बात है कि ये तारे स्वयं असंख्य हैं।		
अनंत की गोद सदृश-	*'थी अनन्त की गोद सदृश जो विस्तृत गुहा वहाँ रमणीय;'*	: आकाश की गोद के समान विस्तृत	**प्र.ग्रं.-2**/73	आशा/कामायनी
अनंत की राह-	*'यही क्या है अनंत की राह अरे मेरे नाविक नादान?'*	: उस अज्ञात और अनन्त प्रिय तक पहुँचने का रास्ता, प्रिय-पथ	**म.सा.-1**/61	घोर घन की अवगुण्ठन डाल/नीहार
अनंत के द्वार-	*'पहुँचाते अनन्त के द्वार'*	: आकाश के अंतिम छोर तक	**पं.ग्रं.-1**/202	विश्व वेणु/पल्लव
अनंतगति-	*'तुम तुरन्त ही, हे अनन्तगति'*	: जिसकी गति की सीमा न हो, आकाश में गतिशील	**पं.ग्रं.-1**/95	अब न अगोचर रहो सुजान!/वीणा
अनंत जलनिधि-	*'इस अनन्त जलनिधि के नाविक, हे मेरे अनंग अनुराग'*	: (चेतना का) अपार समुद्र	**प्र.ग्रं.-4**/284	चतुर्थ अंक/चन्द्रगुप्त
अनंतता-	*'वही स्वर्ग की बन अनंतता मुसक्याता रहता है'*	: स्वर्गिक सुख की अंतहीनता	**प्र.ग्रं.-2**/148	कर्म/कामायनी
अनंत नीलिमा-	*'इस गंभीर अनन्त नीलिमा में असंख्य जीवन इतिहास'*	: असीमित नीला आकाश, विस्तृत संसार	**प्र.ग्रं.-1**/292	मधुप गुनगुना कर कह जाता/लहर
अनंत नीलिमा व्योम की-	*'वह अनन्त नीलिमा व्योम की जड़ता सी जो शांत रही;'*	: आकाश की अनन्त नीलिमा, मानो आकाश में निराशा छायी हो	**प्र.ग्रं.-2**/72	आशा/कामायनी
अनंत पथ-	*'मैं अनंत पथ में लिखती जो सस्मित सपनों की बातें'*	: आकाश-मार्ग की तरह प्रेम-पथ अनंत है	**म.सा.-1**/33	मैं अनंत पथ में लिखती जो/नीहार
अनंत प्रगाढ़ छाया-	*'वह अनन्त प्रगाढ़ छाया फैलती अपरूप'*	: (रात की) असीम सुंदरता का गहरा प्रभाव	**प्र.ग्रं.-2**/117	वासना/कामायनी
अनंत प्रांगण-	*'इस अनन्त प्रांगण में मानो जोड़ रही है मौन सभा'*	: आकाश-रूपी विशाल आँगन	**प्र.ग्रं.-2**/72	आशा/कामायनी
अनंत मनुहारें-	*'उनकी छलनामय छाया मेरी अनंत मनुहारें'*	: प्रिय से की गयीं अनेक खुशामदें, प्रेमपूर्ण मनौव्वल	**म.सा.-1**/57	इसमें अतीत सुलझाता /नीहार
अनंत मिलन-	*'आगमन अनंत मिलन बनकर -'*	: समुद्र से (गंगा का) मिलन	**प्र.ग्रं.-1**/299	हे सागर संगम अरुण नील/लहर
अनंत में लहर बनाती-	*'तू अनंत में लहर बनाती काल-जलधि की-सी हलचल'*	: मृत्यु मानो काल के विशाल समुद्र में लहरें उत्पन्न करती रहती है	**प्र.ग्रं.-2**/63	चिंता/कामायनी
अनंतर-	*'कुछ समय अनन्तर, स्थित रहकर'*	: बाद में	**नि.र.-1**/302	तुलसीदास
♦	*'कुछ समय अनन्तर इन्दीवर निन्दित लोचन'*	: के बाद, थोड़ी देर बाद	**नि.र.-1**/335	राम की शक्ति-पूजा
अनंत रमणीय-	*'हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम? यह मैं कैसे कह सकता'*	: असीम और सुन्दर ईश्वर, परम सत्ता के दो विशेषण यहाँ दिये गए हैं - अनन्त और रमणीय	**प्र.ग्रं.-2**/69	आशा/कामायनी
अनंत वसंत-	*'आज तिरोहित हुआ कहाँ वह मधु से पूर्ण अनंत वसंत ?'*	: अंतहीन वसंत ऋतु, अनन्त यौवन	**प्र.ग्रं.-2**/56	चिंता/कामायनी
अनंत विच्छेद-	*'नहीं जिसमें अनंत विच्छेद*	: स्थायी वियोग	**म.सा.-1**/87	गिरा जब हो जाती है

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
	बुझा पाता जीवन की प्यास'			मौन/नीहार
अनंत विभव-	*'ऐसे अतुल अनंत विभव में जाग पड़ा क्यों तीव्र विराग?'*	: अपार सौन्दर्य या वैभव	**प्र.ग्रं.-2**/80	आशा/कामायनी
अनखाकर-	*'कहा अनखाकर उसने खूब'*	: नाराज होकर	**प्र.ग्रं.-1**/259	आशालता/झरना
अनखाती-	*'पिलाती कभी अनखाती नहीं'*	: क्रोधित होना, रुष्ट होना	**म.सा.-1**/130	इन आँखों ने देखी न राह कहीं/रश्मि
अनघ-	*'मेरी ही अनघता ने/अनघ रक्खा था इन्हें'*	: निष्पाप, पाप से मुक्त	**नि.र.-1**/179	रेखा 'ग'
अनघता-	*'मेरी ही अनघता ने/अनघ रक्खा था इन्हें'*	: निष्पाप होना	**नि.र.-1**/179	रेखा 'ग'
अनजान-	*'मधुरता से अपनी अनजान'*	: निर्दोष और नादान	**पं.ग्रं.-1**/177	पल्लव/पल्लव
♦	*'धूलि की ढेरी में अनजान'*	: अज्ञात रूप से, अचेत रूप से	**पं.ग्रं.-1**/179	उच्छ्वास/पल्लव
♦	*'बही होगी कविता अनजान'*	: अज्ञात भाव से, स्वतः, बिना प्रयास के, स्वतःस्फूर्त	**पं.ग्रं.-1**/183	आँसू/पल्लव
♦	'याद कर रोता हूँ अनजान'	: नादान की तरह	**पं.ग्रं.-1**/188	आँसू/पल्लव
अनजान क्षितिज-	*'जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा'*	: अपरिचय का शिकार हुये यात्री या परदेशी, 'क्षितिज' मानो मिलन की अनन्त प्रतीक्षा और प्रयास का प्रतीक है	**प्र.ग्रं.-4**/215	द्वितीय अंक/चन्द्रगुप्त
अनन्य-	*'मेरा मानस का मुकुर रहे, प्रतिबिंबित तुमसे ही अनन्य'*	: जिसका सम्बन्ध किसी और से न हो	**प्र.ग्रं.-2**/163	ईर्ष्या/कामायनी
♦	*'उसने स्नेह किया था मुझसे हाँ अनन्य वह रहा नहीं'*	: एकनिष्ठ समर्पण	**प्र.ग्रं.-2**/215	निर्वेद/कामायनी
अनन्य अँगड़ाई-	*'मेरी यात्रा पर लेती थी, नीरवता अनन्य अँगड़ाई'*	: विशेष प्रकार की अँगड़ाई	**प्र.ग्रं.-4**/141	पंचम अंक/स्कन्दगुप्त
अनन्य छबि-	*'ऐ अनन्य छबि के समुदय'*	: अनुपम सौन्दर्य	**पं.ग्रं.-1**/209	नक्षत्र/पल्लव
अनन्यता-	*'सहज लब्ध थी वह अनन्यता पड़ी रह सके जहाँ कहीं'*	: (इड़ा का मनु के प्रति) एकनिष्ठ समर्पण (सहज उपलब्ध हो सकता था, मगर मनु ने अपमानजनक रास्ता अपनाया)	**प्र.ग्रं.-2**/215	निर्वेद/कामायनी
अनन्वय-	*'ऐ अनादि के वृत्त अनन्वय'*	: जिसका अन्वय न हो सके, तारों को ठीक-ठीक व्यवस्थित रूप से नहीं समझा जा सकता है	**पं.ग्रं.-1**/209	नक्षत्र/पल्लव
अनबींधे-	*'अनबींधे मोती यह दृग के, बँध पाए बंधन में किसके?'*	: जो परस्पर बँधा/बिंधा हुआ न हो	**म.सा.-1**/226	कहता जग दुःख को प्यार न कर!/नीरजा
अनबींधे मोती-	*'पारद से अनबींधे मोती साँस इन्हें बिन तार पिरोती'*	: पारा से बने मोती में छेद नहीं किया जा सकता। बिना बिंधे हुए मोती की तरह हैं आँसू	**म.सा.-1**/329	तरल मोती से नयन भरे!/दीप-शिखा
अनभ्र-	*'अहे अनभ्र गगन के जल कण'*	: बादलरहित	**पं.ग्रं.-1**/210	नक्षत्र/पल्लव
अनमिल-	*'त्रिभुवन के प्रतिनिधि थे मानो वे अनमिल थे किन्तु सजग थे'*	: असम्बद्ध, जो परस्पर मिल नहीं सकते हों	**प्र.ग्रं.-2**/254	रहस्य/कामायनी
अनमिष-	*'जगती के अनमिष पलकों पर'*	: अनिमिष, अपलक,	**पं.ग्रं.-1**/273	अप्सरा/गुंजन

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
		एकटक		
अनय-	*'प्रलय का-सा अनय जो कर गया संसार में बढ़कर'*	: अन्याय	**नि.र.-1**/69	गरीबों की पुकार
♦	*'नहीं लाज, भय, अनृत, अनय, दुख'*	: अनीति	**नि.र.-1**/221	कौन तुम शुभ्र-किरण-वसना?
अनर्गल-	*'निरलङ्कार कवित्व अनर्गल'*	: बिना रोक (अर्गल) के, मनमाना	**नि.र.-1**/110	सिर्फ एक उन्माद
♦	*'ऐ निर्बन्ध!/अन्ध-तम-अगम-अनर्गल-बादल!'*	: अर्गला (बंधन) से मुक्त, बेरोक-टोक	**नि.र.-1**/129	बादल राग
अनल चक्र-	*'अनिहलवाड़ा में अनल चक्र घूमा फिर'*	: आग का पहिया (विपरीत और कष्टदायक परिस्थिति)	**प्र.ग्रं.-1**/343	प्रलय की छाया/लहर
अनल-प्रतिमा-	*'देखा, वामा, वह न थी, अनल-प्रतिमा वह;'*	: अग्नि की प्रतिमा	**नि.र.-1**/303	तुलसीदास
अनल-बाला-सी-	*'यह सारा कलुष जलाकर तुम जलो अनल-बाला-सी'*	: अग्नि-पुत्री के समान जलकर सारे कलुष को मिटा दो	**प्र.ग्रं.-2**/31	आँसू
अनल शिखा-	*'सूखी काष्ठ सन्धि में पतली अनल शिखा जलती थी'*	: आग की लपट	**प्र.ग्रं.-2**/140	कर्म/कामायनी
अनलशिखा-	*'तृष्णा वह अनलशिखा बन -'*	: आग की लपट की तरह (हैं इच्छाएँ)	**प्र.ग्रं.-1**/329	अशोक की चिंता/लहर
अनल-शिखा-	*'मेरे स्वर की अनल-शिखा से जला सकल जग जीर्ण दिशा से'*	: अग्नि-शिखा, ऊष्मा, ताप	**नि.र.-1**/213	मेरे प्राणों में आओ!
अनलसित-	*'मेरा चिन्ता-रहित, अनलसित'*	: अन्+अलसित, आलस्यविहीन, तत्पर	**पं.ग्रं.-1**/220	बालापन/पल्लव
अनवगत-	*'अनवगत जिसका गान'*	: जिसे अभी तक जाना न जा सका हो	**पं.ग्रं.-1**/207	शिशु/पल्लव
अनवरोध-	*'सरस-ज्ञान अनवरोध/करता नर-रुधिर-पान!'*	: मुक्त	**नि.र.-1**/267	फूटो फिर
अनवस्था-	*'यह अनवस्था, युगल मिले से विकल व्यवस्था सदा बिखरती'*	: अनिश्चित अवस्था, कार्य-कारण का अनन्त क्रम	**प्र.ग्रं.-2**/262	रहस्य/कामायनी
अनसूया-	*'भूलती नहीं हैं एक क्षण भी अनसूया देवी'*	: अत्रि ऋषि की पत्नी	**नि.र.-1**/52	पंचवटी प्रसंग:1
अनसूया-वन-	*'फिर स्फटिकशिला, अनसूया-वन सरि-उद्गम,'*	: चित्रकूट का एक दर्शनीय स्थल	**नि.र.-1**/292	तुलसीदास
अनस्तित्व का तांडव नृत्य-	*'धू-धू करता नाच रहा था अनस्तित्व का तांडव नृत्य;'*	: प्रलय की भयंकर लीला	**प्र.ग्रं.-2**/64	चिंता/कामायनी
अनाकांक्षित-	*'भिक्षुक के स्वप्न-सी, अनाकांक्षित'*	: जिसकी इच्छा न की गयी हो	**नि.र.-1**/178	रेखा 'ख'
अनात्म-	*'मार अनात्म भाव अजरामर परमात्मा से नाता जोड़'*	: आत्मा से भिन्न, जड़, देह	**नि.र.-1**/44	नहीं डरेंगे
अनादि-	*'तुम अनादि तब केवल तम'*	: जिसके प्रारंभ/उद्भव को निर्धारित नहीं किया जा सके	**नि.र.-1**/225	प्रेम के प्रति
अनादि गान-	*'तुम गाओ विहग! अनादि गान'*	: पक्षी की प्राकृतिक गायन कला, जो गायन सृष्टि के	**पं.ग्रं.-2**/10	जगती के जन-पथ, कानन में/युगपथ

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
		आरम्भ से मौजूद हो		
अनादि वासना-	*'नव हो जगी अनादि वासना मधुर प्राकृतिक भूख समान'*	: मनुष्य की आदिम इच्छाएँ, काम-रति की भावना	**प्र.ग्रं.-2**/76	आशा/कामायनी
♦	*'जो आकर्षण बन हँसती थी रति थी अनादि वासना वही'*	: संस्कार-रूप में निरंतर रहने वाली लालसा, चिरंतन भोग-वासना	**प्र.ग्रं.-2**/104	काम/कामायनी
अनामा रागिनी-	*'वह अनामा रागिनी अब साँस में ठहरा चुकी हूँ'*	: मैं एक ऐसी रागिनी बजा रही हूँ जो नयी है और उसका पहले से कोई नाम नहीं है	**म.सा.-1**/323	आज तार मिला चुकी हूँ/दीप-शिखा
अनामिका-	*'जो प्रिया, प्रिया वह/रही सदा ही अनामिका'*	: जो नाम की सीमा से मुक्त है	**नि.र.-1**/340	सम्राट् अष्टम एडवर्ड के प्रति
अनामिल-	*'अन्तस्तल मधु-गन्ध अनामिल'*	: बेजोड़	**नि.र.-1**/240	आओ मधुर-सरण मानसि, मन
♦	*'ओस के धोये अनामिल पुष्प ज्यों खिल किरण-चूमे'*	: स्वच्छ	**नि.र.-1**/245	बुझे तृष्णाशा-विषानल झरे
अनावृत-	*'अनावृत सुकृत-स्नेह के प्राण अमृत ही अमृत, ज्ञान ही ज्ञान'*	: खुला, जो ढँका न हो	**नि.र.-1**/240	तुम्हारे सुन्दरि, कर सुन्दर
अनासक्त-	*'विश्वानुरक्त हे अनासक्त, सर्वस्व त्याग को बना भुक्ति'*	: स्वार्थपूर्ण आग्रहों से मुक्त	**पं.ग्रं.-2**/25	बापू के प्रति/युगपथ
अनाहत-	*'संहार सृजन से युगल पाद, गतिशील, अनाहत हुआ नाद'*	: केवल आत्मा के द्वारा अनुभूत ईश्वरीय ध्वनि, बिना आघात के उत्पन्न ध्वनि	**प्र.ग्रं.-2**/246	दर्शन/कामायनी
♦	*'दिव्य अनाहत पर-निनाद में श्रद्धायुत मनु बस तन्मय थे'*	: सारे विश्व में व्याप्त ईश्वरीय ध्वनि, जिसे साधना की अवस्था में सुना जा सकता है	**प्र.ग्रं.-2**/263	रहस्य/कामायनी
अनाहूत-	*'धिक! धाये तुम तों अनाहूत'*	: बिना बुलाए	**नि.र.-1**/303	तुलसीदास
अनिंद्य-	*'अकलुष, अनिंद्य, नक्षत्र एक, ज्यों मूर्तिमान ज्योतित विवेक'*	: जिसकी निंदा न की जा सके	**पं.ग्रं.-1**/268	एक तारा/गुंजन
अनिमिष-	*'नीरव, अनिमिष, एकाकिनि'*	: अपलक, एकटक (देखती हुई चाँदनी)	**पं.ग्रं.-1**/269	चाँदनी/गुंजन
♦	*'अनिमिष तारक पलकों पर'*	: अपलक	**पं.ग्रं.-1**/309	तीन/ज्योत्स्ना
अनिमेष-	*'बिदाई के अनिमेष नयन'*	: अपलक, एकटक	**नि.र.-1**/129	बादल राग
♦	*'करुणा को अनिमेष दृष्टि मेरी खुली'*	: अपलक, एकटक	**नि.र.-1**/327	प्रेयसी
♦	*'अनिमेष-राम - विश्वजिद्दिव्य-शर-भङ्ग-भाव,'*	: एकटक, अपलक, आँखें फाड़कर देखना	**नि.र.-1**/329	राम की शक्ति-पूजा
♦	*'मौन औ' अनिमेष निर्जन पुष्प-से'*	: अपलक, चुपचाप एकटक देखना	**पं.ग्रं.-1**/136	ग्रन्थि
♦	*'अनिमेष, अटल, कुछ चिन्तापर'*	: अपलक, एकटक	**पं.ग्रं.-1**/180	उच्छ्वास/पल्लव
♦	*'नव मिलन को अनिमेष'*	: अपलक, एकटक	**पं.ग्रं.-1**/188	आँसू/पल्लव
♦	*'कामिनि की अनिमेष नयन छवि'*	: अपलक, बेबाक	**पं.ग्रं.-1**/194	अनंग/पल्लव

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अनिमेष हृदय-	*'अश्रु हास, अनिमेष हृदय'*	: देवताओं के हृदय (की तरह हैं तारे), अपलक भाव की तरह हृदय काम करता है	**पं.ग्रं.-1/209**	नक्षत्र/पल्लव
अनियम-	*'अनियम से शासन करते'*	: जो नियमों से बँधा न हो	**पं.ग्रं.-1**/309	तीन/ज्योत्स्ना
अनिर्वचनीय-	*'अहे अनिर्वचनीय! रूप धर भव्य, भयंकर'*	: जिसे वाणी के द्वारा कहा जाना संभव न हो	**पं.ग्रं.-1**/231	परिवर्तन/पल्लव
अनिल की ध्वनि-	*'अनिल की ध्वनि में, सलिल की वीचि में'*	: हवाओं के चलने से उत्पन्न ध्वनि	**पं.ग्रं.-1**/126	ग्रन्थि
अनिल-कुसुम-	*'या फूलों से ली अनिल-कुसुम'*	: हवा में खिले फूल (की तरह है तितली)	**पं.ग्रं.-2**/23	तितली/युगपथ
अनिल के खग-	*'अनिल के खग, कर चल-कल रोर'*	: वायु-रूपी पंछी	**पं.ग्रं.-1**/374	द्वितीय दृश्य/परी
अनिल दुकूल-	*'थिरकते, गह-गह अनिल दुकूल?'*	: हवा-रूपी आँचल	**पं.ग्रं.-1**/221	विश्व व्याप्ति/पल्लव
अनिल-निपीड़ित-	*'अनिल-निपीड़ित जा गिरती जो कूलों पर अज्ञात'*	: वायु के थपेड़ों से प्रभावित (तरंगें)	**म.सा.-1**/135	तुम हो विधु के बिम्ब और मैं/रश्मि
अनिलपथ-	*'उलझ अलकें जाएँगी मत अनिलपथ में डोल री'*	: वायुमार्ग में	**म.सा.-1**/227	मत अरुण घूँघट खोल री!/नीरजा
अनिल पीड़ित लहर-	*'जग पड़ी हूँ अनिल पीड़ित लहर-सी'*	: हवा से बेचैन लहर	**पं.ग्रं.-1**/130	ग्रन्थि
अनिल, भू, जल में-	*'आज से मानवता की कीर्ति अनिल, भू, जल में रहे न बंद'*	: वायु, पृथ्वी और जल में (सृष्टि मानो कैद हो गयी थी)	**प्र.ग्रं.-2**/93	श्रद्धा/कामायनी
अनिल-वाह-	*'इस अनिल-वाह के पार प्रखर किरणों का वह ज्योतिर्मय घर'*	: हवा की तरह प्रवाहमय	**नि.र.-1**/289	तुलसीदास
अनिल विलोड़ित-	*'अनिल विलोड़ित गगन सिन्धु में'*	: हवा के द्वारा हिलाया-डुलाया हुआ	**पं.ग्रं.-1**/214	बादल/पल्लव
अनिल वीचियों-	*'अनिल वीचियों में सुकुमार'*	: हवा की लहरें	**पं.ग्रं.-1**/204	छाया/पल्लव
अनिलाकार-	*'तुम जल थल में अनिलाकार'*	: अनिल के आकार की (लहरें), हवा के अनुसार लहरें आकार लेती हैं	**पं.ग्रं.-1**/190	वीचि विलास/पल्लव
अनिवार-	'प्रेम-पंखें में उड़ अनिवार'	: जिसे रोका न जा सके	**पं.ग्रं.-1**/259	रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम/गुंजन
अनिहलवाड़ा-	*'अनिहलवाड़ा में अनल चक्र घूमा फिर'*	: तत्कालीन गुजरात की राजधानी	**प्र.ग्रं.-1**/343	प्रलय की छाया/लहर
अनी-	*'अलकों की मृदुल अनी'*	: नोक	**प्र.ग्रं.-4**/302	चतुर्थ अंक/चन्द्रगुप्त
♦	*'तारों की किरन-अनी सखे!*	: नोक	**प्र.ग्रं.-4**/302	चतुर्थ अंक/चन्द्रगुप्त
अनुकंपा-	*'पलभर अनुकम्पा से भर जा'*	: कृतज्ञता, किसी की कृपा को महसूस करना	**प्र.ग्रं.-3**/272	प्रथम अंक/अजातशत्रु
अनुकूल सुखों-	*'अपने ही अनुकूल सुखों को मिलने दो मिल जाओ'*	: काम-रति के अनुरूप स्त्री-पुरुष को प्राप्त शारीरिक सुख	**प्र.ग्रं.-2**/154	कर्म/कामायनी
अनुकूलें-	फिर झूलें नव वृन्तों पर/अनुकूलें अलि अनुकूलें'	: अनुकूल हो जाएँ	**नि.र.-1**/191	वासन्ती
अनुकृति-	*'हृदय की अनुकृति बाह्य उदार*	: अनुकरण, नकल	**प्र.ग्रं.-2**/84	श्रद्धा/कामायनी

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
एक लम्बी काया, उन्मुक्त;'			
अनुग्रह- *'अपने अनुग्रह के भार से दबाते हुए'*	: कृपा	**प्र.ग्रं.-1**/349	प्रलय की छाया/लहर
♦ *'इस दीन अनुग्रह का मुझ पर तुम बोझ डालने में समर्थ'*	: अनुकम्पा	**प्र.ग्रं.-2**/168	ईर्ष्या/कामायनी
अनुचर- *'सुरपति के हम ही हैं अनुचर'*	: सेवक	**पं.ग्रं.-1**/213	बादल/पल्लव
अनुचरों- *'पीछे आ रहा था दल/अनुचरों का'*	: सेवक, अनुचर	**नि.र.-1**/176	रेखा 'ख'
अनुताप- *कविता का शीर्षक*	: पश्चाताप का मानसिक तनाव	**नि.र.-1**/91	अनुताप
♦ *'प्रलय बनकर किसका अनुताप डुबा जाता उसको चुपचाप?'*	: पश्चात्ताप, अफसोस	**म.सा.-1**/106	शून्यता में निद्रा की बन/रश्मि
अनुतापों की दाह- *'साँस में अनुतापों की दाह कल्पना का अविराम प्रवाह'*	: पश्चाताप या अफसोस का दुःख	**म.सा.-1**/114	तुहिन के पुलिनों पर छबिमान/रश्मि
अनुदिन- *'देवों की सृष्टि विलीन हुई अनुशीलन में अनुदिन मेरे;'*	: प्रतिदिन	**प्र.ग्रं.-2**/103	काम/कामायनी
♦ *'पगली-सी कोई अंतर में बैठी जैसे अनुदिन बकती'*	: प्रतिदिन, हमेशा	**प्र.ग्रं.-2**/129	लज्जा/कामायनी
अनुनय- *'क्या अनुनय में मनुहारों में क्या आँसू में उद्‌गारों में'*	: प्रेम की याचना करना	**म.सा.-1**/205	क्यों जग कहता मतवाली /नीरजा
♦ *'अनुनय उलझ रहा हो तीखे तिरस्कार से लांछित हो'*	: विनम्र अनुरोध	**प्र.ग्रं.-4**/134	पंचम अंक/स्कन्दगुप्त
अनुनय मनुहार- *'अपनी प्रतिछाया से भोले! इतनी अनुनय मनुहार न कर!'*	: निवेदनपूर्वक रूठे हुए को मनाना	**म.सा.-1**/226	कहता जग दुःख को प्यार न कर!/नीरजा
अनुनय वाणी में- *'अनुनय वाणी में, आँखों में उपालंभ की छाया'*	: निवेदन से भरी आवाज में	**प्र.ग्रं.-2**/147	कर्म/कामायनी
अनुपातों- *'बजा करें अगणित यन्त्रों से सुख-दुःख के अनुपातों से'*	: तुलनात्मक मात्रा में	**प्र.ग्रं.-4**/134	पंचम अंक/स्कन्दगुप्त
अनुभूति तुला- *'जीवन की अनुभूति तुला पर अरमानों से तोल'*	: अनुभूतियों के तराजू पर (इच्छाओं को तौला जाए)	**म.सा.-1**/39	चाहता है यह पागल प्यार/नीहार
अनुमान- *'चिर-परिचित-सा चाह रहा था द्वंद्व सुखद करके अनुमान'*	: परिकल्पना, काम-क्रीड़ा के सुख की कल्पना	**प्र.ग्रं.-2**/76	आशा/कामायनी
अनुरंजित- *'अनुरंजित कलियों का वैभव'*	: प्रसन्न	**म.सा.-1**/131	दिया क्यों जीवन का वरदान?/रश्मि
अनुरक्त- *'विश्व का उन्मीलन अभिराम इसी में सब होते अनुरक्त'*	: लगाव होना	**प्र.ग्रं.-2**/89	श्रद्धा/कामायनी
अनुरक्त वीचियाँ- *'नाचेंगी अनुरक्त वीचियाँ रंजित प्रभा सुनहरी में'*	: प्रेम की भावनाओं से भरी हुई लहरें	**प्र.ग्रं.-1**/238	दीप/झरना
अनुरक्ति- *'विरति में भी चिरविरति की बन गई अनुरक्ति हूँ मैं'*	: लगाव, अनासक्ति से लगाव	**म.सा.-1**/268	मैं किसी की मूक छाया हूँ.../सांध्य गीत
अनुराग-कंज - *'वह उर जिसका अनुराग-कंज मुँदकर न हुआ मधुहीन दीन'*	: जिसका प्रेम कमल के फूल की तरह हो	**म.सा.-1**/161	बीते वसंत की चिर-समाधि!/रश्मि
अनुराग का इंदु- *'हँसता अनुराग का इंदु सदा'*	: प्रेम के प्रतीक की तरह	**म.सा.-1**/130	इन आँखों ने देखी न

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
		चन्द्रमा		राह कहीं/रश्मि
अनुराग-परागों-	*'पहन लो, और जरा अनुराग-परागों में खोजो'*	: प्रेम रूपी पराग	**नि.र.-1**/88	शृंगारमयी
अनुराग-राग-आलाप-	*'नहीं होता कोई अनुराग-राग-आलाप'*	: प्रेम के राग में गायन	**नि.र.-1**/77	सन्ध्या-सुन्दरी
अनुराग विराग ढाल-	*'दो पद्म-पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल'*	: (इड़ा की आँखें मानो) आसक्ति उत्पन्न कर अन्य के प्रति उदासीनता को जन्म देती हैं	**प्र.ग्रं.-2**/179	इड़ा/कामायनी
अनुराग समीरों पर तिरता-	*'अनुराग समीरों पर तिरता था इतराता-सा डोल रहा'*	: प्रेम की अनुभूति प्रदान करती वायु में तैरती (चिड़ियों की प्रभातकालीन चहचहाहट)	**प्र.ग्रं.-2**/124	लज्जा/कामायनी
अनुरागिनी उषा-	*'अनुरागिनी उषा लेती थी निज सुहाग मधुमाया में'*	: प्रेम से भरी हुई उषा-रूपी स्त्री	**प्र.ग्रं.-1**/292	मधुप गुनगुना कर कह जाता/लहर
अनुलेप-	*'अनुलेप सदृश तू लग रे !'*	: सुगन्धित लेप, उबटन	**प्र.ग्रं.-1**/332	अशोक की चिंता/लहर
अनुलेपन-	*'अनुलेपन सा मधुर स्पर्श था व्यथा भला क्यों रह जाती?'*	: लेप लगाने के समान, मरहम लगाये जाने की तरह	**प्र.ग्रं.-2**/220	निर्वेद/कामायनी
अनुवादित-	*'हे विधि, फिर अनुवादित कर दो'*	: भावांतरण, बदल देने के अर्थ में	**पं.ग्रं.-1**/221	बालापन/पल्लव
अनुशय-	*'लघुता मत देखो वक्ष चीर, जिसमें अनुशय बन घुसा तीर'*	: पश्चात्ताप	**प्र.ग्रं.-2**/244	दर्शन/कामायनी
अनुशीलन-	*'देवों की सृष्टि विलीन हुई अनुशीलन में अनुदिन मेरे;'*	: अनुगमन, अनुकरण	**प्र.ग्रं.-2**/103	काम/कामायनी
अनूप-	*'अपनी इच्छा का दृढ़ विरोध जिसमें वे भाव नहीं अनूप'*	: अनुपम, अति विशिष्ट	**प्र.ग्रं.-2**/160	ईर्ष्या/कामायनी
अनृत-	*'नहीं लाज, भय, अनृत, अनय, दुख'*	: झूठ	**नि.र.-1**/221	कौन तुम शुभ्र-किरण-वसना?
अन्तरतम-	*'खोजती अन्तरतम का द्वार'*	: हृदय के भीतर, ईश्वर का निवास-स्थान	**नि.र.-1**/105	खोज और उपहार
अन्य-	*'उसमें एक प्रदर्शन जिसको देखें अन्य, वही है'*	: दूसरे लोग भी	**प्र.ग्रं.-2**/152	कर्म/कामायनी
अन्य हृदय का-	*'नहीं इसी से अन्य हृदय का कोई सुमन खिलेगा'*	: दूसरों के मन को (खुशी मिले)	**प्र.ग्रं.-2**/152	कर्म/कामायनी
अन्वेषण-	*'स्पन्दन तब हृदय में अन्वेषण नयनों में/प्राणों में लालसा'*	: खोज, तलाश, प्रतीक्षा	**नि.र.-1**/195	स्मृति-चुम्बन
♦	*'बाँध अञ्चल में विस्मृति-धन कर रहा किसका अन्वेषण?'*	: खोज, तलाश	**म.सा.-1**/114	तुहिन के पुलिनों पर छबिमान/रश्मि
अन्वेषणों-	*'छीन सब मीठे क्षणों को इन अथक अन्वेषणों को'*	: वेदना में सुख की तलाश -जैसी दुर्लभ खोजें	**म.सा.-1**/285	देव अब वरदान कैसा! /सांध्य गीत
अपत्र-	*'छा अपत्र सरिता के कूल'*	: पत्ते के बिना, लहरें पत्रविहीन लता की तरह हैं	**पं.ग्रं.-1**/189	वीचि विलास/पल्लव
अपदार्थ-	*'अपदार्थ तिरूँगा मैं क्या*	: व्यर्थ होकर	**प्र.ग्रं.-2**/21	आँसू
अपना ही रस-	*'मधुर-भाव उसके तन-मन में*	: शारीरिक प्रेम को अपने भीतर महसूस करना	**प्र.ग्रं.-2**/148,	

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अपना ही रस छकता'			कर्म/कामायनी
अपनी छाँह- *'तू न अपनी छाँह को अपने लिए कारा बनाना!'*	: अपनी छाया या मिथ्या कारणों को	**म.सा.-1**/280	चिर सजग आँखें उनींदी.../सांध्य गीत
अपनी मधु बूँदें मधुर मौन- *'पीता मन मुकुलित कंज आप अपनी मधु बूँदें मधुर मौन'*	: (मनु का मन-रूपी कमल) अपने पराग-कण को मौन होकर निश्चेष्ट मधुरता के साथ पी रहा था	**प्र.ग्रं.-2**/179	इड़ा/कामायनी
अपनी शंकाओं से व्याकुल- *'अपनी शंकाओं से व्याकुल तुम अपने ही होकर विरुद्ध'*	: अपने भीतर के संदेहों के कारण बेचैन	**प्र.ग्रं.-2**/177	इड़ा/कामायनी
अपर दिनकर- *'बादलों में घिर अपर दिनकर रहे'*	: उसका चेहरा सूर्य की तरह है मानो दूसरा सूर्य हो	**नि.र.-1**/253	(प्रिय) यामिनी जागी
अपराजिता- *'अपराजिता-सी श्याम कोमल पुतलियों में'*	: जो पराजित होना न जाने	**नि.र.-1**/93	यहीं
अपराजेय- 'रह गया राम-रावण का अपराजेय समर'	: जिसे जीता न जा सका हो	**नि.र.-1**/329	राम की शक्ति-पूजा
अपरिचित- *'पंथ होने दो अपरिचित प्राण रहने दो अकेला!'*	: अनजाना, नया, मुश्किल	**म.सा.-1**/313	पंथ होने दोअपरिचित /दीप-शिखा
अपरिचित चितवन- *'अपरिचित चितवन में था प्रात'*	: उसकी नयी निर्दोष निगाहें	**पं.ग्रं.-1**/187	आँसू/पल्लव
अपरिचित-पुण्य- *'अपरिचित-पुण्य अक्षय क्षोभन धन कोई;'*	: उसका पुण्य लोगों में अज्ञात है	**नि.र.-1**/295	तुलसीदास
अपरूप- *'पर कैसी अपरूप छटा लेकर आये तुम प्यारे'*	: अपूर्व	**प्र.ग्रं.-1**/281	बिंदु(3)/झरना
♦ *'वह अनन्त प्रगाढ़ छाया फैलती अपरूप'*	: परम रूपवान	**प्र.ग्रं.-2**/117	वासना/कामायनी
♦ *'छिपे हैं हम अपरूप'*	: एक ही प्रकृतिवाला दूसरा रूप	**पं.ग्रं.-1**/231	परिवर्तन/पल्लव
अपर्ण-अशना- *'शैल-सुता अपर्ण-अशना, पल्लव-वसना बनेगी'*	: पत्तों से मिला भोजन भी छोड़ देनेवाली, बिना पत्तों की- अपर्ण डाल; पार्वती का भी नाम अपर्णा है	**नि.र.-1**/227	रूखी री यह डाल
अपल- *'देखता रहा मैं खड़ा अपल वह शर-क्षेप, वह रण-कौशल'*	: अपलक	**नि.र.-1**/316	सरोज स्मृति
♦ *'चल पद हुए अचल,/आप ही अपल दृष्टि'*	: स्थिर, निश्चित	**नि.र.-1**/325	प्रेयसी
अपलक अनंत- *'अपलक अनन्त, नीरव भूतल'*	: आकाश एकटक (चाँदनी को देख रहा है)	**पं.ग्रं.-1**/274	नौका-विहार/गुंजन
अपलक आनन- *'अपनेपन की अवगुण्ठन बिन मेरा अपलक आनन सूना'*	: एकटक प्रिय की राह देखता मेरा चेहरा	**म.सा.-1**/208	तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना/नीरजा
अपलक चितवन- *'वे तारक-बालाओं की अपलक चितवन बन आते'*	: एकटक देखतीं तारों की निगाहें (बनकर वे आते हैं)	**म.सा.-1**/144	अलि कैसे उनको पाऊँ/रश्मि
अपलक दृग के अंजन- *'कुहुकिनि अपलक दृग के अंजन ! हँसती तुझमें सुन्दर छलना'*	: निर्निमेष आँखों के काजल (की तरह है रात का अँधेरा)	**प्र.ग्रं.-2**/173	इड़ा/कामायनी
अपलक नयन- *'मूक उर के, अश्रु अपलक नयन के'*	: एकटक ताकती आँखें	**पं.ग्रं.-1**/131	ग्रन्थि
अपलक विरल तारावली- *'रजत-स्वप्नों में उदित अपलक विरल तारावली'*	: एकटक देखती हुई तारों की विरल (जो घनी नहीं हैं) पंक्तियाँ	**म.सा.-1**/200	मैं बनी मधुमास आली /नीरजा

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अपलक-उन्मन-	*'खिला सकल जीवन, कल मन, पलकों का अपलक-उन्मन'*	: उदास होकर ताकते रहना	**नि.र.-1**/234	खिला सकल जीवन, कल मन
अपल-नयन-	*'अपल-नयन सुवास-यौवन नव'*	: निष्पलक नयनोंवाली	**नि.र.-1**/255	बादल में आये जीवन-धन
अपवाद -	*'कहाँ प्रकट बकता अपवाद?'*	: अफवाह, झूठी बातें, बनायी बातें	**नि.र.-1**/124	यमुना के प्रति
♦	*'विश्व-विभव को लूट-लूट लड़ने वाले - अपवाद!'*	: विपरीत उदाहरण, सबसे अलग तरह का	**नि.र.-1**/129	बादल राग
अपसारित-	*'बाधाएँ अपसारित कर/कहता- "वर यों वरना"*	: हटाकर	**नि.र.-1**/278	गर्ज्जित-जीवन झरना
अपहृत-	*'हृदय का राजस्व अपहृत, कर अधम अपराध'*	: अपहरण कर लेना, चुरा लेना	**प्र.ग्रं.-2**/113	वासना/कामायनी
अपहृत-श्री-	*'अपहृत-श्री, सुख-स्नेह का सद्म,'*	: जिसकी शोभा छीन ली गयी हो	**नि.र.-1**/299	तुलसीदास
अपांग-	*'नव-अपांग-शर-हत व्याकुल-उर आतुर वारिद वारि-धार स्फुर'*	: कटाक्ष	**नि.र.-1**/256,	बादल में आये जीवन-धन
अपांग की धारा-	*'एक दिन तव अपांग के धारा'*	: आँख के किनारे से आँसू का प्रवाह	**प्र.ग्रं.-1**/221	झरना/झरना
अपांग के घन-	*'विस्मृति का नील-नलिन रस बरसे अपांग के घन से'*	: आँखों के कोरों पर मानो बादल बसे हैं	**प्र.ग्रं.-2**/28	आँसू
अपांगों-	*'अरुण अपांगों से देखा, कुछ हँस पडी'*	: आँखों का सफेद किनारा	**प्र.ग्रं.-1**/228	पावस प्रवास/झरना
♦	*'जो अपांगों से अधिक है देखता'*	: आँखों का किनारा, कनखी	**पं.ग्रं.-1**/126	ग्रन्थि
अपार्थिव पूजन-	*'हाय! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन'*	: अलौकिक पूजा-भाव	**पं.ग्रं.-2**/21	ताज/युगपथ
अपावन -	*'क्या तुम निर्मल, वही अपावन?'*	: अपवित्र	**नि.र.-1**/212	छोड़ दो, जीवन यों न मलो
अपाहज स्वाँग -	*'हा! अलस के इस अपाहज स्वाँग में'*	: अधूरा अभिनय (है सुख)	**पं.ग्रं.-1**/138	ग्रन्थि
अपिधान-	*'दृगों से बरसा यह अपिधान'*	: आवरण, आच्छादन	**पं.ग्रं.-1**/213	जीवन यान/पल्लव
अप्रतिभट-	*'अप्रतिभट वही, एक - अर्बुद-सम, महावीर,'*	: जिनके समान कोई अन्य वीर न हो	**नि.र.-1**/333	राम की शक्ति-पूजा
अप्रतिम-	*'अप्रतिम प्रिया से, त्यों दुकूल-प्रतिमा में'*	: अनुपमा, जो विशेष रूप से सुंदर हो	**नि.र.-1**/294	तुलसीदास
अप्रतिहत-	*'निर्विरोध, प्रतिहत भी/अप्रतिहत आलिंगन?'*	: निर्बाध, अवरोध-रहित, लगातार	**नि.र.-1**/154	परलोक
♦	*'ऊर्मि संघातोद्धत, अप्रतिहत, उज्ज्वल, अछोर चिर- निर्मल सागर की ओर'*	: बिना रुके हुए, लगातार	**नि.र.-1**/187	'सरोज' के प्रति
♦	*'बीते अविरत शत-शत अब्द, शब्द अप्रतिहत/उठता - ये जो पदनत'*	: जिसे कोई रोकनेवाला न हो	**नि.र.-1**/274	कहाँ परित्राण?
♦	*'अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल;'*	: जिसे कोई रोक न सके, निर्बाध	**नि.र.-1**/330	राम की शक्ति-पूजा
अप्रतिहत गति-	*'अप्रतिहत गति, संस्थानों से*	: अबाध गति से चलता हुआ	**प्र.ग्रं.-2**/216	निर्वेद/कामायनी

शब्द- *'काव्य-पंक्ति'*	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
रहता था जो सदा बढ़ा'	या तरक्की करता हुआ (मनु)		
अप्रमाद- *'बहती थी श्यामल घाटी में निर्लिप्त भाव-सी अप्रमाद'*	: स्फूर्ति के साथ, सावधान होकर	**प्र.ग्रं.-2**/178	इड़ा/कामायनी
अप्रमेय- *'अप्रमेय, अज्ञात,/चोर, कौस्तुभ कठोर विख्यात'*	: जिसे मापा न जा सके	**पं.ग्रं.-1**/113	हृदय के बन्दी तार/वीणा
अप्रसंग- *'पर रही मौन धर अप्रसंग वह बाला;'*	: असामयिक	**नि.र.-1**/301	तुलसीदास
अप्सर-कुमारियाँ- *उड़तीं वातास में - वीचियों में तैरतीं अप्सर-कुमारियाँ'*	: अप्सराएँ	**नि.र.-1**/204	कवि
अप्सरियाँ- *'रश्मियाँ बनीं अप्सरियाँ अंतरिक्ष में नचती थीं'*	: परियों (-जैसी चन्द्र किरणें)	**प्र.ग्रं.-2**/279	आनन्द/कामायनी
अप्सरियों की तानों- *'इन अप्सरियों की तानों के मचल रहे हैं सुन्दर झूले'*	: (इच्छा-लोक की आकृतियाँ) अप्सराओं की तरह गीतों की तान से युक्त थीं	**प्र.ग्रं.-2**/257	रहस्य/कामायनी
अप्सरी-सी अज्ञात- *'अप्सरी-सी अज्ञात !'*	: आकाश-मार्ग से आनेवाली अप्सराओं की तरह वायु अज्ञात बनी रहती है	**पं.ग्रं.-1**/371	द्वितीय दृश्य/परी
अप्सरे- *'अरी अप्सरे! उस अतीत के नूतन गान सुनाओ'*	: श्रद्धा को मनु 'परी' कह रहे हैं	**प्र.ग्रं.-2**/147	कर्म/कामायनी
अबंध बल- *'जिन युवकों के मणिबंधों में अबंध बल'*	: जिस बल को बाँधा न जा सके, असीमित बल	**प्र.ग्रं.-1**/335	शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण/लहर
अबाधता- *'एक स्थिर ज्योति में/अपनी अबाधता'*	: बाधाविहीन होना	**नि.र.-1**/172	रेखा 'क'
अबोध- *'तुम अति अबोध, अपनी अपूर्णता को न स्वयं तुम समझ सके'*	: नासमझ	**प्र.ग्रं.-2**/175	इड़ा/कामायनी
अब्द- *'बीते अविरत शत-शत अब्द, शब्द अप्रतिहत/उठता - ये जो पदनत'*	: वर्ष	**नि.र.-1**/274	कहाँ परित्राण?
अब्दों- *'शत शत अब्दों का सान्ध्य काल यह आकुंचित भ्रू कुटिल-भाल'*	: वर्षों	**नि.र.-1**/281	तुलसीदास
अभया वाणी- *'स्वागत था अभया वाणी का, निष्ठुरता लिये बिदाई थी'*	: बुद्ध का भयमुक्त उपदेश	**प्र.ग्रं.-1**/296	जगती की मंगलमयी उषा बन/लहर
अभाव की चपल बालिके- *'हे अभाव की चपल बालिके, री ललाट की खल लेखा !'*	: अभाव के कारण उत्पन्न होनेवाली चिंता को चंचल बालिका कहा गया है	**प्र.ग्रं.-2**/53	चिंता/कामायनी
अभाव की जड़ता- *'अपने अभाव की जड़ता में वह रह न सकेगा कभी मग्न'*	: किसी की कमी के कारण उत्पन्न हीन भावबोध	**प्र.ग्रं.-2**/166	ईर्ष्या/कामायनी
अभिधान- *'अभिधान शत वर्षों के'*	: कथन	**नि.र.-1**/205	कवि
अभिनंदित- *'नव ऊषा-सन्ध्या अभिनन्दित'*	: जिसका स्वागत किया जा रहा हो	**पं.ग्रं.-2**/16	नव हे, नव हे/युगपथ
अभिनय की छाया- *'इस नियति नटी के अति भीषण अभिनय की छाया नाच रही'*	: नाटकीय प्रदर्शन की परछाई	**प्र.ग्रं.-2**/172	इड़ा/कामायनी
अभिनयमय- *'अभिनयमय है परिवर्त्तन,'*	: वास्तविक न होना, नाटकीयता से परिपूर्ण	**प्र.ग्रं.-1**/331	अशोक की चिंता/लहर
अभिनव- *'काल के प्याले में अभिनव ढाल जीवन का मधु-आसव'*	: नया, नूतनता और ताजगी से परिपूर्ण	**म.सा.-1**/116	तुहिन के पुलिनों पर छबिमान/रश्मि

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अभिनव मानव-	*'यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि'*	: नयी मानव-जाति, मनु और श्रद्धा के पुत्र 'मानव' से मानव-जाति का प्रारंभ माना गया है	**प्र.ग्रं.-2**/176	इड़ा/कामायनी
अभियुक्त-	*'श्याम-मोह-कज्जल अभियुक्त?'*	: जिस पर आरोप लगे हों	**नि.र.-1**/120	यमुना के प्रति
अभिराम-	*'खेद भय रहित अभेद, अभिराम हो'*	: सुन्दर	**प्र.ग्रं.-1**/261	तुम/झरना
♦	*'और देखा वह सुन्दर दृश्य/नयन का इंद्रजाल अभिराम;'*	: सुन्दर	**प्र.ग्रं.-2**/83	श्रद्धा/कामायनी
♦	*'अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम'*	: सुन्दर	**प्र.ग्रं.-2**/85	श्रद्धा/कामायनी
♦	*'विश्व का उन्मीलन अभिराम/इसी में सब होते अनुरक्त'*	: सुन्दर	**प्र.ग्रं.-2**/89	श्रद्धा/कामायनी
♦	*'ललित-कल्पना-गति अभिराम'*	: सुंदर, मनोरम	**नि.र.-1**/120	यमुना के प्रति
♦	*'वह अभिराम कामनाओं का'*	: सुंदर	**नि.र.-1**/121	यमुना के प्रति
♦	*'चौंक चमक छिप जाती विद्युत/तड़िद्दाम अभिराम'*	: सुंदर	**नि.र.-1**/133	बादल-राग
♦	*'स्वर्ग आशाओं की अभिराम'*	: सुंदर, आकर्षक	**नि.र.-1**/141	स्मृति
♦	*'सरस अभिराम पतन-उत्थान'*	: सुंदर	**नि.र.-1**/143	स्मृति
♦	'कुसुमित पलनों में अभिराम'	: सुन्दर	**पं.ग्रं.-1**/201	विश्व वेणु/पल्लव
♦	*'लुट जाते अभिराम छिन्न/मुक्तावलियों के बंदनवार'*	: सुंदर	**म.सा.-1**/34	निश्वासों का नीड़, निशा का/नीहार
अभिराम तारकों से-	*'आँसुओं में सहमे अभिराम तारकों से हे मूक अजान'*	: आँसुओं के बीच सहमे नेत्र गोलकों की तरह हैं फूल	**म.सा.-1**/92	मधुरिमा के, मधु के अवतार/नीहार
अभिलषित-	*'अभिलषित अधूरी रह न जाय'*	: चाह	**नि.र.-1**/228	आओ मेरे आतुर उर पर
अभिलाष-घन-	*'मन के गगन के अभिलाष-घन उस समय,/जानते थे वर्षण ही'*	: अभिलाषा (मनोकामना) के बादल	**नि.र.-1**/185	जागरण
अभिलाषाओं की धूल-	*'उड़ा दो मत गुलाल सी हाय अरे अभिलाषाओं की धूल'*	: (होली के उड़ते गुलाल मानो) बिखरती इच्छाओं की धूल की तरह हों	**प्र.ग्रं.-1**/265	होली की रात/झरना
अभिलाषा-शलभ-	*'जले दीप नभ के, अभिलाषा-शलभ उड़े, उस ओर चले'*	: (श्रद्धा की) कामनाओं की उपमा फतिंगों से दी गयी है	**प्र.ग्रं.-2**/188	स्वप्न/कामायनी
अभिलाषें-	*'होकर सीमाहीन, शून्य में/मँडराएँगी अभिलाषें'*	: प्रेम की मेरी कामनाएँ मानो वायु की तरह अनंत आकाश में मँडराती रहेंगी	**म.सा.-1**/33	मैं अनंत पथ में लिखती जो/नीहार
अभिशप्त-	*'जन्म पर अपने अभिशप्त/तप्त आँसू बहाती है;'*	: अभिशाप से ग्रस्त, दुर्भाग्यशाली	**नि.र.-1**/153	जागो फिर एक बार
अभिशाप-प्रतिध्वनि-	*'अभिशाप-प्रतिध्वनि हुई लीन'*	: कामदेव की गूँजती हुई शाप-वाणी	**प्र.ग्रं.-2**/178	इड़ा/कामायनी
अभिषेक-	*'कर रहे निर्जन का चुपचाप प्रभा की धारा से अभिषेक?'*	: नहला देना, महत्त्व प्रदान करना	**प्र.ग्रं.-2**/83	श्रद्धा/कामायनी
♦	*'उड़ उड़कर जो धूल करेगी/मेघों का नभ में अभिषेक'*	: मेरी पीड़ा की निशानी लेकर धूल मेघों को भर देगी	**म.सा.-1**/33	मैं अनंत पथ में लिखती जो/नीहार
अभिसार-	*'मुखरित था कलरव, गीतों में स्वर लय का होता अभिसार'*	: मिलन	**प्र.ग्रं.-2**/57	चिंता/कामायनी
♦	*'खेलने चली प्रीति-अभिसार'*	: मिलने जाना (प्रेम-प्रसंग में)	**नि.र.-1**/64	सच्चा प्यार

शब्द- *'काव्य-पंक्ति'*	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
◆ *'कुमुद-किरण-अभिसार-केलि-नव'*	: मिलन, मुलाकात (प्रेम-प्रसंग में)	**नि.र.-1**/83	हूँ दूर
◆ *'उत्सुक, किस अभिसार निशा में'*	: मिलन	**नि.र.-1**/117	यमुना के प्रति
◆ *'फिर वासन्ती अखिल लोक में/ज्योत्स्ना का होता अभिसार'*	: मिलन	**नि.र.-1**/192	वसन्त-समीर
◆ *'शिशिर का जैसे निःशब्द अभिसार हो/शिविर में विश्व के'*	: मिलन	**नि.र.-1**/195	स्मृति-चुम्बन
◆ *'आज करूँगी मैं अभिसार'*	: प्रिय से मिलन और प्रेम-व्यापार	**पं.ग्रं.-1**/96	तजकर वसन विभूषण भार/वीणा
◆ *'धरा पर करती थी अभिसार!'*	: शृंगारिक मिलन, सुंदर सम्मिलन	**पं.ग्रं.-1**/223	परिवर्तन/पल्लव
◆ *'हृदय-सर में करने अभिसार'*	: प्रिय से मिलन	**पं.ग्रं.-1**/259	रूप-तारा तुम पूर्ण प्रकाम/गुंजन
◆ *'करती तुम अभिसार'*	: प्रिय से मिलन	**पं.ग्रं.-1**/273	अप्सरा/गुंजन
◆ *'छोड़ क्यों देते बारंबार/मुझे तम से करने अभिसार'*	: मिलन, एकाकार हो जाना	**म.सा.-1**/128	किसी नक्षत्रलोक से टूट/रश्मि
◆ *'आज पुलकित सृष्टि क्या/करने चली अभिसार लय में?'*	: प्रिय से सुखद मुलाकात	**म.सा.-1**/174	कौन तुम मेरे हृदय में?/नीरजा
◆ *'अपने दो आकार बनाने/दोनों का अभिसार दिखाने'*	: प्रिय से मिलन	**म.सा.-1**/209	टूट गया वह दर्पण निर्मम/नीरजा
◆ *'तू भ्रम वह तम तेरा प्रियतम/आ सूने में अभिसार न कर!'*	: प्रेम-मिलन	**म.सा.-1**/226	कहता जग दुःख को प्यार न कर!/नीरजा
◆ *'बनता है इतिहास मिलन का प्यास भरे अभिसार अकथ में!'*	: प्रेममय मिलन	**म.सा.-1**/375	मैं पलकों में पाल रही हूँ/दीप-शिखा
अभिसार बनी- *'घिर छाया-सी श्याम, विश्व को आ अभिसार बनी'*	: वसंत-रजनी विश्व को प्रेममय मिलन का माहौल देती है	**म.सा.-1**/168	धीरे-धीरे उतर क्षितिज से/नीरजा
अभिसारिका- *'क्षिप्रगति चलती अभिसारिका यह गोदावरी'*	: जो प्रिय से मिलने जा रही हो	**नि.र.-1**/56	पंचवटी प्रसंग:3
अभिसारों- *'जहाँ छिप जाते थे मधुमास निशा के अभिसारों को लूट'*	: (रात में होनेवाली) प्रकृतिपरक मुलाकातें	**म.सा.-1**/70	निराशा के झोंकों ने देव!/नीहार
◆ *'रजनी के अभिसारों में/नक्षत्रें के पहरों में'*	: प्रेम-प्रसंग की मुलाकातें	**म.सा.-1**/90	उच्छ्वासों की छाया में/नीहार
◆ *'निशि अभिसारों में आँसू से/मेरी मनुहारें धो जाती'*	: अभिसार, शृंगार-भाव से मिलन	**म.सा.-1**/199	कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती!/नीरजा
◆ *'क्या आँसू में उद्‌गारों में/आवाहन में अभिसारों में'*	: प्रिय से मिलन	**म.सा.-1**/205	क्यों जग कहता मतवाली/नीरजा
अभीत- *'चली आतीं, कर रहीं अभीत कुमुद पर बरजोरी विश्राम'*	: बिना भय-संकोच के	**प्र.ग्रं.-1**/265	होली की रात/झरना
◆ *'अरुण-केतन लेकर निज हाथ वरुण पथ में हम बढ़े अभीत'*	: भय से मुक्त	**प्र.ग्रं.-4**/138	पंचम अंक/स्कन्दगुप्त
◆ *'गति स्वच्छन्द, अजीत अभीत?'*	: भयमुक्त, निर्भय	**नि.र.-1**/119	यमुना के प्रति

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अभीष्ट- *शिष्ट पर न अभीष्ट जिनका नेक है*	: इच्छित	**नि.र.-1**/40,	जन्मभूमि
अभेद- *'खेद भय रहित अभेद, अभिराम हो'*	: भेद-भाव से मुक्ति के प्रतीक	**प्र.ग्रं.-1**/261	तुम/झरना
अभेद्य- *'इस अभेद्य पट के भीतर है'*	: जिसे भेदा न जा सके, जिसके पार जाना न जा सके	**पं.ग्रं.-1**/205	छाया/पल्लव
अभ्यन्तर- *'आये अभ्यन्तर संयत चरणों में नव्य विराट'*	: जो अंदर है, ईश्वर	**नि.र.-1**/104	उद्‌बोधन
अभ्यागत- *'जिसे समझते थे अभ्यागत'*	: अतिथि, सम्मानित आगंतुक	**नि.र.-1**/74	पहचाना
अभ्र- *'आवें क्षण भर तो चले जायँ रुक जायँ कहीं न समीर, अभ्र'*	: बादल	**प्र.ग्रं.-2**/164	ईर्ष्या/कामायनी
अमंद- *'एक तुम, यह विस्तृत भूखंड प्रकृति वैभव से भरा अमन्द,'*	: जो मन्द न पड़े, जो कम न हो	**प्र.ग्रं.-2**/91	श्रद्धा/कामायनी
♦ *'आशा की तू झलक, अमन्द'*	: जो मन्द न हो, चमकदार	**नि.र.-1**/116	यमुना के प्रति
♦ *'मानसी भूतियाँ से अमन्द'*	: तेजस्वी (मनुष्य)	**पं.ग्रं.-2**/22	मानव/युगपथ
अमंद पिये- *'अधरों में राग अमंद पिये'*	: (होंठों पर लगा रंग) मंद नहीं पड़ा है और लगता है कि होंठों ने उस रंग को स्वाभाविक रूप से पी लिया है	**प्र.ग्रं.-1**/303	बीती विभावरी जाग री/लहर
अमर-अंकुर- *'उगा अमर-अंकुर उर-भीतर/संसृति-भीति भगी'*	: अमरता की अनुभूति का आरंभ	**नि.र.-1**/220	स्पर्श से लाज लगी
अमर किन्नर- *'गगन का तू अमर किन्नर धरा का अजर गायक उर'*	: पक्षी मानो आकाश में गाने और नृत्य करनेवाले शाश्वत किन्नर की तरह हैं	**म.सा.-1**/331	विहंगम-मधुर स्वर तेरे/दीप-शिखा
अमर जागरण- *'अमर जागरण उषा नयन से'*	: (प्रभात में मानो) अमर जागृति का सन्देश हो	**प्र.ग्रं.-1**/298	ले चल वहाँ भुलावा देकर/लहर
अमर ज्वाला- *'क्या न इसके शीत अधरों से लगाई अमर ज्वाला?'*	: प्रेम की अमर ज्वाला, लौ (प्रेम) लगाना	**म.सा.-1**/251	क्या न तुमने दीप बाला?/सांध्य गीत
अमरण- *'रँग देता प्रसुप्त जग के रँग गीत जागरण मंजुल अमरण'*	: अमर, अनश्वर	**नि.र.-1**/261	प्रतिक्षण मेरा मोह-मलिन मन
अमरण-रणमय- *'अमरण-रणमय मृदु-पद-रज? विद्युद्-घन-चुम्बन?'*	: जीवन (अमरण) भर संघर्षरत	**नि.र.-1**/154	परलोक
अमरता- *'आज अमरता का जीवित हूँ मैं वह भीषण जर्जर दम्भ,'*	: अमर होने का विश्वास	**प्र.ग्रं.**-2/62	चिंता/कामायनी
अमरता-सुत- *'अमरता-सुत चाहता क्यों मृत्यु को उर में बसाना?'*	: जो स्वयं अमरत्व की संतान है	**म.सा.-1**/281	चिर सजग आँखें उनींदी.../सांध्य गीत
अमर-प्रतीक्षा- *'तुम अमर-प्रतीक्षा हो, मैं पग विरह-पथिक का धीमा'*	: जिसकी प्रतीक्षा हमेशा के लिए बनी रहे; जिसके मिलन की उम्मीद तो हमेशा हो, मगर मिले नहीं	**म.सा.-1**/110	चिर तृप्ति कामनाओं का/रश्मि
अमर वेदना- *'देव ! बता दो अमर वेदना लेकर कब मरना होगा?'*	: देवताओं के असफल होने की पीड़ा मनु के मन में स्थायी रूप लेने लगी है	**प्र.ग्रं.-2**/71	आशा/कामायनी
अमर शक्तियाँ- *'उल्का लेकर अमर शक्तियाँ खोज रहीं ज्यों खोया प्रात'*	: स्वयं को अमर माननेवाले देवताओं की शक्तियाँ	**प्र.ग्रं.-2**/59	चिंता/कामायनी

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अमर सम्पुट- *'अमर सम्पुट में ढला तू'*	: उस असीम अनंत की अंजलि अमर है	**म.सा.-1**/393	पूछता क्यों शेष कितनी रात?/दीप-शिखा
अमर सुहाग- *'सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी!'*	: (प्रिय से दूर रहकर भी) मैं अखंड सौभाग्य से भरी हुई हूँ	**म.सा.-1**/304	सखि मैं हूँ अमर सुहाग भरी!/सांध्य गीत
अमर सुहागिनी - *'हूँ प्रिय की अमर सुहागिनि'*	: प्रिय के वियोग में रहकर भी मैं अखंड सुहागिनी हूँ	**म.सा.-1**/191	पथ देख बिता दी रैन /नीरजा
अमरों का लोक- *'क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार?'*	: अज्ञात प्रियतम का लोक मानो देवताओं का अमर लोक है	**म.सा.-1**/35	वे मुस्कुराते फूल, नहीं - /नीहार
अमर्त्य वीरपुत्र- *'अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो'*	: अमर वीरों की संतान	**प्र.ग्रं.-4**/290	चतुर्थ अंक/चन्द्रगुप्त
अमल- *'नव मुकुल नीलमणि फलक अमल'*	: स्वच्छ (आकाश)	**प्र.ग्रं.-1**/326	ओ री मानस की गहराई/लहर
♦ *'बन्दूँ मैं अमल कमल'*	: स्वच्छ, पवित्र	**नि.र.-1**/39	जन्मभूमि
♦ *'अमल-कोमल-तनु तरुणी-जुही की कली'*	: स्वच्छ, सुंदर	**नि.र.-1**/41	जुही की कली
♦ *'यही कि जबसे मल में अमल मिला, दुनियाँ देखी जी ने'*	: पवित्र, स्वच्छ	**नि.र.-1**/45	बाबा और नाती
अमल अछूते- *'मिले दो हृदय, अमल अछूते, दो शरीर इक प्रान'*	: पवित्र और निर्मल	**प्र.ग्रं.-3**/200	द्वितीय अंक/विशाख
अमल अनूप - *'किसी छलिया का अमल अनूप'*	: निर्मल और अनुपम	**प्र.ग्रं.-4**/58	प्रथम अंक/स्कन्दगुप्त
अमल इंदु- *'जीवन रजनी का अमल इंदु'*	: चमकता हुआ चाँद, उज्ज्वल चन्द्र	**प्र.ग्रं.-1**/319	मुझको न मिला रे कभी प्यार/लहर
अमल-कमल-मुख- *'अमल-कमल-मुख देख'*	: स्वच्छ कमल की तरह सुंदर मुख	**नि.र.-1**/87	वन-कुसुमों की शय्या
अमलतास- *'हेम-हार पहने अमलतास'*	: एक फूल	**नि.र.-1**/307	दान
अमला- *'उसका संदेश सुनाने को/संसृति में आई वह अमला'*	: निर्मल मनवाली श्रद्धा	**प्र.ग्रं.-2**/107	काम/कामायनी
♦ *'जागी जग पर कमला, अमला मति डोली'*	: सरस्वती	**नि.र.-1**/303	तुलसीदास
अमा- *'अमा को करिये सुन्दर राका'*	: अमावस्या की रात	**प्र.ग्रं.-1**/283	बिंदु(5)/झरना
♦ *'घुल रही इनमें अमा ले आज पावस-यामिनी!'*	: अमावस्या	**म.सा.-1**/277	दीप तेरा दामिनी! /सांध्य गीत
♦ *'चाँदनी मेरी अमा का भेंटकर अभिषेक करती;'*	: अमावस्या की काली रात, अँधेरी रात	**म.सा.-1**/301	क्यों मुझे प्रिय हो न बंधन!/सांध्य गीत
♦ *'घेर ले छाया अमा बन'*	: अंधकार, अमावस्या का अँधेरा	**म.सा.-1**/313	पंथ होने दो अपरिचित /दीप-शिखा
अमानिशा- *'है अमानिशा; उगलता गगन घन अन्धकार;'*	: अमावस्या की रात	**नि.र.-1**/330	राम की शक्ति-पूजा
अमार्ज्य- *'तम के अमार्ज्य रे तार-तार'*	: जो परिमार्जित न हो, अपूर्ण, अधूरा, अनगढ़	**नि.र.-1**/306	तुलसीदास
अमिट मसि- *'अमिट मसि के अंक से/सूने कभी थे छिद्र तेरे'*	: वेदना की अमिट स्याही	**म.सा.-1**/377	गूँजती क्यों प्राण-वंशी? /दीप-शिखा
अमित उपकारिणी- *'शक्ति प्रियतम की अमित उपकारिणी'*	: असीमित उपकार करनेवाली	**पं.ग्रं.-1**/131	ग्रन्थि

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अमिताभ-	*'तिमिर का हरने को दुख भार, तेज अमिताभ अलौकिक कांत'*	: बुद्ध का एक नाम, असीमित प्रभा से युक्त	**प्र.ग्रं.-1**/295	अरी वरुणा की शांत कछार/लहर
अमिल-	*'प्राण-प्राण के रँग मिलें अमिल'*	: न मिलनेवाला	**नि.र.-1**/250	वह कितना सुख
अमी-	*'ब्रजभाषा का 'अमी', कुंज की'*	: अमिय, अमृत	**पं.ग्रं.-1**/113	हृदय के बन्दी तार/वीणा
अमूल-	*'वारि बेलि-सी फैल अमूल'*	: बिना जड़ के, लहरें जड़विहीन लता की तरह हैं	**पं.ग्रं.-1**/189	वीचि विलास/पल्लव
♦	*'बहते हैं अमूल, अविराम'*	: बिना जड़ के, बादल जड़विहीन सेवार की तरह हैं	**पं.ग्रं.-1**/214	बादल/पल्लव
अमृत कथा-	*'देवलोक की अमृत कथा की माया -'*	: (देवताओं की) अमर या अमरत्व की कहानियाँ	**प्र.ग्रं.-1**/300	हे सागर संगम अरुण नील/लहर
अमृत-झड़ी-	*'अमृत-झड़ी सुख के झिल जा तू'*	: अमृत की वर्षा, जीवन के सुखद पक्ष	**प्र.ग्रं.-3**/510	एक घूँट(एकांकी)
अमृत दुहें-	*'वे जीवित हों मांसल बन कर हम अमृत दुहें, वे दुग्ध-धाम'*	: दूध दूहें	**प्र.ग्रं.-2**/163	ईर्ष्या/कामायनी
अमृत-धाम-	*'पाया तो, उसने भी मुझको दे दिया हृदय निज अमृत-धाम'*	: अच्छे गुणों से पूर्ण (श्रद्धा का हृदय)	**प्र.ग्रं.-2**/175	इड़ा/कामायनी
अमृत-मंत्र-	*'प्रिय स्वतंत्र-रव अमृत-मंत्र नव भारत में भर दे!'*	: जिस मंत्र के प्रभाव से मनुष्य मृत्यु से बच जाता है वह	**नि.र.-1**/224	वर दे वीणावादिनि वरदे!
अमृत-मंत्र-स्वर-	*'नव जीवन का अमृत-मन्त्र-स्वर'*	: अमर वाणी के स्वर, अमरता प्रदान करने वाले स्वर	**नि.र.-1**/192	वसन्त-समीर
अमृत संतान-	*'डरो मत अरे अमृत संतान अग्रसर है मंगलमय वृद्धि;'*	: देवताओं के वंशज	**प्र.ग्रं.-2**/92	श्रद्धा/कामायनी
♦	*'अमृत-सन्तान! तीव्र भेदकर सप्तावरण-मरण-लोक,'*	: अमर संतान, यशस्वी संतान जिनकी यश:काया हमेशा जीवित रहे	**नि.र.-1**/153	जागो फिर एक बार
अमृत सार-	*'चुन नाम रूप का अमृत सार'*	: जो सार-तत्त्व अमरता को प्राप्त किए हुए है	**पं.ग्रं.-2**/15	खो गयी स्वर्ण की स्वर्ग किरण/युगपथ
अमृताक्षर-	*'फूटीं तर अमृताक्षर-निर्झर'*	: अमृत-से अक्षर	**नि.र.-1**/303	तुलसीदास
अमृताक्षर-निर्झर-	*'फूटीं तर अमृताक्षर-निर्झर'*	: अमृत-से अक्षरों का शीतल निर्झर	**नि.र.-1**/303	तुलसीदास
अमृतोज्वल-	*'इन्दु-किरण अमृतोज्वल'*	: अमृत:+ज्वल, चाँदनी अमृत का प्रज्वलित रूप है	**पं.ग्रं.-1**/301	तीन/ज्योत्स्ना
अमोघ-	*'इनके नियम अमोघ और झूठ जल्पना'*	: जो अपने लक्ष्य से विचलित न हो	**प्र.ग्रं.-3**/191	प्रथम अंक/विशाख
अमोघ शक्ति-	*'संकुचित असीम अमोघ शक्ति'*	: अचूक ताकत	**प्र.ग्रं.-2**/177	इड़ा/कामायनी
अम्रियमाण-	*'अपने अतीत का ध्यान करता मैं गाता था गाने भूले अम्रियमाण!'*	: जो नश्वर न हो, अमर, शाश्वत	**नि.र.-1**/111	सन्तप्त
अम्ल-रसाल-	*'इन्दु, इसका फल अम्ल-रसाल'*	: (चाँद मानो) खट्टे आम की तरह है	**पं.ग्रं.-1**/378	द्वितीय दृश्य/परी

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अम्लान- *'वरुण आदि सब घूम रहे हैं किसके शासन में अम्लान?'*	: बिना थके, निरन्तर	**प्र.ग्रं.-2**/68	आशा/कामायनी
♦ *'अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम'*	: निर्दोष, स्वच्छ	**प्र.ग्रं.-2**/85	श्रद्धा/कामायनी
♦ *'पल्लव-छाया में अम्लान'*	: जो म्लान न हो, स्वच्छ, पवित्र	**नि.र.-1**/114	यमुना के प्रति
♦ *'स्वर्ण-किरण-रेखा अम्लान'*	: चमकदार, अमंद, स्वच्छ	**नि.र.-1**/119	यमुना के प्रति
♦ *'एक दूसरे के सुख में अम्लान'*	: प्रसन्न, ताजा	**नि.र.-1**/182	नेत्र
♦ *'विजन की श्री सुहाग अम्लान, जाग, फिर कर प्रभात - सर-स्नान'*	: निर्मल	**नि.र.-1**/216	'कहाँ उन नयनों की मुसकान'
अम्लान नलिन- *'वह नयन-महोत्सव की प्रतीक अम्लान नलिन की नव-माला'*	: खिला हुआ ताजा कमल	**प्र.ग्रं.-2**/178	इड़ा/कामायनी
अम्लान-मुख- *'स्थित-पद, अम्लान-मुख'*	: स्वच्छ चेहरा	**नि.र.-1**/179	रेखा 'ग'
अम्लान हँसी- *'तुझ में अम्लान हँसी है इसमें अजस्र आँसू-जल'*	: स्वच्छ प्रसन्न हँसी	**म.सा.-1**/134	कह दे माँ क्या अब देखूँ!/रश्मि
अयन- *'दिवस-मास-ऋतु-अयन-वर्ष भर अयुत-वर्ण युग-योग निरन्तर'*	: गति, मार्ग	**नि.र.-1**/256	जागो, जीवन-धनिके!
अयश- *'जातीय क्षेत्र में अयश बीज बोते हो'*	: बदनामी	**प्र.ग्रं.-3**/406	तृतीय अंक/जन्मेजय का नाग-यज्ञ
अयि- *'अयि मधुरवादिनि, सदा तुम रागिनी-अनुरागिनी'*	: संबोधन (स्त्री.), हे	**नि.र.-1**/95	वीणावादिनी
अयुत- *'अयुत अधरों में सुसिञ्चित एक किञ्चित प्यार'*	: अलग, पृथक्	**नि.र.-1**/226	जग का एक देखा तार
अयुत-कर-किंकर- *'झलमल ज्योति अयुत-कर-किंकर'*	: दस हजार (अयुत) हाथों वाला सेवक (किंकर)	**नि.र.-1**/134	बादल-राग
अयुत-लक्ष- *'एक भी, अयुत-लक्ष में रहा जो दुराक्रान्त,'*	: दस हजार और लाख	**नि.र.-1**/330	राम की शक्ति-पूजा
अयुत-वर्ण- *'दिवस-मास-ऋतु-अयन-वर्ष भर अयुत-वर्ण युग-योग निरन्तर'*	: हजारों वर्णों के, अनेक भावों के	**नि.र.-1**/256	जागो, जीवन-धनिके!
अरणियों- *'अरणियों की अग्नि, तू दिक्-दृगों की पहचान'*	: काठ का एक यंत्र जिससे यज्ञ के लिए अग्नि उत्पन्न करते है	**नि.र.-1**/233	रहा तेरा ध्यान
अरण्य चीत्कार- *'वृथा रे, ये अरण्य चीत्कार'*	: अकेले में रोना, जिस दुहाई की कोई सुनवाई न हो	**पं.ग्रं.-1**/228	परिवर्तन/पल्लव
अरराया- *'सिंहद्वार अरराया जनता भीतर आयी'*	: आवाज के साथ टूटकर (मुख्य द्वार) गिर पड़ा	**प्र.ग्रं.-2**/205	संघर्ष/कामायनी
अरविंद-हार- *'उच्छ्वसित वक्ष पर चंचल है बक-पाँतों का अरविंद-हार'*	: श्वेत कमल के फूलों से बनी माला की तरह बगुलों की पंक्तियाँ	**म.सा.-1**/181	रूपसि तेरा घन-केश-पाश!/नीरजा
अराएँ- *'नव रस भरी अराएँ अविरल चक्रवाल को चकित चूमतीं'*	: पहिए की तीलियाँ	**प्र.ग्रं.-2**/256	रहस्य/कामायनी
अराति- *'अराति सैन्य सिन्धु में - सुवाडवाग्नि से जलो'*	: शत्रु	**प्र.ग्रं.-4**/291	चतुर्थ अंक/चन्द्रगुप्त
अराल- *'त्रिबली थी त्रिगुण तरंगमयी,*	: तिरछा, भंगिमा से युक्त	**प्र.ग्रं.-2**/179	इड़ा/कामायनी

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
	आलोक वसन लिपटा अराल'			
♦	*'वीक्षण अराल: - /बज रहे जहाँ जीवन का स्वर भर छन्द, ताल'*	: कठिन, विशिष्ट (दृष्टि)	**नि.र.**-1/338	सम्राट् अष्टम एडवर्ड के प्रति
♦	*'बन गये पुष्प पलाश अराल'*	: वक्र, नुकीला और टेढ़ा	**पं.ग्रं.**-1/257	मधुवन/गुंजन
♦	*'चितवन-कला अराल'*	: (निगाहों का) बाँकापन	**पं.ग्रं.**-1/272	अप्सरा/गुंजन
♦	*'अति दूर क्षितिज पर विटप-माल लगती भ्रू-रेखा-सी अराल'*	: तिरछी, वक्र	**पं.ग्रं.**-1/275	नौका-विहार/गुंजन
अरिगण-	*'अरिगण को भय हो, विजयी जन्मेजय हो'*	: दुश्मन, शत्रु-गण	**प्र.ग्रं.**-3/408	तृतीय अंक/जन्मेजय का नाग-यज्ञ
अरुण-	*'अरुण यह मधुमय देश हमारा'*	: नवविकसित का अनुरागमय सौन्दर्य	**प्र.ग्रं.**-4/215	द्वितीय अंक/चन्द्रगुप्त
अरुण अधर थे रस में-	*'आँखें प्रिय आँखों में, डूबे अरुण अधर थे रस में'*	: श्रद्धा के लाल होंठ सोमरस में डूब गए	**प्र.ग्रं.**-2/153	कर्म/कामायनी
अरुण अपांगों-	*'अरुण अपांगों से देखा, कुछ हँस पडी'*	: आँखों की (अनुरागमयी) लाली	**प्र.ग्रं.**-1/228	पावस प्रवास/झरना
अरुण अरुण सुकपोल-	*'लाज से अरुण अरुण सुकपोल'*	: संध्या के गुलाबी गाल मानो लज्जा से और गुलाबी हो गये हैं	**पं.ग्रं.**-1/377	द्वितीय दृश्य/परी
अरुण अशोक-	*'मंजरित अरुण अशोक सकाल'*	: लाल फूलों से युक्त अशोक के वृक्ष	**पं.ग्रं.**-1/257	मधुवन/गुंजन
अरुण-कपोलों-	*'जिसके अरुण-कपोलों की मतवाली सुन्दर छाया में'*	: लालिमा से युक्त गाल (प्रभात का दृश्य)	**प्र.ग्रं.**-1/292	मधुप गुनगुना कर कह जाता/लहर
अरुण कर-	*'मलिन उर छूकर तिमिर का अरुण कर'*	: सूरज की प्रातःकालीन किरणें	**पं.ग्रं.**-1/125	ग्रन्थि
अरुण किरण सम कर-	*'अरुण किरण सम कर से छू लो, खोलो प्रियतम खोलो द्वार'*	: लाल किरण-रूपी हाथ (सुबह की किरण)	**प्र.ग्रं.**-1/225	खोलो द्वार/झरना
अरुण किरण-सी-	*'कीर्ति, दीप्ति, शोभा थी नचती अरुण किरण-सी चारों ओर'*	: सुबह के सूरज की किरणें	**प्र.ग्रं.**-2/56	चिंता/कामायनी
अरुण की एक किरण-	*'अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम'*	: सुबह की लालिमा भरी किरणें, मुस्कराहट होंठों पर विश्राम कर रही है जैसे किसलय पर अरुण-किरण	**प्र.ग्रं.**-2/85	श्रद्धा/कामायनी
अरुण की ज्योति-	*'गीत में तब से अरुण की ज्योति में'*	: सुबह की लाल किरणों का प्रकाश	**पं.ग्रं.**-1/130	ग्रन्थि
अरुण-केतन-	*'अरुण-केतन लेकर निज हाथ वरुण पथ में हम बढ़े अभीत'*	: सृष्टि के प्रतीक के रूप में अरुण रंग की पताका	**प्र.ग्रं.**-4/138	पंचम अंक/स्कन्दगुप्त
अरुण गात-	*'ऊषा बटोरती अरुण गात'*	: प्रभातकालीन सूर्य की रक्तिम आभा	**प्र.ग्रं.**-1/309	अब जागो जीवन के प्रभात/लहर
अरुण घन-	*'अरुण घन की सजल छाया में दिनांत निवास'*	: सांध्यकालीन सूर्य की लाल किरणों से युक्त बादल	**प्र.ग्रं.**-2/114	वासना/कामायनी
अरुण घूँघट-	*'मत अरुण घूँघट खोल री!'*	: अरुणोदय के ठीक पहले	**म.सा.**-1/227	मत अरुण घूँघट खोल

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
		का अँधेरा मानो अरुण का घूँघट है		री!/नीरजा
अरुण जलज-	*'संध्या अरुण जलज केसर ले अब तक मन थी बहलाती'*	: रक्तिम कमल(रूपी सूर्य)	**प्र.ग्रं.-2**/185	स्वप्न/कामायनी
♦	*'अरुण जलज के शोण कोण थे नव तुषार के बिंदु भरे'*	: लाल कमल, कोकनद (श्रद्धा की दुखी आँखें)	**प्र.ग्रं.-2**/188	स्वप्न/कामायनी
अरुणज्योति-	*'अरुणज्योति की झील बनेगी कब सलील?'*	: लालिमा से युक्त प्रकाश	**प्र.ग्रं.-1**/300	हे सागर संगम अरुण नील/लहर
अरुणतर अधर-	*'अरुणतर अधर सुरा अनमोल'*	: संध्या के गुलाबी होंठ मानो और गुलाबी हो गये हैं	**प.ग्रं.-1**/378	द्वितीय दृश्य/परी
अरुण नील-	*'हे सागर संगम अरुण नील'*	: लाल रंग का गंगाजल और नीले रंग का समुद्र	**प्र.ग्रं.-1**/299	हे सागर संगम अरुण नील/लहर
अरुण-पंख-	*'अरुण-पंख तरुण-किरण'*	: लाल पंखों वाला बाल-सूर्य	**नि.र.-1**/148	जागो फिर एक बार
अरुण पीत हरियाली-	*'वह मंजरियों का कानन कुछ अरुण पीत हरियाली'*	: लाल, पीला और हरा रंग (वनस्पतियों के मंजरों के बीच)	**प्र.ग्रं.-2**/272	आनन्द/कामायनी
अरुण बान-	*'चुभते ही तेरा अरुण बान !'*	: लाल किरणें मानो तीर की तरह हैं	**म.सा.-1**/103	चुभते ही तेरा अरुण बान!/रश्मि
अरुण मंडल-	*'अरुण मंडल का स्वर्ण विलास'*	: सूरज का लाल गोला	**प्र.ग्रं.-1**/263	हृदय का सौन्दर्य/झरना
अरुण मुकुर-	*'प्राची के अरुण मुकुर में सुन्दर प्रतिबिम्ब तुम्हारा'*	: अरुणोदय से पूरब दिशा दर्पण की तरह स्वच्छ लग रही है	**प्र.ग्रं.-2**/34	आँसू
अरुण-मुख-	*'अलस पंकज-दृग अरुण-मुख-तरुण-अनुरागी'*	: सूर्योदय जैसा मुख	**नि.र.-1**/253	(प्रिय) यामिनी जागी
अरुण यौवन-	*'अरुण यौवन का उदय विशेष'*	: प्रभात के रूप में लालिमा से युक्त यौवन	**प्र.ग्रं.-1**/264	प्रार्थना/झरना
अरुण रवि मंडल-	*'अरुण रवि मंडल उनको भेद दिखाई देता हो छविधाम'*	: लाल सूर्य का गोला	**प्र.ग्रं.-2**/84	श्रद्धा/कामायनी
अरुण राग रंजित-	*'अरुण राग रंजित कोमल हिमखण्ड से'*	: लाल रंग से शोभायमान	**प्र.ग्रं.-1**/226	रूप/झरना
अरुण विलास-	*'गगन मंडल में अरुण विलास'*	: (प्रात: काल में) अरुण (लाल) रंग का सौन्दर्य	**प्र.ग्रं.-1**/220	परिचय/झरना
अरुण शिशु-	*'अरुण शिशु के मुख पर सविलास'*	: सुबह का सूरज, बालसूर्य	**प्र.ग्रं.-1**/231	किरण/झरना
अरुणांचल-	*'अरुणांचल में चल रही बात'*	: पूरब दिशा के आँचल में	**प्र.ग्रं.-1**/309	अब जागो जीवन के प्रभात/लहर
अरुणा-	*'वरुणालय चित्त शान्त था, अरुणा की पहली नयी उषा'*	: प्रात: की लालिमा	**प्र.ग्रं.-3**/179	प्रथम अंक/विशाख
♦	*'घूँघट पट से झाँक सुनाते/अरुणा के आरक्त कपोल'*	: लाली से भरी सुबह	**म.सा.-1**/94	प्रथम प्रणय की सुषमा सा/नीहार
अरुणा करुणा-	*'मानव का महत्त्व जगती पर फैला अरुणा करुणा से'*	: अनुराग के रंग से रँगा शोक-भाव	**प्र.ग्रं.-3**/252	प्रथम अंक/अजातशत्रु

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अरुणाचल-	*'वे कुछ दिन जो हँसते आये अंतरिक्ष अरुणाचल से'*	: उदयाचल, उदयगिरि, पुरानों में वर्णित एक कल्पित पर्वत जिसके पीछे से सूर्य का नित्य उदित होना माना गया है	**प्र.ग्रं.-2**/187	स्वप्न/कामायनी
अरुणाचल मन मंदिर-	*'अरुणाचल मन मंदिर की वह मुग्ध-माधुरी नव प्रतिमा'*	: उदयाचल या उदयगिरि -रूपी हृदय-मंदिर	**प्र.ग्रं.-2**/224	निर्वेद/कामायनी
अरुणार्क-	*'किन्तु अरुणार्क, प्रिय, झुलसाते ही रहे - '*	: प्रात:काल का तपता सूरज	**नि.र.-1**/327	प्रेयसी
अरुणा सस्मित-	*'तम के नीलम-कूलों पर नित जो ले आती अरुणा सस्मित'*	: मुस्कुराती हुई सुबह मानो सूरज-रूपी नाव खे रही है	**म.सा.-1**/199	कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती! /नीरजा
अरुणिमा-	*'जैसे अंतरिक्ष की अरुणिमा'*	: लालिमा	**प्र.ग्रं.-1**/340	प्रलय की छाया/लहर
♦	*'तरु-उर की अरुणिमा तरुणतर'*	: ललाई	**नि.र.-1**/235	रँग गयी पग-पग धन्य धरा
♦	*'उधर क्यों हँसता दिन का बाल अरुणिमा से रंजित कर गाल?'*	: सुबह की लालिमा मानो लज्जा की लाली है	**म.सा.-1**/105	शून्यता में निद्रा की बन/रश्मि
अरुणिमा ऊषा-सी-	*'दुख दो इतना, अरे अरुणिमा ऊषा-सी वह उधर बही'*	: प्रभातकाल की लालिमा की तरह	**प्र.ग्रं.-1**/291	निज अलकों के... /लहर
अरुणे-	*'हे अरुणे ! सदा सुहागिनि/मानवता सिर की रोली'*	: पीड़ा मानो प्रेम की अरुण प्रेरणा लिए रहती है	**प्र.ग्रं.-2**/31	आँसू
अरुणोदय कांत-	*'उठे स्वस्थ मनु ज्यों उठता है क्षितिज बीच अरुणोदय कांत'*	: उगते हुए सूरज का कांतिमान व्यक्तित्व	**प्र.ग्रं.-2**/73	आशा/कामायनी
अरूप-	*'हे अरूप, नव-रूप-विभा के चिर स्वरूप पाके जाओ!'*	: जो रूप से परे है	**नि.र.-1**/213	मेरे प्राणों में आओ!
अरूप-लग्न-	*'नि:सम्बल केवल ध्यान-मग्न, जागी योगिनी अरूप-लग्न,'*	: रूपहीन सत्य से संबंधित	**नि.र.-1**/302	तुलसीदास
अरोक-	*'देखता मैं अरोक मन रोक'*	: जिसे रोका न जा सके, स्वतंत्र	**नि.र.-1**/273	छन्द की बाढ़
अरोर-	*'तान, सरिता वह स्रस्त, अरोर, बह रही ज्ञानोदधि की ओर'*	: अशब्द	**नि.र.-1**/272	छन्द की बाढ़
अर्गला-	*'दलित हृदय की रुद्ध अर्गला खोल - '*	: कुंडी, बंधन	**नि.र.-1**/86	वन-कुसुमों की शय्या
अर्घ-	*'दिया करते अर्घ में मकरन्द, सुषमा मूल'*	: स्वागत में चढ़ाया गया (जल आदि)	**प्र.ग्रं.-2**/118	वासना/कामायनी
♦	*'मोतियों का अर्घ कैसा?/प्यालियाँ रीती कली की'*	: देवता पर जल, दूध आदि श्रद्धापूर्वक गिरते हैं	**म.सा.-1**/391	लौट जा ओ मलय-मारुत के झकोरे!/दीप-शिखा
अर्घ्य-	*'जब बढ़ीं अर्घ्य देने को तुमको'*	: समर्पित करना	**नि.र.-1**/97	विफल-वासना
♦	*'भासमान अर्घ्य पुष्प-चन्दन-समर्पित वे'*	: पूजन-सामग्री समर्पित करना	**नि.र.-1**/187	'सरोज' के प्रति
♦	*'मेरे अर्घ्य सुमन-दल, नाथ!'*	: चढ़ावा	**नि.र.-1**/214	याद रखना, इतनी ही बात
♦	*'अर्चना हों शूल भोले/क्षार दृग-जल अर्घ्य हो ले'*	: देवता पर चढ़ाया जानेवाला तरल पदार्थ, जैसे- दूध, घी, जल आदि	**म.सा.-1**/258	शून्य मंदिर में बनूँगी... /सांध्य गीत

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अर्चना-	*'अर्चना के लिए आर्य!'*	: पूजा	**नि.र.-1**/53	पंचवटी प्रसंग:1
अर्चना अश्रांत-	*'राशि-राशि नखत-कुसुम की अर्चना अश्रांत'*	: निरंतर चलनेवाली प्रेम-याचना	**प्र.ग्रं.-2**/117	वासना/कामायनी
अर्चित-	*'अम्बर में हुए दिगम्बर अर्चित शशि-शेखर;'*	: पूजित, सम्मानित	**नि.र.-1**/336	राम की शक्ति-पूजा
♦	*'नित विकसित, नित वर्धित, अर्चित'*	: पूजनीय, सम्माननीय	**पं.ग्रं.-1**/313	तीन/ज्योत्स्ना
अर्चित कथा-	*'सबकी अर्चित कथा इसी लौ में पलने दो!'*	: श्रद्धालुओं के द्वारा की गयी पूजा-अर्चना के विवरण	**म.सा.-1**/335	यह मंदिर का दीप... /दीप-शिखा
अर्चि-भृत-	*'अर्चि-भृत चल-जल भृकुटि-विलास'*	: किरणों से भरा हुआ	**पं.ग्रं.-1**/339	चार/ज्योत्स्ना
अर्चियाँ-	*'शुष्क डालियों से वृक्षों की अग्नि अर्चियाँ हुई समिद्ध;'*	: ज्वाला, आग की लपटें	**प्र.ग्रं.-2**/74	आशा/कामायनी
अर्थ खेद-	*'इनके कर कन्या, अर्थ खेद'*	: जिसका मतलब है दुख या अफसोस	**नि.र.-1**/321	सरोज स्मृति
अर्थ-भ्रम-भेद-निवारण-	*'शब्द अर्थ-भ्रम-भेद-निवारण ध्वनि शाश्वत-समुद्र-जग-मज्जन'*	: भिन्न भिन्न अर्थों के भ्रम और भेद को दूर करनेवाले हैं	**नि.र.-1**/240	आओ मधुर-सरण मानसि, मन
अर्थ-शक्ति-भँवर-	*'शान्त अर्थ-शक्ति-भँवर'*	: धन की ताकत से उत्पन्न जटिलताएँ	**पं.ग्रं.-1**/329	तीन/ज्योत्स्ना
अर्थागम-	*'उलट दिया अर्थागम/बनकर तूफान'*	: अर्थ का अनुमान, अर्थ का दायरा	**नि.र.-1**/313	मित्र के प्रति
अर्थागमोपाय-	*'जाना तो अर्थागमोपाय पर रहा सदा संकुचित-काय'*	: धन कमाने का उपाय	**नि.र.-1**/315	सरोज स्मृति
अर्द्ध-निमीलित-	*'मदिर नयन - वे अर्द्ध-निमीलित लोचन'*	: आधा बंद	**नि.र.-1**/86	वन-कुसुमों की शय्या
अर्धक्षेम-	*'मायामयी सुप्ति में सोकर, अति अधीर हो अर्धक्षेम से'*	: आधी मुक्ति	**प्र.ग्रं.-1**/241	बिखरा हुआ प्रेम/झरना
अर्ध प्रस्फुटित-	*'अर्ध प्रस्फुटित उत्तर मिलते प्रकृति सकर्मक रही समस्त;'*	: (मनु को) अपने भीतर जिज्ञासा के आधे-अधूरे उत्तर मिल पा रहे थे	**प्र.ग्रं.-2**/75	आशा/कामायनी
अर्धविकच-	*'अर्धविकच इस हृदय-कमल में आ तू'*	: आधा खिला हुआ, अर्द्ध विकसित, अधखुला	**नि.र.-1**/102	प्रगल्भ प्रेम
अर्ध हिनहिना-	*'अर्ध हिनहिना, अश्रु जल छोड़'*	: (चेतक) पूरी तरह हिनहिना भी नहीं पाया	**पं.ग्रं.-1**/115	गहन का कानन!/वीणा
अर्धांगिनी-	*'थी अर्धांगिनी उसी की जो उसे खोजती आयी'*	: पत्नी (श्रद्धा)	**प्र.ग्रं.-2**/270	आनन्द/कामायनी
अर्बुद-सम-	*'अप्रतिभट वही, एक - अर्बुद-सम, महावीर,'*	: दस करोड़ (योद्धाओं) के बराबर	**नि.र.-1**/333	राम की शक्ति-पूजा
अर्र-बर्र-	*'सत्य, बन्धु, सत्य; वहाँ/नहीं अर्र-बर्र'*	: कर्कश अप्रिय ध्वनि	**नि.र.-1**/310	मित्र के प्रति
अलंकार-लेश-रहित-	*'अलंकार-लेश-रहित, श्लेष-हीन'*	: लेश नामक अलंकार से मुक्त लेश अलंकार- एक अर्थालंकार जहाँ गुण को दोष के समान और दोष को गुण के समान दिखाने का प्रयास किया जाय।	**नि.र.-1**/185	जागरण
अलंघ्य-	*'अगम गहन अलंघ्य पथ'*	: जिसे लाँघा न जा सके	**नि.र.-1**/175	रेखा 'क'
अलक-	*'प्रेयसी के अलक नील, व्योम;*	: केश-राशि	**नि.र.-1**/292	तुलसीदास

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
	दृग-पलक कलंक;- मुख मंजु, सोम;'			
अलक गुँथी थी-	*'तारों से अलक गुँथी थी पहने कदंब की रसना'*	: (संध्या-सुन्दरी के अंधकार -रूपी) घुँघराले बाल (तारे-रूपी मोतियों से) गुँथे थे	**प्र.ग्रं.-2**/272	आनन्द/कामायनी
अलक घुँघराली-	*'अस्ताचल पर युवती सन्ध्या की खुली अलक घुँघराली है'*	: घुँघराले बाल (शाम में पश्चिम दिशा में किरणों का जाल)	**प्र.ग्रं.-4**/346	द्वितीय अंक/ध्रुवस्वामिनी
अलक जाल-	*'बन गया तमस था अलक जाल, सर्वांग ज्योतिमय था विशाल'*	: (व्योमकेश शिव) की बिखरी हुई केश-राशि या जटाएँ	**प्र.ग्रं.-2**/246	दर्शन/कामायनी
♦	*'उड़ता झंझा में अलक-जाल मेघों में मुखरित किंकिण-स्वर'*	: बिखरे हुए केश	**म.सा.-1**/237	लय गीत मदिर, गति ताल अमर/नीरजा
अलक-पलक-	*'अलक-पलक में छिपी छलक उर से नव-राग जगी'*	: बाल और नजरों में	**नि.र.-1**/220	स्पर्श से लाज लगी
अलक पाश-	*'टूटे सब वलय-हार,/व्यस्त चीर अलक पाश'*	: केश का बिखर जाना	**म.सा.-1**/351	मिट चली घटा अधीर! /दीप-शिखा
अलक-मण्डल-	*'अलक-मण्डल में यथा मुख-चन्द्र निरलंकार'*	: बालों के वृत्त में	**नि.र.-1**/226	जग का एक देखा तार
अलक-विचुम्बित-	*'वह सर्वत्र व्याप्त जीवन से अलक-विचुम्बित सुखकर वात'*	: बालों के द्वारा चूमा गया	**नि.र.-1**/188	विस्मृत भोर
अलक-सुगंध-	*'अलक-सुगन्ध मन्द मलयानिल धीरे-धीरे ढोती'*	: सुगंधित केश राशि	**नि.र.-1**/98	प्रिया से
अलक-सुगंध-मदिर-	*'अलक-सुगन्ध-मदिर सरि-शीतल'*	: अलकों की नशीली गंध	**नि.र.-1**/122	यमुना के प्रति
अलका-	*'कृष्ण घन अलकों में'*	: केश (स्त्री के)	**नि.र.-1**/93, यहीं	
अलकावलि-	*'बादल अलकावलि कुञ्चित-ऋजु'*	: केशराशि	**नि.र.-1**/221	कौन तुम शुभ्र-किरण -वसना?
अलकावली-	*'मेरी लहरीली नीली अलकावली समान'*	: घनी केश-राशि	**प्र.ग्रं.-1**/339	प्रलय की छाया/लहर
अलकें-	*'मेरे जीवन की उलझन/बिखरी थीं उनकी अलकें'*	: केश-राशि	**प्र.ग्रं.-2**/13	आँसू
♦	*'श्रद्धा कुछ-कुछ अनमनी चली अलकें लेती थीं गुल्फ चूम'*	: लम्बे बाल	**प्र.ग्रं.-2**/159	ईर्ष्या/कामायनी
अलकें सुनहली-	*'उलझती अलकें सुनहली असित निशि के कुंतलों में!'*	: सुनहले रंग की केशराशि की तरह संध्या की किरणें	**म.सा.-1**/253	रागभीनी तू सजनि निश्वास भी.../सांध्य गीत
अलकों की डोरी-	*'अलकों की डोरी में जीवन कण-कण उलझे जाते'*	: श्रद्धा की केशराशि मानो बंधन की तरह बाँध रही थी	**प्र.ग्रं.-2**/146	कर्म/कामायनी
अलक्तक-	*'चरण अलक्तक की लाली से'*	: आलता, महावर	**प्र.ग्रं.-1**/340	प्रलय की छाया/लहर
अलक्षित-	*'अलक्षित आ किसने चुपचाप सुना अपनी सम्मोहन तान'*	: अनजाने, अदृष्ट	**म.सा.-1**/72	स्वर्ग का था नीरव उच्छ्वास/नीहार
अलख-	*'आँखों से अलख जगाने को'*	: ईश्वर, जिसे देखा न जा सके	**प्र.ग्रं.-1**/304	आँखों से अलख जगाने को/लहर
अलख आनन-	*'देख ले उसके अधर सस्मित, सजल दृग, अलख आनन'*	: ईश्वर (उस अनंत प्रिय) का चेहरा अदृश्य है	**म.सा.-1**/269	मैं किसी की मूक छाया हूँ.../सांध्य गीत
अलख-बादलों-	*'खोलो नवल प्रात मुख ढक-ढक अलख-बादलों से, क्षण में'*	: अनिश्चित आकार वाले बादल	**नि.र.-1**/191	वसन्त-समीर

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अलगाता-	*'उसे अकिंचन कर देता है अलगाता 'हम तुम' से'*	: मिलने नहीं देना, दूरी बनाए रखना	**प्र.ग्रं.-2**/153	कर्म/कामायनी
अलबेला-	*'मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय मेरा अलबेला सा है'*	: मनमौजी, दीवाना, मस्तमौला	**म.सा.-1**/201	मैं मतवाली इधर, उधर प्रिय.../नीरजा
अलबेली-बाहुलता-	*'अलबेली-बाहुलता या तनु छवि-सर की नव लहरी?'*	: बाँहें मानो लताओं की तरह अल्हड़ थीं	**प्र.ग्रं.-2/12**	आँसू
अलबेले-	*'यह सुख दुखमय राग बजा जाते हो क्यों अलबेले?'*	: वह असीम प्रिय अलबेला (मनमौजी) है	**म.सा.-1**/270	यह सुख दुखमय राग/सांध्य गीत
अलभ-	*'अलभ है इष्ट, अत: अनमोल'*	: अप्राप्त	**पं.ग्रं.-1**/230	परिवर्तन/पल्लव
अलम्-	*'कृपा कटाक्ष अलम् है केवल'*	: पर्याप्त	**प्र.ग्रं.-1**/271	कसौटी/झरना
अलम्बुषा-	*'नव अलम्बुषा की व्रीड़ा-सी खुल जाती है, फिर जा मुँदती'*	: लाजवंती या छुई-मुई का पौधा	**प्र.ग्रं.-2**/255	रहस्य/कामायनी
अलस-	*'अलस हुई कुछ नीची चितवन'*	: आलस्य से भरी हुई (प्रेम-प्रसंग में)	**नि.र.-1**/88	श्रृंगारमयी
♦	*'दिग्वधू अलस हाथों से'*	: मादकता की शिथिलता	**नि.र.-1**/100	दिल्ली
♦	*'छूट-छूट अलस/फैल जाने दो पीठ पर'*	: आलस्य से भरा, धीमी गति से, सरकते हुए	**नि.र.-1**/149	जागो फिर एक बार
♦	*'अलस पग, मग में ठगी-सी रह गयी'*	: अलसाया, प्रेम से शिथिल	**नि.र.-1**/155	शेष
♦	*'अलस पंकज-दृग अरुण-मुख-/तरुण-अनुरागी'*	: आलस्य से भरा	**नि.र.-1**/253	(प्रिय) यामिनी जागी
♦	*'सकुच सलज खिलती शेफाली अलस मौलश्री डाली डाली'*	: आलस्य से भरा	**म.सा.-1**/169	पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन/नीरजा
अलस उषा-	*'उस अलस उषा में देखूँ अपनी आँखों का तारा'*	: अलसाई हुई सुबह	**प्र.ग्रं.-2**/34	आँसू
अलस चेतना-	*'खुलीं उसी रमणीय दृश्य में अलस चेतना की आँखें;'*	: संज्ञा का सुस्त पड़ जाना, सचेत न रह पाना	**प्र.ग्रं.-2/76**	आशा/कामायनी
अलस तरंगिणि-	*'अलि गुंजित पद्मों की किंकिणि भर पद-गति में अलस तरंगिणि'*	: शिथिल तरंगों की मादक गति	**म.सा.-1**/168	धीरे-धीरे उतर क्षितिज से/नीरजा
अलसता-	*'अलसता की-सी लता'*	: आलस्य, श्रृंगार भाव का शैथिल्य	**नि.र.-1**/77	सन्ध्या-सुन्दरी
अलस नभ-	*'अलस नभ के पलक गीले कुंतलों से पोंछ आई'*	: अलसाया हुआ आकाश मानो भावुक है	**म.सा.-1**/274	आज मेरे नयन के तारक.../सांध्य गीत
अलस नील-घन-	*'अलस नील-घन की छाया में'*	: अलसाये हुये नीले बादल, रुककर बारिश कराते बादल	**प्र.ग्रं.-4**/99	तृतीय अंक/स्कन्दगुप्त
अलस पलक-	*'अलस पलक, सघन अलक'*	: सौन्दर्य के मद से अलसायी पलकें, छाया मानो मद से भरी है	**पं.ग्रं.-1**/286	एक/ज्योत्स्ना
अलस पलक दल-	*'न जाने, अलस पलक दल कौन'*	: अलसायी पलकें मानो पंखुड़ियाँ हैं	**पं.ग्रं.-1**/196	मौन निमन्त्रण/पल्लव
अलस प्राण-	*'निज उद्गम का मुख बंद किये*	: मन को आलस्य में डालना	**प्र.ग्रं.-2**/158	ईर्ष्या/कामायनी

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
कब तक सोएँगे अलस प्राण'			
अलस बंदी युगों का- *'अब अलस बंदी युगों का - ले उड़ेगा शिथिल कारा'*	: युगों-युगों से जो बंदी बनकर शिथिल हो गया हो	**म.सा.**-1/282	कीर का प्रिय आज... /सांध्य गीत
अलस विषाद- *'ओ जीवन की मरु मरीचिका, कायरता के अलस विषाद!'*	: दुःख की निराशा से उत्पन्न शिथिलता	**प्र.ग्रं.**-2/63	चिंता/कामायनी
अलस विहग- *'लेते अँगड़ाई नींदों में अलस विहग मृदु गात'*	: अलसाये हुये पक्षी	**प्र.ग्रं.**-1/328	अंतरिक्ष में अभी सो रही/लहर
अलस सबेरा- *'वही वेदना सजग पलक में भर कर अलस सबेरा'*	: अलसाई हुई सुबह	**प्र.ग्रं.**-2/141	कर्म/कामायनी
अलसित वन- *'निद्रा के उस अलसित वन में'*	: (नींद मानो) आलस्य के जंगल की तरह है	**पं.ग्रं.**-1/198	स्वप्न/पल्लव
अलात-चक्र- *'मनु फिर रहे अलात-चक्र से उस घन-तम में'*	: जलती हुई लकड़ी (मशाल, बनेठी, लुआठी) को चारों ओर घुमाने से बना अग्नि का घेरा	**प्र.ग्रं.**-2/207	संघर्ष/कामायनी
अलिंद की भूमि- *'चरणों से चिह्नित अलिंद की भूमि सुनहली'*	: मंदिर के दरवाजे से ठीक पहले की जगह जहाँ जूते-चप्पल खोलकर प्रवेश करते हैं	**म.सा.-1/335**	यह मंदिर का दीप... /दीप-शिखा
अलि- *'मुस्काता संकेत-भरा नभ/अलि क्या प्रिय आनेवाले हैं?'*	: सखी	**म.सा.**-1/221	मुस्काता संकेत-भरा नभ/नीरजा
♦ *'अलि वरदान मेरे नयन'*	: सखी या समानधर्मा को संबोधित	**म.सा.**-1/232	अलि वरदान मेरे नयन!/नीरजा
अलि अलकों- *'इस हृदय कमल का घिरना अलि अलकों की उलझन में'*	: प्रिया की केश-राशि भौरों की तरह काली हैं	**प्र.ग्रं.**-2/5	आँसू
अलि-अलकों- *'अलि-अलकों के तरल तिमिर में'*	: भौरों की तरह काले घुँघराले बाल	**नि.र.**-1/118	यमुना के प्रति
अलि-कलियों- *'सरल-शैशव-श्री सुख-यौवन केलि अलि-कलियों की सुकुमार'*	: भौरे और कलियाँ	**नि.र.**-1/141	स्मृति
अलिकुल- *'नीरव-मुरली, कलरव चुप, अलिकुल थे बन्द नलिन में'*	: भौरों का समूह	**प्र.ग्रं.**-2/16	आँसू
अलिनि- *'मधु-गीत मतवाली अलिनि'*	: अलिनी, भ्रमरी, मादा भौरा	**म.सा.**-1/172	शृंगार कर ले री सजनि!/नीरजा
अलिनी- *'जहाँ स्वर्ण की आशा अलिनी गाती है, कर स्वप्न विहार'*	: मादा भौरा	**पं.ग्रं.**-1/103	श्रूयते हि पुरा लोके/वीणा
♦ *'पिक की मधुमय वंशी बोली/नाच उठी सुन अलिनी भोली'*	: भ्रमर-बाला, भ्रमरी	**म.सा.**-1/169	पुलक पुलक उर, सिहर सिहर तन/नीरजा
अलि बाला- *'अलि बाला गाती सुपुनीत'*	: भ्रमर किशोरी, तरुणी	**पं.ग्रं.**-1/102	उस विकसित, वासित वन में/वीणा
♦ *'अलि बाला से सुन तब सहसा'*	: किशोर उम्र की भ्रमरी, मादा भौरा	**पं.ग्रं.**-1/199	स्वप्न/पल्लव

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अलि-मुकुल-विपुल-	*'पुलकाकुल अलि-मुकुल-विपुल हिलते तरु-पात'*	: असंख्य कलियाँ और भौरे	**नि.र.-1**/188	विस्मृत भोर
अलि-शिशु-	*'बहलाऊँ नव किसलय के झूले में अलि-शिशु तेरे'*	: भौंरों के बच्चे	**म.सा.-1**/134	कह दे माँ क्या अब देखूँ!/रश्मि
अलीक-	*'गिर जाएगा जो है अलीक, चलकर मिटती है पड़ी लीक'*	: रूढ़िग्रस्त रीति-नीति, मरणोन्मुख आचार-विचार	**प्र.ग्रं.-2**/245	दर्शन/कामायनी
अलौकिक कांत-	*'तिमिर का हरने को दुख भार, तेज अमिताभ अलौकिक कांत'*	: आध्यात्मिक चमक	**प्र.ग्रं.-1/295**	अरी वरुणा की शांत कछार/लहर
अल्पभेद-	*'अक्लेद, अल्पभेद,/प्रस्फुट गुलाब-सा'*	: सघन, सुगठित	**नि.र.-1**/185	जागरण
अल्हड़ खेल-	*'खेलता था जब अल्हड़ खेल'*	: अपने यौवन से लापरवाह होकर बच्चों की तरह खेलना	**प्र.ग्रं.-1**/307	तुम्हारी आँखों का बचपन/लहर
अवकाश-	*'अवकाश असीम सुखों से/आकाश तरंग बनाता'*	: खालीपन, सूनापन	**प्र.ग्रं.-2**/24	आँसू
अवकाश-पटी-	*'इस अवकाश-पटी पर जितने चित्र बिगड़ते बनते हैं'*	: आकाश का फलक	**प्र.ग्रं.-2**/186	स्वप्न/कामायनी
अवकाश शून्य-	*'अवकाश शून्य फैला है है शक्ति न और सहारा'*	: सूना आकाश, दूर-दूर तक निराशा	**प्र.ग्रं.-2**/21	आँसू
अवकाश-सरोवर-	*'अवकाश-सरोवर का मराल, कितना सुन्दर कितना विशाल'*	: आकाश-रूपी मानसरोवर	**प्र.ग्रं.-2**/235	दर्शन/कामायनी
अवगाहन-	*'क्षुब्ध लुब्ध, नील-अंग-/अवगाहन-स्नान'*	: डुबकी लगाना	**नि.र.-1**/313	मित्र के प्रति
अवगाहित-	*'क्षालित शत-तरंग-तनु-पालित अवगाहित निकली द्युति निर्मल'*	: गले तक डूबकर नहाई हुई	**नि.र.-1**/248	घोर शिशिर
अवगुंठन-	*'आँखों का विधि वह मुख हो अवगुण्ठन नील गगन-सा'*	: आवरण, घूँघट	**प्र.ग्रं.-2**/35	आँसू
♦	*'अवगुंठन होता आँखों का/आलोक रूप बनता जितना'*	: पर्दा, आवरण	**प्र.ग्रं.-2**/98	काम/कामायनी
♦	*'चाँदनी सदृश खुल जाय कहीं अवगुंठन आज सँवरता-सा;'*	: आवरण, घूँघट	**प्र.ग्रं.-2**/101	काम/कामायनी
♦	*'तोड़ दिये जब सब अवगुण्ठन, रहा एक केवल सुख-लुण्ठन'*	: घूँघट, अवरोध, पर्दा	**नि.र.-1**/260	कब से मैं पथ देख रही
♦	*'खुल गया शून्यमय अवगुंठन'*	: घूँघट, आवरण, पर्दा	**पं.ग्रं.-2**/15	ए मिट्टी के ढेले/युगपथ
♦	*'क्या तुम केवल चिर अवगुण्ठन'*	: घूँघट	**पं.ग्रं.-2**/19	छाया/युगपथ
♦	*'घोर घन की अवगुंठन डाल करुण सा क्या गाती है रात?'*	: घूँघट, आवरण, पर्दा	**म.सा.-1**/61	घोर घन की अवगुण्ठन डाल/नीहार
♦	*'उजियारी अवगुण्ठन में/विधु ने रजनी को देखा'*	: घूँघट	**म.सा.-1**/75	जिस दिन नीरव तारों से/नीहार
♦	*'उसे पहनायी अवगुण्ठन/हास औ' रोदन से बुन बुन'*	: घूँघट, आवरण, आड़	**म.सा.-1**/105	शून्यता में निद्रा की बन/रश्मि
♦	*'तुम मानस में बस जाओ/छिप दुख की अवगुण्ठन से'*	: आवरण, आड़	**म.सा.-1**/111	चिर तृप्ति कामनाओं का/रश्मि

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
♦	*'अपनेपन की अवगुण्ठन बिन/मेरा अपलक आनन सूना'*	: घूँघट, पर्दा, आड़	**म.सा.**-1/208	तेरी सुधि बिन क्षण क्षण सूना/नीरजा
♦	*'आज कहाँ मेरा अपनापन/तेरे छिपने का अवगुण्ठन'*	: घूँघट, आड़, पर्दा	**म.सा.**-1/210	टूट गया वह दर्पण निर्मम/नीरजा
♦	*'मिथ्या, प्रिय मेरा अवगुण्ठन/पाप शाप, मेरा भोलापन'*	: पर्दा, गोपन	**म.सा.**-1/214	आँसू का मोल न लूँगी मैं!/नीरजा
अवगुंठनमयि-	*'हे चिर अवगुण्ठनमयि, बोलो'*	: घूँघट में रहनेवाली स्त्री	**पं.ग्रं.**-2/19	छाया/युगपथ
अवचनीय-	*'चिर अवचनीय, आश्चर्य-पाश'*	: जिसके बारे में बोलकर बताया न जा सके	**पं.ग्रं.**-2/19	छाया/युगपथ
अवतंस लोल-	*'रवि-शशि तेरे अवतंस लोल सीमंत-जटित तारक अमोल'*	: डोलती हुई कान की बालियाँ	**म.सा.**-1/237	लय गीत मदिर, गति ताल अमर/नीरजा
अवदात-	*'लगे जो उपल पद, हुए उत्पल ज्ञात, कण्टक चुभे जागरण बने अवदात'*	: उज्ज्वल	**नि.र.**-1/275	प्रात तव द्वार पर
♦	*'जीवन ज्योति जला अवदात'*	: उज्ज्वल, पीला	**पं.ग्रं.**-1/85	मम जीवन की प्रमुदित प्रात/वीणा
♦	*'वह भविष्य होवे अवदात!'*	: उज्ज्वल	**पं.ग्रं.**-1/88	जब मैं थी अज्ञात प्रभात/वीणा
♦	*'उमड़ मोतियों-से अवदात'*	: उज्ज्वल	**पं.ग्रं.**-1/199	स्वप्न/पल्लव
♦	*'स्रोत-से नव अवदात'*	: निर्मल	**पं.ग्रं.**-1/207	शिशु/पल्लव
♦	*'उड़ता अम्बर में अवदात'*	: उज्ज्वल	**पं.ग्रं.**-1/215	बादल/पल्लव
♦	*'सजा लांछन को भी अवदात'*	: उज्ज्वल	**पं.ग्रं.**-1/231	परिवर्तन/पल्लव
♦	*'खिल उठी आँगन में अवदात'*	: उज्ज्वल, आभामय	**पं.ग्रं.**-1/253	मुसकुरा दी थीं क्या तुम, प्राण/गुंजन
♦	*'अग-जग के अवदात'*	: उज्ज्वल	**पं.ग्रं.**-1/336	चार/ज्योत्स्ना
♦	*'बरसते थे मोती अवदात/जहाँ तारक-लोकों से टूट'*	: उज्ज्वल	**म.सा.**-1/70	निराशा के झोंकों ने देव!/नीहार
♦	*'पोंछती जब हौले से वात इधर निशि के आँसू अवदात'*	: उज्ज्वल (ओस की तरह आँसू)	**म.सा.**-1/105	शून्यता में निद्रा की बन/रश्मि
♦	*'तुम अनंत जलराशि उर्म्मि मैं/चंचल सी अवदात'*	: उज्ज्वल, निर्मल	**म.सा.**-1/135	तुम हो विधु के बिम्ब और मैं/रश्मि
♦	*'कलियों में सुरभित कर अपने मृदु आँसू अवदात'*	: उज्ज्वल, निर्मल	**म.सा.**-1/150	विश्व-जीवन के उपसंहार!/रश्मि
♦	*'पिघल क्यों हिम का उर अवदात भरा करता सरिता के कोष'*	: स्वच्छ, कज्जल	**म.सा.**-1/156	नींद में सपना बन अज्ञात/रश्मि
♦	*'परिधि बन घेरें तुझे वे उँगलियाँ अवदात!'*	: उज्ज्वल (प्रभात का प्रकाश)	**म.सा.**-1/393	पूछता क्यों शेष कितनी रात?/दीप-शिखा
अवनत-	*'किन्तु हाय! वीर राजपूतों की/गौरव-प्रलम्ब ग्रीवा अवनत हो रही है आज तुमसे महाराज'*	: झुकी हुई (गर्दन)	**नि.र.**-1/157	महाराज शिवाजी का पत्र

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अवनत घन-	*'वह बोली "नील गगन अपार, जिसमें अवनत घन सजल भार'*	: (जल के बोझ से) झुके हुए बादल	**प्र.ग्रं.-2**/234	दर्शन/कामायनी
♦	*'तुम आशामयि ! चिर आकर्षण, तुम मादकता की अवनत घन'*	: जल के भार से झुका हुआ बादल, परोपकारी	**प्र.ग्रं.-2**/236	दर्शन/कामायनी
अवनतमुखी-	*'किस विरह में अवनतमुखी लगती न उजियाली भली?'*	: उदासी से सिर झुकाए हुए	**म.सा.-1**/265	पंकज-कली!/सांध्य गीत
अवनत ललाट-	*'भारत के अविश्वस्त अवनत ललाट पर'*	: झुका माथा, शर्म महसूस करना	**नि.र.-1**/100	दिल्ली
अवनत वदना-	*'अवनत वदना होने दो'*	: चेहरे को झुकाकर पूजा की मुद्रा में खड़ा होना	**पं.ग्रं.-1**/88	करुणा क्रन्दन करने दो!/वीणा
♦	*'अवनत वदना हो जब प्रात'*	: सर झुकाकर	**पं.ग्रं.-1**/98	कर पुट में पुष्पांजलि धर/वीणा
अवनता-	*'किसी विटप के आश्रय में मुकुलिता किन्तु अवनता'*	: झुकी हुई	**नि.र.-1**/95	बहू
अवनम्र-	*'स्तव के अवनम्र स्तबक'*	: झुके हुए	**नि.र.-1**/275	कहाँ परित्राण?
अवनि-	*'सुरभि-सुमनावली खुली, मधुऋतु अवनि!'*	: पृथ्वी	**नि.र.-1**/239	अनगिनित आ गये शरण में
♦	*'उमड़ प्राणों से गहनतर छा गगन लें अवनि के स्वर'*	: धरती	**नि.र.-1**/245	बुझे तृष्णाशा-विषानल झरे
♦	*'अवनि के सुख बढ़ रहे थे दिवस-से'*	: धरती	**पं.ग्रं.-1**/123	ग्रन्थि
अवनि अकास-	*'छा जाते हम अवनि अकास'*	: धरती से लेकर आकाश तक	**पं.ग्रं.-1**/202	विश्व वेणु/पल्लव
अवनि के ईश-	*'सफल होने को अवनि के ईश से'*	: धरती के स्वामी की तरह है वसंत	**पं.ग्रं.-1**/123	ग्रन्थि
अवनि गोद-	*'मुखरित नित अवनि गोद'*	: धरती की गोदी में (मानो पक्षियों की चहचहाहट आदि भरी है)	**पं.ग्रं.-1**/315	तीन/ज्योत्स्ना
अवनी-	*'तज कोलाहल की अवनी रे!'*	: धरती	**प्र.ग्रं.-1**/298	ले चल वहाँ भुलावा देकर/लहर
♦	*'रघुनायक आगे अवनी पर नवीनत-चरण'*	: धरती	**नि.र.-1**/330	राम की शक्ति-पूजा
♦	*'सुन प्रिय की पद-चाप हो गयी/पुलकित यह अवनी'*	: धरती	**म.सा.-1**/168	धीरे-धीरे उतर क्षितिज से/नीरजा
अवनी का अंचल-	*'आँसू से भर जाता जब सूखा अवनी का अञ्चल'*	: धरती का आँचल या सतह	**म.सा.-1**/37	रजनी ओढ़े जाती थी/नीहार
अवभृथ स्नान-	*'पावक सरोवर में अवभृथ स्नान था'*	: यज्ञ पूरा हो जाने के बाद किया जानेवाला स्नान	**प्र.ग्रं.-1**/342	प्रलय की छाया/लहर
अवयव-	*'अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ, ऊर्जस्वित था वीर्य्य अपार;'*	: (मनु के) शरीर के अंग-प्रत्यंग	**प्र.ग्रं.-2**/52	चिंता/कामायनी
♦	*'और संकुचित क्रमशः उसके अवयव का होता था ह्रास'*	: अंग-उपांग	**प्र.ग्रं.-2**/60	चिंता/कामायनी

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अवयव की सुंदर कोमलता- *'अवयव की सुन्दर कोमलता लेकर मैं सबसे हारी हूँ'*	: शारीरिक(आंगिक) सुंदरता और कोमलता	**प्र.ग्रं.-2**/128	लज्जा/कामायनी
अवयव प्रस्फुटित- *'केहरि-किशोर से अभिनव अवयव प्रस्फुटित हुए थे'*	: अंगों का प्रस्फुटित होना	**प्र.ग्रं.-2**/267	आनन्द/कामायनी
अवरुद्ध श्वास- *'चिर मुक्त पुरुष वह कब इतने अवरुद्ध श्वास लेगा निरीह'*	: रुकी हुई साँस अर्थात् पराधीनता का भाव	**प्र.ग्रं.-2**/161	ईर्ष्या/कामायनी
अवरोह- *'मुक्त! तुम्हारे मुक्त कण्ठ में स्वरारोह, अवरोध, विघात'*	: सुर का नीचे उतरना	**नि.र.-1**/134	बादल-राग
♦ *'स्वप्न क्यों अवरोह में, आरोह में दुखगान वंशी?'*	: क्रमशः घटते हुए, पतनशील	**म.सा.-1**/377	गूँजती क्यों प्राण-वंशी? /दीप-शिखा
♦ *'मेरी साँस में आरोह,/उर अवरोह का संचार'* .	: उतरते क्रम में	**म.सा.-1**/395	तुम्हारी बीन ही में बज.. /दीप-शिखा
अवलंब- *'दब रहे हो अपने ही बोझ खोजते भी न कहीं अवलम्ब;'*	: सहारा, आश्रय	**प्र.ग्रं.-2**/91	श्रद्धा/कामायनी
अवलंबन- *'और डूबती सी अचला का अवलम्बन मणि रत्न निधान'*	: सहारा	**प्र.ग्रं.-2**/71	आशा/कामायनी
♦ *'किरनों का रज्जु समेट लिया जिसका अवलम्बन ले चढ़ती'*	: सहारा	**प्र.ग्रं.-2**/125	लज्जा/कामायनी
अवलोको- *'अवलोको, मन! टवलोको!'*	: अवलोकन करो	**पं.ग्रं.-1**/105	आँखों के अविरल जल को/वीणा
अवशिष्ट- *'अब तो अवशिष्ट उपाय भी न'*	: बचा हुआ, शेष रह जाना	**प्र.ग्रं.-2**/178	इड़ा/कामायनी
♦ *'अवशिष्ट रह गई अनुभव में अपनी अतीत असफलता-सी'*	: अपूर्ण रूप में रह जाना	**प्र.ग्रं.-2**/128	लज्जा/कामायनी
♦ *'रहे अवशिष्ट सत्य जो स्पष्ट'*	: बचा हुआ	**नि.र.-1**/104	उद्‌बोधन
अवसन्न- *'पद्म-मन पर थी, रहा अवसन्न वन'*	: निराशा से खामोश (वन)	**नि.र.-1**/155	शेष
♦ *'अवसन्न भी हूँ प्रसन्न मैं प्राप्तवर'*	: घिरा हुआ	**नि.र.-1**/276	प्रात तव द्वार पर
अवसाद- *'विस्मृति आ, अवसाद घेर ले, नीरवते ! बस चुप कर दे;'*	: निराशा के कारण मानसिक शिथिलता	**प्र.ग्रं.-2**/54	चिंता/कामायनी
♦ *'मेरे गीतों का छाया अवसाद'*	: निराशा	**नि.र.-1**/112	सन्तप्त
♦ *'ऐसा तेरा लोक, वेदना/नहीं, नहीं जिसमें अवसाद'*	: गहरा दु:ख जो स्थायी रूप से मन में बैठ जाए	**म.सा.-1**/35	वे मुस्कुराते फूल, नहीं- /नीहार
♦ *'सजग लखती थीं तेरी राह/सुलाकर प्राणों में अवसाद'*	: स्थायी उदासी	**म.सा.-1**/84	तरल आँसू की लड़ियाँ गूँथ/नीहार
अवसादमयी- *'लीला विलास की खेद भरी अवसादमयी श्रम-दलिता-सी'*	: थकावट से उत्पन्न गहरा खेद	**प्र.ग्रं.-2**/128	लज्जा/कामायनी
अवसान- *'व्यथा आरम्भ, वही अवसान'*	: समापन	**प्र.ग्रं.-1**/276	वेदने ठहरो/झरना
♦ *'जीर्ण-शीर्ण जो, दीर्ण धरा में प्राप्त करे अवसान'*	: समाप्ति	**नि.र.-1**/104	उद्‌बोधन
♦ *'आज तुम्हार किस विशाल वक्ष:स्थल में अवसान?'*	: समर्पण, समा जाना	**नि.र.-1**/106	तरंगों के प्रति
♦ *'आदि में छिप आता अवसान*	: समाप्ति, अंत	**म.सा.-1**/106	शून्यता में निद्रा की

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अंत में बनता नव्य विधान'			बन/रश्मि
अवसित- *'अपनी असीमता में अवसित प्राणाशय;'*	: स्थित	**नि.र.-1**/304	तुलसीदास
♦ *'इसी में था असीम अवसित'*	: समाकर समाप्त हो जाना, मानो अनन्त भी इसमें आकर बस जाता था	**पं.ग्रं.-1**/179	उच्छ्वास/पल्लव
♦ *'अवसित कर दूँ निज जीवन'*	: घुला-मिलाकर समाप्त कर लेना	**पं.ग्रं.-1**/208	विसर्जन/पल्लव
अवहेला की चोट- *'हृदय पर अंकित कर सुकुमार तुम्हारी अवहेला की चोट'*	: प्रिय से प्राप्त उपेक्षा का दु:ख	**म.सा.-1/70**	निराशा के झोंकों ने देव!/नीहार
अवाक्- *'ऐ अवाक् निर्जन की भारति'*	: नि:शब्द, छाया मौन होती है	**पं.ग्रं.-1**/205	छाया/पल्लव
♦ *'अवसाद अवाक् कणों का!'*	: मौन (हमारे भीतर छिपा है)	**पं.ग्रं.-1**/242	सागर की लहर लहर में/गुंजन
अविकच- *'नहीं फूल, जीवन अविकच है-/यह सच है!'*	: बन्द, अविकसित	**नि.र.-1**/314	सच है
♦ *'रहता चिर अविकच, अज्ञान'*	: अविकसित, अधखुला	**पं.ग्रं.-1**/199	स्वप्न/पल्लव
♦ *'जिनकी अविकच दुर्बलता ही'*	: अविकसित, निर्दोष	**पं.ग्रं.-1**/220	बालापन/पल्लव
♦ *'शिशुओं के अविकच उर में'*	: अपरिपक्व, अर्धविकसित, मासूम	**पं.ग्रं.-1**/309	तीन/ज्योत्स्ना
अविकच स्वप्नों- *'उर में अविकच स्वप्नों का युग'*	: अविकसित सपने, ऐसी इच्छाएँ जो अभी सपने की तरह हैं	**पं.ग्रं.-1**/303	तीन/ज्योत्स्ना
अविकल- *'जो लीन अनिल में अविकल'*	: अपने मूल रूप में	**पं.ग्रं.-1**/269	चाँदनी/गुंजन
अविकार- *'मेरे कवि ने देखे तेरे स्वप्न सदा अविकार'*	: विकार मुक्त, निर्मल हृदय से	**नि.र.-1**/99	प्रिया से
♦ *'दिवस-द्युति छवि निरलस अविकार'*	: विकारमुक्त, मौलिक, सुंदर	**नि.र.-1**/141	स्मृति
अविकृत- *'तृप्ति वह तृष्णा की अविकृत'*	: विकारहीन, सात्विक, प्राकृतिक, अंकुठ	**नि.र.-1**/141	स्मृति
अविगत- *'तुम अतल गर्त, अविगत, अकूल'*	: जो पूरी तरह व्यतीत न हो सके, शाश्वत, चिरंतन, ईश्वर-जैसा	**पं.ग्रं.-2**/19	छाया/युगपथ
अविचल- *'शक्ति थी जर्जर पर अविचल पाद-प्रहार'*	: लगातार डटे रहना	**नि.र.-1**/180	रेखा 'ग'
अविज्ञात- *'सघन हो रहा अविज्ञात यह देश मलिन है धूम-धार-सा'*	: अनजाना, जिसे जानना मुश्किल हो	**प्र.ग्रं-2**/257	रहस्य/कामायनी
अविदित- *'रजत स्वर्ण में लिखतीं अविदित'*	: अज्ञात, अनजाना, नया	**पं.ग्रं.-1**/198	स्वप्न/पल्लव
♦ *'अविदित भावाकुल भाषा-सी'*	: जिसे जाना न जा सका हो	**पं.ग्रं.-1**/204	छाया/पल्लव
♦ *'संसृति के अविदित आख्यान'*	: अज्ञात, जिसे जाना न जा सके	**पं.ग्रं.-1**/210	नक्षत्र/पल्लव
♦ *'उर-कोषों के मोती अविदित बन पिघल पिघल कर तरल रजत'*	: अज्ञात, जिसे जाना न जा सका हो	**म.सा.-1**/207	जाने किसकी स्मित रूम झूम/नीरजा
अविदित उल्लास- *'यह जग को अविदित उल्लास'*	: अनजानी प्रसन्नता	**पं.ग्रं.-1**/189	वीचि विलास/पल्लव
अविदित पथ- *'स्खलित अविदित पथ पर अविचार'*	: अज्ञात रास्ता	**पं.ग्रं.-1**/207	शिशु/पल्लव
अविनश्वर- *'स्वर-सा कर दो अविनश्वर,/ईश्वर-मज्जित'*	: अनश्वर, ईश्वर	**नि.र.-1**/146	प्रार्थना

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
♦	*'नश्वर को करते अविनश्वर तत्काल'*	: अनश्वर, अमर	**नि.र.-1**/207	कवि
♦	*'अविनश्वर वही ज्ञान भीतर/बाहर भ्रम, भ्रमरों को, भास्वर;'*	: अमर	**नि.र.-1**/293	तुलसीदास
♦	*'है पूर्ण सत्य अविनश्वर'*	: जिसका नाश न हो, अनश्वर	**पं.ग्रं.-1**/326	तीन/ज्योत्स्ना
अविनाशी-	*'युग-युग के सुरगण अविनाशी'*	: अमर (देव-देवी)	**पं.ग्रं.-1**/313	तीन/ज्योत्स्ना
अविनीत-	*'क्या अधिकार नहीं कि कभी अविनीत रहूँ मैं?'*	: अनुशासन या नियम के बंधन से मुक्त	**प्र.ग्रं.-2**/198	संघर्ष/कामायनी
♦	*'हिलाकर धड़कन से अविनीत जगा मत सोया है सुकुमार'*	: जिसमें विनम्रता का अभाव हो	**प्र.ग्रं.-4**/187	प्रथम अंक/चन्द्रगुप्त
अविरत-	*'लड़ रहे अविरत युगल थे चेतना के पाश'*	: निरंतर	**प्र.ग्रं.-2**/111	वासना/कामायनी
♦	*'वह उत्थान-पतन-हत अविरत'*	: लगातार, बिना रुके हुए	**नि.र.-1**/134	बादल-राग
♦	*'बीते अविरत शत-शत/अब्द, शब्द अप्रतिहत/ उठता - ये जो पदनत'*	: बिना रुके हुए, लगातार	**नि.र.-1**/274	कहाँ परित्राण?
♦	*'अविरत दुख है उत्पीड़न'*	: लगातार, जो समाप्त न हो	**पं.ग्रं.-1**/241	मैं नहीं चाहता चिर सुख/गुंजन
♦	*'मेरे प्रतिरोमों से अविरत/झरते हैं निर्झर और आग'*	: निर्बाध रूप से	**म.सा.-1**/217	प्रिय ! मैं हूँ एक पहेली भी!/नीरजा
अविरत गायक विहंग-	*'अविरत गायक विहंग, लाल-निरत किरण संग'*	: लगातार गायन करनेवाले पक्षी	**म.सा.-1**/351	मिट चली घटा अधीर! /दीप-शिखा
अविरत विषाद-	*'सुख नीड़ों को घेरे रहता अविरत विषाद का चक्रवाल'*	: क्रमिक दुःख, दुःख की निरन्तरता	**प्र.ग्रं.-2**/180	इड़ा/कामायनी
अविरल-	*'लघु लघु सुंदर सुंदर अविरल,'*	: क्रमिक, निरन्तर	**प्र.ग्रं.-1**/326	ओ री मानस की गहराई/लहर
♦	*'नव रस भरी अराएँ अविरल चक्रवाल को चकित चूमतीं'*	: सघन भाव से, जो विरल न हो	**प्र.ग्रं.-2**/256	रहस्य/कामायनी
अविरल मेघों-	*'घिर कर अविरल मेघों से जब नभमंडल झुक जाता'*	: सघन बादल	**म.सा.-1**/118	नव मेघों को रोता था /रश्मि
अविराम-	*'अविराम घात - आघात'*	: लगातार	**नि.र.-1**/137	दीन
♦	*'अविराम प्रेम-परिणय अग-जग'*	: सतत, शाश्वत, निरंतर	**पं.ग्रं.-1**/314	तीन/ज्योत्स्ना
♦	*'कहतीं 'क्या देख रहे हैं/अविराम तुम्हारे तारे'*	: लगातार, एकटक	**म.सा.-1**/75	जिस दिन नीरव तारों से/नीहार
♦	*'प्राण में तन्मयता का हास/माँगता है पीड़ा अविराम'*	: अनवरत	**म.सा.-1**/88	गिरा जब हो जाती है मौन/नीहार
अविराम साधना-	*'जीवन की अविराम साधना भर उत्साह खड़ी थी'*	: निरन्तर किया गया कठोर प्रयत्न	**प्र.ग्रं.-2**/133	कर्म/कामायनी
अविरुद्ध-	*'प्रजा आज कुछ और सोचती अब तक जो अविरुद्ध रही'*	: विरोध-रहित, अनुकूल	**प्र.ग्रं.-2**/193	स्वप्न/कामायनी
अविश्वस्त-	*'अविश्वस्त, संज्ञाहीन, पतित, आत्मविस्मृत नर?'*	: जिस पर विश्वास न किया जा सके	**नि.र.-1**/100	दिल्ली
♦	*'भारत के अविश्वस्त अवनत ललाट पर'*	: अविश्वसनीय, जो व्यक्ति	**नि.र.-1**/100	दिल्ली

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
		विश्वसनीय न हो		
अविषय-	*'ऐ अशब्द भारति अविषय'*	: विषय-विकार से मुक्त (ज्ञान की तरह तारे चमकते रहते हैं)	**पं.ग्रं.-1**/209	नक्षत्र/पल्लव
अव्यक्त-प्रकृति-उन्मीलन-	*'अव्यक्त-प्रकृति-उन्मीलन के अंतर में उसकी चाह रही'*	: प्रकृति ने आँखें खोल दीं, जो अब तक मूलकारण होने के बावजूद प्रत्यक्ष नहीं थी। मानो रति ने प्रकृति को सृष्टि के लिए प्रेरित किया।	**प्र.ग्रं.-2**/104	काम/कामायनी
अशंक-	*'लाञ्छन को ले जैसे शशांक नभ में अशंक'*	: बिना किसी शंका के, निर्भ्रान्त होकर, निश्चिंत होकर	**नि.र.-1**/334	राम की शक्ति-पूजा
अशंकित-	*'अशंकित नयन, अधर-कम्पन हरित-हृत-पल्लव-नव शृंगार;'*	: शंकामुक्त, निर्द्वन्द्व	**नि.र.-1**/141	स्मृति
अशन-	*'अशन जल का जल ही परिधान रचा था बूँदों में संसार'*	: व्यापक, अनंत (जल का आवरण जल ही है)	**म.सा.-1**/84	तरल आँसू की लड़ियाँ गूँथ/नीहार
अशना-	*'तारक हार, चन्द्र मुख, मधु ऋतु सुकृत-पुञ्ज-अशना'*	: भोजन	**नि.र.-1**/221	कौन तुम शुभ्र-किरण -वसना?
♦	'शैल-सुता अपर्ण-अशना,/पल्लव-वसना बनेगी'	: भोजन	**नि.र.-1**/227	रूखी री यह डाल
अशनि-पात-	*'अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर'*	: बिजली गिरना	**नि.र.-1**/135	बादल-राग
अशब्द-	*'अशब्द अधरों का, सुना, भाष, मैं कवि हूँ, पाया है प्रकाश'*	: शब्दहीन	**नि.र.-1**/315	सरोज-स्मृति
♦	*'प्रिय की अशब्द शृंगार-मुखर'*	: मौन	**नि.र.-1**/322	सरोज-स्मृति
♦	*'ऐ अशब्द भारति अविषय'*	: शब्दविहीन, स्वरविहीन, तारे बोलते नहीं हैं	**पं.ग्रं.-1**/209	नक्षत्र/पल्लव
अशरीरी रूप-	*'ये अशरीरी रूप, सुमन से केवल वर्ण गंध में फूले'*	: (इच्छा-लोक के प्राणी) छाया-रूप में हैं, शरीर-विहीन हैं	**प्र.ग्रं.-2**/257	रहस्य/कामायनी
अशिव-	*'अशिव उपलाकार मंगल, द्रवित जल नीहार! - (रे, कह)'*	: जो शिव (मंगल) नहीं है, पत्थर है	**नि.र.-1**/255	कौन तम के पार
अशेष-छविधर-	*'यह जागा कवि अशेष-छविधर'*	: असीम सुंदरता	**नि.र.-1**/306	तुलसीदास
अशेष-निर्देश-	*'प्रिया आजानु-विलम्बित-केश शेष तनु में अशेष-निर्देश'*	: सीमाहीन की ओर इंगित करती हुई-सी	**नि.र.-1**/216	'कहाँ उन नयनों की मुसकान'
अशेष शोभा-	*'खुले केश अशेष शोभा भर रहे'*	: असीम सौंदर्य	**नि.र.-1**/253	(प्रिय) यामिनी जागा
अशोक-	*'व्योम-तम पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक'*	: शोकरहित, प्रसन्न	**प्र.ग्रं.-4**/138	पंचम अंक/स्कन्दगुप्त
अशोक का अरुण राग-	*'रञ्जित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोक का अरुण राग'*	: अशोक के फूलों की लाली	**म.सा.-1**/257	जाने किस जीवन की सुधि ले/सांध्य गीत
अश्रांत-	*'उषा के चंचल में अश्रान्त'*	: स्फूर्ति से युक्त, बिना थके हुये	**प्र.ग्रं.-1**/231	किरण/झरना
♦	*'दीनता लाती थी अश्रान्त'*	: बिना थके, फूर्ति के साथ	**प्र.ग्रं.-1**/258	आशालता/झरना
♦	*'चन्द्रमा नभ में हँसता था, बज रही थी वीणा अश्रान्त'*	: अथक, बिना थके, लगातार	**प्र.ग्रं.-1**/266	झील में/झरना
♦	*'झील, झाईं, नभ, शशि, तारा, विटप इंगित करते अश्रान्त'*	: अथक	**प्र.ग्रं.-1**/266	झील में/झरना

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
♦	*'बरसने ज्यों मदिरा अश्रांत'*	: अथक, लगातार	**प्र.ग्रं.-1**/305	आह रे, वह अधीर यौवन/लहर
♦	*'एक लघु ज्वालामुखी अचेत/माधवी रजनी में अश्रांत'*	: बिना थके हुए, लगातार	**प्र.ग्रं.-2**/84	श्रद्धा/कामायनी
♦	*'चल पड़े कब से हृदय दो, पथिक-से अश्रांत'*	: बिना थके	**प्र.ग्रं.-2**/111	वासना/कामायनी
♦	*'राशि-राशि नखत-कुसुम की अर्चना अश्रांत'*	: बिना थके, लगातार	**प्र.ग्रं.-2**/117	वासना/कामायनी
अश्रु की उर्म्मि-	*'अश्रु की उर्म्मि हास का वात कुहू का तम माधव का प्रात'*	: आँसुओं की लहरें	**म.सा.-1**/115	तुहिन के पुलिनों पर छबिमान/रश्मि
अश्रु की टकसाल-	*'आँसुओं का कोष उर, दृग अश्रु की टकसाल'*	: आँखें आँसुओं को ऐसे निकालती हैं जैसे टकसाल से मुद्रा निकलती है।	**म.सा.-1**/176	विरह का जलजात जीवन/नीरजा
अश्रुजल-धौत-	*'मूर्ति अश्रुजल-धौत विमल'*	: आँसुओं से धुली	**नि.र.-1**/223	नर-जीवन के स्वार्थ सकल
अश्रुत-	*'एक अश्रुत भाषा की तान'*	: जो सुनाई न दे (केवल महसूस हो)	**नि.र.-1**/141	स्मृति
♦	*'अश्रुत जो बजता रहा था झंकार भर'*	: जो सुनायी न पड़ रहा हो	**नि.र.-1**/328	प्रेयसी
अश्रु-नीर-	*'प्रिय इन नयनों का अश्रु-नीर'*	: अश्रु-जल, आँसू	**म.सा.-1**/167	प्रिय इन नयनों का अश्रु-नीर/नीरजा
अश्रु बरसाते हँसे-	*'वृंत बिन नभ में खिले जो अश्रु बरसाते हँसे जो'*	: सितारे ओसकण-रूपी आँसू बरसाते हुए अपनी चमक में हँसते रहते हैं।	**म.सा.-1**/227	मत अरुण घूँघट खोल री!/नीरजा
अश्रुभार-नत तृण-	*'चिर सुरभित नंदन उनका, वह अश्रुभार-नत तृण मेरे हों'*	: ओस-बूँदों के भार से झुकी घास की नोंक	**म.सा.-1**/222	झरते नित लोचन मेरे हों!/नीरजा
अश्रुमती-	*'संध्या का नभ से मूक मिलन यह अश्रुमती हँसती चितवन!'*	: आँसुओं से भरी हुई	**म.सा.-1**/249	प्रिय! सांध्य गगन, मेरा जीवन!/सांध्य गीत
अश्रुमय अवसाद-	*'अश्रुमय अवसाद क्यों यह पुलक-कंपन-लास क्यों?'*	: आँसुओं से भरी हुई निराशा	**म.सा.-1**/216	कमलदल पर किरण अंकित/नीरजा
अश्रुमयि रंगिनि-	*'दुख वाले दग्ध हृदय की वेदने ! अश्रुमयि रंगिनि !'*	: आँसू के रंगों से रँगी हुई	**प्र.ग्रं.-2**/38	आँसू
अश्रु-माल-	*'स्वप्नों से गीली पलक आँज सीमंत सजा ली अश्रु-माल'*	: आँसुओं का क्रम	**म.सा.-1**/255	क्यों वह प्रिय आता पार नहीं?/सांध्य गीत
अश्रु-विनिर्मित-	*'सजल श्यामल मंथर मूक सा तरल अश्रु-विनिर्मित गात ले'*	: आँसुओं से निर्मित शरीर हैं मेघों के	**म.सा.-1**/195	घन बनूँ वर दो मुझे प्रिय!/नीरजा
अश्रु-सर-	*'चिर निराशा नीरधर से, प्रतिच्छायित अश्रु-सर से'*	: आँसुओं का सरोवर, दुखद जीवन	**प्र.ग्रं.-2**/221	निर्वेद/कामायनी
अश्रुस्नात-	*'चाँदनी है अश्रुस्नात!'*	: आँसुओं से नहाया हुआ	**म.सा.-1**/203	प्रिय गया है लौट रात/नीरजा
अश्लेष-	*'अर्थ से रहित दृष्टि अश्लेष'*	: बिना व्यंग्य की, अभिधात्मक	**नि.र.-1**/216	'कहाँ उन नयनों की मुसकान'
अष्ट सिद्धियाँ-	*'माता की तृप्ति मेरे लिए अष्ट सिद्धियाँ'*	: आठ सिद्धियाँ-अणिमा,	**नि.र.-1**/54	पंचवटी प्रसंग:2

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
		महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व		
♦	*'अष्ट सिद्धियाँ, वह/सर्वशक्तिमान होता'*	: आठ सिद्धियाँ–अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व	**नि.र.–1**/59	पंचवटी प्रसंग:4
अष्टादशाध्याय –	*'पूरे कर शुचितर सपर्याय जीवन के अष्टदशाध्याय'*	: अठारह अध्याय, गीता के अठारह अध्याय और सरोज के अठारह वर्ष	**नि.र.–1**/315	सरोज-स्मृति
असंख्यक–	*'जलते नभ में देख असंख्यक स्नेहहीन नित कितने दीपक'*	: अनगिनत	**म.सा.–1**/187	मधुर मधुर मेरे दीपक जल/नीरजा
♦	*'गल जाता लघु बीज असंख्यक/नश्वर बीज बनाने को'*	: अनगिनत, न्योछावर होनेवाले असंख्य लोग	**म.सा.–1**/192	मेरे हँसते अधर नहीं जग – /नीरजा
असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ–	*'असंख्य कीर्ति-रश्मियाँ, विकीर्ण दिव्य दाह-सी'*	: यश की अनगिनत किरणें	**प्र.ग्रं.–4**/290	चतुर्थ अंक/चन्द्रगुप्त
असंख्य जीवन इतिहास–	*'इस गंभीर अनन्त नीलिमा में असंख्य जीवन इतिहास'*	: अनेक लोगों की आत्मकथाएँ	**प्र.ग्रं.–1**/292	मधुप गुनगुना कर कह जाता/लहर
असंग सुख–	*'वह रे अनन्त का मुक्त मीन, अपने असंग सुख में विलीन'*	: अनासक्त भाव में रहते हुए जो सुख मिलता है	**पं.ग्रं.–1**/268	एक तारा/गुंजन
असत–	*'वह शून्य असत या अंधकार, अवकाश पटल का वार पार'*	: अव्यक्त, किसी के भी अस्तित्व का आभास न हो पाना	**प्र.ग्रं.–2**/245	दर्शन/कामायनी
असत्–	*'जिस शुचि प्रकाश का सौर-जगत् रुचि-रुचि में खुला, असत् भी सत्'*	: असत्य	**नि.र.–1**/293	तुलसीदास
असत् विश्व–	'तुमने तो समझा असत् विश्व जीवन धागे में रहा झूल'	: असत्य संसार, नश्वर संसार	**प्र.ग्रं.–2**/174	इड़ा/कामायनी
असद्सत्–	*'विश्वास, असद्सत् का विवेक'*	: अनुचित और उचित	**पं.ग्रं.–2**/22	मानव/युगपथ
असमय-समय–	*'तब क्यों इतना विस्मय-कुण्ठन? असमय-समय न करो, खड़ी, प्रिय'*	: यह न कहो कि अभी समय नहीं है	**नि.र.–1**/260	कब से मैं पथ देख रही
असम्भाव्य–	*'क्या असम्भाव्य हो यह राघव के लिए धार्य?'*	: जिसकी संभावना न हो	**नि.र.–1**/333	राम की शक्ति-पूजा
असहन–	*'दृढ़ सहता निस्संग मौन रह, ज्योति-सिन्धु-ज्वाला असहन'*	: न सहने योग्य	**नि.र.–1**/192	वसन्त-समीर
असार–	*'दिवस-स्वप्न-सा पड़ा असार'*	: अर्थहीन	**नि.र.–1**/125	यमुना के प्रति
♦	*'कर-स्पर्श-रहित और क्या है? – अपलक, असार!'*	: सारहीन, निरर्थक	**नि.र.–1**/150	पारस
♦	*'कितने असार हृदय'*	: सारहीन, दुखी, निराश	**नि.र.–1**/187	'सरोज' के प्रति
♦	*'जिनसे कहती बीती बहार/मतवालों जीवन है असार'*	: सारहीन, नश्वर	**म.सा.–1**/63	मैं कंपन हूँ तू करुण राग/नीहार
♦	*'क्या पता देते घनों को वारि-बिंदु असार?'*	: जो अंततः निस्सार हो	**म.सा.–1**/124	स्मित तुम्हारी से छलक.../रश्मि
असार भव-शून्य–	*'तुम पूर्ण इकाई जीवन की, जिसमें असार भव-शून्य लीन'*	: निस्सार संसार जिस शून्य में (लीन हो जाता है)	**पं.ग्रं.–2**/24	बापू के प्रति/युगपथ
असावरी–	*'कोमल-कण्ठ-कामिनी की सुधा-भरी असावरी'*	: एक रागिनी	**नि.र.–1**/62	पंचवटी प्रसंग:5
असित–	*'विकसित असित सुवासित उड़ते उसके'*	: काला, जो सफेद (सित)	**नि.र.–1**/75	कविता

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
		न हो		
♦	*'विकसित कुसुम-सुशोभित असित सुवासित'*	: काला	**नि.र.**-1/88	शृंगारमयी
असित निशि-	*'उलझती अलकें सुनहली असित निशि के कुंतलों में!'*	: अँधेरी रात	**म.सा.**-1/253	रागभीनी तू सजनि निश्वास भी.../सांध्य गीत
असित-श्वेत-	*'असित-श्वेत गंधर्व जो सृष्टि लय के'*	: रात और दिन मानो काले और गोरे गंधर्व की तरह हैं (पुजारी बनकर)	**म.सा.**-1/321	हुए शूल अक्षत मुझे धूलि चंदन/दीप-शिखा
असिद्धि-	*'आसन छोड़ना असिद्धि, भर गये नयनद्वय:'*	: सिद्धि के नियमों के विपरीत	**नि.र.**-1/337	राम की शक्ति-पूजा
असि-धारा-	*'असि-धारा पर धरा हुआ सुख, उससे कैसा नाता है'*	: तलवार की धार	**प्र.ग्रं.**-3/377	द्वितीय अंक/जन्मेजय का नाग-यज्ञ
असि-सा वक्र-	*'हो गया है हा! हसि-सा वक्र'*	: तलवार की तरह टेढ़ा	**पं.ग्रं.**-1/182	उच्छ्वास/पल्लव
असीम-	*'संकुचित असीम अमोघ शक्ति'*	: अनन्त, अपार	**प्र.ग्रं.**-2/177	इड़ा/कामायनी
♦	*'जब असीम से हो जाएगा/मेरी लघु सीमा का मेल'*	: वह अज्ञात प्रिय अनंतता के भाव से परिपूर्ण है	**म.सा.**-1/33	मैं अनंत पथ में लिखती जो/नीहार
♦	*'बुझाकर छोटा दीपालोक/हुई क्या हो असीम में लोप?'*	: अनंत की तरह अज्ञात प्रियतम	**म.सा.**-1/66	समीरण के पंखों में गूँथ/नीहार
♦	*'कौन बता देगा जाता यह/किस असीम की ओर?'*	: वह अज्ञात अनंत प्रियतम	**म.सा.**-1/112	किन उपकरणों का दीपक/रश्मि
असीम अवसाद-	*'निराली सी आँसू की बूँद छिपा जिसमें असीम अवसाद'*	: अनंत दु:ख	**म.सा.**-1/77	जहाँ है निद्रामग्न वसंत/नीहार
असीमता-	*'सीमा में दीखी असीमता'*	: असीम या अनन्त का भाव	**नि.र.**-1/172	रेखा 'क'
♦	*'एक ही मूर्ति में/तन्मय असीमता'*	: सीमाहीन हो जाना, अत्यधिक	**नि.र.**-1/173	रेखा 'क'
♦	*'प्रेम की असीमता ने/प्लावित कर दी सीमा'*	: अनन्तता, अगाधता	**नि.र.**-1/177	रेखा 'ख'
असीम नीले अंचल-	*'उस असीम नीले अंचल में देख किसी की मृदु मुसक्यान'*	: नीला आकाश	**प्र.ग्रं.**-2/72	आशा/कामायनी
असीम सुवास-	*'फैल भरते लघु कणों में भी असीम सुवास'*	: असीमित सुगंध	**म.सा.**-1/236	जाग बेसुध जाग!/नीरजा
असीम सूनापन-	*'उनमें अनंत करुणा है इसमें असीम सूनापन!'*	: इस साधक के भिक्षुक जीवन में असीम सूनापन है। यह सूनापन ही महादेवी को आकर्षित करता है	**म.सा.**-1/45	छाया की आँखमिचौनी /नीहार
असीम सौंदर्य-	*'ऐ असीम सौन्दर्य सिन्धु की'*	: (कामचेतना मानो) सौन्दर्य की अनंतता का प्रतीक है	**पं.ग्रं.**-1/191	अनंग/पल्लव
असुर पुरोहित-	*'असुर पुरोहित उस विप्लव से बचकर भटक रहे थे'*	: असुरों के बीच पुरोहित का काम करनेवाले किलात और आकुलि	**प्र.ग्रं.**-2/135	कर्म/कामायनी
असुर-स्कन्ध-	*'वाम पद असुर-स्कन्ध पर, रहा दक्षिण हरि पर;'*	: असुर के कंधे पर	**नि.र.**-1/338	राम की शक्ति-पूजा
अस्त-	*'बिखरती थी और खुलते ज्वलन-कण जो अस्त'*	: ओझल	**प्र.ग्रं.**-2/113	वासना/कामायनी
अस्त-दल ढक पलक-कल तन-	*'उदय में तम-भेद सुनयन*	: अस्त के दल पलकों से सुंदर हुई देह को ढँक लेते हैं	**नि.र.**-1/255	कौन तम के पार

शब्द- 'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
अस्त-दल ढक पलक-कल तन'			
अस्त नयन- *'निशि, तिमिर-ग्रस्त/वसन-स्रस्त, अस्त नयन छलके'*	: बंद आँखें	**नि.र.-1**/263	वे गये असह दुख भर
अस्तमित- *'अस्तमित आज रे- तमस्तूर्य दिङ्मण्डल;'*	: अस्त हो जाना	**नि.र.-1**/281	तुलसीदास
अस्ताचल- *'अस्ताचल पर युवती सन्ध्या की खुली अलक घुँघराली है'*	: पश्चिम दिशा का वह कल्पित पर्वत जिसके पीछे सूरज डूबता है	**प्र.ग्रं.-4**/346	द्वितीय अंक/ध्रुवस्वामिनी
♦ *'अस्ताचल ढले रवि'*	: वह पर्वत जिसके पीछे सूर्य डूबता हुआ दिखाई देता है (अस्त+अचल)	**नि.र.-1**/148	जागो फिर एक बार
♦ *'अस्ताचल रवि, जल छलछल-छवि'*	: सूर्य के अस्त होने की दिशा, पश्चिम का पर्वत	**नि.र.-1**/246	अस्ताचल रवि
♦ *'रवि अस्ताचल ढलके'*	: जिस पर्वत के पीछे सूर्य अस्त होता दिखता है	**नि.र.-1**/263	वे गये असह दुख भर
♦ *'डूबा रवि अस्ताचल'*	: पश्चिम दिशा में स्थित पर्वत जिसके पीछे सूर्य डूबता मालूम पड़ता है	**नि.र.-1**/269	डूबा रवि अस्ताचल
अस्तित्व- *'सदा मौन हो प्रवचन करते जिसका, वह अस्तित्व कहाँ?'*	: परम सत्ता, ईश्वर	**प्र.ग्रं.-2**/69	आशा/कामायनी
♦ *'पूर्वजों के मान पर दम्भ अस्तित्व था'*	: मौजूदगी की अनिवार्यता	**नि.र.-1**/180	रेखा 'ग'
♦ *'मेरी छोटी सीमा में/अपना अस्तित्व मिटा दो'*	: सर्वस्व, अपने होने का प्रमाण	**म.सा.-1**/62	इस एक बूँद आँसू में/नीहार
अस्तित्व खो- *'उन्मुक्त उर अस्तित्व खो क्यों तू उसे भुजभर मिली?'*	: किसी के प्रति पूर्णतः समर्पित हो जाना	**म.सा.-1**/265	पंकज-कली!/सांध्य गीत
अस्तित्व-चिरंतन-धनु- *'अस्तित्व-चिरंतन-धनु से कब, यह छूट पड़ा है विषम तीर'*	: ईश्वर के धनुष से, शाश्वत अस्तित्व वाले ईश्वर के धनुष से	**प्र.ग्रं.-2**/171	इड़ा/कामायनी
अस्ति-नास्ति- *'अस्ति-नास्ति का भेद, निरंकुश करते ये अणु तर्क-युक्ति से'*	: सत् और असत्, है और नहीं है(पारमार्थिक प्रश्नों के सन्दर्भ में)	**प्र.ग्रं.-2**/260	रहस्य/कामायनी
♦ *'युग 'अस्ति-नास्ति' के एक-रूप, गुण-गण-अनिन्द्य'*	: होने और न होने का भाव	**नि.र.-1**/331	राम की शक्ति-पूजा
अस्तु- *'सभी हो गया तुम्हारा, अस्तु'*	: ठीक है	**प्र.ग्रं.-3**/404	तृतीय अंक/जन्मेजय का नाग-यज्ञ
♦ *'अस्तु भाई, हैं वे सब प्रकृति के गुण'*	: इस तरह, अच्छा भाई!, ठीक है भाई!	**नि.र.-1**/59	पंचवटी प्रसंग:4
♦ *'अस्तु, वह प्यार?'*	: ऐसा हो	**नि.र.-1**/174	रेखा 'क'
♦ *'अस्तु रे, विवश, मारुत-प्रेरित'*	: ठीक है, अच्छा	**नि.र.-1**/302	तुलसीदास
♦ *'अस्तु, मैं उपार्जन को अक्षम कर नहीं सका पोषण उत्तम'*	: अतः, इस प्रकार	**नि.र.-1**/316	सरोज स्मृति
अस्थि-खंड- *'दारुण-दृश्य ! रुधिर के छींटे अस्थि-खंड की माला!'*	: हड्डी के टुकड़े	**प्र.ग्रं.-2**/138	कर्म/कामायनी
अस्थि-पुंज- *'चूर्ण अस्थि-पुंज सा हँसेगा अट्टहास कौन?'*	: हड्डियों का समूह	**प्र.ग्रं.-1**/338	पेशोला की प्रतिध्वनि

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
				/लहर
अस्थि युग-	*'पुरन्दर ने पवि से है लिखा अस्थि युग का मेरा इतिहास'*	: जिस युग में अस्थि से हथियार बनाते थे	**प्र.ग्रं.-4**/139	पंचम अंक/स्कन्दगुप्त
अस्थिर-भीरु-वितान-	*'अस्थिर-भीरु-वितान'*	: जीवन-रूपी यान मानो अस्थिर और कमजोर आवरण (चँदोबा, छत) की तरह है	**पं.ग्रं.-1**/213	जीवन यान/पल्लव
अस्थिर मधुदिन-	*'भावे क्या अलि! अस्थिर मधुदिन दो दिन का मृदु मधुकर-गुंजन'*	: अस्थायी अच्छे दिन, सुख की क्षणिकता	**म.सा.-1**/205	क्यों जग कहता मतवाली /नीरजा
अस्थिर मरुताकाश-	*'सुरभि से अस्थिर मरुताकाश'*	: वायुमंडल सुगंध से चंचल हो उठेगा	**पं.ग्रं.-1**/178	पल्लव/पल्लव
अस्थिर लास-	*'चिर शाश्वत की अस्थिर लास'*	: चंचल नृत्य	**पं.ग्रं.-1**/190	वीचि विलास/पल्लव
अस्थिर सौरभ-	*'अस्थिर सौरभ से मलय-श्वास'*	: गतिशील सुगन्धित वायु	**पं.ग्रं.-1**/239	वन-वन उपवन/गुंजन
अस्थिशेष-	*'तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन, हे अस्थिशेष! तुम अस्थिहीन'*	: दुबला, जिसमें केवल हड्डियाँ बची हों	**पं.ग्रं.-2**/24	बापू के प्रति/युगपथ
अस्पष्ट एक लिपि-	*'अस्पष्ट एक लिपि ज्योतिमयी जीवन की आँखों में भरते'*	: धुँधली रूप-रेखा	**प्र.ग्रं.-2**/98	काम/कामायनी
अस्पष्ट-उपेक्षा-	*'जगती की अस्पष्ट-उपेक्षा, एक कसक साकार रही'*	: जिस उपेक्षा का कारण स्पष्ट न हो, अकारण अवहेलना	**प्र.ग्रं.-2**/185	स्वप्न/कामायनी
अस्पृश्य-	*'ऐ अस्पृश्य, अदृश्य अप्सरि'*	: जिसे छू पाना संभव न हो, यहाँ 'छुआछूत' का अर्थ नहीं है	**पं.ग्रं.-1**/205	छाया/पल्लव
♦	*'अस्पृश्य, अदृश्य विभा वह'*	: स्पर्शातीत, जो स्पर्श से परे हो (चाँदनी को छू नहीं सकते)	**पं.ग्रं.-1**/270	चाँदनी/गुंजन
♦	*'तुम अदृश्य, अप्सरी'*	: स्पर्शातीत, जिसे छू सकने में हम सक्षम न हों (ऐसी है अप्सरा)	**पं.ग्रं.-1**/274	अप्सरा/गुंजन
♦	*'अदृश्य, अस्पृश्य, अज्ञात'*	: जिसे छू पाना असंभव हो, वायु को हम छू नहीं सकते वह हमें छू सकती है	**पं.ग्रं.-1**/372	द्वितीय दृश्य/परी
अस्फुट-	*'जल में अस्फुट छवि छायाधर, यों देखा'*	: हल्की- फुल्की (छाया)	**नि.र.-1**/284	तुलसीदास
♦	*'यह अति अस्फुट, ध्वन्यात्मक है'*	: अस्पष्ट, अपरिपक्व, काव्य-कौशल की अपरिपक्वता	**पं.ग्रं.-1**/81	उत्सर्ग/वीणा
♦	*'सुख में सोई री प्रिय-सुधि की अस्फुट सी झंकार'*	: अस्पष्ट	**म.सा.-1**/233	दूर घर मैं पथ से अनजान!/नीरजा
अस्फुट अधरों-	*'कुसुमों के अस्फुट अधरों पर'*	: अधखुले होंठ, अर्धविकसित पंखुड़ियाँ	**पं.ग्रं.-1**/102	उस विकसित, वासित वन में/वीणा
♦	*'पत्रों के अस्फुट अधरों से'*	: अधखुले होंठ	**पं.ग्रं.-1**/205	छाया/पल्लव
अस्फुट झंकार-	*'विश्ववीणा में अपनी आज मिला लो यह अस्फुट झंकार'*	: अपरिपक्व वीणावादन, मेरी वीणा के स्वर अभी सधे हुए नहीं हैं	**म.सा.-1**/29	निशा को, धो देता राकेश/नीहार
अस्फुट तान-	*'हर सुदूर से अस्फुट तान'*	: जो लय अभी ठीक से शुरू नहीं हुई है, अस्पष्ट सुर-ताल	**पं.ग्रं.-1**/202	विश्व वेणु/पल्लव
अस्फुटता भय-	*'लीला, विस्मय, अस्फुटता भय'*	: छुपा-छुपा-सा संकोच	**पं.ग्रं.-1**/197	वसन्त श्री/पल्लव

शब्द-	'काव्य-पंक्ति'	: अर्थ	ग्रंथावली/पृ.सं.	स्रोत/संदर्भ
		या भय		
अस्फुट नवीन-	*'हम नाम-हीन, अस्फुट नवीन'*	: अधखिले (फूल) की तरह नया	**पं.ग्रं.-1**/313	तीन/ज्योत्स्ना
अस्फुट मर्मर-	*'अस्फुट मर्मर में, अपनी गति की कल कल उलझाकर'*	: अस्पष्ट धीमा स्वर	**म.सा.-1**/120	नव मेघों को रोता था /रश्मि
अस्फुट रेखा-	*'अस्फुट रेखा की सीमा में, आकार कला को देती हो'*	: अस्पष्ट खाका	**प्र.ग्रं.-2**/129	लज्जा/कामायनी
अस्फुट लेखा-	*'निर्मोह काल के काले- पट पर कुछ अस्फुट लेखा'*	: अस्पष्ट लिखावट, अनिश्चित	**प्र.ग्रं.-2**/23	आँसू
अस्फुट स्वर-	*'अस्फुट स्वर में मन की बातें'*	: अस्पष्ट बोली (चिड़ियों की)	**पं.ग्रं.-1**/262	आँखों की खिड़की से उड़-उड़/गुंजन
♦	*'पल में रागों को झंकृत कर फिर विराग का अस्फुट स्वर भर'*	: अस्पष्ट ध्वनि	**म.सा.-1**/107	क्यों इन तारों को उलझाते?/रश्मि
अहंकृति-	*'अहंकृति में झंकृति-जीवन'*	: अहंकार, घमंड	**नि.र.-1**/143	स्मृति
अहंता-	*'दूसरा अपूर्ण अहंता में अपने को समझ रहा प्रवीण'*	: अहं की भावना, अपने को सबसे श्रेष्ठ मानना	**प्र.ग्रं.-2**/174	इड़ा/कामायनी
♦	*'या कभी अपूर्ण अहंता में हो रागमयी-सी महासक्ति'*	: 'मैं'(अहं) का भाव	**प्र.ग्रं.-2**/177	इड़ा/कामायनी
अहमंद-	*'ध्वस्त अहमंद डम्बर'*	: अपने अस्तित्व का घमंड	**पं.ग्रं.-1**/335	चार/ज्योत्स्ना
अहमिति-	*'पूर्णानुभव करता है जो 'अहमिति' से निज सत्ता का'*	: अहंकार, 'मैं हूँ' का भाव, ममत्व	**प्र.ग्रं.-3**/426	तृतीय अंक/जन्मेजय का नाग-यज्ञ
अहरह-	*'देखता हूँ अहरह मैं जाग'*	: दिन-दिन, प्रतिदिन	**नि.र.-1**/272	छन्द की बाढ़
♦	*'मैंने कुछ अहरह रह निर्भर/ज्योतिस्तरणा के चरणों पर'*	: दिन प्रतिदिन	**नि.र.-1**/315	सरोज स्मृति
♦	*'चिर आकांक्षा से ही थर्-थर् उद्वेलित रे अहरह सागर'*	: दिन-रात	**पं.ग्रं.-1**/268	एक तारा/गुंजन
अहर्निश-	*'अहर्निश साँस-साँस में लास'*	: दिन-रात	**पं.ग्रं.-1**/265	प्राण! तुम लघु-लघु गात/गुंजन
♦	*'अहर्निशि साँस-साँस में लास'*	: दिन-रात	**पं.ग्रं.-1**/372	द्वितीय दृश्य/परी
अहल्योद्धार-	*'दे स्पर्श अहल्योद्धार-सार उस जग का'*	: अहल्या का उद्धार	**नि.र.-1**/286	तुलसीदास
अहि-मित-	*'भूल जा अहि-मित का यह स्वार्थ'*	: साँप की मित्रता	**प्र.ग्रं.-1**/269	आदेश/झरना
अहेर-	*'चल री तकली धीरे-धीरे प्रिय गये खेलने को अहेर'*	: शिकार खेलना	**प्र.ग्रं.-2**/165	ईर्ष्या/कामायनी
अहेरी-	*'अब तक आये न अहेरी वे क्या दूर ले गया चपल जंतु'*	: शिकारी मनु	**प्र.ग्रं.-2**/159	ईर्ष्या/कामायनी
अहोरात्र-	*'स्पर्द्धान्धि जन, गात्र/जर्जर अहोरात्र'*	: दिन-रात	**नि.र.-1**/244	सार्थक करो प्राण

❑❑❑

लेखक परिचय :

- **ओमप्रकाश सिंह** : अध्यक्ष, भारतीय भाषा केन्द्र, जे. एन. यू., मो. 989944861
- **गोपाल प्रधान** : प्राध्यापक, हिंदी विभाग, स्कूल ऑफ लिबरल स्टडीज, अम्बेडकर विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, मो. 9560375988.
- **निरंजन सहाय** : प्राध्यापक, हिंदी विभाग, महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, मो. 9451777960
- **प्रवीन कुमार यादव** : सहायक प्राध्यापक, राजकीय पी. जी. कॉलेज, आलापुर, अम्बेडकर नगर, पिन-224147, मो. 9450616228.
- **दिलीप राम** : सह-प्राध्यापक, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, मो. 9334381636.
- **भावना मिश्रा** : शोधप्रज्ञ, अंग्रेजी विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया।
- **जय प्रकाश सिंह** : वरीय अध्यापक, अंग्रेजी विभाग, द आर्यन स्कूल, देहरादून, उत्तराखंड।
- **क्षमाशंकर पांडेय** : 100, सरायतकी, निकट सरोज विद्याशंकर इंटर कॉलेज, झूँसी, इलाहाबाद, पिन- 211019
- **रविरंजन** : प्राध्यापक एवं पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग, हैदराबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद, पिन : 500046. विजिटिंग प्रोफेसर, वारसा विश्वविद्यालय, पोलैंड।
- **इमरान अंसारी** : शोधप्रज्ञ, हिंदी विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद, मो. 9573757203.
- **राहुल प्रसाद** : शोधप्रज्ञ, गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हिंदी भाषा एवं साहित्य अध्ययन केन्द्र, गाँधीनगर, सेक्टर -29, पिन : 382030.
- **तोमोको किकुचि** : जापान, email: indtmc@gmail.com
- **तेलानी मीना होरो** : सह-प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान विभाग, मगध महिला कॉलेज, पटना, मो. 9955950162
- **राम बचन यादव** : शोधप्रज्ञ, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, मो. 9453087972.
- **शिवनंदन प्रसाद** : पटना, 6200109309
- **कृष्ण कुमार** : सहायक प्राध्यापक, राजकीय महिला स्ना. महाविद्यालय, औराई (भदोही)

- **आरजू सिंह** : सहायक प्राध्यापक, हिंदी, भाउराव देवरस राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, दुद्धी, सोनभद्र, मो. 800417057
- **अजीत प्रताप सिंह** : सहायक प्राध्यापक, इतिहास, रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकरनगर, मो. 9455630919
- **खुशबू** : शोधप्रज्ञ, हिंदी विभाग, केन्द्रीय विश्वविद्यालय, हैदराबाद।
- **जगमोहन सिंह** : सहायक प्रवक्ता, हिंदी, रानीगंज महिला महाविद्यालय, पश्चिम बंगाल। संपर्क : 8967477761
- **किरण शर्मा** : सहायक प्राध्यापक, हिंदी, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही, मो. 9935021617.
- **नीलकंठ कुमार** : सहायक प्राध्यापक, हिंदी, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली, मो. 9891106847.
- **मधु मंजरी** : तदर्थ अध्यापिका, हिंदी विभाग, मगध महिला कॉलेज, पटना।
- **अरविंद कुमार** : वरीय सहायक प्राध्यापक एवं पूर्व अध्यक्ष, संगीत विभाग, मगध महिला कॉलेज, पटना, मो. 9835681230.
- **अंजय कुमार** : प्रशिक्षित स्नातक शिक्षक, हिंदी, राज्य संपोषित +2 विद्यालय, पतरातू, रामगढ़ झारखंड। मो. 8877034820
- **यशस्विनी पांडेय** : yashaswinipathak@gmail.com
- **श्रीधरम** : बी.-277 ए, वसंतकुंज एन्क्लेव, नई दिल्ली, पिन : 110070, मो. 9868325811.
- **आशा सिंह** : शोधप्रज्ञ, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, अरुणाचल प्रदेश, मो. 9774871855.

❖❖❖

SATRAACHEE

Research Journal of Social Sciences and Humanities

<u>Membership Form</u>

Dear Editor,

I wish to be a Five year Member / Life Member of "Satraachee."

*Name (In Block letters):** ....

Date of Birth: ....

*Mailing Address:** ....

....

....

....

*Pin :** ....

*Mob :** ....

Institution / Address: ....

....

*Email :** ....

Academic Qualification :*..

Profession : ....

Field of Research :..

Nature of Membership (Five Year / Life time) :* ....

Fee for membership : Rs. - ....

Place / Date :............................

satraachee

Signature

[illegible]
सिंहासन [illegible] और मानव का
पद [illegible]
हो कोई [illegible]
यह सुना, रहे, सम्राट्! [illegible]
मानव के घर!

वैभव विशाल,
साम्राज्य सप्त-सागर-तरङ्ग-दल दत्त-माल,
है सूर्य छत्र
मस्तक पर सदा विराजित
ले कर-आतपत्र,
विच्छुरित छटा—
जल, स्थल, नभ में
विजयिनी वाहिनी—विपुल घटा,
क्षण क्षण भर पर
बदलती इन्द्रधनु इस दिशि से
उस दिशि सत्वर,
वह महासद्म
लक्ष्मी का शत-मणि-लाल-जटित
ज्यों रक्त पद्म,
बैठे उस पर
नरेन्द्र-वन्दित, ज्यों देवेश्वर।

पर रह न सके,
हे मुक्त,
बन्ध का सुखद भार भी सह न सके।

[illegible] की पुकार
जो नव संस्कृति की मूर्ति
[illegible], मार्जित, [illegible],
हो [illegible] किया [illegible] पहले ही
अपना घर,
[illegible] फिर नहीं कभी,
पाया निज पुर
जन-जन के जीवन में सहास,
है नहीं जहाँ वैशिष्ट्य-धर्म का
भ्रू-विलास—
भेदों का भ्रम,
मानव हो जहाँ पड़ा—
चढ़ जहाँ बड़ा सम्भ्रम।
सिंहासन तज उतरे भू पर,
सम्राट्! दिखाया
सत्य कौन-सा वह सुन्दर।
जो प्रिया, प्रिया वह
रही सदा ही अनामिका,
तुम नहीं मिले,—
तुमसे हैं मिले आज सब
योरप-अमेरिका।

सौरभ प्रमुक्त!
प्रेयसी के हृदय से हो
तुम प्रतिदेशयुक्त,
प्रतिजन प्रतिमन,
आलिङ्गित तुमसे हुई
सभ्यता यह नूतन!

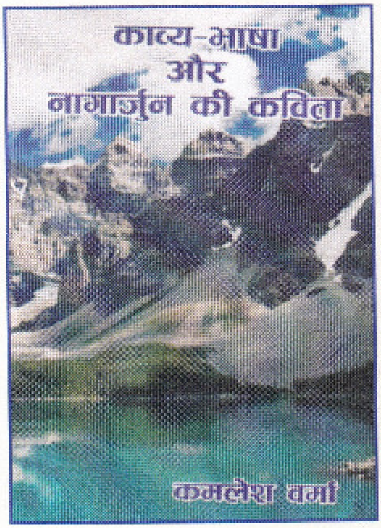

पेरियार प्रकाशन, पटना

संपर्क : 9431060256

द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन

संपर्क : 9968527911

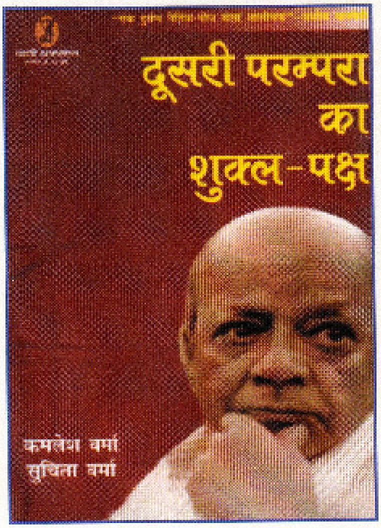

वाणी प्रकाशन, दिल्ली

संपर्क : 011-23273167

कमलेश वर्मा एवं सुचिता वर्मा की चर्चित पुस्तकें

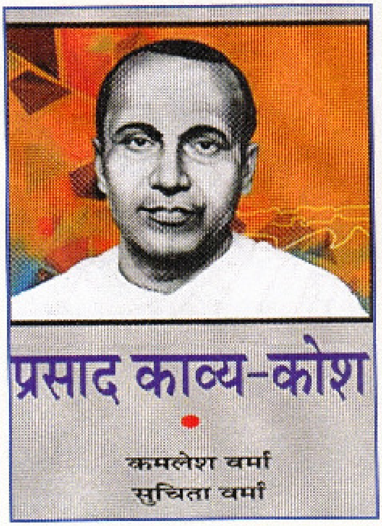

द मार्जिनलाइज्ड पब्लिकेशन

संपर्क : 9968527911

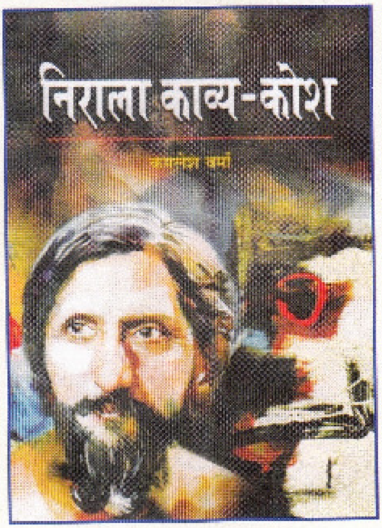

संस्कृति प्रकाशन, भागलपुर

संपर्क : 9386889900

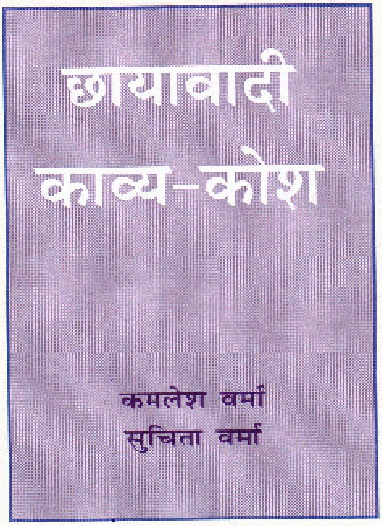

यंत्रस्थ